दीनदयाल उपाध्याय

संपूर्ण वाङ्मय

खंड तीन

एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान

क्या बाजारवाद (पूँजीवाद) तथा राज्यवाद (साम्यवाद) विचारधाराएँ आधुनिक मानव को भीतरी सुख दिला सकती हैं? क्या इस देश के करोड़ों लोग पश्चिमी अवधारणाओं के अनुसार ही जीवन जीने को अभिशप्त हैं? क्या भारत की प्रजा के पास इसका कोई समाधान नहीं है? भारत के एक युगऋषि पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने इन सवालों, इन खतरों को दशकों पहले ही भाँप लिया था और भारतीय परंपराओं के खजाने में ही इनके उत्तर भी खोज लिये थे। उन्होंने व्यष्टि बनाम समष्टि के पाश्चात्य समीकरण को अमानवीय बताया था तथा व्यष्टि एवं समष्टि की एकात्मता से ही मानव की पहचान की थी। उन्होंने इस पहचान के लिए 'एकात्म मानवदर्शन' के रूप में एक दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत की थी।

पर विडंबना, उनकी यह खोज, उनका यह दर्शन आगे न बढ़ सका। प्रयास कुछ अधूरे रहे। दोष शायद परिस्थितियों का रहा। लेकिन इस शताब्दी के प्रारंभ में कुछ सामाजिक व अकादमिक कार्यकर्ताओं ने इस धारा को आगे बढ़ाने का संकल्प लिया। इस समूह का अनुभव रहा कि गहन अनुसंधान एवं व्यावहारिक परियोजनाओं का सूत्रपात करने से ही इसे आगे बढ़ाया जा सकता है। उसी विचार व अनुभव में से उत्पत्ति हुई 'एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान' की। इसके विभिन्न आयामों व पहलुओं पर नियमित परिचर्चाओं व प्रकाशनों के माध्यम से जो वातावरण बना, उसके परिणाम सामने आने लगे हैं। 'एकात्म मानवदर्शन' देश में वैचारिक बहस की मुख्यधारा का अहम हिस्सा बन गया है। प्रतिष्ठान के सामने अब लक्ष्य है, उसे वैश्विक स्तर पर ले जाने का।

दीनदयाल उपाध्याय
संपूर्ण वाङ्मय

संपादक मंडल

दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय

खंड तीन

संपादक

डॉ. महेश चंद्र शर्मा

प्रकाशक • **प्रभात प्रकाशन**
4/19 आसफ अली रोड,
नई दिल्ली-110002

संकलन व संपादन • **डॉ. महेश चंद्र शर्मा**
अध्यक्ष, एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान
एवं विकास प्रतिष्ठान, एकात्म भवन,
37, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग,
नई दिल्ली-110002

संस्करण • प्रथम, 2016
लेआउट व आवरण • दीपा सूद
मूल्य • चार सौ रुपए (प्रति खंड)
छह हजार रुपए
(पंद्रह खंडों का सैट)
मुद्रक • आर-टेक ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

DEENDAYAL UPADHYAYA SAMPOORNA VANGMAYA (VOL. III)
(Complete Works of Pandit Deendayal Upadhyaya)
Published by Prabhat Prakashan, 4/19 Asaf Ali Road, New Delhi-2
e-mail: prabhatbooks@gmail.com
in association with
Research and Development Foundation for Integral Humanism,
Ekatm Bhawan, 37, Deendayal Upadhyaya Marg, New Delhi-2
Vol. III ₹ 400.00 ISBN 978-93-86231-18-5
Set of Fifteen Vols. ₹ 6000.00 ISBN 978-93-86231-31-4

समर्पण
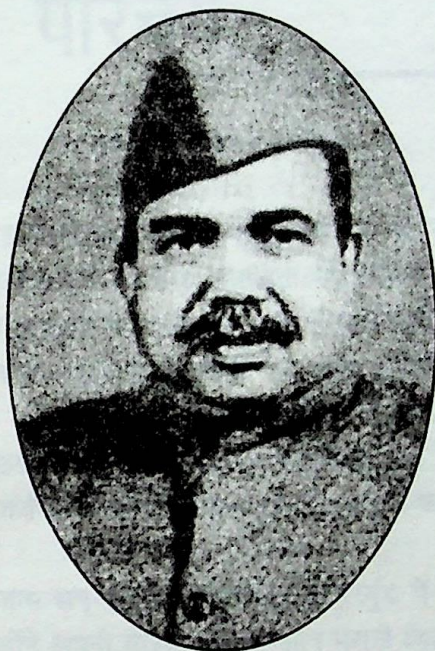
गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह के नायक

श्री जगन्नाथ राव जोशी

तथा

सत्याग्रह के दौरान शहीद हुए

श्री राजाभाऊ महाकाल एवं श्री अमीरचंद गुप्त

को समर्पित

परिचय

जगन्नाथ राव जोशी

स्वर्गीय जगन्नाथ राव जोशीजी एक अद्‌भुत व्यक्तित्व के मालिक थे। उनमें श्री अटल बिहा़री वाजपेयी की तरह वाक्पटुता थी, जिसके कारण वे अति गंभीर विषयों को भी अत्यंत सरल शब्दों में, हास्य-व्यंग्य के साथ श्रोताओं के सामने प्रस्तुत कर सकते थे। जोशीजी स्वर्गीय सुंदर सिंह भंडारी की तरह कुशल संगठक और पंडित दीनदयालजी के समान मानव कल्याण और सादगी के प्रति समर्पित थे। उनका जन्म कर्नाटक में हुआ और उनके साहसी व्यक्तित्व के कारण ही उन्हें 'कर्नाटक केसरी' भी कहा गया। उनकी सिंह गर्जना कच्छ से कामरूप और कश्मीर से कन्याकुमारी तक सुनाई देती थी।

जगन्नाथजी का जन्म सन् 1920 में कर्नाटक के नरगुंड में एक साधारण कन्नड़ परिवार में हुआ था। उन्होंने अपनी मैट्रिक पुणे के नूतन मराठी विद्यालय से की, जबकि स्नातक स्तर की पढ़ाई सर परसंभुराव कॉलेज से पूरी की। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जीवन व्रती प्रचारक बने तथा जनसंघ की प्रथम पीढ़ी के कार्यकर्ता के नाते उन्होंने अपनी राजनीतिक यात्रा की शुरुआत की।

जोशीजी कई भाषाओं में पारंगत थे। उन्हें आठ भाषाओं का अच्छा ज्ञान था, जिसमें अंग्रेज़ी, कन्नड़, मराठी, तमिल, तेलुगू, हिंदी, भोजपुरी और मारवाड़ी शामिल थी। जोशीजी के बहुभाषी होने का कारण उनका संगठन कार्य हेतु देश भर में यात्रा करना भी रहा। कन्नड़ जगन्नाथ राव की मातृभाषा थी, परंतु हिंदी में उनका धाराप्रवाह भाषण श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देता था। जब भी जोशीजी किसी विशाल जनसभा या कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण शिविर को संबोधित करते थे, तो मंच पर एक गहरी सूझबूझ और परिशुद्धता के साथ बहुआयामी प्रतिभा से सज्जित व्यक्तित्व नज़र आता था।

स्वाध्याय शिविर व अभ्यास वर्गों का जनसंघ के दृष्टिकोण में निर्णायक महत्त्व रहा

है। इन वर्गों को सफल बनाने में दीनदयालजी व दत्तोपंत ठेंगडी के साथ ही जगन्नाथ राव का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

23 जून, 1955 जगन्नाथ राव जोशी के जीवन में अविस्मरणीय दिन रहा। इस दिन अपने 35वें जन्मदिवस पर उन्होंने हज़ारों संघ और जनसंघ कार्यकर्ताओं को लेकर गोवा को पुर्तगालियों के चंगुल से आज़ाद कराने का नारा बुलंद किया। देश भर से चुने हुए कार्यकर्ताओं का सत्याग्रही जत्था लेकर उन्होंने गोवा में प्रवेश किया। पुर्तगाली सत्ता ने अमानुषिक अत्याचार किए। उत्तर प्रदेश के श्री अमीरचंद गुप्त एवं मध्य प्रदेश के श्री रामभाऊ महाकाल का बलिदान हो गया।

भले ही भारत को ब्रिटिश हुकूमत से 1947 में स्वाधीनता मिल चुकी थी, लेकिन 1955 तक गोवा पर पुर्तगालियों का क़ब्ज़ा यथावत् था। जोशीजी से जब तत्कालीन न्यायाधीश ने बिना किसी स्वीकृति के गोवा आने की वजह पूछी तो उन्होंने शेर की तरह दहाड़ते हुए कहा था, ''मैं गोवा यह पूछने आया हूँ कि आप (पुर्तगाली) यहाँ क्यों आए हैं? गोवा मेरी मातृभूमि का भाग है और यह मेरा अधिकार है कि मैं अपने देश के किसी भी कोने में जा सकता हूँ।'' यही संदेश डॉक्टर श्यामाप्रसाद मुखर्जी का शेख़ अब्दुल्ला को भी था, जिसमें उन्होंने कहा था, ''कश्मीर भारत माता का अभिन्न अंग है और मेरी इच्छा है कि मैं अपने देश में कहीं भी जा सकता हूँ।''

जोशीजी ने वर्ष 1967 में मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल से लोकसभा का चुनाव लड़ा, जिसमें उन्होंने कांग्रेस उम्मीदवार को 43,000 मतों से शिकस्त दी। इसी तरह 1971 में शाजापुर से लोकसभा का चुनाव लड़ते हुए जोशीजी ने कांग्रेस के नंदकिशोर भट्ट को हराया और लगातार दूसरी बार लोकसभा सदस्य के रूप में निर्वाचित हुए। बाद में 1978 से लेकर 1984 तक राज्यसभा के भी सदस्य रहे।

जोशीजी के हास्य-व्यंग्य में भी एक गंभीर भाव छिपा होता था। एक दिन पार्टी का एक कार्यकर्ता फूलों के हार के साथ जगन्नाथ राव जोशी का स्वागत करने के लिए रेलवे स्टेशन पहुँचा। उस कार्यकर्ता ने उनके समक्ष अपना परिचय दिया और कहा कि वह एक शाकाहारी होटल चलाता है। इस पर जोशीजी ने त्वरित प्रतिक्रिया दी और कहा, ''होटल के एक मालिक के रूप में आप मेरे लिए आहार के बजाय हार लेकर आए हैं?''

एक दिन जगन्नाथ राव जोशीजी अस्वस्थ थे। तो डॉक्टर ने उन्हें हल्का भोजन लेने की सलाह दी। लेकिन तीन दिन बाद जोशीजी की तबीयत और बिगड़ गई, जब डॉक्टर ने पूछा कि वे अभी भोजन में क्या ले रहे हैं, तब जोशीजी ने उदासीन भाव से जवाब दिया और कहा, ''आपके कहे अनुसार मैं हल्का भोजन ले रहा हूँ।'' जोशीजी ने प्रत्यापक ढंग से समझाया, ''आपने हल्का भोजन लेने की सलाह दी, उसी के अनुसार

मैंने हल्का भोजन लिया।'' जोशीजी ने कहा, ''पानी तेल की तुलना में अधिक हल्का होता है, इसलिए मैंने भाजी पकोड़ा, बोंडा का सेवन किया।'' हल्का भोजन लेने के सुझाव को जोशीजी ने जिस तरह प्रस्तुत किया, उसके बाद डॉक्टर नि:शब्द हो गए।

जोशीजी का व्यक्तित्व निस्संदेह बहुआयामी था और उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह अपनी बात सुगमता, सहजता और प्रभावी ढंग से एक छोटी मंडली या श्रोताओं की बड़ी भीड़ के सम्मुख रख सकते थे। उनमें अपने सामने वालों से संवाद क़ायम करने की अद्‌भुत क्षमता थी। शायद इसका कारण यह था कि हिंदुकुश से लेकर हिंद महासागर तक के जनमानस की नब्ज़ पर उनकी उँगली हमेशा रहती थी। 71 वर्ष की आयु में 15 जुलाई, 1991 को 'कर्नाटक केसरी' जगन्नाथ राव जोशी ने अपने पार्थिव शरीर को छोड़ा और ब्रह्मलीन हो गए। वे अखिल भारतीय नेता थे, लेकिन दक्षिण भारत में भारतीय जनसंघ के कार्यविस्तार की नींव में जगन्नाथ राव जोशी का ही परिश्रम एवं साधना है।

—बलवीर पुंज

''गोवा की आज़ादी के बिना भारत की आज़ादी अधूरी है। साम्राज्यवादी पुर्तगालियों के बर्बर शासन के नीचे भारतमाता की गोवावासी संतानों को उत्पीड़ित होने देना हमारे स्वाभिमान को चुनौती देता है। आइए, मातृभूमि की अखंड आज़ादी के लिए अपने आपको समर्पित कर दें।''

—जगन्नाथ राव जोशी

संपादकीय

दीनदयाल संपूर्ण वाङ्मय का यह खंड तीन सन् 1954 एवं 1955 के दीनदयाल साहित्य का संकलन है। कुछ नई बातें इस खंड में हैं, जो पहले दो खंडों में नहीं थीं। इन वर्षों में दीनदयालजी का अंग्रेज़ी लेखन बढ़ गया था तथा मा. केवल रतन मलकानी ने उसका बहुत ही सांगोपांग ढंग से संपादन किया। आगामी वर्षों में उनका यह लेखन बढ़ता चला जाएगा। हिंदी में उनका एक नया स्तंभ प्रारंभ हुआ है—'विचार-वीथी', जो वे 'पराशर' के नाम से लिखा करते थे। इस स्तंभ में दीनदयालजी तात्कालिक घटनाक्रम पर संक्षिप्त लेकिन तात्त्विक टिप्पणी करते थे।

'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' दीनदयालजी के चिंतन का अभी तक केंद्रीय विचार रहा है, अपने लेखन, कथन एवं विवेचन के माध्यम से उन्होंने इसको परिपुष्ट किया। सांस्कृतिक आधार पर राष्ट्र की 'चिति' का साक्षात्कार करने के बाद समाज के अन्य विविध आयामों का भी तदनुसार विवेचन व विकास ज़रूरी था। भारतीय जनसंघ एक नवोदित राजनीतिक दल था, उसकी यह महती आवश्यकता थी। जो द्वितीय आयाम दीनदयालजी ने लिया, वह 'आर्थिक आयाम' है, वस्तुत: 1953 में ही इसकी शुरुआत हो गई थी। जो आगे जाकर 'अर्थायाम' के रूप में विकसित हुआ। इस खंड का प्रारंभ ही उनकी दो लघु पुस्तिकाओं से हो रहा है 'टैक्स या लूट' तथा 'बेकारी की समस्या और उसका हल', वस्तुत: ये 1953 व 1954 के संधिकाल की पुस्तिकाएँ हैं। भारत की चिति के आधार पर आर्थिक पक्ष का जो विवेचन इस खंड में प्रारंभ हुआ है, आगामी खंडों में इसका परिपक्वन होगा।

वर्ष 1952-1953 जनसंघ के गठन, महानिर्वाचन एवं भारत में जम्मू-कश्मीर राज्य के संपूर्ण विलय के आंदोलन में ही बीता, डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का बलिदान भी हो गया। इसी वर्ष दीनदयालजी ने 'हमारा काश्मीर' नामक पुस्तिका लिखी। पुस्तक अनुपलब्ध थी। जम्मू के श्री उपेंद्रजी के पास उसकी केवल एक प्रति बहुत विलंब से प्राप्त हुई, अत:

इस खंड में जोड़ी जा सकी है। उपेंद्रजी के प्रति बहुत-बहुत आभार।

राष्ट्रीय अखंडता का यह यज्ञ 1954-1955 में भी जारी रहा। पांडिचेरी, गोवा-दमन-दीव में भारत की भूमि पर फ्रेंच व पुर्तगाली उपनिवेशवाद अभी जारी था। इन दो वर्षों में गोवा मुक्ति का दुर्धर्ष अभियान दीनदयालजी ने चलाया, भारतीय जनसंघ के अलावा अन्य दल भी इसमें जुटे।

प्रथम खंड में जब वे संघ में प्रचारक के नाते अपना चिंतन प्रस्तुत कर रहे थे, तब संविधान सभा की बहस के साथ-साथ ही अपने विचार व्यक्त कर रहे थे। वे संविधान सभा में नहीं थे, लेकिन एक जागरूक सामाजिक कार्यकर्ता के नाते इस बहस में सहभागी हुए। संविधान की मौलिक भूलों को उन्होंने तत्काल रेखांकित किया। 'संघात्मकता' को वे मौलिक एवं भयानक भूल मानते थे। 1954-1955 का वह काल था, जब देश इस संघात्मकता को बुन रहा था, राज्यों का पुनर्गठन हो रहा था। पुनर्गठन की इस प्रक्रिया में भी दीनदयालजी शिद्दत से शामिल हुए। उन्होंने पुनः-पुनः 'एकात्म एवं जनपद स्तर तक विकेंद्रित शासन' की माँग की। इस खंड में उनके इस संदर्भ के आलेख सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

इस खंड में दीनदयालजी का विदेश नीतिगत चिंतन भी प्रारंभ हो गया, जो उनके वक्तव्यों के माध्यम से प्रगट हुआ है। यहाँ पुनः 'राष्ट्रवाद बनाम अंतरराष्ट्रीयता' का समीकरण उभरकर आता है। दीनदयाल उपाध्याय एक आदर्शवादी विचारक एवं व्यावहारिक राजनेता के रूप में उभरते दिखाई देते हैं। पाश्चात्य 'क्षेत्रीय व राजनीतिक राष्ट्र-राज्यवाद' के समानांतर, पौर्वात्य 'भू-सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के स्वर का संधान, अखंड-भारत एवं राष्ट्रीय अखंडता के लिए निरंतर आंदोलन एवं बलिदान तथा राष्ट्र के लिए आवश्यक अर्थ नीति एवं विदेश नीति का ताना-बाना बुनते समय, साधनभूत संगठन को भी उन्हें साधना था। भारतीय जनसंघ राजनीतिक क्षेत्र में एक अलग तेवर लेकर खड़ा हो तथा बलवान बने, यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। इन दो वर्षों में दीनदयालजी ने देश के विविध प्रदेशों के सघन प्रवास किए। कार्यकर्ताओं के विकास एवं संगठन के विस्तार के लिए उन्होंने अपने आपको झोंक दिया। उनका समर्पण, उनका परिश्रम एवं उनकी चिंतनशील विद्वत्ता संगठन को संप्रेरित करती थी। आदर्शवाद, वैचारिकता एवं व्यावहारिक कौशल उनके व्यक्तित्व में निगड़ित थे।

संघ शिक्षा वर्गों में तो वे प्रतिवर्ष जाते ही थे। 1954 के दो बौद्धिक वर्ग मिल पाए, 1955 का कोई बौद्धिक वर्ग नहीं मिल सका। इन बौद्धिक वर्गों के स्थान के बारे में कोई निश्चित जानकारी नहीं मिल सकी। इस अधूरेपन को तो हमें सहना ही होगा। परिशिष्ट में एक पुस्तक शामिल है 'कश्मीर के मोर्चे पर'। श्री रमाशंकर अग्निहोत्री की इस कृति की भूमिका स्वयं दीनदयालजी ने लिखी है। हमने इस पुस्तक के शीर्षक में तो कोई

बदलाव नहीं किया, लेकिन पाठ में संपादक मंडल द्वारा तय की गई वर्तनी के अनुसार मोर्चे या मोर्चा शब्द की जगह मोरचे या मोरचा कर दिया है। इस खंड के परिशिष्टों में कुछ ऐसी सामग्री भी शामिल की गई है, जिनका कोई सीधा संबंध अध्यायों से जुड़ता नहीं दिखाई देता, लेकिन उस काल में देश के राजनीतिक परिदृश्य तथा उसमें जनसंघ की भूमिका स्पष्ट करने में वे सहयोगी हो सकते हैं। प्रथम खंड की भूमिका सरसंघचालक मा. मोहन राव भागवत ने लिखी है। द्वितीय खंड की भूमिका के लिए मा. लालकृष्ण आडवाणी से आग्रह किया, वे नहीं माने। आ. देवेंद्र स्वरूपजी ने गंभीर अस्वस्थता के बावजूद वह भूमिका लिखी, मैं श्रद्धावनत हूँ। इस तीसरे खंड की भूमिका डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा से लिखवाई गई है। हर खंड में एक अध्याय 'वह काल' भी है। प्रथम खंड में यह आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है, द्वितीय खंड के लिए आ. जवाहर लाल कौलजी से निवेदन किया, उन्होंने उदारतापूर्वक स्वीकार किया। इस खंड के लिए श्री ब्रज किशोर शर्मा ने 'वह काल' अध्याय का लेखन किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

भूमिका

जब दीनदयालजी भारतीय जनसंघ के महामंत्री थे, तब मैं दिल्ली का एक युवा कार्यकर्ता था। पार्टी की विचारधारा, नीति और सिद्धांत, कार्यसमिति, राष्ट्रीय परिषद्, वार्षिक अधिवेशन के सब प्रस्ताव वही बनाते थे अथवा उनकी देख-रेख में बनते थे।

उनके जीवन में दो बार जनसंघ के ऐसे निर्णय हुए जो दीनदयालजी की इच्छा के विरुद्ध थे। एक तो जब दीनदयालजी ने मई 1963 में लोकसभा का उप-चुनाव जौनपुर से लड़ा। दीनदयालजी संघ प्रचारकों के चुनाव लड़ने के विरुद्ध थे। वैसे भी वह कार्यकर्ताओं के समक्ष निस्स्वार्थ भाव से काम करने का आदर्श प्रस्तुत करना चाहते थे। उन उप-चुनावों में डॉ. राम मनोहर लोहिया समाजवादी पार्टी से, मीनू मसानी स्वतंत्र पार्टी से तथा आचार्य कृपलानी निर्दलीय उप-चुनाव लड़ रहे थे। कांग्रेस का पूर्ण वर्चस्व था देश की राजनीति पर। लोहियाजी परस्पर विरोधी विचारधारा के राजनीतिक दलों को कांग्रेस के विरुद्ध एकजुट करना चाहते थे। लोहिया के ग़ैर-कांग्रेसवाद को अमल में लाने का उपयुक्त अवसर था। विपक्षी दल उन उप-चुनावों में एक-दूसरे के विरुद्ध उम्मीदवार खड़े न करें, ऐसा प्रयास चल रहा था। इन चार उप-चुनावों में एक सीट पर जनसंघ चुनाव लड़े, ऐसी सबकी इच्छा थी। यह चुनौती थी। न केवल कांग्रेस को बल्कि चुनौती देनी थी जवाहरलाल नेहरू को भी। जनसंघ में आचार्य कृपलानी, डॉ. लोहिया व मीनू मसानी के क़द के नेता की खोज प्रारंभ हुई।

जनसंघ नेताओं, विशेषकर अटलजी व नानाजी देशमुख को लगता था कि सीट जीतनी है तो दीनदयालजी को ही चुनाव लड़ना चाहिए। दीनदयालजी पर जब दबाव पड़ रहा था तो मैंने उन्हें जितना बेचैन व उद्विग्न उन दिनों देखा, उतना उससे पूर्व कभी नहीं देखा था। सभी सहयोगियों व संघ अधिकारियों के निर्देश पर वे चुनाव में खड़े तो हो

गए, परंतु उनका मन चुनाव में नहीं था। उन्हें लग रहा था कि कार्यकर्ताओं के समक्ष जो आदर्श, जो मर्यादा वह रखना चाहते हैं, वह टूट गई है। मैंने उनसे कहा कि दिल्ली के कुछ ग्रुप बूथ प्रबंधन, वोट आदि डालने व डलवाने में माहिर हैं, उन्हें जौनपुर भेजा जा सकता है। परंतु उनकी प्रतिक्रिया एकदम कठोर एवं निषेधात्मक थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में सभी कार्यकर्ताओं को निर्देश दिए कि यदि किसी ने ब्राह्मण के नाम पर वोट माँगे अथवा कुछ भी नियम विरुद्ध अथवा नैतिकता विरुद्ध कार्य किया या किसी की अमर्यादित आलोचना की तो वे चुनाव छोड़ देंगे। कांग्रेस ने सारी सरकारी मशीनरी, धनबल, बाहुबल, ख़रीद-फरोख्त, शराब आदि का खुलकर प्रयोग किया। परिणामत: दीनदयालजी चुनाव हार गए। शेष तीनों आचार्य कृपलानी, डॉ. लोहिया व मीनू मसानी उप-चुनाव जीत गए।

जनसंघ का दूसरा निर्णय जो दीनदयालजी की इच्छा के पूर्णतया विरुद्ध था, वह था 1967-68 में उनका भारतीय जनसंघ के राष्ट्रीय अध्यक्ष बनने का। 1966-67 में श्री बलराज मधोक को अध्यक्ष बनाने के सब विरुद्ध थे, परंतु दीनदयालजी के आग्रह पर उन्हें अध्यक्ष बनाया गया था। दीनदयालजी की सोच थी कि अध्यक्ष बन जाने से शायद श्री मधोक अधिक मर्यादित व्यवहार करेंगे। उनकी कुंठाएँ विगलित हो जाएँगी। ऐसा नहीं हुआ।

मार्गदर्शन के लिए सब दीनदयालजी की ओर देखते थे। अभी तक किसी ने दीनदयालजी की पार्टी में सर्वोच्चता को चुनौती नहीं दी थी। परंतु अब अध्यक्ष ने नीतिगत निर्णय स्वयं करने प्रारंभ कर दिए थे, जो पार्टी की रीति-नीति से मेल नहीं खाते थे। सभी ने मिलकर निर्णय किया कि इसका एकमात्र हल है कि दीनदयालजी को ही अध्यक्ष बना दिया जाए। दीनदयालजी इसके लिए क़तई तैयार नहीं थे। पहली बार मैंने उन्हें अपने सहयोगियों पर झुंझलाते और क्रोध करते हुए देखा। किन परिस्थितियों में और किन मजबूरियों में यह पद अपनी इच्छा के विरुद्ध उन्होंने स्वीकार किया, इसका कुछ आभास उनकी मृत्यु के पश्चात् राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक परम पूज्य श्री गुरुजी के इन उद्‌गारों से लग सकता है :

''जनसंघ में बहुत से लोग बोलने वाले रहे, बहुत से दौड़-धूप करने वाले, बहुत से केवल शोभा देने वाले रहे, परंतु नींव के पहले पत्थर से काम प्रारंभ करके इतनी ऊँची मर्यादा तक कार्य पहुँचाने का श्रेय यदि विशेषत: किसी व्यक्ति को देना हो तो दीनदयालजी को देना पड़ेगा। वे उसके सर्वोच्च पद पर पहुँचे। यद्यपि मेरी इच्छा नहीं थी कि वे अध्यक्ष पद ग्रहण करें और उनकी भी इच्छा नहीं थी। मुझे उनसे कहना पड़ा कि थोड़े समय के लिए, साल भर के लिए आपदधर्म के रूप में अध्यक्ष पद स्वीकार कर लो, इसलिए उन्होंने इस पद को स्वीकार किया, नहीं तो वे स्वीकार करने वाले नहीं थे। उन्हें

मान, मान्यता या पद की लिप्सा नहीं थी और इसलिए उनके मन में अध्यक्ष पद स्वीकार करने की इच्छा बिल्कुल नहीं थी। मैं भी नहीं चाहता था, परंतु किसी-न-किसी परिस्थिति के कारण मुझे भी एक प्रकार से बाध्य होकर उन्हें पद ग्रहण करने के लिए कहना पड़ा था और मेरे कहने के कारण स्वयंसेवक जिस तरह निर्देश-आदेश का पालन करता है, इसी नियम के अनुसार उन्होंने उसका पालन किया।''

पूर्णतया अनिच्छा से एक वर्ष के लिए उन्होंने अध्यक्ष पद स्वीकार किया था। पर नियति को शायद यही मंजूर था कि एक वर्ष की अवधि पूरी करने से पूर्व ही, अध्यक्ष पद ग्रहण करने के 40 दिन के भीतर उनकी हत्या हो गई। 26 से 30 दिसंबर, 1967 को कालीकट में हुए जनसंघ के अखिल भारतीय अधिवेशन में उन्होंने अध्यक्षता की और 11 फरवरी, 1968 को उनकी दुर्भाग्यपूर्ण हत्या हो गई।

दीनदयाल उपाध्याय और संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री एकनाथ रानाडे, दोनों अनुपम प्रतिभा के धनी थे। दोनों का व्यक्तित्व विलक्षण था। दोनों आजीवन राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक रहे। दोनों अत्यंत मेधावी, धुन के पक्के और आदर्श स्वयंसेवक थे। दीनदयालजी जनसंघ में स्थापित किए गए और एकनाथ रानाडे बाद में त्रिवेंद्रम-समुद्री चट्टान पर विवेकानंद शिला स्मारक का अद्वितीय स्थापत्य निर्माण कर अमर हो गए। एकनाथ रानाडे से मेरा प्रथम परिचय 1947 में विभाजन की छाया में फगवाड़ा संघ शिक्षण शिविर में हुआ था। उनके बौद्धिक में भी उनकी स्पष्टता, परिपक्वता और मज़बूती झलकती थी। महात्मा गांधी की हत्या के पश्चात् राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पर प्रतिबंध लगा दिया गया। प्रतिबंध हटवाने के लिए संघ ने 9 दिसंबर, 1948 से सत्याग्रह प्रारंभ करने की घोषणा की। सार्वजनिक रूप से तो डॉ. भाई महावीर को सत्याग्रह का सर्वेसर्वा घोषित किया गया था, परंतु सत्याग्रह के संचालन का भार एकनाथ रानाडेजी पर था।

वर्ष 1954-55 में दिल्ली प्रदेश भारतीय जनसंघ में एक समस्या चल रही थी। जनसंघ का सत्तारूढ़ वर्ग ठीक नहीं चल रहा था। श्री रानाडे ने काफ़ी समय तक उन्हें सुधारने का प्रयास किया, परंतु वह सुधरने को तैयार नहीं हुए। एकनाथजी चाहते थे कि दिल्ली प्रदेश जनसंघ को भंग कर दिया जाए। दीनदयालजी अखिल भारतीय जनसंघ के महामंत्री थे। एकनाथजी ने दीनदयालजी से दिल्ली प्रदेश जनसंघ को भंग करने के लिए कहा। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के झंडेवालान स्थित कार्यालय में मैं एक कमरे के कोने में सो रहा था। रात को दीनदयालजी और एकनाथजी उस कमरे में आए। उनमें प्रदेश जनसंघ इकाई को भंग करने पर विचार विमर्श चल रहा था। एकनाथजी का कहना था कि जनसंघ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का उपांग है और उसको संघ के प्रत्येक निर्देश का पालन करना चाहिए। दीनदयालजी का तर्क था कि जनसंघ के निर्णय जनसंघ के

संविधान व रीति-नीति के अनुसार जनसंघ को ही करने चाहिए।

रात भर उनमें तर्क-वितर्क चलता रहा। प्रात: मैंने इतना ही सुना कि एकनाथजी दीनदयालजी से कह रहे थे कि आप फिर संघ का आदेश नहीं मानेंगे। दीनदयालजी का उत्तर था कि वह संघ के प्रचारक हैं, अत: संघ का आदेश न मानने का प्रश्न ही नहीं उठता। परंतु इस आदेश को मानने से पूर्व मैं जनसंघ के राष्ट्रीय महामंत्री पद से त्यागपत्र देकर वापस संघ में कार्य करने के लिए चला जाऊँगा। किसी अन्य को रानाडेजी महामंत्री बनाकर उससे अपने आदेश का पालन करवा लें। बात वहीं समाप्त हो गई। कुछ महीनों के पश्चात् जनसंघ की राष्ट्रीय कार्यसमिति ने दिल्ली जनसंघ की इकाई को भंग करने का निर्णय किया और अनेक प्रभावी सदस्य या तो त्यागपत्र दे गए या निकाल दिए गए। कुछ वर्षों पश्चात् वह सभी सदस्य व नेता क्षमायाचना कर वापस पार्टी में आ गए और निर्वाचित होकर नगर निगम, महानगर परिषद् व संसद् में चुने गए। दीनदयालजी व एकनाथजी में सौहार्द बना रहा। इस घटना के 20 वर्ष पश्चात् एकनाथजी ने मुझसे बात-बात में स्वीकार किया कि दीनदयालजी सिद्धांतत: ठीक थे।

1967 में भारतीय जनसंघ को दिल्ली महानगर परिषद् में स्पष्ट बहुमत मिला। हमें 56 में से 34 स्थान प्राप्त हुए। मुझे जनसंघ दल का नेता चुना गया और मुख्य कार्यकारी पार्षद (प्रोटोकॉल में मुख्यमंत्री) चुना गया। संपूर्ण देश में एक ही राज्य था और वह भी राजधानी दिल्ली का, जिसमें अपने बल पर स्पष्ट बहुमत से सत्तारूढ़ हुआ था। शपथ ग्रहण समारोह में दीनदयालजी आए थे। मेरा स्वभाव किसी के चरण स्पर्श करने का नहीं है। माता-पिता को छोड़कर मैंने किसी के कभी चरण स्पर्श नहीं किए। कोई अपवाद हो तो मुझे स्मरण नहीं। परंतु उस दिन शपथ ग्रहण के पश्चात् मैं आशीर्वाद लेने दीनदयालजी के पास गया तो उनकी आँखों में प्रसन्नता के छलछलाते आँसू देखकर मेरे हाथ स्वत: उनके चरण स्पर्श के लिए झुक गए थे।

दीनदयालजी की मृत्यु हुए पाँच दशक बीत गए हैं, परंतु उनके संपर्क में आए कार्यकर्ताओं व अन्य असंख्य व्यक्तियों को उनके साथ बिताए कम-अधिक अवसरों की स्मृतियों की सोंधी महक आज भी सुवासित करती है, प्रेरणा देती है। उनमें क्या था, जो उन्हें दूसरों से पृथक श्रेष्ठता देता था। उनकी सादगी, उनकी सरलता, उनकी निश्छलता, उनका अप्रतिम स्नेह, उनकी विद्वत्ता, उनकी विचारशीलता, उनका अध्ययन, पार्टी व विचारधारा के लिए पूर्ण समर्पण, निरंतर प्रवास, श्रम की अद्‍भुत क्षमता, विलक्षण आकर्षण शब्दातीत है। उनका उल्लेख, उनका वर्णन शायद किसी महामनस्वी के लिए ही संभव हो। हम जैसों के लिए तो उन्हें शब्दों में बाँधने की कल्पना भी कठिन है।

भारतीय जनसंघ की विशेषता थी उसका अनुशासन, उसकी एकता और पार्टी व समाज के हित में अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का दमन करने की प्रवृत्ति। ऐसा नहीं कि

दीनदयालजी के समय पार्टी में मतभेद नहीं थे, गुटबाज़ी नहीं थी या कोई प्रमुख कार्यकर्ता या नेता महत्त्वाकांक्षी नहीं था। दीनदयालजी अंत तक कार्यकर्ताओं, पदाधिकारियों, नेताओं को साथ रखने का प्रयत्न करते थे, परंतु एक सीमा तक। लक्ष्मण रेखा किसी ने पार की तो निर्णय करने में भी दीनदयालजी निर्मम थे। लंबी छूट देते थे परंतु पानी को सिर से ऊपर तक कभी नहीं आने देते थे। दीनदयालजी ने विचार-स्वातंत्र्य को सदैव प्रोत्साहन दिया। विचार भिन्नता, मतभिन्नता का आदर किया, परंतु पार्टी को धमकी देकर पार्टी का भयादोहन कर अपनी बात मनवाने का प्रयास करने वाले को उन्होंने दृढतापूर्वक कुचल दिया। उनकी इस लौह दृढता को समझने के लिए कुछ मामलों को स्मरण करना उपयुक्त होगा।

लाला हरीचंद दिल्ली के प्रमुख विख्यात हस्ती थे। दिल्ली में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के वर्षों तक संघचालक थे। 1958 के नगर निगम के चुनावों में वह सदस्य निर्वाचित हुए थे। मैं भी सदस्य निर्वाचित हुआ था। श्री केदार नाथ साहनी एल्डरमेन चुने गए थे। भारतीय जनसंघ के 28 सदस्य चुने गए थे, कांग्रेस के 32, कम्युनिस्ट पार्टी के 8 और 12 स्वतंत्र सदस्य चुने गए थे तथा 6 एल्डरमेन चुने गए थे। इनमें दो भाजपा के, दो कांग्रेस के और दो स्वतंत्र सदस्य चुने गए, जिनमें एक अरुणा आसफ अली भी थीं।

लाला हरीचंदजी पार्टी में सबसे वरिष्ठ थे, सम्मानित थे। अत: उन्हें निगम दल का संरक्षक मनोनीत किया गया। श्री साहनीजी दल के नेता चुने गए और मैं पार्टी का मुख्य सचेतक तथा स्थायी समिति में दल का नेता बनाया गया। 1959-60 वर्ष के लिए निगम की समितियों के चुनाव होने थे। निगम की सबसे महत्त्वपूर्ण समिति स्थायी समिति है। विचार किया गया कि या तो सर्वसम्मति से समितियों के अध्यक्षों का चुनाव कर दिया जाए अथवा स्वतंत्र सदस्यों से मिलकर चुनाव लड़ा जाए। लाला हरीचंद समिति का चुनाव लड़ना चाहते थे। उन्होंने आवेश में आकर कह दिया कि यदि उन्हें चुनाव न लड़ाया गया तो वे पार्टी छोड़ देंगे। हम सब के हाथ-पाँव फूल गए। संघचालक और वरिष्ठतम सदस्य और दिल्ली की जानी-मानी हस्ती होने के कारण उनसे बात कौन करे? दीनदयालजी को इसका पता चला। उन्होंने तुरंत अपने हाथ से दल के नेता श्री केदार नाथ साहनी को पत्र लिखा :

''यदि लालाजी का जनसंघ के साथ इतने पुराने संबंधों का मूल्य उनकी दृष्टि में केवल एक स्टैंडिंग कमेटी की प्रधानता ही है तो हमें पुनर्विचार करना चाहिए। हम लोगों ने उनका मूल्यांकन इतना कम कभी नहीं किया था। आदर्शों से बँधे जनसंघ में हम लोगों को इस प्रकार मूल्य देकर कितने दिनों रख सकेंगे?'' पत्र थोड़ा लंबा था। यह पत्र लेकर मैं ही लाला हरीचंदजी के पास गया था। उन्होंने पत्र पढ़ा। उनकी आँखों में आँसू छलक गए और उन्होंने भी तुरंत उसी समय हाथ से ही पत्र लिखा और क्षमा माँगी।

वर्ष 1963-64 में दिल्ली में बस किरायों में वृद्धि की गई। हमने आंदोलन की घोषणा कर दी। कार्यकर्ताओं से कहा कि बस डिपो से निकलते ही और स्थान-स्थान पर बसों को रोका जाए। हमने यह भी निर्देश दिए कि बसों को रोकने के लिए कुछ भी करना पड़े, कार्यकर्ता करें। बसों से यात्रियों को उतारकर बसों की हवा निकाल दें और बसों को तोड़े बिना यदि बसें न रुकें तो वह भी करें। दीनदयालजी को इसकी भनक लग गई। अजमेरी गेट कार्यालय में उन्होंने मुझे रोका और बुलाकर कहा, "मुझे पता चला है कि तुम बसों को तोड़ने-फोड़ने की योजना बना रहे हो?" मैंने आँखें चुराते हुए कहा कि हम तो आंदोलन कर रहे हैं। बसों को रोकने का प्रयास करेंगे। परंतु जनता इतनी दुखी है कि वह यदि तोड़-फोड़ करने लगे तो हम क्या कर सकेंगे? उन्होंने कहा कि यदि जनसंघ कार्यकर्ताओं ने हिंसा की, तोड़-फोड़ की तो वह मेरे विरुद्ध कार्रवाई करेंगे।

सन् 1953 में जम्मू-कश्मीर आंदोलन व सत्याग्रह के दो केंद्र थे, एक दिल्ली और दूसरा पठानकोट। दिल्ली में सत्याग्रह का संयोजन मेरे पास था। प्रतिदिन दिल्ली व दिल्ली से बाहर के पाँच से दस सत्याग्रही सत्याग्रह करते थे। उसे भी मैंने तोड़-फोड़ करके गोली चलवाने का विचार किया था, परंतु दीनदयालजी को पता चलने पर उन्होंने इसका निषेध किया और संघ के तत्कालीन प्रांत प्रचारक मा. माधवराव मूले से शिकायत की और उन्होंने मुझे सत्याग्रह को अहिंसक रूप से चलाने का निर्देश दिया।

इसी प्रकार की समस्या 1967 के विधानसभा चुनावों के पश्चात् पैदा हुई। उन चुनावों में या तो कांग्रेस अल्पमत में आ गई थी अथवा कांग्रेस के ही पर्याप्त सदस्य कांग्रेस छोड़कर बाहर आ गए थे, जिससे कांग्रेस अल्पमत में आ गई। दोनों ही परिस्थितियों में अनेक प्रदेशों में संयुक्त विधायक दलों का गठन हुआ और उनकी सरकारें बनीं। कुछ प्रदेशों में जनसंघ व कम्युनिस्ट दोनों को सम्मिलित किए बिना सं.वि.द. सरकार बनती नहीं थी। कार्यसमिति की बैठक में कम्युनिस्टों के साथ मिलकर जनसंघ सं.वि.द. में सम्मिलित हो अथवा नहीं, इस पर गहन विचार-विमर्श हुआ।

कुछ सदस्यों का मत था कि कम्युनिस्टों के बिना यदि सरकार नहीं बनती तो न बने और कांग्रेस सरकारों को न गिराया जाए। कुछ का मत था कि ऐसी स्थिति में सरकार में सम्मिलित न हुआ जाए और कांग्रेस से टूटकर आए सदस्यों की सरकार को बाहर से समर्थन दिया जाए। कुछ का मत था कि कम्युनिस्टों के साथ मिलकर सं.वि.द. सरकारें बनाई जाएँ और कांग्रेस को सत्ता से पदच्युत किया जाए।

सं.वि.द. सरकारों का विरोध करने वालों का मत था कि हमारा उद्देश्य केवल कांग्रेस को सत्ताच्युत करना न होकर कांग्रेस का स्थान लेना होना चाहिए और कांग्रेस के बाग़ी सदस्यों को सत्तारूढ़ करके यह उद्देश्य कैसे प्राप्त हो सकता है। बहस का समापन करते हुए दीनदयालजी ने कहा कि यह धारणा समाप्त करनी चाहिए कि कांग्रेस

ही राज्य कर सकती है। उसका कोई विकल्प नहीं। कम्युनिस्ट संख्या में हमसे कहीं कम हैं। अतः सं.वि.द. सरकारें बनने से हमें हानि नहीं होगी। हमें यदि केवल एक प्रेशर ग्रुप न रहकर सत्तारूढ़ होना है तो गठजोड़ की राजनीति करनी होगी। उनके भाषण के बाद प्रायः सर्वसम्मति से सं.वि.द. सरकारों में सम्मिलित होने का प्रस्ताव पारित हो गया।

दीनदयालजी की तर्कपूर्ण भविष्यवाणी के ही अनुसार आगे चलकर गठजोड़ की राजनीति करते हुए श्री वाजपेयीजी की छह वर्ष की सफल सरकार चली। भाजपा-नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन का प्रयोग सफल रहा और अभी भी वह प्रयोग सफलतापूर्वक चल रहा है। अंततः हमने अपने दल के पूर्ण बहुमत वाली सरकार बना ली है। यह दीनदयालजी की दूरदर्शिता का ही परिणाम है कि उन्होंने गठबंधन के परिणामस्वरूप पार्टी को कमज़ोर नहीं होने दिया। पार्टी का अभिनिवेश खड़ा कर गठबंधन को अवांछनीय नहीं बनने दिया।

दीनदयालजी का संपूर्ण जीवन ही सार्थक उत्प्रेरणाओं का स्रोत था। उनका संपूर्ण वांङ्मय प्रकाशित हो रहा है, श्लाघनीय प्रयत्न है। मैं एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान को इसके लिए बहुत-बहुत साधुवाद देता हूँ।

—डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा
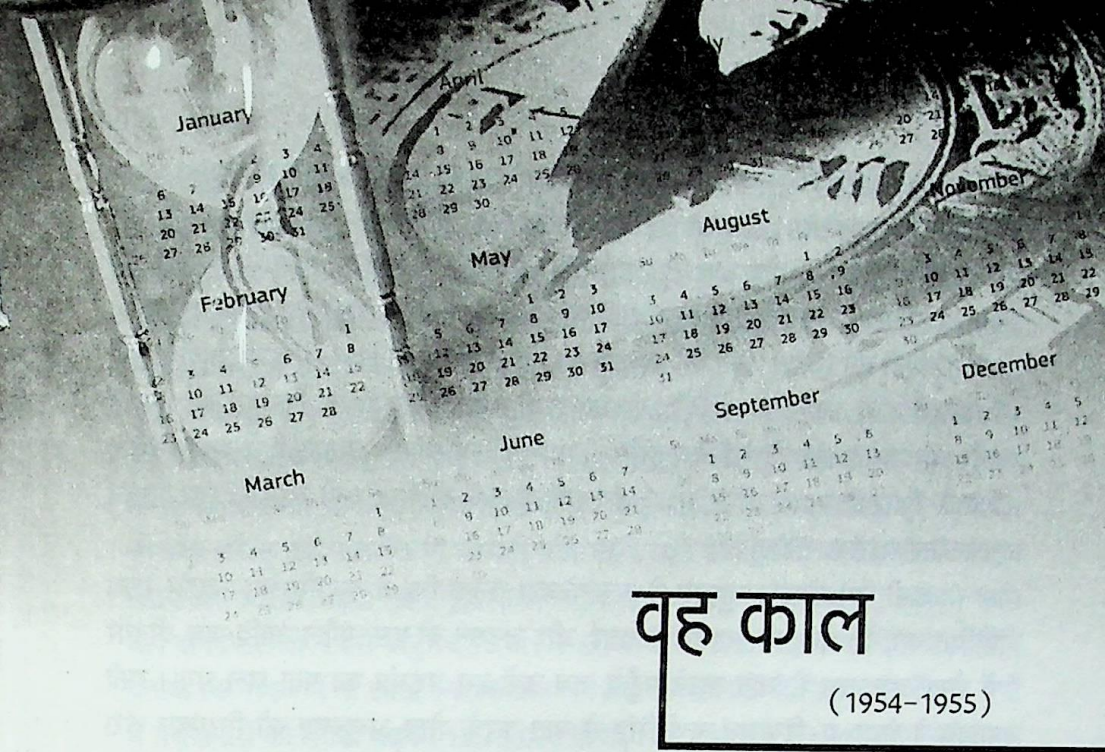
वह काल

(1954-1955)

भाषा-प्रांतवाद का उभार

सन् 1954 में गोवा की मुक्ति के लिए आंदोलन प्रारंभ हुआ। नेहरूजी ने इसका विरोध किया। उनका मत था कि इससे अंतरराष्ट्रीय जगत् में भारत की छवि ख़राब होगी। यही नेहरूजी फारमोसा (अब ताइवान), फिलिस्तीन आदि की मुक्ति के पक्षधर थे। गोवा सत्याग्रह में बड़ी संख्या में गोवावासियों ने और भारतवासियों ने भाग लिया। गोवा की पुलिस ने सत्याग्रहियों पर नृशंस अत्याचार किए। प्रमुख सत्याग्रहियों में जनसंघ के श्री जगन्नाथ राव जोशी, सत्यपाल पटाइत, राजाभाऊ महाकाल, अमीरचंद गुप्ता और समाजवादी नेता डॉ. राममनोहर लोहिया, एन.जी. गोरे आदि थे। इनमें से श्री राजाभाऊ महाकाल और अमीरचंद गुप्त की गोवा सत्याग्रह में मृत्यु हो गई। सभी दलों के लोग कहते थे कि गोवा भारत का अंग है। नेहरूजी का कहना था कि गोवावासी मुक्ति के लिए सत्याग्रह करें। अन्य सभी यह कहते थे कि प्रत्येक गोवावासी भारतीय है। भारत का एक अंग पराधीन है। अपने भाइयों को मुक्त कराना हमारा कर्तव्य है। गोवा मुक्ति के लिए 3000 गोवावासी सत्याग्रही गिरफ़्तार किए गए। गोवा की जनसंख्या तब 6 लाख थी। तुलना करें तो भारत की स्वतंत्रता के लिए 19 लाख सत्याग्रही होने चाहिए थे। बाद में 1957 के निर्वाचन के पूर्व नेहरूजी ने गोवा में पुलिस कार्रवाई की।

इसी बीच पाकिस्तान और अमरीका के बीच एक संधि हुई, जिसके अधीन अमरीका

ने पाकिस्तान को नि:शुल्क शस्त्र देना स्वीकार किया। इस प्रकार पाकिस्तान एक प्रकार से 'नाटो' से जुड़ गया। रूस को चारों ओर से घेरने की अमरीकी योजना का यह एक अंग था। भारत के लिए पाकिस्तान का आधुनिक शस्त्रास्त्रों से सज्जित होना आशंकाओं को जन्म देता था। ये आशंकाएँ निराधार नहीं थीं। 1965 के आक्रमण से यह साबित हो गया। यह नेहरूजी की विदेश नीति की असफलता का उदाहरण था। इस संधि से संपूर्ण देश में चिंता की लहर व्याप्त हो गई थी। दीनदयालजी ने यह स्पष्ट किया कि पूरा देश एक है और वह पाकिस्तान के सज्जित होने से भयभीत नहीं होगा। अटलजी ने एक कविता लिखी, जिसकी पहली पंक्ति थी, 'एक नहीं दो नहीं बीसियों करो समझौते, पर स्वतंत्र भारत का मस्तक नहीं झुकेगा।'

इसी वर्ष शेख़ अब्दुल्ला ने यह योजना बनाई कि वे कश्मीर को स्वतंत्र राज्य घोषित कर दें। श्री रफी अहमद किदवई और जनरल बी.एम. कौल आदि जब श्रीनगर में शेख़ अब्दुल्ला से बात करने पहुँचे, तब उन्हें इस षड्यंत्र का पता चल गया। रफी साहब ने सदर-ए-रियासत कर्ण सिंह से बात करके शेख़ अब्दुल्ला को गिरफ़्तार करा दिया। पं. नेहरू इस गिरफ़्तारी से बहुत अप्रसन्न हुए किंतु कुछ कर नहीं सके। शेख़ अब्दुल्ला पर फिर 14 वर्ष तक अभियोजन चलता रहा। यह भी कांग्रेस की नीति थी कि अभियोजन का ढोंग चलता रहे। इस नीति के अनुसरण में श्रीमती इंदिरा गांधी ने उनसे समझौता करके अभियोजन समाप्त करके उन्हें फिर से कश्मीर का मुख्यमंत्री बना दिया। शेख़ अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी का संपूर्ण देश ने स्वागत किया किंतु प्रजा सोशलिस्ट पार्टी ने इसका विरोध किया। जयप्रकाश नारायण, जे.जे. सिंह और मृणालिनी साराभाई अपने लेख और वक्तव्यों से शेख़ अब्दुल्ला को निर्दोष सिद्ध करते रहे। किंतु जनता ने कभी कोई प्रदर्शन शेख़ के पक्ष में नहीं किया।

पं. मौलिचंद्र शर्मा भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष थे। उन्होंने प्रेस में कुछ वक्तव्य दिए थे, जो जनसंघ की नीति के विपरीत थे। जनसंघ कार्यकारिणी ने यह तय किया कि आगामी अधिवेशन में उनके वक्तव्य पर विचार किया जाएगा। मौलिचंद्रजी ने इसके पहले त्यागपत्र दे दिया। त्यागपत्र भेजने के पहले ही उन्होंने प्रेस में घोषणा कर दी। बाद में ज्ञात हुआ कि मौलिचंद्रजी ने कांग्रेस से कुछ पद पाने की लालसा में त्यागपत्र दिया था। कुछ वर्ष बाद उन्हें राजभाषा (विद्यार्थी) आयोग का सदस्य बनाया गया। यद्यपि वे असंतुष्ट रहे, क्योंकि वे कोई और बड़ा पद चाहते थे।

भारत के साम्यवादी दल (Communist Party of India) ने स्वतंत्रता को झूठी स्वतंत्रता कहा और सशस्त्र क्रांति का नारा दिया। हैदराबाद के शासक ने रजाकारों को शस्त्र दिए थे। जब हैदराबाद का 1948 में भारत में विलय हो गया और रजाकारों के प्रमुख कासिम रिज़वी बंदी बना लिए गए, तब वे शस्त्र साम्यवादियों को दे दिए गए।

कम्युनिस्टों ने तेलंगाना में आतंक फैला दिया। भारत सरकार के कठोर क़दम और आचार्य विनोबा भावे के भूदान आंदोलन से साम्यवादी आंदोलन शिथिल पड़ा। किंतु रूस की आर्थिक सहायता से आंदोलन जीवित रहा। जब स्तालिन ने कम्युनिस्टों को डाँटकर यह निर्देश दिया कि उन्हें कांग्रेस का समर्थन करना चाहिए, तब रूस के आज्ञाकारी साम्यवादियों ने अपनी नीति में परिवर्तन किया।

युद्ध काल में सैनिकों के लिए युद्ध के साज-सामान का निर्माण करने के लिए और उन्हें भोजन, वस्त्र आदि उपलब्ध कराने के लिए भारत में अनेक उद्योग लगे। कानपुर में बनाई गई घोड़े की जीन पूरे विश्व में जाती थी। युद्ध काल में व्यापार तो बढ़ा ही, नियोजन भी बढ़ा। किंतु युद्ध समाप्ति के पश्चात् माँग घटने और उत्पादन में कमी आने के कारण बेरोज़गारी निरंतर बढ़ती गई। युद्ध काल में किसान, मज़दूर और व्यापारी सबको काम था। दीनदयालजी ने इसे अनुभव किया। वे इसका दोष शिक्षा पद्धति को देते थे। उन्होंने बताया कि 1954 में नौ लाख स्नातक प्रति वर्ष विश्वविद्यालयों से निकल रहे हैं। दो वर्षों में बेरोज़गारों की संख्या बढ़कर 13,75,000 हो गई। जूट उद्योग में 20,000 लोग बेरोज़गार हो गए। चाय के 74 बाग़ान बंद हो गए, जिससे 29,000 लोगों की आजीविका छिन गई। इनमें से अधिकतर लोग ऐसे थे, जो केवल कार्यालयों में काम करने के योग्य थे। शिक्षा में सुधार और उद्योग नीति में उदारता लाकर ही इन्हें आजीविका दी जा सकती थी।

सन् 1952 से प्रथम पंचवर्षीय योजना प्रारंभ की गई। इसमें पाँच वर्षों में 2069 करोड़ व्यय करने की योजना थी। उस समय के लिए यह महती योजना थी। उद्योग के लिए प्रौद्योगिकी और अधिरचना की मशीनरी विदेश से आनी थी। इसके लिए विदेशी मुद्रा आवश्यक थी, जिसकी देश में कमी थी। सरकार के कोष में भी पर्याप्त धन नहीं था। अतएव सरकार ने विदेशी मुद्रा विनिमय पर कड़े निबंधन लगा दिए। इसके कारण केवल सरकार या सरकार के कृपापात्र कुछ पूँजीपति ही विदेश से प्रौद्योगिकी और मशीनरी प्राप्त कर सकते थे। श्री राजगोपालाचारी ने इस व्यवस्था को 'कोटा लाइसेंस परमिट' राज नाम दिया। 1956 में औद्योगिक विकास और विनिमय अधिनियम बनाया गया। इसका प्रभाव यह हुआ कि उद्योगों को अनुज्ञा देने का अधिकार केंद्र सरकार को मिल गया। राज्य सरकारों के अधिकार लगभग समाप्त हो गए। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में पहले परिव्यय 4300 करोड़ रुपए था, जो बाद में बढ़ाकर 4800 करोड़ रुपए किया गया। दीनदयालजी ने यह सुझाव दिया कि बड़े और लघु उद्योगों में समन्वय हो। लघु उद्योगों से अधिक लोगों को रोज़गार मिलेगा। बड़े उद्योगों के कार्यक्षेत्र और उत्पाद को सीमित कर देना चाहिए। किंतु कर्वे समिति ने लघु उद्योगों के लिए केवल 14 उद्योग आरक्षित किए।

धन की कमी पूरी करने के लिए केंद्र सरकार और राज्य सरकारों ने नए-नए कर लगाने प्रारंभ कर दिए। परिणामतः मध्यम वर्ग की क्रयशक्ति कम हो गई।

उस समय डॉ. अशोक मेहता प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता थे। यह माना जाता था कि वे आर्थिक क्षेत्र के ज्ञाता हैं। उन्होंने पंचवर्षीय योजना के विषय में कुछ लेख लिखे। वे अंग्रेज़ी भाषा में थे और उनमें विषय विशेष की तकनीकी शब्दावली का प्रयोग किया गया था। इस कारण उन पर सार्वजनिक चर्चा नहीं हो पाई। विश्वविद्यालयों में भी नगण्य सी चर्चा हुई, बस पाठ्यक्रम में पंचवर्षीय योजना को जोड़ दिया गया।

दीनदयालजी ने प्रथम और विशेषकर द्वितीय योजना के पीछे के आधारभूत चिंतन पर प्रश्नचिह्न लगाकर उस पर आक्षेप करते हुए एक आनुकल्पिक मार्ग प्रस्तुत किया। उस समय पं. नेहरू और समाजवादी पार्टी के सभी नेता जनसंघ को सांप्रदायिक दल कहते थे। उनकी कल्पना से परे था कि जनसंघ का कोई नेता आर्थिक विषयों पर विचार कर सकने की क्षमता रखता है। वे पूर्वग्रह और संकुचित दृष्टि के दोष से ग्रस्त थे। आगे चलकर जब डॉ. राममनोहर लोहिया, दीनदयालजी के संपर्क में आए थे तो उन्हें ज्ञात हुआ कि उनसे भूल हुई। डॉ. सम्पूर्णानंद ने भी दीनदयालजी को उच्च कोटि का विचारक माना। दीनदयालजी नारे या लेबल अपनाकर नहीं चलते थे। वे समस्या की गइराइयों में जाकर उनके लिए समाधान खोजते थे।

वर्ष 1953 में बैतूल अधिवेशन में पार्टी ने अशोक मेहता के इस प्रस्ताव को ठुकरा दिया कि प्रजा समाजवादी पार्टी कांग्रेस के साथ मिलकर काम करे। डॉक्टर लोहिया ने इस विरोध का नेतृत्व किया था। 1954 में जयप्रकाश नारायण सक्रिय राजनीति से अलग होकर दलहीन लोकतंत्र के लिए काम करने लगे। 1957 के चुनावों के बाद उन्होंने राजनीति से संन्यास की घोषणा कर दी। 1955 में डॉक्टर लोहिया पार्टी से निकाल दिए गए और 1956 में आचार्य नरेंद्र देव के निधन के बाद विघटन का एक अध्याय पूर्ण हो गया। विभाजित दल और भी बँटते चले गए। आज उत्तर प्रदेश में एक सोशलिस्ट पार्टी है किंतु समाजवाद क्या है, यह आज भी रहस्य बना हुआ है।

कांग्रेस स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् स्वयं को गांधीवादी दल घोषित करती थी। डॉ. जे.सी. कुमारप्पा गांधीवादी अर्थव्यवस्था के भाष्यकार थे। 1954 आते-आते कांग्रेस ने लोक कल्याणकारी राज्य को अपना लक्ष्य घोषित कर दिया। 1956 में आवड़ी के अधिवेशन में कांग्रेस ने घोषणा की कि वह समाजवादी कल्प समाज (Socialist pattern of Society) बनाने के लिए कृतसंकल्प है। 1959 में नेहरूजी ने सहकारी कृषि लाने की घोषणा कर दी। चौधरी चरणसिंह ने इसका विरोध कर एक पुस्तक प्रकाशित की। गाँवों में इससे भय का वातावरण बन गया। नेहरूजी ने इसे त्यागना ही उचित समझा। यहाँ 1936 की एक घटना स्मरणीय है। 1936 में जब पं. नेहरू ने यह घोषणा की कि कांग्रेस समाजवादी राज्य की स्थापना करेगी तो कांग्रेस की कार्यसमिति के सभी प्रमुख सदस्यों ने अपना त्यागपत्र देकर इसका विरोध किया था। त्यागपत्र देने वालों में

डॉ. राजेंद्र प्रसाद, सरदार पटेल, राजर्षि टंडन आदि सभी प्रमुख नेता थे। गांधीजी के समझाने पर नेहरूजी पीछे हटे और प्रमुख नेताओं ने त्यागपत्र वापस ले लिए।

योजनाओं के लिए केंद्र और राज्य सरकार ने नए-नए कर लगाना प्रारंभ कर दिया। उत्तर प्रदेश सरकार के कराधान को केंद्र में रखकर दीनदयालजी ने एक पुस्तिका प्रकाशित की, जिसका नाम था 'टैक्स या लूट'। उत्तर प्रदेश सरकार ने सिंचित भूमि पर विकास कर लगाया। असिंचित भूमि पर भी विकास कर था, बस दर कम थी। स्टांप शुल्क, मोटरयान कर, रजिस्ट्री की फ़ीस, पेट्रोल पर कर आदि अनेक कर लगाए गए या बढ़ाए गए। दीनदयालजी ने यह बताया कि ज़मींदारी उन्मूलन से सरकार को दस गुना लगान एकमुश्त प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उसे प्रति वर्ष 411 करोड़ का लाभ हुआ। ज़मींदार जो लगान किसान से वसूल करते थे, उसका 30 से 50 प्रतिशत अंश सरकार को मिलता था। ज़मींदारी उन्मूलन के पश्चात् राज्य को पूरा लगान मिलने लगा। उनका कहना था कि लगान आधा कर देना चाहिए। ज़मींदारी उन्मूलन का लाभ किसान को मिलना चाहिए।

यही नहीं, पंडितजी ने यह लिखा कि विक्रय कर एक प्रतिगामी कर है, इसे समाप्त कर देना चाहिए। अनेक वर्षों पश्चात् सभी राज्यों ने इसे स्वीकार किया और विक्रय कर समाप्त कर दिया।

वर्ष 1953 में ही श्री पोट्टी श्रीरामुलु ने तेलुगूभाषी प्रदेश को मद्रास (अब तमिलनाडु) से पृथक् करके आंध्र प्रदेश राज्य बनाने के लिए अनशन किया। अनशन करते हुए उनका प्राणांत हो जाने पर राज्य में अनेक स्थानों पर विध्वंसक कार्रवाइयाँ हुईं। इस पर नेहरूजी ने तुरंत आंध्र प्रदेश राज्य के निर्माण की घोषणा कर दी।

पं. दीनदयालजी और अनेक देशप्रेमियों ने इसका विरोध किया। उनका मत था कि राज्य बनाने का आधार केवल भाषा नहीं हो सकती। भौगोलिक स्थिति, प्रशासनिक सुविधा, विकास की संभावना आदि अनेक कारकों का ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके परिणामस्वरूप एक राज्य पुनर्गठन आयोग स्थापित किया गया। इसके अध्यक्ष थे श्री फजल अली (उच्चतम न्यायालय के पूर्व न्यायाधीश)। इनके अलावा दो और सदस्य थे—श्री हृदयनाथ कुंजरू और श्री के.एम. पणिक्कर। इस आयोग ने अपने प्रतिवेदन में यह कहा कि केवल भाषा के आधार पर राज्य की रचना करना उचित नहीं है। यह विचार पंडितजी पहले ही प्रकट कर चुके थे।

राज्य पुनर्गठन आयोग (1955) के प्रतिवेदन पर सैद्धांतिक विचार बहुत कम हुआ। भिन्न-भिन्न नेताओं ने उग्र शब्दों में अपना पक्ष प्रस्तुत किया। मूलतः भावनाएँ उभारने का प्रयास किया। दीनदयालजी ने दलगत स्वार्थ से ऊपर उठकर देश और समाज को सम्मुख रखकर अपने विचार अभिलिखित किए। उनका मुख्य प्रतिपाद्य था कि यह देश एक है। प्रशासन की दृष्टि से हम इसे बाँट रहे हैं। इन इकाइयों को राज्य की संज्ञा

देना उचित नहीं है। इससे विभाजन की भावना उत्पन्न होगी, जो देश की एकता के लिए घातक है। भाषा प्रांत निर्माण का एक कारक हो सकती है किंतु केवल भाषा के आधार पर प्रांतों की रचना करना देशहित में नहीं है। उनका विचार था कि प्रांतों का निर्माण जनपदीय आधार पर हो।

पं. नेहरू ने जिस तटस्थता की नीति की घोषणा की, उसके अनुसार आचरण नहीं किया। संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के प्रतिनिधि श्री कृष्ण मेनन के वक्तव्य तो स्पष्टत: अमरीका विरोधी और रूस के पक्ष में होते थे। अमरीका में कृष्ण मेनन के वक्तव्यों के आधार पर अनेक चुटकुले प्रचलित हो गए। बाद में अमरीका में हमारे राजदूत और संयुक्त राष्ट्रसंघ में भारत के प्रतिनिधि रहे श्री बी.के. नेहरू ने अपनी पुस्तक 'Nice Guys Finish Second' में मेनन और हमारी त्रुटिपूर्ण नीति का वर्णन किया। पं. दीनदयालजी का कहना था कि तटस्थता की नीति उचित है किंतु साथ ही देशहित का ध्यान रखना आवश्यक है। विदेश नीति का उद्देश्य अपने देश के हितों की रक्षा करना है। उन्होंने नेहरू की विदेश नीति की आलोचना करते हुए लिखा है कि पश्चिमी देशों के उपनिवेशवाद का विरोध करना और पूर्वी यूरोप के देशों पर सोवियत संघ के नियंत्रण की निंदा न करना यह दरशाता है कि भारत की तटस्थता नकली है।

सन् 1953 में ही गोहत्या विरोध आंदोलन प्रारंभ हुआ। उस वर्ष प्रयाग के कुंभ मेले में इस निमित्त एक प्रदर्शनी लगाई गई। गोप्रेमियों ने गाँव-गाँव जाकर वयस्क जनों से गोवध पर प्रतिबंध लगाने के लिए सरकार से अनुरोध करते हुए एक पत्रक पर हस्ताक्षर कराए। 1,75,00,000 हस्ताक्षर वाला यह प्रार्थना पत्र पू. श्रीगुरुजी, लाला हरदेव सहाय आदि के प्रतिनिधिमंडल ने राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद को सौंपा। 1966 में गोहत्या के विरोध के निमित्त संसद् भवन को प्रदर्शनकारियों की एक विशाल भीड़ ने घेर लिया था। उस समय पुलिस की गोली से 22 लोग मारे गए। घायलों की संख्या सैकड़ों में थी।

कांग्रेस ने स्वतंत्रता आंदोलन में मूल अधिकारों का मुद्दा उठाया था। नेहरू समिति (1928) ने भी अपने प्रारूप संविधान में मूल अधिकारों को स्थान दिया था। किंतु सत्ता में आने के पश्चात् उनकी दृष्टि में परिवर्तन आ गया। संविधान में निवारक निरोध का उपबंध किया गया। 1954 के आसपास लगभग 1100 व्यक्ति इस अधिनियम के अधीन निरुद्ध किए गए। इनमें से अधिकांश राजनीतिक बंदी थे। यही नहीं, गोहत्या निरोध के पक्ष में सत्याग्रह करने वालों को पुलिस नगर से दूर ले जाकर जंगल में छोड़ देती थी। लखनऊ में सचिवालय के समक्ष प्रदर्शन करने वाली ग्रामीण महिलाओं पर पुलिस आग बुझाने वाली मशीनों से पानी की बौछार करती थी। दिल्ली में शासन ने पटरी वालों को उजाड़ने का निर्णय लिया। पंडितजी ने इसका विरोध करते हुए यह कहा कि सरकार को सभी प्रकार के व्यापारियों को समान दृष्टि से देखना चाहिए और उनमें सामंजस्य स्थापित करना चाहिए। पचास वर्ष

पश्चात् उच्चतम न्यायालय ने वही कहा, जो दीनदयालजी कह चुके थे।

राज्यविहीन व्यक्तियों के संबंध में भारत ने श्रीलंका के साथ एक समझौता किया। बहुत कम लोगों ने इस पर ध्यान दिया। पंडितजी ने इसका विश्लेषण करके यह कहा कि भारतवासियों के हितों की रक्षा करना भारत की सरकार का धर्म है। श्रीलंका का समझौता भारतवासियों के हित के विरुद्ध है। आज जब सरकार ने अन्य देश स्थित भारतीयों के लिए विदेश मंत्रालय में एक प्रकोष्ठ बनाया है, तब पंडितजी की बात का सत्य स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।

इसी समय भारत ने पाकिस्तान से नहर जल का समझौता किया। इसके अधीन पाकिस्तान को 60 करोड़ रुपए दिए गए। भारत ने यह स्वीकार किया कि जब तक पाकिस्तान उसको आवंटित नदियों के जल के उपयोग के लिए बाँध नहीं बना लेता तब तक भारत सतलुज आदि नदियों के जल को नहीं रोकेगा।

वर्ष 1954 में पं. नेहरू ने रूस और पूर्वी यूरोप की यात्रा की। 1937 की यात्रा से ही वे रूस और समाजवाद के पक्षधर हो गए थे। अपनी यात्रा के दौरान उन्होंने अनेक विवादास्पद वक्तव्य दिए।

इस समय में संघ ने कुछ ऐसे पग उठाए, जो आगे बहुत विस्तारित हो गए। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ ने 1949 में गोरखपुर में एक शिशु मंदिर स्थापित किया। इस प्रयोग की सफलता से प्रोत्साहित होकर चार-पाँच वर्षों में उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर विद्यालय स्थापित किए गए। लखीमपुर, सीतापुर, फैजाबाद आदि अनेक ज़िलों में बड़ी संख्या में विद्यालय खुले। आगे चलकर इनकी मातृ संस्था के रूप में विद्याभारती की स्थापना हुई। आज समस्त भारत में सहस्रों विद्यालय कार्य कर रहे हैं।

सन् 1955 में श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने भारतीय मज़दूर संघ की नींव रखी। उस समय AITUC (कम्युनिस्टों की), INTUC (कांग्रेस की) और हिंद मज़दूर सभा (समाजवादियों की) मज़दूरों के क्षेत्र में काम कर रहे थे। इसमें लाल झंडे वाली AITUC का प्रभाव अधिक था। लोग यह मानने को तैयार नहीं थे कि संघ की विचारधारा मज़दूर क्षेत्र में प्रवेश कर सकेगी। किंतु दत्तोपंत ठेंगड़ीजी ने राजनीति से विलग रहते हुए संघर्ष के स्थान पर समन्वय को प्राथमिकता दी। उनकी धारणा थी कि विभिन्न वर्ग परस्पर सहयोग करते हुए राष्ट्र को शिखर पर पहुँचाने का प्रयत्न करेंगे। मज़दूर पूरा काम करेंगे, परंतु काम के बदले पूरा दाम लेंगे। मई दिवस के बदले विश्वकर्मा दिवस मनाएँगे। 1989 में भारतीय मज़दूर संघ भारत का सबसे बड़ा मज़दूर संगठन घोषित किया गया। श्री दत्तोपंत का बोया बीज एक वटवृक्ष बन गया।

संविधान के अनुच्छेद 344 के उपबंधों के अनुसार 1955 में राजभाषा आयोग की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य यह बताना था कि किस प्रकार अंग्रेज़ी का स्थान हिंदी और

भारतीय भाषाएँ लेंगी। इसके अध्यक्ष श्री बी.जी. खेर थे, जो पहले मुंबई के मुख्यमंत्री थे। इसमें 14 भारतीय भाषाओं के विद्वान् थे। उस समय संविधान की आठवीं अनुसूची में 14 भारतीय भाषाएँ थीं। आयोग ने पूरे देश का दौरा किया और गहन अध्ययन के पश्चात् अपना प्रतिवेदन दिया। इस पर विचार करने के लिए संसदीय समिति बनी, जिसके अध्यक्ष तत्कालीन गृहमंत्री पं. गोविंदबल्लभ पंत थे। समिति के प्रतिवेदन के आधार पर 1960 में एक राष्ट्रपति आदेश निकाला गया। राजभाषा अधिनियम 1963 में बना किंतु पं. नेहरू ने उसमें इस प्रकार के उपबंध रखवा दिए, जिससे अंग्रेज़ी को स्थायित्व मिल गया। बाद में लालबहादुर शास्त्री के समय हुए संशोधन ने तो अंग्रेज़ी को सुदृढ कर दिया। दीनदयालजी ने आयोग के समय से ही स्पष्ट विचार व्यक्त करते हुए लिखा था कि हमारा प्रशासन, हमारी न्यायपालिका और हमारी शिक्षा सबका माध्यम हमारी भाषाएँ ही होनी चाहिए।

1953-55 के वर्षों में उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों में विशेष हलचल रही। उन दिनों उत्तर प्रदेश के राज्यपाल डॉ. कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी थे। इस समय राज्य में दो केंद्रीय विश्वविद्यालय (काशी हिंदू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ मुसलिम यूनिवर्सिटी) तथा तीन राज्य सरकार के बनाए विश्वविद्यालय (इलाहाबाद, लखनऊ और आगरा) थे। मुंशीजी राज्य के विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति थे। उन्होंने दीक्षांत समारोह के स्वरूप को बदलने के लिए वेद और उपनिषदों के वचनों का प्रयोग कर भारतीयता का समावेश करते हुए दीक्षांत समारोह की पद्धति निर्धारित की। मुंशीजी ने विद्यार्थी संघ के विषय में भी कुछ सुधार किए। ये सुधार लगभग वैसे ही थे, जैसे लिंगदोह समिति ने 2008 में दिए और जिनका सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों में पालन हो रहा है। साम्यवादियों ने और समाजवादियों ने इसका विरोध किया। लखनऊ और इलाहाबाद विश्वविद्यालयों में हड़ताल और प्रदर्शन होते रहे। विश्वविद्यालयों को अनिश्चित काल के लिए बंद कर दिया गया। बाद में एक मास पश्चात् विश्वविद्यालय खोले गए। संघ और विद्यार्थी परिषद् परिवर्तन के पक्ष में थे, किंतु अधिकतर विद्यार्थी साम्यवादियों के प्रचार से प्रभावित होकर आंदोलन के पक्ष में थे। 1953 के इस आंदोलन का प्रभाव विद्यार्थियों में बहुत दिनों तक नहीं रहा। 1955 से स्टूडेंट फेडरेशन का प्रभाव घटने लगा और विद्यार्थी परिषद् आगे आने लगी। दीक्षांत समारोहों का भारतीयकरण अभी तक नहीं हो पाया है।

पंडित नेहरू 1951 में ही हिंदुओं के विवाह, उत्तराधिकार, दत्तक आदि की विधि में संशोधन करना चाहते थे। किंतु कांग्रेस के भीतर और बाहर इसका तीव्र विरोध हुआ। 1952 में निर्वाचन में जीत के पश्चात् नेहरूजी ने 1954 में विशेष विवाह अधिनियम, 1955 में हिंदू विवाह अधिनियम और 1956 में हिंदू मताधिकार अधिनियम तथा हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम पारित कराए।

—ब्रजकिशोर शर्मा

वाङ्मय संरचना

'एकात्म मानवदर्शन' के प्रणेता पं. दीनदयाल उपाध्याय के आलेखों, भाषणों, बौद्धिक वर्गों, वक्तव्यों एवं विविध संवादों ने भारतीयता के अधिष्ठान पर तात्कालिक समस्याओं का विवेचन, विश्लेषण एवं समाधान प्रस्तुत किया। इन सबसे भी कालजयी साहित्य का निर्माण हुआ। उनके जाने के पाँच दशकों बाद उनका संपूर्ण वाङ्मय प्रकाशित हुआ है। विलंब से ही सही, लेकिन उनके शताब्दी वर्ष पर उसका प्रकाशन एक ऐतिहासिक अवसर है। 15 खंडों में संपादित हुए उनके संपूर्ण साहित्य का यथासंभव संकलन हुआ है। आइए, हम उनका परिचय प्राप्त करें।

खंड एक : वर्ष 1940 से 1950 की सामग्री इस खंड में है। संघ प्रचारक के रूप में एक दशक में उनके द्वारा सृजित साहित्य का इसमें संकलन है। यह 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' के द्वितीय सरसंघचालक श्री मा.स. गोलवलकर परमपूजनीय श्रीगुरुजी को समर्पित है। श्रीगुरुजी का परिचय संघ के वरिष्ठ प्रचारक श्री रंगाहरि ने लिखा है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के ही वर्तमान सरसंघचालक श्री मोहन भागवत इस खंड के भूमिका-लेखक हैं। सभी खंडों में उस काल के संदर्भ में एक अध्याय है 'वह काल'। इस खंड में इसका लेखन वरिष्ठ पत्रकार पद्मश्री श्री रामबहादुर राय ने किया है।

खंड दो : यह दो वर्षों का है—1951 तथा 1952। यह 'भारतीय जनसंघ' की स्थापना, प्रथम आम चुनाव तथा पंचवर्षीय योजना का काल है। यह डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को समर्पित है। 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी शोध अधिष्ठान' के निदेशक श्री अनिर्बान गांगुली ने डॉ. मुखर्जी का परिचय लिखा है। इस खंड की भूमिका विख्यात इतिहासवेत्ता श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखी है। 'वह काल' अध्याय का आलेखन पद्मश्री श्री जवाहरलाल कौल ने किया है।

खंड तीन : वर्ष 1954-1955 का है। यह 'गोवा मुक्ति-संग्राम' का काल है। यह गोवा मुक्ति के लिए सत्याग्रह का नेतृत्व करनेवाले श्री जगन्नाथ राव जोशी को समर्पित है; उनका परिचय भाजपा के पूर्व राष्ट्रीय उपाध्यक्ष श्री बलवीर पुंज ने लिखा है तथा इसकी भूमिका के लेखक जनसंघ के जन्मकाल से कार्यकर्ता रहे वरिष्ठ नेता डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा हैं। 'वह काल' के लेखक हैं—राजा राम मोहनराय पुस्तकालय प्रतिष्ठान के अध्यक्ष श्री ब्रजकिशोर शर्मा।

खंड चार : वर्ष 1956-1957 का है। यह संघात्मक संविधान के अनुसार राज्य पुनर्गठन का काल है। यह 'भारतीय जनसंघ' के अध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर में 'प्रजापरिषद्' के संस्थापक पं. प्रेमनाथ डोगरा को समर्पित है। उनका परिचय जम्मू-कश्मीर के उपमुख्यमंत्री श्री निर्मल सिंह ने लिखा है, भूमिका श्री रंगाहरि ने। 'वह काल' का आलेखन माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति श्री अच्युतानंद मिश्र ने किया है।

खंड पाँच : एक ही वर्ष सन् 1958 के दो खंड हैं पाँच व छह। दीनदयालजी के आर्थिक विचारों के परिपक्व होने का यह काल है। महान् गणितज्ञ एवं भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष रहे आचार्य देवा प्रसाद घोष को खंड पाँच समर्पित है। ऑर्गनाइजर के संपादक श्री प्रफुल्ल केतकर ने उनका परिचय लिखा है। हिमाचल प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री श्री शांता कुमार ने भूमिका-आलेखन किया है। प्रसिद्ध विचारक श्री के.एन. गोविंदाचार्य ने 'वह काल' लिखा है।

खंड छह : इसमें दीनदयालजी की पुस्तक 'टू प्लांस : प्रोमिसेज : परफोर्मेंस : परस्पेक्टिव' संयोजित है तथा डॉ. भाई महावीर के द्वारा लिखी पुस्तक की समीक्षा का समाहन किया गया है। रा.स्व. संघ के उत्तर क्षेत्र के संघचालक एवं अर्थवेत्ता डॉ. बजरंगलाल गुप्त ने भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' अध्याय नहीं है। यह खंड महान् अर्थचिंतक श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी को समर्पित किया गया है। उनका परिचय अ.भा. विद्यार्थी परिषद् के पूर्व अध्यक्ष श्री राजकुमार भाटिया ने लिखा है।

खंड सात : वर्ष 1959 का है। चीन द्वारा तिब्बत का अधिग्रहण कर भारत की सीमा का अतिक्रमण किया गया। यह दीनदयालजी को संघ प्रचारक बनानेवाले रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री भाऊराव देवरस को समर्पित है। उनका परिचय श्री अच्युतानंद मिश्र ने लिखा है। भूमिका-लेखन का कार्य 'विश्व हिंदू परिषद्' के राष्ट्रीय महामंत्री श्री चंपतराय ने किया है। वरिष्ठ पत्रकार डॉ. नंद किशोर त्रिखा ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड आठ : वर्ष 1960 का है। 'हमार ध्येय दर्शन' लेखमाला एवं 'जनसंघ ही क्यों' आलेख इसमें शामिल हैं। उत्तर प्रदेश की पहली महिला उपाध्यक्ष एवं जम्मू-कश्मीर सत्याग्रही श्रीमती हीराबाई अय्यर को यह खंड समर्पित है। श्री ब्रजकिशोर शर्मा ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के पूर्व सह-सरकार्यवाह श्री मदनदास इसके भूमिका-लेखक तथा 'दीनदयाल शोध संस्थान' के प्रधान सचिव श्री अतुल जैन 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड नौ : वर्ष 1961 का है। लोकमत परिष्कार का आलेखन, दलों की आचार संहिता के मुद्दे इसमें प्रमुख हैं। दीनदयालजी के साथी रहे तथा उनके बाद महामंत्री बने श्री सुंदर सिंह भंडारी को यह खंड समर्पित है। जयपुर के श्री इंदुशेखर 'तत्पुरुष' ने उनका परिचय लिखा है। रा.स्व. संघ के वर्तमान सरकार्यवाह श्री सुरेश (भय्याजी) जोशी ने इसकी भूमिका लिखी है तथा 'वह काल' का आलेखन श्री बलबीर पुंज ने किया है।

खंड दस : वर्ष 1962 का है। भारत चीन के आक्रमण से आक्रांत हुआ था। यह खंड लब्धप्रतिष्ठ राजनेता डॉ. संपूर्णानंद को समर्पित है, उन्होंने दीनदयालजी की 'पोलिटिकल डायरी' की भूमिका लिखी थी। इनका परिचय 'पाञ्चजन्य' के संपादक श्री हितेश शंकर ने लिखा है। भूमिका आलेखन का कार्य सह-सरकार्यवाह डॉ. कृष्ण गोपाल ने किया है। लब्धप्रतिष्ठ भारतविद् श्री बनवारी ने 'वह काल' लिखा है।

खंड ग्यारह : वर्ष 1963-64 का है। यह वही काल है, जब दीनदयालजी ने 'एकात्म मानववाद' का व्याख्यान किया था। यह खंड महान् भाषा एवं भारतविद् आचार्य रघुवीर को समर्पित है। उनका परिचय दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजीव रंजन गिरि ने लिखा है। भारतमाता मंदिर के संस्थापक स्वामी सत्यमित्रानंद गिरि के विद्वान् शिष्य गोविंद गिरि महाराज ने इसकी भूमिका लिखी है। भाजपा के राष्ट्रीय उपाध्यक्ष एवं राज्यसभा सांसद डॉ. विनय सहस्रबुद्धे ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड बारह : वर्ष 1965 का है। कच्छ समझौता, पाकिस्तान से युद्ध, भारत की विजय एवं ताशकंद समझौते का यह काल है। संघ के तत्कालीन सरकार्यवाह श्री प्रभाकर बलवंत (भैयाजी) दाणी को यह खंड समर्पित है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के दिल्ली प्रांत सहसंघचालक अधिवक्ता श्री आलोक कुमार ने इनका परिचय लिखा है। बिहार राज्य के राज्यपाल श्री रामनाथ कोविंद ने इसकी भूमिका तथा प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. सीतेश आलोक ने 'वह काल' का आलेखन किया है।

खंड तेरह : वर्ष 1966 का है। स्वातंत्र्य वीर सावरकर का निधन, गोहत्या के

ख़िलाफ आंदोलन। दीनदयालजी के सहयोगी तथा ग्रामोदय प्रकल्पों के नियोजक दीनदयाल शोध संस्थान के संस्थापक श्री नानाजी देशमुख को यह खंड समर्पित है। उनका परिचय श्री देवेंद्र स्वरूप ने लिखा है। इस खंड की भूमिका उत्तर प्रदेश के राज्यपाल श्री राम नाईक ने लिखी है। वरिष्ठ पत्रकार श्री राहुल देव 'वह काल' के लेखक हैं।

खंड चौदह : वर्ष 1967-68 का है। भारतीय राजनीति में एकदलीय एकाधिकार टूटने का यह काल है। दीनदयालजी अध्यक्ष चुने गए तथा जघन्य हत्या के शिकार हुए। इस खंड की भूमिका गुजरात के राज्यपाल प्रो. ओमप्रकाश कोहली ने लिखी है। 'वह काल' का आलेखन श्री जगदीश उपासने ने किया है। यह खंड दक्षिण भारत में 'जनसंघ' के कार्य को प्रारंभ करनेवाले तथा 'भारतीय जनता पार्टी' के राष्ट्रीय अध्यक्ष रहे श्री जना कृष्णमूर्ति को समर्पित है। उनका परिचय श्री ला. गणेशन ने लिखा है।

खंड पंद्रह : यह अंतिम खंड है। जिसकी तिथि ज्ञात नहीं, ऐसा साहित्य, इसमें संकलित है। महान् गांधीवादी एवं भारतविद् श्री धर्मपाल को यह खंड समर्पित है। डॉ. जितेंद्र कुमार बजाज ने उनका परिचय लिखा है। संघ के वरिष्ठ कार्यकर्ता तथा प्रख्यात पत्रकार श्री मा.गो. वैद्य ने इसकी भूमिका लिखी है। इस खंड में 'वह काल' नहीं है। दीनदयालजी संदर्भित 'अवसान' अध्याय का इसमें संयोजन किया गया है, जिसका आलेखन श्री रामबहादुर राय ने किया है।

—डॉ. महेश चंद्र शर्मा

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट—

1

अनुक्रमणिका

टैक्स या लूट

रावण ने स्वर्ग के लिए एक सीढ़ी बनाने की योजना बनाई थी। योजना सुंदर थी तथा उसके पीछे जनहित की भावना भी थी। सीढ़ी के बनने पर हर आदमी के लिए यह संभव था कि वह आसानी से स्वर्ग तक पहुँच जाए। किंतु सवाल आया कि इस योजना को व्यवहार में कैसे लाया जाए। इतनी बड़ी सीढ़ी के लिए रुपए की आवश्यकता थी, और रुपया तो जनता से ही वसूल किया जा सकता था। फलतः जनता के ऊपर टैक्स लगाए गए। पर दो-चार टैक्सों से इतना रुपया नहीं आ सकता था कि इतनी बड़ी योजना सफल की जा सके। इसलिए नित्य नए टैक्सों का प्रस्ताव होने लगा। प्रजा करों के बोझ से कराहने लगी। किंतु कौन सुनता है उनकी करुणामय पुकार को, धुन तो थी कि स्वर्ग की सीढ़ी तैयार हो जाए। यहाँ तक कि ब्राह्मणों से भी, जो उस समय कर से मुक्त थे, टैक्स लिया गया। बेचारे निर्धन ब्राह्मण! वे क्या देते? उनके पास धन-संपत्ति तो थी नहीं। वे नाम के नहीं, कर्म से भी ब्राह्मण थे और इसलिए उनकी धन-संपत्ति तो उनकी तपस्या, त्याग और भगवद्‌भक्ति ही थी। किंतु रावण ने कहा कि यह स्वर्ग की सीढ़ी ऋषि-मुनियों के भी काम आएगी, अतः उन्हें भी कर देना पड़ेगा। अंततः उनके पास धन न होने पर उनसे रक्त का कर लिया गया। आज की तरह ब्लड बैंक्स उस समय थे या नहीं, यह तो निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, किंतु हाँ, रावण ने रक्त का कर लिया अवश्य था। संभव है, इतना अधिक कर लिया कि निर्धन ब्राह्मणों को भी अपना ख़ून सुखा-सुखाकर टैक्स अदा करने के लिए काम करना पड़ा। राजा के द्वारा जब इस प्रकार मर्यादा का बाँध टूटा तो प्रजा के धैर्य का भी बाँध टूट गया। उसने विरोध करना प्रारंभ किया। पर जब राजा के दिमाग़ में कोई सनक सवार हो जाती है तों वह फिर किसी की नहीं सुनता। बल्कि अपने हितैषियों को भी शत्रु मान बैठता है। रावण ने भी विरोध का जवाब अत्याचार से दिया। ऋषि-मुनियों को अगुआ मानकर आश्रम ध्वंस किए जाने लगे। अनेक ऋषियों की हत्या हुई। उनकी हड्डियों के अंबार के अंबार जगह-जगह लोगों के मन में आतंक बिठाने के लिए लगा दिए गए। चारों ओर राक्षसी सेना अपने आसुरी बल से प्रजा को सताने लगी,

नीति वाक्य है कि—

एक मुर्ग के कारने, नृप को अत्याचार।
सेवक वाके निशि-दिवस, मारे मुर्ग हज़ार।।

अत: रावण से अधिक अत्याचार उसके अनुयायियों ने शुरू कर दिया। संपूर्ण देश में भ्रष्टाचार और अत्याचार की धूम मच गई। पीड़ित जनता की इस कराह में से मर्यादा पुरुषोत्तम राम का जन्म हुआ, जिन्होंने रावण के राज्य को समाप्त कर रामराज्य की स्थापना की। रावण की स्वर्ग की सीढ़ी की चाह मन-की-मन में ही रह गई।

1

जन-आशाओं पर तुषारपात

आज की कांग्रेस सरकार पुराने इतिहास को फिर से दुहरा रही है। पिछले पाँच वर्षों में जनता की आर्थिक कठिनाइयाँ जिस क़दर बढ़ती गई हैं, उसके लिए सरकार की कर-नीति भी बहुत अंशों में ज़िम्मेदार है। जब नई सरकार बनी थी, तो लोगों को आशा तो यह थी कि अब पुरानी कर-नीति में बदलाव होगा तथा टैक्सों का बोझा हल्का हो जाएगा किंतु *'रोज़े बख़्शवाने गए और नमाज़ गले पड़ी'* वाली कहावत चरितार्थ हुई। बजाय पुराने टैक्सों के हटाने के, नए टैक्सों का प्रस्ताव किया जा रहा है। अतः हमें भलीभाँति विचार करना पड़ेगा कि यह नीति कहाँ तक ठीक है तथा देश की हालत पर इसका क्या परिणाम होगा।

2

कर-वृद्धि क्यों?

टैक्सों का विचार करते समय हम केवल उत्तर प्रदेश के ही टैक्सों का विचार करेंगे, क्योंकि केंद्र की सरकार ने इस वर्ष किन्हीं नए करों का प्रस्ताव नहीं किया है। किंतु उत्तर प्रदेश की सरकार ने तो पुराने टैक्सों में वृद्धि और नए टैक्सों के लगाने में पिछले तमाम रिकार्डों को मात दे दी है। इस वर्ष का जो बजट बनाया गया है, उसमें 4 करोड़ 24 लाख का घाटा है। वित्तमंत्री हाफ़िज मुहम्मद इब्राहीम का कहना है कि इस घाटे को छह पुराने टैक्सों में बढ़ोतरी करके तथा दो नए टैक्स लगाकर पूरा किया जाए। कांग्रेस सरकार का कहना है कि ये नए टैक्स विकास-योजनाओं को पूरा करने के लिए लगाए जाएँगे। वित्तमंत्री ने अपने भाषण में कहा, *''विकास का न्यूनतम कार्यक्रम जो हमें पूरा करना है, वह राज्य की पंचवर्षीय योजना में दिया है। इसके लिए बड़ी पूँजी ख़र्च करनी होगी। किंतु राज्य के मंगल के लिए यह आवश्यक है कि यह ख़र्चा किया जाए तथा मार्ग में कोई भी बाधा न आने दी जाए। इस दृष्टि से हमारे आज के साधन अपर्याप्त हैं। अतः हमें नए साधन खोजने पड़ेंगे, वे चाहे पुराने करों में वृद्धि, नए कर तथा क़र्ज़ कुछ भी हों।*

''अतः सरकार समस्त सिंचाई की भूमि पर विकास-कर लगाने के लिए क़ानून बनाएगी। बिना सिंचाई की भूमि पर कम दर से विकास-कर लगाया जाएगा। म्युनिसिपल सीमा में मकानों पर भी कर लगेगा। जिन ज़मीनों के लिए सिंचाई की सुविधा देते जाएँगे, उनसे सुधार-कर लिया जाएगा। उपर्युक्त करों के अतिरिक्त हम स्टांप और रजिस्ट्रेशन ऐक्ट, मोटर ह्विकल ऐक्ट, सेल ऑफ मोटर स्पिरिट टैक्सेशन ऐक्ट, सेल्स टैक्स ऐक्ट तथा बिजली की दरों में भी वृद्धि करना चाहते हैं। रोडवेज़ के किराए में वृद्धि भी आवश्यक होगी, क्योंकि मोटर के पुर्ज़ों के दाम बढ़ गए हैं।''

3

शाब्दिक छल तथा सब्ज़बाग

कर-वृद्धि के संबंध में मुख्यमंत्री पं. गोविंद वल्लभ पंत का कहना है कि हम इस प्रकार सरकार को जो पैसा देंगे, उसे कर न समझकर प्रदेश की विकास योजनाओं के लिए त्याग समझें। कर या त्याग, यह तो शब्दों का खिलवाड़ है। जहाँ तक प्रदेश की जनता का प्रश्न है, उस पर प्रभाव एक सा ही पड़ता है। विकास के नाम पर टैक्सों का बोझा पहली ही बार नहीं लादा जा रहा बल्कि इसके पूर्व भी जब टैक्स बढ़ाए गए, तब इसी प्रकार की शब्दावली का प्रयोग किया गया था। सन् 1948-49 के बजट को पेश करते हुए उस समय के वित्तमंत्री श्री कृष्णदत्त पालीवाल ने कहा था, *''बजट में 470 लाख का भारी घाटा दिखाई देता है। यह घाटा हमें नए करों से पूरा करना पड़ेगा, यदि हम सरकार द्वारा उठाई गई राष्ट्र-निर्माण की योजनाओं को चलाना चाहते हैं। इसके लिए हमें आवश्यक मालूम देता है कि बिक्री-कर तथा कृषि-आय कर के नाम से दो नए कर लगाए जाएँ।''*

श्री पालीवाल और हाफ़िज मुहम्मद इब्राहीम के भाषणों की यदि हम तुलना करेंगे तो पता लगेगा कि दोनों की एक ही भाषा है। सब्ज़बाग दिखाकर रुपए ऐंठने की नीति नई नहीं, किंतु प्रदेश की जनता जानती है कि पिछले 5 वर्षों में कांग्रेस शासन ने प्रदेश का कितना विकास किया है। बजट और टैक्स पिछले वर्षों में किस तरह बढ़ते रहे हैं, इसका अंदाज़ा निम्न तुलनात्मक आँकड़ों से लगाया जा सकता है—

	आय						(लाख रुपयों में)						व्यय		
वर्ष	तटकर और आयकर	भूमि कर	बिक्री कर	आबकारी	स्टांप कर	अन्य	योग	राजस्व पर भारित व्यय	सिंचाई	ऋण पर ब्याज	सुरक्षा	समाज कार्य	योग ***	घाटा या बचत	ऋण मार्च 31 को
38-39	23	582	—	133	128	310	1280	144	113	61	409	354	1280	—	3419
48-49	884	676	427	653	234	1355	4920	398	231	86	1514	1442	4918	+2	3942
49-50	1005	662	612	596	227	1828	5626	494	285	87	1909	1670	5626	—	4560
50-51	981	772	521	651	244	1302	5189	498	2287	71	1805	1628	5184	+5	5151
51-52	1049	735	495	616	340	2461	5706	555	287	163	1611	1673	5706	—	7073
*52-53	977	1437	490	612	240	1596	6255	541	291	194	1941	1733	6302	-47	
**52-53							6099						6523	-424	

* पुरानी असेंबली के सम्मुख पेश किया।

** नया बजट

*** यह योग सही नहीं है लेकिन मूल पुस्तक में यही योग दिया गया है, इसलिए इसमें कोई परिवर्तन किए बिना यही लिया जा रहा है।

4

जन-धन की बरबादी

उपर्युक्त आँकड़ों का विचार करने पर पता चलता है कि सरकार की आय और ख़र्चा दोनों ही लड़ाई के पहले से पाँच गुना बढ़ गए हैं। लड़ाई के कारण चारों ओर का कारोबार बढ़ा, जिसके परिणामस्वरूप सभी प्रकार से सरकार को अधिक आय हुई। फलत: 1939 से 1945-46 तक, जब तक कि प्रांत में सलाहकार राज्य रहे, इस बढ़ी हुई आय से धन बचाकर एक बड़ी संचित-निधि क़ायम कर ली थी, जिसमें 1 अप्रैल, 1946 को 16 करोड़ 76 लाख रुपए इकट्ठा हो गए थे। कांग्रेस सरकार ने पिछले पाँच वर्षों में इस निधि में से भी बहुत सा रुपया ख़र्च कर दिया है। यहाँ तक कि आज ऐसी स्थिति आ गई है कि आगे के लिए विकास योजनाओं के नाम पर नए कर लगाने का प्रस्ताव किया गया है। इन करों के अतिरिक्त सरकार की योजना है कि 411 करोड़ क़र्ज़ लिया जाए, जिसमें से 211 करोड़ का क़र्ज़ा तो लिया भी जा चुका है। इस प्रकार घाटे का बजट बनाना किसी भी दृष्टि से बुद्धिमत्तापूर्ण कार्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि घाटे का परिणाम अंतत: जनता के ऊपर ही पड़ता है।

5

स्वर्ग की सीढ़ी

जिन विकास योजनाओं के नाम पर हमसे पैसा माँगा जा रहा है, हमें विचार करना होगा कि वे हमारे लिए उपयुक्त हैं भी या नहीं। सरकार यह धन पंचवार्षिक योजना के अनुसार ख़र्च करने वाली है, किंतु दूसरी ओर श्री गुलजारीलाल नंदा का कथन है कि यह योजना अभी अंतिम नहीं है। उसमें बहुत-सा बदल करना होगा, जिसके लिए भारत सरकार प्रयत्नशील भी है। श्री नंदा ने स्वीकार किया है कि पंचवार्षिक योजना में छोटे-छोटे उद्योगों, कुटीर-उद्योगों तथा छोटी योजनाओं को अधिक महत्त्व दिया जाना चाहिए। किंतु उत्तर प्रदेश की सरकार जिन योजनाओं पर रुपया ख़र्च करने जा रही है, वे छोटी नहीं बल्कि रिहंद बाँध जैसी बड़ी-बड़ी योजनाएँ हैं। आज सरकार सिंचाई के साधनों पर 7 करोड़ 50 लाख 3 हज़ार रुपया ख़र्च करना चाहती है। यदि इस रुपए से देहातों में छोटे-छोटे कुएँ बनवाए जाएँ; ताल, तलैये और पोखरे ठीक किए जाएँ तो सिंचाई का प्रश्न जल्दी और सुविधापूर्वक हल हो सकता है। बड़ी-बड़ी योजनाओं पर पिछले पाँच वर्ष में सरकार ने करोड़ों रुपया ख़र्च किया और सबको अधूरा छोड़ दिया गया। ठेकेदारों, सरकारी कर्मचारियों, विदेशी फर्मों तथा कुछ कांग्रेसी छुटभैयों का पेटपालन अवश्य हो गया। आज भी फिर से पुरानी ग़लती दुहराई जा रही है। निश्चित है कि यह धन भी बरबाद हो जाएगा तथा कांग्रेस सरकार जिस स्वर्ग की सीढ़ी को बनाना चाहती है, वह पूरी नहीं हो पाएगी।

6

शासन व्यय कम किया जाए

दूसरा प्रश्न है कि यदि सरकार कुछ योजनाओं को लेना ही चाहती है तो उसके लिए कर लगाना कहाँ तक आवश्यक है। कर के संबंध में कहा है, "इसके द्वारा सरकार प्रजा की संपत्ति का एक भाग अपना ख़र्चा चलाने के लिए लेती है। अतः राज्य को इस प्रकार संपत्ति-अपहरण का तब तक कोई अधिकार नहीं है, जब तक वह यह सिद्ध न कर दे कि उसका उद्‌देश्य फ़िज़ूलख़र्ची कम करके पूरा नहीं हो सकता। आज आवश्यकता तो इस बात की है कि शासन का ख़र्चा कम किया जाए, क्योंकि यह भार बहुत अधिक बढ़ गया है। सरकारी कर्मचारियों के वेतन पर ही आज 25 करोड़ रुपया व्यय किया जाता है, जबकि 1935-36 में यह 6 करोड़ तथा 1945-46 में 11 करोड़ था। जहाँ तक महँगाई का प्रश्न है, वह बढ़ी अवश्य है किंतु सरकार ने उस परिमाण में न तो वेतन बढ़ाए हैं और न महँगाई का भत्ता ही। वास्तविक वृद्धि का कारण तो नए दफ़्तरों का खुल जाना है। इतना ही नहीं, जहाँ एक व्यक्ति की ज़रूरत है, वहाँ तीन-तीन, चार-चार आदमी रखे गए हैं। मंत्रियों, उपमंत्रियों तथा सभा सचिवों की संख्या बेतहाशा बढ़ गई है। हरेक के लिए अपने स्टाफ़ की ही नहीं, एक स्पेशल अफसर की भी आवश्यकता होती है। फाइलों और लालफीताशाही में ख़र्चा तो बढ़ता जाता है, काम नहीं होता। पहली आवश्यकता तो यह है कि 25 करोड़ के इस ख़र्चे को कम किया जाए। दूसरी ओर, यदि कंट्रोल पूरी तरह से ख़त्म कर दिए जाएँ तो उसमें भी दो करोड़ की बचत की जा सकती है। पुलिस के ऊपर आज 7 करोड़ 11 लाख 41 हज़ार रुपया ख़र्च किया जा रहा है, जो कि सन् 42 के ज़माने में भी, जबकि प्रांत में हैलटशाही का पुलिस राज्य था, नहीं किया जाता था। पुराने ब्रिटिश अफ़सरों, राजे-महाराजाओं तथा राजनीतिक पीड़ितों के पेंशन के नाम पर सरकार काफ़ी रुपया ख़र्च कर देती है। यह ख़र्चा समाप्त किया जा सकता है। ब्रिटिश अफ़सरों और राजे-महाराजाओं के संबंध में यदि पुरानी संधियों की दुहाई दी

जाती है तो राजनीतिक पीड़ितों के नाम पर देशभक्ति का व्यापार क्यों किया जाता है? सरकार का कर्तव्य है कि वह प्रजा में प्रत्येक पीड़ित की सहायता करे, किंतु यहाँ वास्तविक पीड़ितों को तो भूखे मरने दिया जाता है तथा सन्, 42 में राजनीतिक कारणों से कम-से-कम छह महीने की जेल भुगतने वाले व्यक्तियों को राजनीतिक पीड़ित नाम देकर सहायता दी जाती है, चाहे वे अन्यथा पीड़ित हों या न हों। यह तो *'अंधा बाँटे रेवड़ी, फिर-फिर अपने को दे'* वाली कहावत चरितार्थ करना हुआ।

7

नए कर अनावश्यक

ज़मींदारी उन्मूलन के कारण लगान से सरकार की आमदनी में 411 करोड़ की बढ़ोतरी हो गई है। आशा तो यह थी कि सरकार लगान को कम करके किसानों को कुछ राहत देगी, किंतु ज़मींदारी विनाश से होने वाले लाभ का पूरा-पूरा हिस्सा सरकार ने अपने पास ही रख लिया है। किसानों को उसमें से वह एक पाई भी देने के लिए तैयार नहीं। हाँ, नवीन प्रस्तावों के अनुसार उन पर नया कर अवश्य लगाया जाएगा, जिसका नाम कल्याण कर दिया गया है। इस टैक्स से किसान का कितना लाभ होगा, यह तो वह ही निर्णय कर सकेगा। इतना ही नहीं तो पिछले वर्ष चीनी मिलों को गन्ना उप कर (सेस) का 3 करोड़ 90 लाख रुपया वापस कर दिया गया। कोई कारण नहीं था कि मिल मालिकों को यह मदद दी जाती। चीनी के व्यापार में पिछले वर्ष वे करोड़ों का मुनाफ़ा कमा चुके हैं। हाँ, पिछले चुनावों में कांग्रेस की उन्होंने जो मदद की, उसका मुआवज़ा दिया गया हो तो बात अलग है। हमारा निश्चित मत है कि यदि सरकार ग़रीब जनता की एक-एक पाई को सँभालकर ख़र्च करे तो काफ़ी बचत की जा सकती है। उस हालत में नए कर लगाना ही अनावश्यक नहीं होगा, बल्कि पुराने कर भी कम कर देने पड़ेंगे।

8

पंतजी का ग़लत गणित

सरकार को ख़र्च के लिए धन चाहिए, अतः कर लगाने पड़ते हैं। इस दृष्टि से हमने ऊपर विचार किया है कि प्रथम तो जिन मदों पर सरकार ख़र्चा करना चाहती है, वे ही उपयोगी और निश्चित नहीं हैं। दूसरे, जब तक शासन की फ़िज़ूलख़र्ची कम नहीं की जाती तब तक सरकार को कर लेने का अधिकार नहीं है। सरकार की दृष्टि से विचार करने के बाद करदाता की दृष्टि से भी विचार करना होगा। क्या उसमें देने की शक्ति है? हमको दूध की अत्यधिक आवश्यकता हो सकती है, किंतु गाय उतना दूध दे सकती है या नहीं, यह भी तो विचार का विषय है। यदि हम अपने लालच में थनों को निचोड़ते ही गए तो गाय को कष्ट तो होगा ही, हम उससे हाथ भी धो बैठेंगे। पंतजी का कहना है कि उत्तर प्रदेश की जनता अभी बहुत कुछ दे सकती है, क्योंकि यहाँ केवल 4.5 रुपए प्रति व्यक्ति टैक्स पड़ता है, जबकि बंबई जैसे प्रांतों में यह औसत 11 रुपए है। हम समझते हैं कि टैक्सों का यह औसत सही नहीं। फिर केवल प्रदेशीय सरकार ही तो टैक्स नहीं लेती। पंचायत, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, म्युनिसिपल बोर्ड और केंद्रीय सरकार, सभी के टैक्सों में वृद्धि हुई है। दूसरे, पंतजी ने जो आँकड़े दिए हैं, उनके हिसाब से यदि टैक्स लिया गया तो संपूर्ण प्रदेश तबाह हो जाएगा। उनका गणित उसी तरह ले डूबेगा जैसे एक हिसाब के मास्टर साहब ने अपना संपूर्ण कुनबा डुबो दिया। मास्टर साहब अपने बाल-बच्चों सहित एक गाँव को जा रहे थे कि रास्ते में नदी मिली। मास्टरजी ने नदी की चौड़ाई में स्थान-स्थान पर लकड़ी डालकर गहराई नापी और सबको जोड़कर औसत निकाल लिया। औसत 3 फुट 5 इंच आया। उनका सबसे छोटा लड़का 4 फुट का था, बाक़ी सब उससे ऊँचे थे। अतः मास्टरजी ने निधड़क होकर सबको पानी में चलने की आज्ञा दी। मास्टरजी तो जैसे-तैसे दूसरे किनारे पहुँच गए किंतु बाक़ी संपूर्ण कुनबा डूब गया। मास्टरजी ने बहुत विचार किया कि 'हिसाब ज्यो का त्यों, कुनबा डूबा क्यों?' किंतु वे अपनी पहेली

नहीं सुलझा पाए। वही हाल हमारे मुख्यमंत्री का है। प्रथम तो मुख्यमंत्री का गणित ही ग़लत है, क्योंकि उत्तर प्रदेश की आबादी 5.5 करोड़ है तथा उनकी सरकार ने जो बजट पेश किया है, वह 65 करोड़ 23 लाख का है। प्राइमरी स्कूल का बच्चा भी भाग देकर भजनफल 10 निकाल देगा। पता नहीं पंतजी ने 4 रुपए 8 आने का औसत कैसे निकाल दिया। इसमें अगर केंद्र के साथ पंचायत, म्युनिसिपैलिटी अथवा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के टैक्स जोड़े जाएँ तो यह औसत और भी बढ़ जाएगा। दूसरे कर देने की ताक़त का अंदाज़ा औसत से नहीं लगाया जा सकता। वह तो हर व्यक्ति की आमदनी से जीवन-निर्वाह के बाद कितना बचता है, इससे ही आँका जा सकता है। सर विलियम हंटर ने कहा है, ''टैक्स देने के पूर्व मनुष्य के पास खाने को पर्याप्त चाहिए। अतः किसी भी राष्ट्र की कर-दान शक्ति उसकी संख्या से नहीं, बल्कि राष्ट्र की आय और जीवन-निर्वाह की आवश्यकता के अंतर से निश्चित होती है।'' उत्तर प्रदेश की जनसंख्या की विपुलता के कारण यदि 6.5 करोड़ का भी टैक्स लगा दिया जाए तो औसत में तो केवल 10 रुपए की वृद्धि होगी, जो बहुत थोड़ी मालूम हो सकती है, जबकि दूसरे प्रांतों में ऐसी बात नहीं है। फिर उत्तर प्रदेश की जनता में बहुत बड़ी संख्या ग़रीबों की है। इस प्रदेश में धनिक अथवा मध्यवित्त के लोगों की संख्या बहुत थोड़ी है। यहाँ के जन-साधारण का जीवन निर्वाह ही नहीं हो पाता है। उसमें तो बचत की गुंजाइश ही नहीं, जिसे वह अपनी बचत में से नहीं बल्कि अपना पेट काटकर देता है।

9

जले पर नमक

प्रदेश की साधारण स्थिति के साथ-साथ हमें आज की परिस्थितियों का भी विचार करना होगा। पिछले कुछ वर्षों में लड़ाई के कारण पैसे की इफ़रात थी। किसान, मज़दूर, व्यापारी सभी गरम थे। नौकरीपेशा अवश्य परेशान थे किंतु उन्हें भी कम-से-कम नौकरी तो मिल जाती थी। आज स्थिति बदल गई है तथा आगे और तेज़ी से बदल रही है। लोगों की क्रयशक्ति कम होने से सब प्रकार का व्यापार समाप्त होता जा रहा है। पिछले गन्ने की फ़सल में किसान का दिवाला निकल चुका है। जो कुछ उसने जोड़ा था, वह अपने पुराने क़र्ज़े को चुकाने और दस गुना जमा करने में ख़र्च कर दिया। आज उसके पास भी पैसा नहीं। बल्कि पिछली फ़सल की ख़राबी के कारण पूर्व के ज़िलों में तो वह फिर से क़र्ज़दार होता जा रहा है। बेरोज़गारी चारों ओर बढ़ रही है। ऐसी दशा में जब आर्थिक संकट बढ़ रहा हो, तब कर बढ़ाने की बातें करना जले पर नमक छिड़कना है।

10

ख़तरनाक संकेत

कर-वृद्धि का घातक परिणाम वर्तमान पर ही नहीं, भविष्य पर भी होगा। जो लोग बचा नहीं पाते, उनकी बात जाने दीजिए किंतु जो थोड़ा-बहुत बचा सकते हैं, उस बचत के पैसे को भी यदि सरकार ने ले लिया तो भविष्य का कारोबार तथा उद्योग-धंधे सभी समाप्त हो जाएँगे। बचत से पूँजी बनती है, जो कि भविष्य के उत्पादन में सहायक होती है। यदि बचत का मार्ग ही रोक दिया तो पूँजी का बनना ही बिल्कुल रुक जाएगा, विशेषकर छोटी पूँजी का, जिसकी आज बहुत अधिक आवश्यकता है। छोटी पूँजी के समाप्त होने से छोटे-छोटे व्यापार और उद्योग-धंधे आदि धीरे-धीरे ख़त्म हो जाएँगे। फलत: मध्य वर्ग जो कि समाज में स्थिरता एवं प्रगति के लिए ज़िम्मेदार है, नष्ट हो जाएगा। एक ओर थोड़े से अमीर और दूसरी ओर करोड़ों ग़रीब रह जाएँगे। देश के भविष्य की दृष्टि से यह ख़तरनाक संकेत है। हमारी आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए आवश्यक है कि देश में छोटे-छोटे उद्योग-धंधों के आधार पर उत्पादन बढ़ाया जाए। आज की कर नीति इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होने के बजाय बाधक ही होगी। हाँ, अगर कहीं कर बढ़ाए जा सकते हैं तो केवल विदेशी वस्तुओं के आयात पर, ताकि स्वदेशी को बढ़ावा मिले। किंतु उस ओर सरकार ध्यान नहीं देती।

करों की वृद्धि तो जैसा ऊपर बताया है, हानिकारक है ही किंतु जिन करों में वृद्धि की जा रही है, वह तो और भी अनुचित है। ये सभी कर ऐसे हैं, जिनका भार देश की ग़रीब जनता पर अधिक पड़ेगा, जो कि पहले ही पिस चुकी है। कर-वृद्धि संबंधी जो क़ानून हमारे सम्मुख आए हैं, उन पर भी विचार करना उपयुक्त होगा।

पहला विधेयक जो पास हो चुका है, उत्तर प्रदेश स्टांप (संशोधन) विधेयक 1952 है। इसके अनुसार स्टांप-ड्यूटी में निम्न बढ़ोतरी हुई है। साथ में 1938 के दर दिए गए हैं, क्योंकि सन्, 48 में भी एक बार पंत सरकार बढ़ोतरी कर चुकी है।

विलेख	1937	1948	1952
1. रसीद (स्वीकृति पत्र)	–	=	|
2. दत्तक ग्रहण (गोद लेना)	10	25	30
3. शपथपत्र (हलफनामा)	1	2||	3
4. संघ नियम (Articles of association)	25	62||	100
5. पंच नियम (award)	5-5000 तक	9|=-5000 तक	16
6. बौंड —)	1000 तक	9|=--5000 तक	12
1000) से ऊपर प्रति-500 पर		4|| =	6
7. एडवोकेट का प्रवेश	500	625	750
8. कंपनी का मेमोरेंडम	15	37|||	50
12. मुख्तारनामा ख़ास	1	1|||=	2||
,, आम 5 व्यक्तियों के नाम	5	9|=	12
,, आम 5 से अधिक	10	18|||=	24
23. रेहननामा का वापसीनामा	10	18||	24
24. अधिकार-मुक्ति (Release)	5	9||=	15
25. ज़मानतनामा	5	9||=	12

इसके अतिरिक्त बिक्री प्रमाण-पत्र, संपत्ति हस्तांतरण, जरमजीद, हिबानामा, सरखत, रेहननामा, बँटवारा, साझा के स्टांपों में भी वृद्धि हुई है, जो कि बौंड के अनुसार 1000 तक 12 रुपए तथा आगे प्रति 500 पर 6 होगी।

11

स्टांप ड्यूटी अन्यायपूर्ण

उपर्युक्त दरें सन् 1938 के मुक़ाबले में 400 प्रतिशत तक तथा 1948 के मुक़ाबले में 100 प्रतिशत तक बढ़ाई गई हैं। स्टांप-ड्यूटी कर की दृष्टि से कभी भी न्यायपूर्ण नहीं कही जा सकती, क्योंकि बदले में सरकार से कोई सुविधा नहीं मिलती। फिर उनकी इस क़दर वृद्धि तो और भी ख़राब है। यह ड्यूटी विशेषकर उस समय ली जाती है, जबकि आदमी कर्ज़मंद होता है, अत: वह दे तो देता है किंतु उससे उसकी आवश्यकता की पूर्ति के साधनों में कमी आ जाती है। कंपनियों की फ़ीस में जो वृद्धि की गई है, उससे संगठित कारोबार को धक्का लगेगा, क्योंकि पुरस्कर्ताओं को अब प्रारंभिक रूप से बहुत अधिक ख़र्च करना पड़ेगा।

स्टांप ड्यूटी के साथ कोर्ट फ़ीस में भी वृद्धि की है। अभी तक 15 आने की कोर्ट फ़ीस लगती थी, अब वह बढ़ाकर 1 रुपया कर दी है। कहने को तो एक आना ही बढ़ा है किंतु जो कचहरी में जाते हैं, उन्हें ज्ञात होगा कि एक ही मुक़द्दमे के दौरान में यह बढ़ोतरी कई रुपयों तक पहुँच जाएगी।

12

बिजली कर में वृद्धि

बिजली के करों में भी वृद्धि की गई है। इसके अनुसार प्रत्येक से 25 प्रतिशत अथवा अधिक-से-अधिक 1 आना यूनिट अधिक लिया जाएगा, किंतु 9 आना यूनिट से अधिक दर नहीं होगी। अर्थात् 7 आना तक आपके कर एक चौथाई और बढ़ जाएँगे तथा उससे ऊपर बढ़कर पूरे 9 आना हो जाएँगे। यह बढ़ोतरी, जो बिजली काम में लाते हैं उनको तो देनी ही पड़ेगी किंतु जो प्रत्यक्ष उपयोग में नहीं लाते, उन पर भी भार पड़ेगा। उदाहरण के लिए चक्की वाले बिजली की दर बढ़ने पर पिसाई की दर भी बढ़ा देंगे। दूसरे कारख़ानों में भी उत्पादन का ख़र्चा बढ़ने पर क़ीमतों में वृद्धि होगी, जो कि अंत में व्यापार पर भी असर करेगी। छोटे और कुटीर उद्योगों के लिए यह कर बहुत घातक होगा।

13

मोटर टैक्स

इसी प्रकार मोटरगाड़ियों पर जो टैक्स बढ़ाया है, वह देखने में बड़े आदमियों पर टैक्स लगता है, किंतु उसका असर भी सर्वसाधारण पर पड़ेगा। विशेषकर बड़े आदमियों की कारों पर तो केवल 25 प्रतिशत बढ़ाया है, जबकि सवारी ढोने वाली बसों पर 50 फ़ीसद तथा माल ढोने वाले ट्रकों पर 75 फ़ीसद टैक्स बढ़ाया गया है। स्पष्ट है कि इससे बढ़े हुए कर के परिणामस्वरूप एक ओर तो मोटर का किराया बढ़ जाएगा तथा दूसरी ओर ढुलाई की दरों का असर अवश्य ही क़ीमत पर पड़ेगा। रेल के डिब्बों की कमी के ज़माने में ठेलों से बहुत अधिक ढुलाई होती है। उस पर यह भार डालना देश के एक बहुत बड़े कारोबार को नष्ट करना है, जो कि पिछली लड़ाई के ज़माने में ही पनपा है। एक नया अनुच्छेद जोड़कर उन ठेलों पर भी टैक्स बढ़ा दिया गया है, जो किराए पर न चल कर अपने ही काम आते हैं।

इनके अतिरिक्त रजिस्ट्रेशन की फ़ीस में वृद्धि, रोडवेज़ के किरायों में वृद्धि, पेट्रोल के कर में बढ़ोतरी तथा सेल्स टैक्स में भी वृद्धि होने वाली है। वह कितनी होगी, इसका अभी तक बिल नहीं आया है। किंतु यह निश्चित है कि ये सब जनसाधारण के ऊपर ही भार बनेंगे।

14

बिक्री-कर प्रतिगामी

इन सभी क़ानूनों में बिक्री-कर तो बहुत ही प्रतिगामी है। एक अर्थशास्त्री के अनुसार, "इसमें इन बातों का कुछ ध्यान नहीं रखा जाता कि आय किस प्रकार अर्जित होती है, किस प्रकार व्यय होती है, उससे भरणीय मनुष्यों की संख्या क्या है, या उसमें क्या बचत होती है। यह कर उपभोग पर या व्यय पर लगता है। अतः उन ग़रीबों के लिए हानिप्रद है, जो कि संपन्न व्यक्तियों की अपेक्षा आय का अधिक भाग आवश्यक वस्तुओं पर व्यय करते हैं।" इस टैक्स के कारण व्यापार बड़े-बड़े हाथों में चला जाता है तथा थोक व्यापारियों का स्थान दलाल ले लेते हैं। छोटे-छोटे व्यापारियों को हिसाब-किताब की झंझट और ख़र्चा तथा सेल्स टैक्स अधिकारियों के द्वारा परेशानी उठानी पड़ती है। ग्राहक को इसका पैसा वसूल होने के कारण इससे क़ीमतें बढ़ती जाती हैं। आवश्यकता तो थी कि इस टैक्स को बिल्कुल ही बंद कर दिया जाता, किंतु बजाय बंद करने के इसमें और भी वृद्धि करने का विचार किया जा रहा है।

उपर्युक्त करों की वृद्धि के साथ दो नए कर विकास के नाम पर लगाए जा रहे हैं। शहरों में मकान पर लगने वाला मंगल-कर हमारे लिए इतना अमंगलकारी होगा कि रहने के मकानों की और भी किल्लत हो जाएगी। हाउस टैक्स के दुगने होने के परिणाम का अंदाज़ा हर शहरी कर सकता है। गाँवों में भी सिंचाई या ग़ैर-सिंचाई की भूमि पर जो कल्याण-कर लगाया जाएगा, वह किसानों को अरुचिकर ही नहीं, उनको त्रासदायक भी होगा। आबपाशी पहले बढ़ी हुई है। यह कर तो और भी कमर तोड़ देगा। सरकार के प्रस्ताव के अनुसार सिंचाई की भूमि से प्रति एकड़ 5 रुपए तथा ग़ैर-सिंचाई की भूमि से प्रति एकड़ 1 रुपए विकास-कर लिया जाएगा। इसी प्रकार नई योजनाओं के अनुसार जिस भूमि को सिंचाई की सुविधा मिलेगी, वहाँ भी प्रति एकड़ के हिसाब से 5 की सालाना किश्तों में वसूल किया जाएगा। पिछले दिनों में आबपाशी पहले ही बढ़ चुकी है,

जहाँ सिंचाई के साधन जाएँगे आबपाशी ली ही जाएगी। फिर यह नया कर क्यों? कृषि पर बढ़े हुए भार का परिणाम एक ओर तो किसानों को फिर से क़र्ज़दार बनाएगा तथा दूसरी ओर अन्न एवं कच्चे माल के दाम बढ़ जाएँगे। पंतजी इसको कर का नाम देने के लिए तैयार नहीं। हम भी उनसे सहमत हैं, क्योंकि यह कर नहीं लूट है, जिसकी तुलना ज़मींदारों के हथियाना, चंदियाना आदि नाजायज़ टैक्सों से की जा सकती है। इस प्रकार सरकार दो-तिहाई करों में वृद्धि कर रही है। लगान में भी 4 करोड़ की वृद्धि हो गई है, क्योंकि ज़मींदार किसान की वसूली का 40 प्रतिशत देते थे, अब सरकार शत-प्रतिशत वसूल करने वाली है। कृषि, आय कर, मनोरंजन कर और आबकारी केवल तीन ऐसे कर रह जाते हैं, जिनमें कोई वृद्धि नहीं की गई।

15

रावण राज्य की पुनरावृत्ति

आज जबकि क़ीमतें बढ़ती जा रही हैं और रोज़ी कमाने के साधन घटते जा रहे हैं, इस प्रकार टैक्सों का बोझा रावण के 'रक्त-कर' से कम तक़लीफ़देह नहीं होगा। विकसित उत्तर प्रदेश का स्वर्णचित्र सामने रखने के बाद भी उसको देखने की ताक़त नहीं, क्योंकि आँखों के सामने कमज़ोरी के कारण अँधेरा छाया हुआ है। अच्छा हो कि सरकार अपने इन इरादों को वापस ले ले। किंतु सरकार की ऐसी नीयत नहीं दिखती। विधानसभाओं में उसका पाशविक बहुमत होने के कारण, कठोर-से-कठोर क़ानून भी वहाँ पास हो जाता है। कांग्रेस मेंबर जनता से नाता तोड़कर पार्टी-अनुशासन के बंधन में बँधे कुछ बोल नहीं पाते। अतः आवश्यकता है कि ये सभी क़ानून जनता की असेंबली के सामने भी पेश हों। जनता अगर इन क़ानूनों को ठुकरा दे तो सरकार की कोई ताक़त नहीं कि वह इन ख़ून चूसने वाले टैक्सों को हमारे ऊपर लाद सके। भारतीय जनसंघ का निश्चय है कि वह जनता को टैक्सों के विरोध में संगठित करेगा। आइए! हम मिल जाएँ और एक आवाज़ से इस अत्याचार का विरोध करें। क्या जनता अपने हित और शक्ति को पहचानेगी?

भारत माता की जय!

—पुस्तक, 1954

□

2
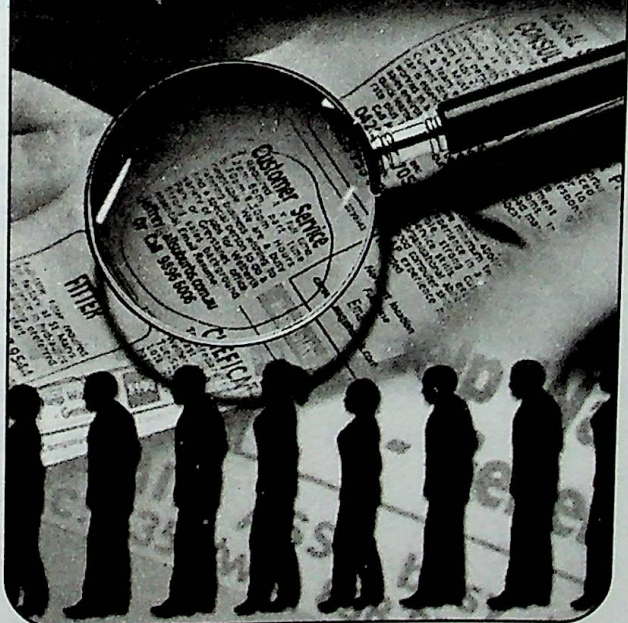
अनुक्रमणिका

1

बेकारी का मूल हमारी सामाजिक एवं आर्थिक नीतियों में है

पिछले कुछ वर्षों से निरंतर बढ़ती हुई बेकारी आज हमारे लिए चिंता का कारण बन गई है। देश के सभी दलों ने समस्या के संबंध में अपनी चिंता व्यक्त की है तथा इसे हल करने के लिए सुझाव रखे हैं। शासन भी इस दृष्टि से सचेष्ट अवश्य है और उसने भी कतिपय योजनाएँ प्रस्तुत की हैं। किंतु बेकारी का दानव इतनी तेज़ी से हमारे संपूर्ण राष्ट्र-जीवन को आक्रांत किए जा रहा है कि इन साधारण उपायों से उसका मुक़ाबला नहीं किया जा सकता। साथ ही, समस्या का हल ऊपरी एवं क्षणिक मलहम-पट्टी में नहीं अपितु उसके मौलिक कारणों की खोज कर उनके निराकरण में है। अतः योजना आयोग के समक्ष विचार रखा गया था कि वह पंचवर्षीय योजना के लक्ष्य और कार्यक्रम से प्राप्त अनुभवों तथा सबको काम दिलाने की दृष्टि में संशोधन एवं परिवर्तन करे। किंतु उसने इसे अमान्य करके अपने मूल दृष्टिकोण को ही स्थिर रखा है। हाँ, अपनी ओर से एक एकादश-सूत्रीय कार्यक्रम अवश्य रखा है। स्पष्ट ही योजना आयोग ने समस्या की गंभीरता को अनुभव नहीं किया और न वह कारणों की ठीक-ठीक मीमांसा ही करना चाहता है।

बेकारों की संख्या के संबंध में निश्चित आँकड़े तो प्राप्त करना कठिन है और इसलिए भिन्न-भिन्न विद्वानों की संख्या में बहुत अंतर है। 'काम दिलाऊ कार्यालयों' के निम्नलिखित आँकड़े यद्यपि बेकारी का परिणाम न बता सकें तो भी वे अपनी दिशा और गति का अंदाज़ा अवश्य दे सकते हैं।

दिसंबर	1951	13,75000
अक्तूबर	1952	14,70000
जून	1953	21,70000

पिछले डेढ़ वर्ष में केवल उन लोगों की संख्या, जिन्होंने अपना नाम इन दफ़्तरों में लिखाया है, 13,75,000 से बढ़कर 21,70,000 हो गई है। अर्थात् 85 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। 'काम दिलाऊ दफ़्तरों' के अधिक उपयोग की प्रवृत्ति के कारण जो वृद्धि हुई, उसे यदि कम कर दें तो भी 50 प्रतिशत वृद्धि तो माननी ही होगी। स्थिति का कुछ अनुमान हम उन घटनाओं से भी लगा सकते हैं, जो आए दिन समाचार-पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। एक कॉलेज में 7 स्थानों की पूर्ति के लिए विज्ञापन किया गया। 1400 आवेदन-पत्र प्राप्त हुए। यदि उच्च विद्यालयों के लिए, जिनमें केवल ऊँची योग्यता के व्यक्ति ही लिए जा सकते हैं, इतने आवेदनकर्ता हो सकते हैं तो अन्य स्थानों का क्या हाल होगा। एक दफ़्तर से जब एक बाबू को नौकरी से निकाला गया तो उन्होंने उसी दफ़्तर में चपरासी की जगह काम करना स्वीकार कर लिया। प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ के एक पत्रकार सम्मेलन में बताया, "प्रतिवर्ष 9 लाख पढ़े-लिखे लोग नौकरी के लिए तैयार हो जाते हैं, जबकि हमारे पास ख़ाली नौकरियाँ एक शतांश के लिए भी नहीं हैं।"

पढ़े-लिखे बेकारों के अतिरिक्त अनपढ़ एवं ग्रामीण बेकारी का अंदाज़ा तो बहुत ही कठिन है। इस दृष्टि से आँकड़े इकट्ठे करने का कोई विशेष प्रयत्न भारत में नहीं किया गया। अंतरराष्ट्रीय मज़दूर संस्थान ने युद्ध पूर्व यह संख्या 4 करोड़ कूती थी। तब से इसमें कितनी वृद्धि हुई है, कहा नहीं जा सकता। हाँ, नगरों में रिक्शा चलाने वाले एवं कुलियों की भरमार देखकर यह अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि गाँवों में भी काम की भारी कमी है। ऐसे लोगों की भी संख्या कम नहीं है, जिन्हें पूरा काम नहीं मिला है तथा जिनकी गिनती हम अर्धबेकारों में कर सकते हैं।

काम करने योग्य उम्र पाकर काम न पा सकने वालों के अतिरिक्त ऐसी भी बहुत बड़ी संख्या है, जो अभी तक कमाऊ थे किंतु अब बेकार होते जा रहे हैं। पिछले कुछ दिनों में यह संख्या बहुत बढ़ गई है। अकेले पश्चिम बंगाल में जूट उद्योगों में पिछले 6 महीनों में 20,000 लोग काम से अलग हुए हैं। चाय के 74 बग़ीचों के बंद हो जाने के कारण 24,000 लोग बेकार हुए हैं तथा इसी प्रकार कोयले की खदानों में भारी संख्या में बेकारी बढ़ रही है। अत: बेकारी की समस्या पर विचार करते समय हमें इस पहलू पर भी ध्यान रखना होगा। एक ओर जहाँ अपने नवयुवकों को हमें बासरे रोज़गार बनाना है, वहाँ दूसरी ओर काम पाए हुए लोग अनावश्यक रूप से बेकार न हो जाएँ, इस ओर भी ध्यान रखना है। यदि वे बेकार होते हैं तो उनको फिर से काम दिलाने की समुचित व्यवस्था करनी होगी।

बेकारी की समस्या यद्यपि आज अपनी भीषणता के कारण अभिशाप बनकर हमारे सम्मुख खड़ी है, किंतु उसका मूल हमारी आज की समाज, अर्थ और नीति व्यवस्था में छिपा हुआ है। वास्तव में जो पैदा हुआ है तथा जिसे प्रकृति ने अशक्त नहीं कर दिया है,

काम पाने का अधिकारी है। हमारे 'उपनिषद्कार ने जब यह घोषणा की कि काम करते हुए हम सौ वर्ष जिएँ—'कुर्वन्ने वेह कर्माणि जिजीविषेच्छतम् समाः' तो वे यही धारणा लेकर चले कि प्रत्येक को काम मिलेगा। इसलिए शास्त्रकारों ने प्रत्येक के लिए कर्म की व्यवस्था की। यहाँ तक कि इस आशंका से कि कोई कर्म-हीन रहकर केवल भोग की ही ओर प्रवृत्त न हो जाए, उन्होंने यह धारणा प्रचलित की थी कि यह भारतभूमि 'कर्मभूमि' है। स्वर्ग के देवता भी अपने कर्मफल क्षय हो जाने पर यही इच्छा करते हैं कि वे भारत में जन्म लें एवं पुनः सुकृत संचय करें। तात्पर्य यह है कि हमने किसी भी व्यक्ति के संबंध में बेकारी अथवा कर्मविहीनता की कल्पना नहीं की। अतः भारतीय अर्थनीति का आधार 'सबको काम' ही हो सकता है। बेकारी अभारतीय है। भारतीय शासन का कर्तव्य है कि वह इस आधार को लेकर चले।

भारतीय संविधान के भाग 4, राज्य के निदेशक सिद्धांत के 41वें अधिकरण में भी राज्य का कर्तव्य दबी ज़बान में क्यों न हो, स्वीकार किया गया है। अधिकरण 41 कहता है—

''राज्य अपनी आर्थिक शक्ति और विकास की सीमाओं के अंतर्गत इस बात के लिए प्रभावशाली व्यवस्था करेगा कि नागरिकों को काम, शिक्षा तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, क्षमता अथवा अनागत अभाव की अवस्था में शासकीय सहायता का अधिकार प्राप्त हो।''

किंतु पिछले 6 वर्षों में शासन ने इस दृष्टि से कोई भी प्रयत्न नहीं किया। इतना ही नहीं, पंचवर्षीय योजना बनाते समय भी यह गारंटी नहीं ली कि इन योजनाओं के पश्चात् प्रत्येक नागरिक को काम मिलेगा। योजना के निर्माता तो बेकारी के बढ़ते हुए वेग का भी अनुमान नहीं कर पाए। वैसे भी उन्होंने पाँच वर्ष के पश्चात् 50 लाख व्यक्तियों को काम देने की व्यवस्था की है, जबकि बढ़ती हुई आबादी एवं अन्य कारणों से बेकारों की संख्या आज ही कई गुनी है। हमारी योजना का आधार होना चाहिए था 'प्रत्येक को काम'। हमने उसका आधार बनाया है पश्चिम के रास्ते पर औद्योगीकरण। निश्चित ही यह आधार ग़लत है, क्योंकि यूरोपीय देशों एवं भारत की स्थिति में अंतर है।

इंग्लैंड और अमरीका से भिन्न भारत की जनसंख्या बहुत अधिक है। यहाँ जनशक्ति की कमी नहीं, अपितु बाहुल्य है। अत्यंत दुःख का विषय है कि एक ओर तो नए भारत के निर्माण के लिए श्रम और उद्योग की आवश्यकता है, वहीं दूसरी ओर करोड़ों जन श्रमविहीन हाथ पर हाथ रखे जीवन में मृत्यु की अनुभूति कर रहे हैं। समुचित योजना के अभाव में तथा शासन की अदूरदर्शी नीति के कारण नवयुवक शिक्षा पाकर जब बाज़ार में जाता है तो अपने योग्य कोई काम नहीं पाता तथा कारीगर जैसे-तैसे अपनी चीज़ बनाकर बाज़ार में लेकर जाता है तो उसका कोई ख़रीदार नहीं मिलता। फलतः दोनों ही बेकार

होते जा रहे हैं। कई बार एक ही समस्या को देखकर हम उसे दूसरे की राह से चलने की सलाह देते हैं किंतु काम की दृष्टि से स्थिति दोनों ही जगह एक सी है। आज टेक्निकल शिक्षा प्राप्त नवयुवकों को भी नौकरी मिलना कठिन हो रहा है।

लोगों को काम न मिलने के दो ही कारण हैं—प्रथम तो काम के लिए जिस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता हो, वैसी योग्यता उनमें न हो। दूसरे, काम करने वालों का इतना बाहुल्य हो कि उद्योग-धंधे, व्यापार एवं सार्वजनिक सेवाओं का वर्तमान स्तर उन्हें खपा न पाए। बेकारी के अन्य कारण भी हैं, किंतु वे तात्कालिक एवं अस्थायी हैं। मौलिक तो उपर्युक्त दो ही अवस्थाएँ हैं। भारत में आज दोनों ही कारण उपस्थित हैं। अतः बेकारी के प्रश्न को हल करने के लिए हमें इनके संबंध में गंभीरता से विचार करना होगा। शिक्षा की पद्धति और उद्योग-धंधों का विकास इस संबंध में अपनी नीति निश्चित करनी होगी। इस नीति के साथ बेकारी को दूर करने का प्रश्न ही नहीं, देश की समृद्धि का प्रश्न भी जुटा हुआ है।

पिछले डेढ़ सौ वर्षों से सरकारी नौकरी ही नवयुवकों का एकमात्र लक्ष्य रहा है। आज भी बेकारी की समस्या को हम किसी सरकारी या ग़ैर-सरकारी दफ़्तर में कामकाज न मिलने की समस्या के रूप में ही देखते हैं। यह सत्य है कि जनसंख्या का काफ़ी भाग इस प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में लगेगा तथा राज्य के दिन-प्रतिदिन वृद्धिंगत कार्यक्षेत्र में बहुत बड़ी तादाद की खपत हो सकती है, किंतु राज्य के अथवा अन्य समाज कार्यों की नौकरी से समस्या हल नहीं हो सकती। कारण इस प्रकार के काम करने वाला वर्ग प्रत्यक्ष उत्पादन नहीं करता। वह तो उत्पादक और उपभोक्ता के बीच या तो एक कड़ी का काम करता है अथवा उनकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। उत्पादक की भारवहन शक्ति पर इस वर्ग का प्रमाण निर्भर है। यदि यह बीच का वर्ग बहुत अधिक बढ़ गया तो उसको बनाए रखने के लिए या तो उत्पादक पर कर का भार अधिक बढ़ेगा अथवा शासन मुद्रास्फीति का सहारा लेकर उनके वेतन का प्रबंध करेगा। प्रथम स्थिति में यदि कर-भार अनुचित रूप से बढ़ गया तो उत्पादन बंद होकर उत्पादकों की संख्या और भी कम हो जाएगी तथा दूसरी स्थिति में वस्तुओं की कमी किंतु क्रयशक्ति की वृद्धि, परिणाम मूल्यों की वृद्धि पर होगा। सिक्के की गिरी हुई क़ीमत तथा मूल्यों की वृद्धि व्यक्ति के लिए ही नहीं, राष्ट्र की अर्थनीति के लिए भी अहितकर होगी। अतः आवश्यक है कि जनसेवाओं एवं उत्पादनकारी श्रम में समुचित समन्वय किया जाए तथा देश के अधिकाधिक भाग को उद्योग-धंधों में लगाया जाए।

2

कृषि एवं लघु उद्योगों को प्राथमिकता होनी चाहिए

कृषि भारत का सबसे बड़ा उद्योग है तथा देश के 70 प्रतिशत जन उसके सहारे जीविकोपार्जन भी करते हैं। किंतु अवशिष्ट जनों के लिए हमें अन्य उद्योग-धंधों की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, कृषि कार्य में लगे हुए जन भी वर्ष के कई महीने बेकार रहते हैं तथा खेती से इतना नहीं मिल पाता कि उनका ठीक तरह से भरण-पोषण हो सके। हमें उन्हें भी काम देना होगा तथा जहाँ वे रहते हैं, वहीं देना होगा। गाँवों से हटाकर उन्हें हम शहरों में नहीं ला सकते। गाँवों में ऐसे अनेक पेशे हैं, जो कृषि के साथ-साथ चलते रहे हैं। हम उनकी अवहेलना नहीं कर सकते। साथ ही हमारे गाँव में और भी दूसरे उद्योग-धंधे बड़े पैमाने पर पनपे हैं। आज भी उनसे करोड़ों व्यक्तियों की रोज़ी चलती है। उनका भी हमें ध्यान रखना होगा।

भारत की जनसंख्या, उसके सात लाख गाँव, उसका विस्तार, भारतीय जन की प्रकृति, हमारी समाज व्यवस्था, युगों से चली आई हमारी अर्थ-नीति की परंपरा आदि का विचार कर आज सभी अर्थशास्त्री इस बात से सहमत हैं कि भारतीय समृद्धि का आधार हमारे कुटीर एवं ग्रामोद्योग ही हो सकते हैं। हाँ, यूरोपीय अथवा पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के समर्थक कुछ अपवादस्वरूप ऐसे व्यक्ति भी मिलेंगे, जो इन उद्योगों में मध्ययुगीन संस्कृति की बू पाते हैं तथा इन्हें अप्रगतिशील मानकर इंगलैंड और अमरीकी पद्धति पर बड़े कल-कारख़ाने खोलने की सलाह देते हैं। यद्यपि यह बात सत्य है कि किसी भी दिशा में अतिरेक कर अंतिम कोटि का विचार प्रस्तुत करना बुद्धिमानी नहीं होगा, फिर भी हमें अपनी अर्थव्यवस्था का कोई केंद्र अवश्य निश्चित कर लेना होगा, जिसके चारों ओर एवं उसके हित संवर्धन के लिए ही हम अन्य योजनाओं को अंगीकार करें। क्या बड़े पैमाने पर उद्योगों को हम अपना केंद्र बनाएँ? आज इस दृष्टि से हमारी स्थिति बहुत ही गिरी हुई है। दूसरे देशों के मुक़ाबले बड़े उद्योगों में हम बहुत ही पिछड़े हुए हैं। यदि उस

दृष्टि से हम कुछ करना चाहें तो हमें मशीन और यंत्र-विशारदों के लिए ही नहीं बल्कि पूँजी के लिए भी दूसरे देशों का मुँह ताकना पड़ेगा। पिछले 6 वर्षों से हम यही करते आ रहे हैं और अपना करोड़ों रुपया पानी की तरह बहा चुके हैं। हमें जनशक्ति की दृष्टि से भी विचारना होगा। इन बड़े कारख़ानों में यदि हज़ारों को काम मिलता है तो दूसरी ओर लाखों बेकार हो जाते हैं। यदि कल्पना कर भी ली जाए कि संपूर्ण भारत में बहुत बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हो जाने पर चारों ओर सुख और समृद्धि लौटने लगेगी, किंतु तब तक हम अपने को पूरी तरह उजाड़ चुके होंगे। इस परिवर्तन में करोड़ों नष्ट हो जाएँगे तथा संभव है कि हम अपने लक्ष्य तक पहुँचने के पूर्व ही जनक्षोभ की ज्वाला में भस्म हो जाएँ। अत: हमारा केंद्र तो होना चाहिए मनुष्य। मनुष्य को काम मिले और वह सुखी रहे, यही हमारा उद्देश्य होना चाहिए। मशीन मनुष्य की सुविधा के लिए है, उसका स्थान लेने के लिए नहीं। मनुष्य मशीन का निर्माता है, उसका स्वामी है, उसका ग़ुलाम नहीं। उत्पादन के साधन की दृष्टि से उसका उपयोग अवश्य है किंतु वह मनुष्य को खाकर नहीं, उसे खिलाकर होना चाहिए। इस दृष्टि से मनुष्य श्रम और मशीन में एक समन्वय चाहिए, जो प्रत्येक समाज धीरे-धीरे करता जाता है। ज्यों-ज्यों उद्योगों की अवस्था में उन्नति होती जाती है, उनको बाज़ार मिलता जाता है। मनुष्य स्वयं मशीनों का सहारा लेता है। किंतु जब यही अस्वाभाविक रूप से किया जाता है तो हानि होती है। अत: भारत में कुटीर और ग्रामोद्योग ही हमारे केंद्र हो सकते हैं। बड़े-बड़े उद्योग इन उद्योगों के हित में जहाँ चलाना आवश्यक हो, चलाए जाएँ किंतु इसके प्रति स्वार्थी बनकर नहीं।

योजना आयोग एवं शासन ने कुटीर उद्योगों की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया। लड़ाई के ज़माने में हमारे अनेक कुटीर उद्योग पनप गए थे किंतु युद्धोत्तर काल में नष्ट हो रहे हैं। 1951-1952 एवं 1952-53 की द्विवर्षीय रिपोर्ट में स्वयं योजना आयोग ने स्वीकार किया है कि ट्रावनकोर कोचीन का कॉयर उद्योग तथा हथकरघा एवं खाँड़सारी उद्योगों को भारी क्षति पहुँची है। इन उद्योगों को बचाने के लिए भी शासन ने कोई प्रभावी क़दम नहीं उठाया। हाँ, अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग संघ की स्थापना अवश्य कर दी है, जिसने सिवाय दो बैठकों के और कुछ नहीं किया। बड़े उद्योगों को उसने सब प्रकार की मदद दी है। अपनी ओर से चलाए गए उद्योगों के अतिरिक्त उसने इंडस्ट्रियल फाइनेंस कॉरपोरेशन बनाकर निम्नविधि ऋण दिए हैं—

उद्योग	लाख रुपयों में	
	30-6-52 को समाप्त होने वाला वर्ष	1-7-52 को प्रारंभ होने वाला वर्ष
सूती वस्त्र मशीनें	6.0	...
मेकैनिकल इंजीनियरिंग	19.0	5.0
विद्युत् इंजीनियरिंग	30.5	...
सूती वस्त्र	43.75	55.0
रसायन	100.5	11.75
काँच	39.0	3.5
तेल मिल	5.5	25.0
विद्युत् शक्ति	...	...
अलौह-धातुएँ	5.0	...
चीनी	95.0	...
लोहा और इस्पात	8.0	17.5
काग़ज़	71.0	...
अवर्गीकृत	22.0	...
योग*	445.25	118.00

* यह योग सही नहीं है लेकिन मूल पुस्तक में यही योग दिया गया है, इसलिए इसमें कोई परिवर्तन किए बिना यही लिया जा रहा है।

उपर्युक्त तालिका से यह स्पष्ट हो जाएगा कि ऐसे अनेक उद्योगों को सहायता दी गई है, जो कुटीर उद्योगों के प्रतिस्पर्धी बनकर खड़े हो गए हैं। यदि यही सहायता हथकरघा और खाँड़सारी उद्योगों को दी जाती तो आज उनकी अवस्था कहीं अच्छी होती। गत वर्षों में केंद्र और राज्य सरकारों ने बड़े और छोटे उद्योगों पर जो धन व्यय किया है, उसका भी तुलनात्मक अध्ययन उपयोगी होगा।

विकास-व्यय

शावान	बड़े उद्योग			छोटे उद्योग		
	1951 -52 (वास्तविक)	1952 -53 (संशोधित)	1953 -54 (बजट)	1951 -52 (वास्तविक)	1952 -53 (संशोधित)	1953 -54 (बजट)
1	2	3	4	5	6	7
			लाख रुपयों में			
केंद्र	695.0	674.0	1041.0	13.0	18.0	100.0
आसाम	...	...	...	...	...	...
बिहार	2.0	24.6	27.5	4.4	11.2	16.2
बंबई	2.7	53.1	20.4	10.5	11.3	19.4
मध्य प्रदेश	62.7	72.6	133.6	0.5	1.8	2.4
मद्रास	36.8	64.0	41.8	16.0	16.0	14.5
उड़ीसा	2.6	2.7	3.2	3.3	4.0	4.0
पंजाब	2.2	2.0	2.0	6.6	7.3	11.1
उत्तर प्रदेश	53.3	80.0	132.5	55.3	57.3	64.3
पश्चिम बंगाल	6.8	9.2	12.0	5.8	6.2	6.8
हैदराबाद	70.0	72.7	27.7	3.0	4.3	5.2
मध्य भारत	...	0.3	0.6	0.4	5.9	7.2
मैसूर	3.5	7.5	11.5	7.1	7.5	15.0
पेप्सू	...	2.9	6.6	...	0.4	0.5
राजस्थान	...	...	...	3.9	5.7	10.7
सौराष्ट्र	0.4	0.2	0.1	1.9	1.3	2.0
ट्रावनकोर कोचीन	4.2	11.1	5.1	...	0.5	14.5
जम्मू-कश्मीर	2.1	11.9	24.3	...	...	8.0
अजमेर	...	...	...	...	...	...
भोपाल	...	...	...	1.5	5.0	5.0
बिलासपुर	...	...	...	...	0.2	0.5
कोडगु	...	...	...	...	...	...
दिल्ली	...	...	...	...	...	7.3
हिमाचल प्रदेश	...	...	...	...	80.0	23.0

कच्छ	...	...	...	...	0.1	1.8
मणिपुर	...	...	...	...	...	...
त्रिपुरा	...	...	...	...	0.4	0.8
विंध्य प्रदेश	...	...	...	...	0.1	0.7
योग*	944.3	1088.7	1489.9	131.7	160.8	318.3

* यह योग सही नहीं है लेकिन मूल पुस्तक में यही योग दिया गया है, इसलिए इसमें कोई परिवर्तन किए बिना यही लिया जा रहा है।

स्पष्ट है कि गत वर्षों में कुटीर उद्योगों के विकास की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इतना ही नहीं, अंग्रेज़ी राज्य में इस दृष्टि से जो नीति चली आती थी, उसमें किंचित् मात्र भी परिवर्तन नहीं किया गया। रेलभाड़े की दर अभी तक ऐसी बनी हुई है कि कुटीर उद्योगों के माल पर तुलनात्मक दृष्टि से अधिक किराया लगता है। आयात-निर्यात की नीति में इन उद्योगों का कोई विचार नहीं रखा जाता। अनेक वस्तुएँ जो युद्ध काल में बाहर से न आने के कारण यहाँ बनने लगी थीं, अब फिर भारी तादाद में आने लगी हैं। फलतः वे उद्योग नष्ट होते जा रहे हैं। रेशम के उद्योग को बचाने के लिए बाहर से आने वाली कृत्रिम रेशम पर प्रतिबंध लगाने की माँग को सरकार ने हाल ही में ठुकरा दिया है। सरकारी काम के लिए भी कुटीर उद्योगों की निर्मित वस्तुओं के स्थान पर विदेशी वस्तुएँ ही ख़रीदी जाती हैं। इन उद्योगों के बाज़ार ख़त्म होते जा रहे हैं। उनका माल बिक नहीं पाता। उन्हें कच्चा माल देने की भी कोई समुचित व्यवस्था नहीं है। फलतः ये उद्योग बड़े वेग के साथ नष्ट होते जा रहे हैं तथा उनके सहारे जीविकोपार्जन करने वाले करोड़ों बेकार एवं असहाय हो गए हैं।

3

घटती क्रयशक्ति पर ध्यान देना आवश्यक

चारों ओर की इस बढ़ती हुई बेकारी और ग़रीबी का परिणाम बड़े-बड़े उद्योगों पर भी पड़ रहा है! जनसाधारण की क्रयशक्ति कम हो गई है। अत: इन कारख़ानों में भी माल बिकता नहीं। कई कारख़ाने इस कारण बंद हो गए हैं अथवा अलाभकारी अवस्था में चलाए जा रहे हैं। युद्ध काल के भारी लाभ की तुलना में आज का थोड़ा एवं अनिश्चित लाभ भी पूँजीपतियों को सशंक किए हुए है, जिससे वे उत्पाद का व्यय कम करने का प्रयत्न कर रहे हैं। एतदर्थ अधिक उत्पादन करने वाली नई-नई मशीनें लगाई जा रही हैं। मज़दूरों और क्लर्कों की छँटनी की जा रही है। अर्थात् जहाँ लोगों को काम मिलना चाहिए, वहीं अब बेकारी बढ़ रही है। गिरी हुई क्रयशक्ति से उद्योग-धंधे बंद हो रहे हैं तथा उद्योगों के बंद होने से बेकारी बढ़ रही है। इस प्रकार का एक चक्र चल रहा है। इसे रोकने के लिए साहसपूर्ण क़दम उठाना पड़ेगा।

अत: आवश्यकता है कि वेग के साथ औद्योगीकरण का कार्यक्रम अपनाया जाए। इसके लिए कुटीर एवं ग्रामोद्योगों को आधार बनाकर बड़े उद्योगों को उनके साथ समन्वित किया जाए। वे एक-दूसरे के प्रतिस्पर्धी न बनें, इसका ध्यान रखा जाए। इस दृष्टि से कुछ सुझाव नीचे दिए जाते हैं—

1. केंद्र एवं प्रांतों में इन उद्योगों के रक्षण एवं विकास के लिए आयोगों की स्थापना हो।
2. छोटे उद्योगों को कच्चा माल दिलाने की पूर्ण व्यवस्था की जाए। सहकारी संस्थाओं की स्थापना करके अथवा पुरानी आढ़त की पद्धति का प्रचार करके यह व्यवस्था की जा सकती है। सरकार अपनी ओर से गोदाम खोल सकती है।
3. कारीगरों को कम दर पर क़र्ज़ा मिलने की व्यवस्था हो।
4. छोटी मशीनें जो विद्युत् से भी चल सकें, उन्हें उपलब्ध कराई जाएँ तथा उन्हें विद्युत् शक्ति देने का प्रबंध हो।

5. मशीन और कच्चा माल अगाऊ मिल सके तथा उसका भुगतान तैयार माल से अथवा क़िस्तों में हो।
6. तैयार माल की बिक्री के लिए उचित व्यवस्था हो। सहकारी संस्थाओं के द्वारा अथवा सरकारी क्रय भंडारों द्वारा यह व्यवस्था हो। सरकार इस बात का दायित्व ले कि कारीगरों द्वारा तैयार माल को, यदि वह बाज़ार में नहीं बिकता तो उचित मूल्य पर ख़रीद लेगी।
7. स्थान-स्थान पर इन उद्योगों की दृष्टि से अनुसंधान केंद्र खोले जाएँ।
8. रेलभाड़े की दरों में कुटीर उद्योगों के माल के अनुरूप परिवर्तन किया जाए।
9. बड़े कारख़ाने केवल उन वस्तुओं के खोले जाएँ, जिनका विकेंद्रीकरण संभव न हो। इनके उत्पादन की सीमाएँ एवं क्षेत्र निश्चित कर दी जाएँ।
10. विदेशी व्यापार नियंत्रण करके स्वदेशी को प्रोत्साहन दिया जाए।
11. सरकारें अपनी आवश्यकता की पूर्ति कुटीर उद्योगों के माल से ही करें।
12. कारीगरों को शिक्षा देने के लिए उद्योग शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जाए।
13. कुटीर उद्योगों के माल को बिक्री-कर आदि करों से मुक्त कर दिया जाए।
14. दूतावासों में केवल स्वदेशी तथा विशेषतः कुटीर उद्योग निर्मित वस्तुओं का ही उपयोग हो। केंद्रीय सरकार ने इस दृष्टि से घोषणा तो की है कि वह इन उद्योगों की सहायता का एक व्यापक कार्यक्रम हाथ में लेगी तथा ऐसे उद्योगों की सूची भी बनाई जा रही है। किंतु अभी वह घोषणा कार्यान्वित नहीं हुई है। साथ ही सहायता की योजना एक बात है तथा उन्हें अपनी अर्थनीति का पाया मानकर चलना दूसरी बात है। हम तो चाहते हैं कि इन छोटे उद्योगों को अर्थव्यवस्था का केंद्र मानकर चला जाए। यदि यह किया गया, तो बढ़ती हुई बेकारी बहुत अंशों में रुक जाएगी।

बेकारी को रोकने एवं उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन देने के लिए सर्वसाधारण की क्रय-शक्ति बढ़नी चाहिए। इसके लिए आय की विषमता दूर कर उसमें समानता स्थापित करनी होगी। शासन की कर नीति इस लक्ष्य की प्राप्ति में दूर तक नहीं ले जाती। निम्न और मध्यम वर्ग के लोगों को करमुक्त कर ऊपर के वर्ग पर कर का भार बढ़ाना होगा। बड़े-बड़े लोग पूँजी के दब जाने का शोर मचाकर करभार से बचते रहते हैं, किंतु यह ठीक नहीं। यदि आर्थिक विषमता बनी रही तथा नीचे के लोगों की क्रयशक्ति नहीं बढ़ी तो पूँजी निकालकर भी कोई लाभ नहीं। वास्तव में तो जो चीज़ पैदा होती है, उसके ख़रीदार मिलते गए तो उद्योग पनपता जाएगा। अतः पैदा किए हुए माल के लिए माँग पैदा करना उद्योगों को बढ़ाने के लिए आवश्यक है। इस माँग की कमी के कारण ही बेकारी पैदा होती है।

4

सदोष शिक्षा पद्धति बेकारी के लिए ज़िम्मेदार

हमारी सदोष शिक्षा पद्धति भी बेकारी के लिए बहुत कुछ ज़िम्मेदार है। आज तो बेकारी का जो बढ़ा हुआ स्वरूप दिखाई देता है, वह शिक्षित मध्यम-वर्ग की बेकारी है। यह वर्ग एक विशेष प्रकार की रहन-सहन का आदी है तथा केवल क़लम का ही काम कर सकता है। शिक्षा में आज हाथ के काम को कोई स्थान नहीं। इतना ही नहीं, आज का पठित युवक हाथ के काम से घृणा भी करने लगता है। इसका कारण यह है कि अंग्रेज़ी के माध्यम के द्वारा शिक्षा देने के कारण हमारे यहाँ का शिक्षित नवयुवक समाज से अलग एक वर्ग बन जाता है। उसकी अनुभूतियाँ समाज से भिन्न हो जाती हैं। वह अपने अनपढ़ पूर्वजों के विचारों को, उनकी रहन-सहन की पद्धति को, उनकी सादगी को नीची निगाह से देखता है। उनके पेशे को भी वह छोटा समझने लगता है। फलतः आज लाखों नवयुवक ऐसे हो गए हैं, जो अपना पुश्तैनी पेशा छोड़ चुके हैं। वे सरकारी या ग़ैर-सरकारी नौकरी की तलाश में इधर-उधर मारे-मारे फिरते हैं, किंतु न तो कोई हाथ का काम करने की उनमें योग्यता है और न इच्छा। अतः आवश्यकता है कि हमारी शिक्षा को भारतीय बनाया जाए और उसका माध्यम मातृभाषा रखी जाए। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को गाँवों में रहने में कठिनाई नहीं होगी और न वह हाथ के काम से दूर भागेगा।

अक्षर और साहित्य के ज्ञान के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि विद्यार्थी को किसी-न-किसी प्रकार की औद्योगिक शिक्षा दी जाए। औद्योगिक शिक्षा की दृष्टि से यद्यपि विचार बहुत दिनों से हो रहा है, किंतु अभी तक सिवाय कुछ औद्योगिक शिक्षा केंद्रों के खोलने के साधारण शिक्षा का मेल औद्योगिक शिक्षा से नहीं बिठाया है। टेक्निकल और वोकेशनल शिक्षा केंद्रों में भी शिक्षा प्राप्त नवयुवक इस योग्य नहीं बन पाते कि वे स्वयं कोई कारोबार शुरू कर सकें। वे भी नौकरी की ही तलाश में घूमते हैं,

क्योंकि जिस प्रकार की शिक्षा उन्हें दी जाती है, वह उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होने के अयोग्य बना देती है।

अत: आवश्यक तो यह होगा कि गाँवों के धंधे, खेती और व्यापार के साथ हमें शिक्षा का मेल बैठाना होगा। प्रथमत: शिक्षा की प्रारंभिक एवं माध्यमिक अवस्थाओं में हमें विद्यार्थी को उसके घरेलू धंधे के वातावरण से अलग करने की ज़रूरत नहीं, बल्कि हम ऐसा प्रबंध करें कि वह उस वातावरण में अधिक-से-अधिक रह सके तथा अज्ञात रूप से वह धंधा सीख सके। धीरे-धीरे हमें यह भी प्रयत्न करना होगा कि वह अपने अभिभावकों का सहयोगी बन सके। माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने तक नवयुवकों को अपना धंधा भी आ जाना चाहिए। हो सकता है कि उस धंधे की योग्यता के प्रमाण-पत्र की भी हमें कुछ व्यवस्था करनी पड़े। माध्यमिक शिक्षा तक कुशाग्र बुद्धि सिद्ध होने वाले नवयुवकों के लिए आगे शिक्षा का प्रबंध उनकी रुचि के अनुसार किया जाए। संक्षेप में शिक्षा की अवधि में बल अक्षरज्ञान और साहित्य शिक्षा पर न होकर औद्योगिक शिक्षा पर ही होना चाहिए तथा उसके अनुरूप ही संपूर्ण पद्धति की रचना करनी चाहिए।

बेकारी के मौलिक कारणों को तो दूर करने की व्यवस्था करनी ही होगी, किंतु आज हमें कुछ-न-कुछ तात्कालिक उपचार भी करना होगा। हाँ, हमारा यह उपचार उसी दिशा में हो, जिस ओर हम मूल समस्या के निराकरण के लिए चल रहे हैं। तात्कालिक उपायों के लिए देश में सभी दलों की ओर से माँग की जा रही है तथा शासन की ओर से भी कुछ कार्यक्रम एवं योजनाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के आगरा अधिवेशन में बेकारी की समस्या के संबंध में एक प्रस्ताव पास किया गया तथा यह माँग की गई कि पंचवर्षीय योजना में इस दृष्टि से परिवर्तन किया जाए। प्रस्ताव में राज्य सरकारों से कुटीर एवं छोटे उद्योगों की ओर विशेष ध्यान देने की भी माँग की गई।

कांग्रेस के प्रस्ताव के पश्चात् योजना आयोग ने पंचवर्षीय योजना पर विचार किया और यह निर्णय लिया कि उसमें मौलिक रूप से कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं। हमें उसने एक एकादश सूत्रीय कार्यक्रम अवश्य प्रस्तुत किया, जिसमें अधिकांश पुरानी बातों को दुहरा दिया। योजना आयोग का कार्यक्रम निम्नलिखित है—

1. व्यक्तियों या व्यक्तियों के समूहों को छोटे-छोटे उद्योग प्रारंभ करने के लिए 'उद्योगों को राज्य के विधान' या इस प्रकार के अन्य विधानों के अंतर्गत सहायता देना।
2. जिन क्षेत्रों में जनशक्ति की कमी है, उनमें शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करना। ऐसे कई क्षेत्र हैं, जिनमें योग्य व्यक्तियों के अभाव के कारण पंचवर्षीय योजना के कार्य में रुकावट आ रही है। विस्तृत शिक्षा की सुविधाएँ इस अभाव की पूर्ति करेंगी तथा अर्ध-शिक्षित कामगारों को नई नौकरियों का

अवसर प्रदान करेंगी।

3. राज्य सरकार एवं अन्य जन आयोगों द्वारा आवश्यक वस्तुओं का क्रय करके कुटीर और छोटे उद्योगों को सक्रिय प्रोत्साहन देना।
4. नगर पालिकाओं, अन्य संस्थाओं तथा सेवा संस्थाओं को शहरों में प्रौढ़ पाठशालाएँ खोलने के लिए सहायता देना। देहातों में एक-अध्यापक शालाएँ खोलना।
5. प्रस्तावित राष्ट्रीय विस्तार योजना को साहस के साथ हाथ में लेना, क्योंकि यह गाँवों की अर्थव्यवस्था के विकास एवं पढ़े-लिखे लोगों की बेकारी की समस्या के हल के लिए आवश्यक है।
6. थल यातायात का विकास करना। प्रचलित लाइसेंस-व्यवस्था का, थल यातायात का विकास करने की दृष्टि से, विशेषकर ग़ैर-सरकारी साधनों से, पुनः विचार करना।
7. देहातों में गंदे क्षेत्रों की सफ़ाई एवं छोटी आय के लोगों के लिए मकान बनाने की योजनाओं को कार्यान्वित करना।
8. ग़ैर-सरकारी गृह निर्माण को प्रोत्साहन देना।
9. पुरुषार्थी बस्तियों को, जिनमें घोर बेकारी है, योजनाबद्ध सहायता देना, जिससे वे ठीक तरह से बस सकें।
10. ग़ैर-सरकारी तौर पर शक्ति (बिजली) पैदा करने की योजनाओं को प्रोत्साहित करना। अभी कई नगरों में बिजली की कमी है, जिससे उद्योगों के विकास एवं लोगों को रोज़गार देने में बाधा पहुँचती है। राज्य सरकार विभिन्न क्षेत्रों में शक्ति-योजनाओं पर विचार करे तथा जो पंचवर्षीय योजना के क्षेत्र में नहीं आतीं, उन्हें केंद्र के पास भेजे।
11. काम और शिक्षा-केंद्रों की स्थापना।

उपर्युक्त कार्यक्रम में यद्यपि अनेक सुझाव दिए गए हैं, किंतु समस्या को मौलिक रूप से दूर करने का प्रयत्न नहीं किया गया। साथ ही ये ऐसे सुझाव हैं, जो सरकारों ने समय-समय पर कई बार कहे हैं किंतु जिन पर कभी अमल नहीं किया गया। यद्यपि योजना आयोग ने यह माना है कि शिक्षित बेकारों की संख्या बहुत अधिक है, किंतु शिक्षा की पद्धति में सुधार की दृष्टि से कुछ भी नहीं किया गया। फिर भी उसका प्रयत्न सराहनीय है।

शासन ने इस दृष्टि से कुछ व्यावहारिक कार्यक्रमों की भी घोषणा की है। 12 करोड़ रुपया लगाकर शिक्षा-विस्तार की दृष्टि से एक अध्यापक स्कूल खोलने का विचार है, जिनमें 80,000 पढ़े-लिखे लोगों को काम मिल सकेगा। 500 करोड़ की पूँजी से एक

उद्योग विकास कॉरपोरेशन बनाया जा रहा है, जो छोटे-छोटे उद्योगों को सहायता देगा। किंतु यह 500 करोड़ रुपया कहाँ से आएगा, इस संबंध में समाप्त होने वाली अनेक योजनाओं के समान यह भी काग़ज़ी योजनामात्र रह जाएगी। गाँवों में स्कूल खोलने की योजना भी अच्छी है, किंतु जो स्कूल खुले हैं, वे भी ठीक चल रहे हैं या नहीं, यह तो देखना होगा। ज़िला बोर्डों के अनेक स्कूल धन के अभाव में बंद हो रहे हैं। उनके अध्यापक बेकार होते जा रहे हैं। अत: कारीगरों को बेकार बनाकर बेकारों को काम देना केवल स्थान परिवर्तन मात्र होगा।

5

इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस के सुझाव

इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने भी बेकारी की समस्या के संबंध में विचार व्यक्त किए हैं। उसने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं—

1. कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन दिया जाए।
2. स्वदेशी उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली वस्तुओं का आयात बंद कर दिया जाए।
3. कुटीर उद्योगों को विक्रय की सुविधा दी जाए।
4. स्वदेशी ही ख़रीदा जाए।
5. औद्योगिक शिक्षा केंद्रों की स्थापना की जाए।
6. भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा की पद्धति में परिवर्तन किया जाए।
7. बड़े उत्पादन के क्षेत्रों का विकेंद्रीकरण किया जाए। कुछ क्षेत्र केवल कुटीर उद्योगों के लिए सुरक्षित कर दिए जाएँ। तेल पेरना, धान और दाल कूटना, बढ़ईगीरी, सिलाई, तथा बरतन बनाने के क्षेत्र केवल छोटे उद्योगों के ही हाथ में रहें।
8. काम दिलाने का एक मंत्रालय स्थापित किया जाए।
9. कोई भी मिल बंद न होने दी जाए।
10. यंत्रीकरण के सहारे छँटनी न की जाए।

प्रजा सोशलिस्ट पार्टी के नेता श्री राममनोहर लोहिया ने भी इस संबंध में निम्नलिखित विचार व्यक्त किए हैं—

1. भूमि सुधार के आधार पर गाँव की अर्थव्यवस्था की पुनर्रचना की जाए।
2. गाँव में सहकारी संस्थाएँ स्थापित की जाएँ।
3. ऊसर ज़मीन को जोतने के लिए एक भूमि सेना बनाई जाए।

4. आर्थिक समानता एवं संयम की नीति बरती जाए।
5. छोटे उद्योगों को आर्थिक एवं अन्य सहायता दी जाए।
6. कृषि एवं औद्योगिक उत्पाद में मूल्य की समानता रखी जाए।
7. छँटनी बंद हो।
8. बेकारी बीमा शुरू किया जाए।
9. आवश्यक वस्तुओं के मूल्य में 30 प्रतिशत कमी की जाए।
10. वनस्पति घी एवं तिलहन पर नियंत्रण हो।

कम्युनिस्ट पार्टी के दृष्टिकोण का अनुमान श्री गोपालन के कानपुर में 16 अगस्त, 1953 के भाषण से लगाया जा सकता है। उन्होंने ये सुझाव रखे हैं—

1. बेकारों को नक़द एवं मुफ़्त राशन के रूप में 50 करोड़ रुपया दिया जाए।
2. उपभोग की वस्तुओं के मूल्य में 30 प्रतिशत कमी की जाए।
3. फैक्टरी बंद करने तथा छँटनी पर प्रतिबंध लगा दिया जाए।
4. किसानों का लगान तथा जनता का कर कम किया जाए।
5. बड़ी एवं फ़िजूलख़र्ची वाली सभी योजनाओं को रद्द कर दिया जाए।
6. जिन वस्तुओं के आयात से कल-कारख़ाने बंद होते हों, उन पर नियंत्रण लगा दिया जाए।
7. विदेशी फर्मों से सरकारी सौदे रद्द कर दिए जाएँ।
8. बड़े-बड़े एकाधिकार समाप्त कर दिए जाएँ।
9. आठ घंटे काम का नियम लागू किया जाए।
10. कृत्रिम दुर्भिक्ष पैदा करने वालों को दंड दिया जाए।

उपर्युक्त दलों के ये सुझाव यद्यपि बेकारी को दूर करने की दृष्टि से उपादेय हो सकते हैं, किंतु उन्होंने न तो समस्या के मूल को समझा है और न अपने सुझावों को व्यावहारिकता की कसौटी पर कसा है। केवल लोकप्रियता के लिए कुछ नारों को लगा देने मात्र से कोई भी देशव्यापी एवं भीषण समस्या हल नहीं हो जाती। लोगों की पेट की ज्वाला न तो मीठे शब्दों से बुझती है और न शासन को गाली देने से। उसके लिए तो रचनात्मक प्रयत्न करने होंगे तथा अपनी अर्थव्यवस्था की मौलिक कमज़ोरियों को दूर करना होगा।

6

हमारी नीति का लक्ष्य 'प्रत्येक को काम' होना चाहिए

जनसंख्या, उसकी आवश्यकताएँ, उन आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन एवं व्यवस्था, इन तीनों का पारस्परिक संतुलन जब बिगड़ जाता है, तब अर्थ-संबंधी समस्याएँ पैदा हो जाती हैं। आज देश की जनसंख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है, किंतु उसके अनुपात में उत्पादन के साधन और उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। फलतः हमारी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं हो पातीं। अतः हमारे रहन-सहन का स्तर बहुत ही नीचा है। निष्कर्ष यह निकलता है कि हम उत्पादन के साधनों की वृद्धि करके आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करें। इसके लिए हमारी निगाह स्वाभाविक ही पश्चिम के बड़े-बड़े कारख़ानों द्वारा उत्पादन की ओर जाती है और हम पिछले छह वर्षों से उसके लिए प्रयत्नशील हैं। किंतु प्रश्न उठता है कि क्या उन साधनों पर हम देश के सभी लोगों को काम दे सकेंगे। यदि नहीं, तो उन साधनों के स्वामी एवं उन पर काम करने वाला एक छोटा सा वर्ग रह जाएगा। फलतः उत्पादित वस्तुओं का समान रूप से वितरण नहीं होगा। बचे हुए लोगों को या तो जन-सेवा के कार्यों में लगाना होगा अथवा हमारी आवश्यकताएँ इतनी विभिन्न प्रकार की हो जाएँ कि हम उनकी पूर्ति के लिए सबको खपा सकें तथा उसके साधन जुटा सकें। यह भी संभव है कि हम क़ानून बनाकर जहाँ चार लोगों से काम चल जाए, वहाँ दस लोग रखने की सलाह दें। यह प्रजातांत्रिक देश में व्यापक रूप से संभव नहीं है। बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना के साधन जुटाना भी आज हमारे लिए कठिन हो रहा है तथा उस प्रक्रिया में हम छोटे उद्योगों के साधनों को भी नष्ट कर रहे हैं। आज की बेकारी प्रमुखतया 'यांत्रिक' है। यंत्र मनुष्य की जगह लेता जा रहा है तथा मनुष्य बेकार होता जा रहा है। यंत्र का अर्थ प्रगति समझा जाता है और इसलिए हमारी प्रगतिवादी मनोवृत्ति 'यंत्रीकरण' से विमुख नहीं होने देती है। हमें इस संबंध में समन्वयात्मक दृष्टि से काम करना होगा। हमारी नीति का आधार होना चाहिए 'प्रत्येक को काम'।

प्रत्येक नागरिक का अधिकार है कि उसे काम मिले। काम न मिलने से उसकी व्यक्तिगत आजीविका का सहारा तो जाता ही रहता है, वह राष्ट्र की संपत्ति अर्जन में सहयोग देने से भी वंचित हो जाता है। प्रत्येक को काम का सिद्धांत यदि स्वीकार कर लिया तो 'समवितरण' की दिशा निश्चित हो जाती है। अर्थ के केंद्रीकरण के स्थान पर हम विकेंद्रीकरण की ओर बढ़ते हैं।

'प्रत्येक को काम' का सिद्धांत स्वीकार करने पर बातों का भी निर्धारण हो सकेगा। गणित के छोटे से सूत्र के रूप में हम अर्थशास्त्र का सिद्धांत रख सकते हैं—

ज×क×य=इ

यहाँ 'इ' समाज की प्रभावी इच्छा का द्योतक है, जिसकी पूर्ति की उसमें शक्ति है।

'ज' समाज के काम करने योग्य व्यक्तियों का द्योतक है।

'क' काम करने की अवस्था एवं व्यवस्था का द्योतक है।

'य' यंत्र का द्योतक है।

इस सूत्र के अनुसार यदि हम चाहते हैं कि 'ज' निश्चित रहे तो 'इ' के अनुपात में 'क' और 'य' को बदलना होगा। ज्यों-ज्यों हमारी माँग बढ़ती जाएगी, हमें ऐसे यंत्रों का उपयोग करना होगा, जिसके सहारे हम अधिक उत्पादन कर सकें। आज शासन जिस नीति पर चल रहा है, उसमें 'य' सबका नियंत्रण कर रहा है।

वास्तव में तो 'इ' प्रभावी माँग के बढ़ने से ही हमारी समस्या हल होगी, किंतु 'इ' सहज ही नहीं बढ़ सकती, क्योंकि यह हमारी क्रयशक्ति पर निर्भर करता है। अतः शासन को देश की क्रयशक्ति बढ़ाने का प्रयत्न भी करना होगा।

क्रयशक्ति मूलतः अधिक उत्पादन होने पर ही बढ़ सकती है किंतु उसके लिए धन के अधिकाधिक समवितरण की एवं आय की विषमताओं को दूर करने की आवश्यकता है। आय जब एक सीमा से अधिक हो जाती है तो उसमें क्रयशक्ति नहीं रह जाती है। वहाँ तो व्यक्ति का लोभ धन के लिए होता है, आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए धन नहीं। साथ ही, समाज के विभिन्न व्यक्तियों और वर्गों में जब विषमता कम होती है तो एक-दूसरे की चढ़ा-ऊपरी में क्रियाशक्ति और क्रयशक्ति बढ़ती है। यदि यह विषमता बहुत अधिक हुई तो प्रतिस्पर्धा नष्ट होकर भाग्यवाद और संतोष का सहारा लेकर कर्महीनता उत्पन्न करती है। अतः हमारी कर-नीति एवं अर्थ-नीति इन विषमताओं को दूर करें। यह तो अच्छा है कि ज़मींदारी और जागीरदारी प्रथाएँ मिट रही हैं किंतु आज भी भूतपूर्व राजे-महाराजाओं के पास अपार धन एवं आय के प्रचुर साधन हैं। उनका प्रिवीपर्स जो कि प्रतिवर्ष 5 करोड़ से अधिक होता है, ग़रीब भारत के ऊपर भार है। उनको अभी तक आय कर भी नहीं देना पड़ता। राष्ट्रपति, राज्यपालों, मंत्रियों तथा अन्य शासनाधिकारियों को भी भारी तनख्वाहें दी जा रही हैं। इन्हें कम करना होगा। कर-नीति भी निम्न और मध्यम वर्ग

के ऊपर भार बढ़ा रही है। बिक्री-कर इस दृष्टि से अत्यंत अप्रगतिगामी है। इस नीति में भी परिवर्तन करना होगा।

'इ' अर्थात् प्रभाव माँग देश में तथा देश के बाहर भी हो सकती है। यदि हमारा माल बाहर जाता है तो 'इ' बढ़ जाती है। बाहर से माल आने पर देश की वस्तुओं की दृष्टि से 'इ' कम हो जाती है, क्योंकि हमारी 'क्रयशक्ति' का बहुत बड़ा भाग बाहर से आई वस्तुओं की ख़रीद पर ख़र्च हो जाता है। आज यही हो रहा है। सरकार की आयात नीति के कारण हमारे बाज़ार विदेशी माल से पट गए हैं। उनके सस्ते और अच्छे होने तथा 'स्वदेशी' प्रेम के अभाव के कारण उनकी भारी खपत है। फलतः स्वदेशी वस्तुओं के लिए 'इ' दिन-प्रतिदिन गिरती जा रही है। चूँकि 'य' और 'क' में एकाएक परिवर्तन करना संभव नहीं, इसलिए 'ज' कम होता जा रहा है। बेकारी बढ़ रही है। इसे रोकने के लिए जहाँ एक ओर विदेशी आयात की उन वस्तुओं पर जो स्वेदशी तैयार माल पर अनुचित रूप से दबाव डाल रही हों, प्रतिबंध लगाना होगा तो दूसरी ओर समाज में 'स्वदेशी' की भावना को भी जाग्रत् करना होगा। विदेशी आयात पर नियंत्रण, आयात-निर्यात नीति एवं तटकर-नीति के द्वारा किया जा सकता है। बड़े-बड़े उद्योगों को संरक्षण देने की नीति को शासन ने अंग्रेज़ी काल से ही अपनाया है, किंतु घरेलू एवं ग्रामोद्योगों की ओर दृष्टि पर कभी ध्यान नहीं दिया गया। उन्हें संरक्षण की नितांत आवश्यकता है और वह हमें देना ही होगा।

7

स्वदेशी की भावनात्मक कल्पना हृदयंगम करनी होगी

'स्वदेशी' का व्रत यद्यपि हमारे स्वातंत्र्य संग्राम का सर्वव्यापी सिद्धांत रहा है, फिर भी स्वतंत्रता मिलने के पश्चात् हम उस ओर से घोर उदासीन हो गए हैं। संभव है, हमने 'स्वदेशी' के विरोधात्मक स्वरूप बहिष्कार को ही समझा तथा उसे अंग्रेज़ों को बाहर निकालने का अस्त्र मानकर काम में लाया। 'स्वदेशी' की भावात्मक कल्पना हमने हृदयंगम नहीं की। आज आवश्यकता है कि हम 'स्वदेशी' के राष्ट्रीय अर्थशास्त्र को समझें और उसके आधार पर अपने जीवन की नींव रखें। बाज़ार से चीज़ ख़रीदते समय हमारा ध्यान उसकी सुंदरता और क़ीमत पर न जाकर, वह कहाँ बनी है, इस ओर जाना चाहिए। यदि वह भारत की बनी नहीं है तो सोचें कि क्या हम बिना उसके काम चला सकते हैं।' शक्यत: हम उसे नहीं ख़रीदें। हमारे मन में यह भी विचार आना चाहिए कि वह वस्तु भारत में कैसे तैयार होगी तथा उसके प्रति प्रयत्नशील हों। भारत की बनी वस्तुएँ ख़राब होती हैं तथा विदेशों की अच्छी होती हैं, ऐसी भी कुछ लोगों की धारणा हो गई है। इस धारणा में सत्यांश बहुत कम है। साथ ही हम यह भूल जाते हैं कि भारतीय निर्माताओं को अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। हमारी मनोवृत्ति भी एक बाधा है। यदि हमने सहयोग दिया तो हम निर्माताओं से अपेक्षा रख सकते हैं कि वे माल के स्तर में उत्तरोत्तर वृद्धि करें। निर्माताओं को भी मुनाफ़ाख़ोरी की प्रवृत्ति छोड़कर वास्तविक व्यापार की दृष्टि से अपनी साख जमानी चाहिए।

आजकल बहुत सी विदेशी कंपनियों ने भारत में अपने कारख़ाने खोल लिए हैं। इनमें बहुत से कारख़ानों में तो विदेशों से माल लाकर यहाँ एकत्र करने अथवा पैकिंग का ही काम होता है। इस पद्धति से वे एक ओर तो तट कर बचा लेते हैं और दूसरी ओर 'मेड इन इंडिया' की छाप लगाकर भारतीयों के मन में भ्रम पैदा करते हैं। यदि उनके लेबल को ठीक तरह से पढ़ा जाए तो पता लग जाएगा कि यह भारतीय कंपनी है अथवा विदेशी।

यदि हमने कुटीर उद्योगों के माल को अधिकाधिक ख़रीदा तो उसमें इस प्रकार की धोखे की कोई संभावना नहीं रहेगी।

'इ' को बढ़ाने की दृष्टि से विदेशी-व्यापार की ओर भी ध्यान देना होगा। हमारी बहुत सी चीज़ों की विदेशों में खपत है। लड़ाई के ज़माने में कपड़ा एवं कई अन्य वस्तुओं के लिए हमने मध्य-पूर्व एवं सुदूर पूर्व के देशों में अपने बाज़ार बना लिए थे। कला की वस्तुओं के लिए तो आज भी अमरीका और यूरोप के देशों में हमारे माल की काफ़ी पूछ होती है। यदि प्रयत्न किया जाए तो ये बाज़ार और भी बढ़ सकते हैं। फर्रुखाबाद की छींट और बनारस के रेशम के रुमालों की अमरीका में बहुत भारी माँग है। किंतु सरकारी नियंत्रण नीति के कारण यह माँग ठीक तरह से पूरी नहीं हो पाई, जबकि हम डॉलर कमाने के लिए बड़े उत्सुक रहे।

'ज' अर्थात् देश की जनसंख्या तो हमारे देश में बराबर बढ़ती जा रही है। उसे सहसा रोका नहीं जा सकता। अत: 'इ' की वृद्धि के अनुपात में हमको 'क' और 'य' पर नियंत्रण करना होगा। आज देश में दो प्रकार के वर्ग हैं, एक तो आधुनिक यंत्रीकरण के बिल्कुल विरोधी हैं तथा उसे कतई नहीं चाहते। दूसरे वे हैं, जो अनियंत्रित रूप से यंत्रीकरण की वृद्धि चाहते हैं। हम समझते हैं, दोनों ही दृष्टिकोण ग़लत हैं। जैसा कि ऊपर के सूत्र से ज्ञात होगा 'य' ध्रुव नहीं, बल्कि वह 'इ' तथा अन्य तत्त्वों पर अवलंबित है। यदि हमारी 'इ' इतनी बढ़ गई कि बिना यंत्रों की वृद्धि के हम उसे पूरा नहीं कर सकते तो हमें यंत्रीकरण करना ही होगा, किंतु यदि माँग के बढ़े बिना हमने यंत्रीकरण कर लिया तो फिर 'ज' या 'क' में कमी करनी होगी। चूँकि 'क' को कम करना उत्पादन-व्यय, समाज नीति आदि अनेक बातों पर निर्भर है, 'ज' कम हो जाएगा। अत: हमारा सिद्धांत है कि ज्यों-ज्यों देश की क्रयशक्ति एवं प्रभावी माँग बढ़ती जाए, हम यंत्रों का अधिकाधिक उपयोग करते जाएँ। इस पद्धति में हमारा स्वाभाविक विकास होगा तथा हो सकता है कि हम अपनी स्थिति के अनुकूल अधिक उपयोगी यंत्रों का आविष्कार और निर्यात भी कर सकें। आज तो हमें इस दृष्टि से न केवल पश्चिम का अनुकरण करना पड़ता है, बल्कि उनके ऊपर अवलंबित भी रहना पड़ता है।

8

कुटीर उद्योगों को केंद्र बनाकर चलें

आज की आर्थिक अवस्था में हमें कुटीर उद्योगों को ही केंद्र बनाकर चलना होगा। हाँ, उनमें हम छोटे-छोटे यंत्रों का, जो विद्युत् से चल सकें, प्रयोग कर सकते हैं। कुटीर उद्योगों के विकास की दृष्टि से सुझाव ऊपर दिए जा चुके हैं।

कुटीर उद्योगों के अतिरिक्त बड़े-बड़े उद्योग-धंधों में भी नवीनतम यंत्रों के उपयोग की प्रकृति बढ़ रही है। इसके परिणास्वरूप उतना ही काम करने के लिए कम आदमियों की ज़रूरत होती है। फलत: मिलें मज़दूरों की छँटनी कर रही हैं। कपड़ा मिलों में ही नई मशीनों के आ जाने के कारण 25 प्रतिशत छँटनी हो रही है। आज बेकार लोगों में ऐसे लोगों की भी भारी संख्या है। स्थिति की गंभीरता को देखते हुए हमें 'नवीनीकरण' की इस नीति पर भी प्रतिबंध लगाना होगा।

बेकारी के इन कारणों को दूर करके समस्या को मौलिक रूप से हल करने के साथ ही आज जो बेकार हो गए हैं अथवा हो रहे हैं, उनको फिर से काम देने की तथा जब तक काम नहीं मिलता, तब तक उनकी व्यवस्था करने की ज़िम्मेदारी भी सरकार की है। आज के बेकारों में बहुत बड़ी संख्या पढ़े-लिखे लोगों की है। उनको खपाने के लिए स्कूल खोलने की नीति सरकार ने अपनाई है। इस नीति को और भी व्यापक करना होगा।

स्कूल और कॉलेजों में तुरंत ही औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का प्रबंध कर देना चाहिए। जो अंतिम परीक्षा पास करके निकलने वाले हैं, उनके लिए एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा अनविार्य कर दी जाए। इससे पढ़े-लिखे बेकारों की समस्या के हल की दौड़ में एक वर्ष तुरंत आगे बढ़ तो जाएँगे तथा संभव है कि एक वर्ष की औद्योगिक शिक्षा प्राप्त नवयुवकों में से बहुत से लोग बाबूगीरी की ओर न दौड़कर हाथ से रोज़ी कमाना शुरू कर दें। भविष्य की दृष्टि से शिक्षा की पद्धति में परिवर्तन तो आवश्यक ही है, अंग्रेज़ी का मोह भी हमें छोड़ना होगा।

युद्ध काल में कारख़ानेदारों को भारी मुनाफ़े हुए थे, जो कि आजकल संभव नहीं है। अत: आज गिरे हुए मुनाफ़ों से संतोष न होने के कारण तथा भविष्य में हानि की आशंका से चारों ओर बचत की योजनाएँ प्रारंभ हो गई हैं, जिनका परिणाम मज़दूरों पर भी पड़ता है। उनकी छँटनी की जा रही है। कई विभागों का जैसे रसद और पूर्ति विभाग तथा युद्धकालीन अनेक विभागों का काम अब समाप्त हो गया है। उनके कर्मचारियों की भी छँटनी अनिवार्य सी प्रतीत होती है। ये समस्या को और भी भीषण बनाए हुए हैं। आवश्यकता है कि इस प्रकार के व्यक्तियों को जब तक कहीं दूसरी नौकरी न मिल जाए, उनकी जीविका की व्यवस्था की जाए। यूरोप के कई देशों में बेकारी-बीमा योजना चालू है। अनैच्छिक रूप से बेकार होने वाले श्रमिकों को इस योजना के अंतर्गत सहायता मिलती है। भारत सरकार के श्रममंत्री श्री गिरि ने एक त्रिपक्षीय—मिल मालिक, श्रमिक और शासन के बीच समझौता करवाया है; जिसके अनुसार किसी भी श्रमिक के अनिच्छा से काम से अलग होने पर उसे 45 दिन तक अपने वेतन एवं महँगाई भत्ता का आधा मिलता रहेगा। इस संबंध में एक विधान भी लोकसभा में प्रस्तुत होने की आशा है। यह पग ठीक दिशा में उठाया गया है। किंतु मालिकों के ऊपर यह भार न छोड़कर शासन को इसकी अलग से व्यवस्था करनी चाहिए तथा मालिकों से इस बीमा योजना में चंदा लेना चाहिए। साथ ही 45 दिन की अवधि न रखकर यह अवधि जब तक दूसरी नौकरी न मिले तब तक ही रखनी चाहिए। नौकरी से अलग करने के पूर्व एक मास का नोटिस तथा जितने वर्ष काम किया हो प्रतिवर्ष के लिए 15 दिन की तनख्वाह देनी चाहिए। सरकार को भी अपने कर्मचारियों के संबंध में यह नियम लागू करना चाहिए। सरकारी और रेल के अनेक विभागों में अस्थायी रूप से रखे गए कर्मचारियों को भी ये सुविधाएँ मिलनी चाहिए। अस्थायी बनाए रखने के लिए नौकरी से न हटाया जाए।

पढ़े-लिखे तथा अन्य लोगों की शिक्षा के लिए औद्योगिक शिक्षा केंद्र खोले जाएँ, जहाँ वे शिक्षा के साथ-साथ काम भी कर सकें। ये केंद्र सरकार के द्वारा बड़े पैमाने पर खोले जाने चाहिए।

गाँवों की बेकारी को दूर करने के लिए सहायता कार्य प्रारंभ किए जाएँ। सड़कें, इमारतें, बाँध, कुएँ और तालाब आदि की बहुत सी योजनाएँ शुरू की जा सकती हैं। पंचवर्षीय-योजना के अंतर्गत भी जो योजनाएँ ली हैं, उनमें जनशक्ति का अधिकतम उपयोग करना चाहिए। अभी तो वहाँ भी श्रम बचाने वाली बड़ी-बड़ी मशीनों का ही उपयोग किया गया है।

अर्थनीति के निर्धारण में शासन का प्रमुख हाथ होने के कारण उनकी नीति से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने की ज़िम्मेदारी और क्षमता बहुत अंशों में उसी की होती है, फिर भी जनता और राजनीतिक पार्टियाँ उस दृष्टि से अपने सीमित क्षेत्रों में बहुत कुछ

कर सकती हैं। शासन को समस्या की गंभीरता का अनुभव कराने के लिए वे आंदोलन तो कर ही सकती हैं, किंतु अपनी ओर से रचनात्मक सहयोग भी दे सकती हैं। गाँवों और शहरों में पाठशालाएँ ग़ैर-सरकारी तौर पर भी खोली जा सकती हैं। वे सरकारी सहायता से अथवा बिना सहायता के भी चलाई जा सकती हैं। यदि हम यह निश्चय कर लें कि सरकारी स्कूल हो या न हो, हम हर एक गाँव में एक स्कूल खोल देंगे, जो पुरानी पाठशालाओं के आधार पर गाँववालों के 'सीधे' पर न सही, मासिक चंदे या फ़ीस पर चलेंगे तो आज भी बहुत से गाँवों में स्कूल खोले जा सकते हैं। माध्यमिक शालाएँ तो बहुत बड़े पैमाने पर सफलता के साथ खोली जा सकती हैं।

अपने क्षेत्र के छोटे-छोटे उद्योगों की तालिका बनाकर उनमें शिक्षार्थी के रूप में एक-एक दो-दो व्यक्तियों को रखा जा सकता है। आज बहुत से कारोबार ऐसे हैं, जिनमें रोज़ी कमाई जा सकती है। हाँ, सीखे हुए लोगों की कमी है।

छोटे-छोटे उद्योग-केंद्र भी सहकारी आधार पर चलाए जा सकते हैं। स्वदेशी की भावना एवं पारस्परिक संबंधों के सहारे उनके लिए बाज़ार भी मिल सकते हैं। उनके अतिरिक्त और भी अनेक रचनात्मक कार्य हाथ में लिए जा सकते हैं। आवश्यकता दृढ निश्चय तथा अपने बेकार बंधुओं के जीवन के साथ सहानुभूति की है। हम श्रम के महत्त्व को समझकर काम करने के लिए आगे निकलें, निश्चय ही समस्या को हल कर लेंगे। आज भारत का नव-निर्माण हमारे प्रयत्नों की बाट जोह रहा है। माता के सपूत उसकी आस को पूरी करें।

नाना श्रान्ताय श्रीरस्ति,
पापो नृषद्वरो जनः।
इन्द्र इच्चरतः सखा
चरैवेति चरैवेति।

—ऐतरेय ब्राह्मण, 7/15

अर्थात् जो पूरी शक्ति से परिश्रम नहीं करते, उन्हें लक्ष्मी नहीं मिलती। आलस्य पाप के समान है। ईश्वर परिश्रम करने वालों का ही मित्र बनता है। इसलिए आगे बढ़ो, आगे बढ़ो और कर्मशील बनो।

9

भारतीय जनसंघ का प्रस्ताव

बेकारी के संबंध में भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा ने दिनांक 15–16 अगस्त को होने वाले प्रयाग अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव स्वीकार किया है—गत 10 वर्षों से देश में बेकारी तेज़ी से फैल रही है। समाज के सभी वर्गों में, विशेषत: मध्यम वर्ग में इसका प्रभाव गहरा पड़ा है। यह आशा थी कि स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद इस संकट को रोकने के लिए कोई प्रभावी क़दम उठाया जाएगा। किंतु दुर्भाग्य से कांग्रेस सरकार ने केंद्र तथा राज्यों में जो नीति अपनाई, उससे स्थिति में योग्य परिवर्तन होने के बजाय समस्या ने और भी प्रचंड रूप धारण कर लिया। यहाँ तक कि पंचवर्षीय योजना में भी इस संकट का सामना करने के लिए प्राय: नहीं के बराबर ही विचार किया गया। योजना आयोग के द्वारा उपस्थित की गई ग्यारह सूत्री योजना भी इतनी अपर्याप्त है कि उनमें कोई निश्चित हल तक सुझाया नहीं गया है। बढ़ती हुई बेकारी को रोकने का अस्थायी हल हमारी शिक्षा पद्धति में और हमारी सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था में आमूल परिवर्तन करना है। किंतु इस संकट की तात्कालिक रोकथाम के लिए निम्नलिखित क़दम एकदम उठाना चाहिए—

(1) देश में फैलते हुए शिक्षित बेकारों को काम दिलाने के लिए सरकार को देशव्यापी स्तर पर प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य करने की योजना बनानी चाहिए और देश के इन शिक्षित व्यक्तियों की शक्ति को, जिन्हें आज कोई काम नहीं, राष्ट्र-निर्माण के इस महत्त्वपूर्ण कार्य में लगाना चाहिए। यह योजना न केवल शिक्षित बेकारों को काम देगी, वरन् देश के सार्वजनिक पुनर्निर्माण में भी सहायक होगी। माध्यमिक शिक्षा को उद्योग-धंधों की शिक्षा देने के तरीक़ों पर आधारित करने के प्रयत्न अति शीघ्र किए जाएँ। महाविद्यालय तथा विद्यालयों में किसी-न-किसी प्रकार के शारीरिक श्रम के शिक्षण को अनिवार्य बनाया जाए, जिससे शिक्षित लोगों की श्रम की प्रतिष्ठा प्रस्थापित हो। इसके

अतिरिक्त मैट्रिक या ग्रेजुएट परीक्षा के प्रमाण-पत्र पाने के लिए अनिवार्य शारीरिक श्रम की निपुणता स्थापित की जाए।

(2) सरकारी और निजी उद्योग केंद्रों या कार्यालयों आदि में कम वेतन पाने वाले कर्मचारियों को नौकरी से निकाले जाने की नीति, जो दिन-प्रति-दिन बढ़ रही है, एकदम हतोत्साहित की जाए। अधिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों की संख्या ठीक अनुपात के साथ कमी कर अल्प वेतन पाने वाले कर्मचारियों के लिए नौकरियों की सुविधाएँ बढ़ाई जाएँ। बेकार लोगों को कार्य दिलाते समय अपनाए गए तरीक़े इस प्रकार के हों कि वे अपने स्थान की सुरक्षिता के संबंध में निश्चिंत रह सकें।

(3) ग्रामीण क्षेत्रों में बेकारी दूर करने के लिए अकाल निवारण के तरीक़ों के अनुसार सरकार को ऐसी योजनाओं को हाथ में लेना चाहिए, जिससे बेकार लोगों की शक्ति देश के पुनर्निर्माण में लग सके। इस ढंग से ख़र्च किया गया धन अवश्य ही जनता के दैनिक जीवन के स्तर को ऊँचा उठाने में सहायक होकर लाभकारी परिश्रम प्रगट करेगा।

(4) ग्रामीण जीवन की उन्नति के लिए योजनाबद्ध तरीक़ों से पुराने कुटीर उद्योगों की रक्षा और नए कुटीर उद्योगों की स्थापना (जैसे हथकरघा उद्योग) कर गाँव से शहरों की ओर भागने की विनाशकारी प्रवृत्ति को रोकना चाहिए, जो कि बड़े-बड़े उद्योग नगरों में दिन-प्रति-दिन बेकार मज़दूरों की संख्या बढ़ा कर नए आर्थिक और सामाजिक संकटों को पैदा कर रहे हैं।

बड़े-बड़े औद्योगिक नगरों में ऐसे मज़दूरों को, जो कि कार्य में निपुण नहीं हैं, योग्य औद्योगिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जानी चाहिए। ऐसा करने से बहुत अधिक प्रमाण में औद्योगिक क्षेत्रों में फैली बेकारी का अंत हो सकेगा।

इन तरीक़ों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि देश में श्रम करने का वायुमंडल निर्माण किया जाए। आजकल सरकार की आर्थिक और सामाजिक नीति के कारण देश में निराशा फैल रही है, जो कि जनता में हतोत्साह का वायुमंडल तैयार कर रही है। जब तक सर्वसाधारण जन समाज में उत्साह और चेतना की लहर नहीं दौड़ाई जाती, तब तक देश के समक्ष फैले इस महान् संकट का सामना अपनी संपूर्ण शक्ति से करने के लिए लोग कटिबद्ध नहीं होंगे, जिसके वे स्वयं शिकार हैं।

—पुस्तक, 1954

□

3

देश भर में 'राष्ट्र सुरक्षा सप्ताह' संपन्न, अनिवार्य सैनिक शिक्षा की माँग

भारतीय जनसंघ की ओर से गत सप्ताह देश भर में पाक-अमरीका सैनिक गठबंधन के विरुद्ध प्रबल जनमत जाग्रत् करने तथा उसके परिणामस्वरूप भारत की सुरक्षा को उत्पन्न भीषण ख़तरे के प्रति भारत सरकार तथा भारतीय जनता को सचेत एवं सचेष्ट करने के लिए 'राष्ट्र सुरक्षा सप्ताह' सर्वत्र मनाया गया। जिसमें सार्वजनिक सभाएँ की गईं तथा प्रस्ताव पास किए गए। इस अवसर पर सरकार से 'अनिवार्य सैनिक शिक्षा' प्रारंभ करने की भी प्रबल माँग की गई। जनसंघ के वक्ताओं ने स्थान-स्थान पर स्पष्ट रूप से पाक-अमरीका सैनिक गठबंधन पर अपने विचार प्रगट किए।

भारत की राजधानी दिल्ली में इस अवसर पर जनसंघ के कार्यकारी प्रधान, पं. मौलिचंद्र शर्मा[1] का भाषण हुआ। संयोग से इसी बीच दीनदयालजी बंबई जाते हुए दिल्ली से लखनऊ आए और उन्होंने भी एक सभा में प्रस्तावित पाक-अमरीकी सैनिक संधि पर अपने विचार प्रगट किए। दीनदयालजी का वक्तव्य।

---

1 . पं. मौलिचंद्र शर्मा 1954 में भारतीय जनसंघ के दूसरे राष्ट्रीय अध्यक्ष चुने गए।

पाक-अमरीका सैनिक गठबंधन[2] कोई अनहोनी नहीं, बल्कि एक बड़ा ख़तरा है। इसके लिए केवल विरोध मात्र ही पर्याप्त नहीं है। हमें इसकी पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है। अमरीका रूस को घेरने की फ़िक्र में है और उसके लिए उपयुक्त सैनिक अड्डा बनाना चाहता है। इसके लिए उसने भारत को साथ लेना चाहा। परंतु उसे असंभव जानकर कश्मीर में शेख़ अब्दुल्ला को स्वतंत्र कश्मीर का लालच देकर अपना बनाना चाहा, पर भारत की सतर्कता से वहाँ भी वह असफल रहा। अंत में उसने नीति के अनुसार पाक प्रधानमंत्री श्री नाजिमुद्दीन को, जो ब्रिटेन का आदमी था, हटाकर मोहम्मद अली को प्रधानमंत्री घोषित करवाया। भारत रुष्ट न हो, इसके लिए भारत-पाकिस्तान के बीच मित्रता की बातें प्रारंभ हुईं[3] और मोहम्मद अली ने नेहरूजी को अपना बड़ा भाई बताया। यही नहीं तो भारत और पाकिस्तान की संयुक्त सुरक्षा की बातें तक करवाई गईं। आज भी मोहम्मद अली यह घोषणा करते हैं कि पाकिस्तान का शक्तिसंपन्न होना भारत के लिए ख़तरा नहीं है अपितु इससे तो भारत की सुरक्षा होगी। यह भारत के लिए सुरक्षा नहीं महान् ख़तरा है।

पाकिस्तान का निर्माण क्यों?

हमें पाकिस्तान की नीयत समझनी होगी। पाकिस्तान का निर्माण क्यों हुआ? कुछ लोग कहेंगे कि हिंदू-मुसलमान मिलकर नहीं रह सकते थे इसलिए; पर यह पूर्ण सत्य नहीं है। मुसलमानों के दिमाग़ में मुग़ल साम्राज्य की पुनर्स्थापना का स्वप्न अब भी है और वर्तमान पाकिस्तान उसे प्राप्त करने की एक सीढ़ी मात्र है। वह सारे भारत में इसलामी झंडा फहराना चाहता है। उसके द्वारा सन् 1947 के झगड़े के समय दिल्ली हथियाने की 'असफल साजिश' हो चुकी है। इसके लिए 'हँस के लिया पाकिस्तान, लड़ के लेंगे हिंदुस्थान' के नारे समय-समय पर सुनाई पड़ते हैं। पश्चिम पंजाब और पूर्वी बंगाल के हिंदुओं को भगाने का प्रयत्न सतत पाकिस्तान में होता रहा है। कश्मीर के प्रति भी पाकिस्तान की नीयत उसे लेने की है। उसका एक-तिहाई भाग आज भी उसके क़ब्ज़े में है। उसके लिए पाकिस्तान अब दोतरफ़ा चाल चल रहा है। अब तो दो ही मार्ग हैं। जनमत तैयार करो या फिर उसकी शक्तिसंपन्न संगीनों का मुक़ाबला करो। इस चाल को समझकर उचित नीति अपनाने की आज आवश्यकता है।

---

2. पाकिस्तान ने अमरीका के साथ 1954 में परस्पर रक्षा सहायता संधि (Mutual Defence Assistance Agreement) पर हस्ताक्षर किया, जिसके तहत पाक सैनिक प्रशिक्षण के लिए अमरीका गए व अमरीका ने रावलपिंडी में सैन्य सहायता परामर्श समूह (Military Assistance Advisory Group - MAAG) की स्थापना की थी।
3. नेहरू-मोहम्मद अली वार्त्ता : जून-जुलाई 1953 में पं. जवाहरलाल नेहरू और मोहम्मद अली बोगरा के मध्य लंदन और कराची में भारत-पाक के बीच लंबित मुद्दों के समाधान (कश्मीर विवाद, द्विपक्षीय संबंधों को बढ़ावा देने) को लेकर मुलाक़ात हुई। हालाँकि यह वार्त्ता बिना किसी अंतिम समझौते के समाप्त हुई थी।

नेहरूजी क्या कहते हैं?

एक ओर संसद् में नेहरूजी कहते हैं, ''पाक-अमरीकी सैनिक संधि से सभी समस्याएँ, यहाँ तक कि कश्मीर प्रश्न की पृष्ठभूमि भी बदल सकती है'' और दूसरी ओर उसी समय पाकिस्तान से कश्मीर में जनमत संग्रह के बारे में बातचीत कर रहे हैं। पाकिस्तान ने उसके लिए शर्तें लगा दी हैं कि वहाँ पर ऐसी सरकार बनाई जाए, जो उसे मान्य हो, कश्मीर जनमत संग्रह के अवसर पर प्रचार का पूर्ण मौक़ा दिया जाए और तीसरी बात यह कि एडमिरल निमित्ज[4] को उसका प्रबंधक नियुक्त किया जाए। इसका अर्थ सब तरह से भारत पर दबाव डालना है।

विदेश नीति की भूलें

हमें किसी 'शक्ति गुट' में सम्मिलित नहीं होना चाहिए। तटस्थ नीति की घोषणा की गई, पर वह केवल कोरी सैद्धांतिक ही रही और व्यवहार में कुछ और ही दिखाई पड़ा। कोरिया और चीन को हम लें। उनमें अनावश्यक दिलचस्पी लेने का प्रयत्न किया गया। हमने चीन को मान्यता दी, परंतु इजरायल को मान्यता न देने की भूल की।

भारत ने नवंबर 1947 में संयुक्त राष्ट्र जनरल असेंबली में फिलिस्तीन का विभाजन कर यहूदियों के लिए अलग इजराइल राष्ट्र[5] बनाने का विरोध जताया था। मई, 1948 में भारत ने इजराइल निर्माण के ख़िलाफ़ अपना वोट दिया। इस दौरान भारत ने इजराइल को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने का विरोध भी किया था। लेकिन दूसरी ओर 1949 में भारत ऐसा पहला एशियाई राष्ट्र था, जिसने चीन को राष्ट्र के रूप में मान्यता प्रदान की। साथ ही, भारत ने चीन को संयुक्त राष्ट्र का सदस्य बनाने के लिए भी प्रयत्न किया।

इस प्रकार की नीति के कारण अमरीका नेहरूजी की निष्पक्षता में संदेह करने लगा और दूसरी ओर विभिन्न सहायताओं के संबंध में अमरीका से गठबंधन होने के कारण रूस को भारत पर पहले से ही संशय है। इस तटस्थता के कारण ही पाक-अमरीका गठबंधन का ख़तरा आज देश के सम्मुख खड़ा हो गया है। 'पाक-अमरीका गठबंधन चलेगा', 'नेहरू नीति ज़िंदाबाद' के कांग्रेस द्वारा लगाए जाने वाले नारे अपनी ग़लत नीति को छिपाने के तरीक़े हैं। विदेश नीति में की गई व्यावहारिक भूलें अब सबके सामने स्पष्ट हो चुकी हैं। प्रतीत होता है, नेहरूजी को अपनी ग़लत नीति का अब कुछ अनुभव हुआ है। उन्होंने

4. चेस्टर डब्ल्यू. निमित्ज (1885-1966) संयुक्त राज्य अमरीका की नौसेना के बेड़े के एडमिरल थे। इन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। जम्मू और कश्मीर विवाद में मध्यस्थता के लिए निमित्ज को संयुक्त राष्ट्र संघ के दूत के रूप में नियुक्त करने का प्रस्ताव लाया गया, लेकिन यह भी संभव न हो सका।

5. इजराइल यहूदी धर्मावलंबियों का प्राचीन देश है। संसार के विभिन्न भागों में बिखरे यहूदी लोग यहाँ एकत्र होकर लंबे अरसे से फिलस्तीन क्षेत्र में अपने अलग राष्ट्र की स्थापना के लिए प्रयत्नशील थे। फलत:1947 ई. में अरबों और यहूदियों के बीच युद्ध प्रारंभ हो गया। 14 मई, 1948 को इजराइल राष्ट्र का उदय हुआ। भारत ने 1992 में इजराइल को मान्यता दी।

ब्रिटिश गुयाना[6] के प्रश्न में न फँसने की कोशिश की है। विदेश नीति की सफलता उसकी गृह नीति पर निर्भर रहती है। अपने देश में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी वहाँ की सही राष्ट्रीयता को सतत समाप्त करने का प्रयत्न होता रहा है। परंतु आज भी अलीगढ़ में मुसलिम सम्मेलन और उसमें वही पुरानी लीगी मनोवृत्ति के ज़हरीले भाषण हुए। निकायों के चुनावों में मुसलमानों ने तो अपनी अलग नीति के अनुसार मतदान किया। इसके विपरीत सरकार ने हिंदू शक्तियों का दमन करने का सतत प्रयत्न किया। आज देश की उत्तरी सीमा पर ईसाई-मिशनरियों का धर्म-परिवर्तन कार्य बहुत तेज़ी से चल रहा है। त्रावणकोर-कोचीन में पिछले छह-सात सालों में 288 मंदिर ईसाइयों द्वारा नष्ट कर दिए गए। त्रावणकोर में खड़े होने के बाद ऐसा लगता है मानो ईसाईलैंड में खड़े हैं। क्या यह सब धर्मनिरपेक्ष राज्य का लक्षण है? आज आवश्यकता है कि सरकार राष्ट्रीय तत्त्वों की पहचान कर उन्हें शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न करे और अपनी गृहनीति में आमूलचूल परिवर्तन करे।

राष्ट्रीय सुरक्षा

रूस के साथ इस समय गठबंधन कर लेना भी जनसंघ की दृष्टि में ग़लत क़दम होगा। हमें सच्चे अर्थ में तटस्थ रहकर भावात्मक दृष्टि से सोचने की ज़रूरत है। जनसंघ 'राष्ट्र सुरक्षा सप्ताह' मना रहा है, न कि 'सैनिक गठबंधन विरोध दिवस'। दूसरों की सहायता से आई हुई शक्ति अस्थायी होती है। हमें देश में एक सुदृढ बल खड़ा करने की आवश्यकता है। कुछ ओर से यह भी सुझाव आया है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों का एक सम्मेलन किया जाए। हमारे नेता स्व. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने कई बार कहा था, "श्रीलंका, बर्मा, स्याम[7] आदि देशों से हमारे सांस्कृतिक संबंध हैं। आज अपनी भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान की आवश्यकता है, जिससे इन देशों से शीघ्र घनिष्ठ संबंध स्थापित हो सकते हैं।"

सैनिक शिक्षा अपने देश में अनिवार्य होनी चाहिए। यह नहीं भूलना चाहिए कि अमरीका-पाकिस्तान के साथ सैनिक गठबंधन करके भारत को अपने गुट में मिलाने के लिए अनुचित प्रभाव डालने का प्रयत्न कर रहा है। हमें न रूस के अधिनायकवाद और न अमरीका के साम्राज्यवाद में फँसना है। दोनों में से किसी से भी संबंधित होने में बहुत बड़ा ख़तरा है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 11, 1954

□

---

6. ब्रिटिश गुयाना दक्षिण अमरीका के उत्तरी तट पर स्थित एक देश, जिसे अब गुयाना नाम से जाना जाता है। यह 1966 तक ब्रिटिश उपनिवेश था। यहाँ 43 प्रतिशत आबादी भारतीय मूल के लोगों की है।
7. स्याम (वर्तमान थाईलैंड)।

4

भारतीय जनसंघ की अर्थ नीति

भारतीय जनसंघ उत्तर प्रदेश के प्रादेशिक सम्मेलन, सीतापुर, 1953 के अवसर पर कार्यकर्ता शिविर के लिए दीनदयालजी द्वारा जनसंघ की अर्थ नीति पर लेख।

भारतीय संस्कृति की सदैव से यही मान्यता रही है कि संपत्ति समाज की है। ईशावास्य के प्रथम मंत्र में ही यह मूलभूत प्रश्न पूछा गया है कि संपत्ति किसकी है—'कस्य स्विद्धनम्।'[1] वस्तुत: संपत्ति के स्वामित्व का प्रश्न मनुष्य समाज के संगठन की एक मुख्य शिला है और शास्त्र में जब यह कहा गया कि 'सुखस्य मूलं धर्म:, धर्मस्य मूलं अर्थ:, अर्थ एवं प्रधान:' तब यह स्वीकार कर लिया गया कि सुख और धर्म दोनों के लिए अर्थ का समुचित संतुलन आवश्यक है। तो फिर पुन: यही प्रश्न पैदा होता है कि यह संतुलन किस प्रकार हो। इसके उसी मंत्र में प्रश्न का उत्तर भी देते हुए ऋषि ने असंदिग्ध रूप से यह घोषणा कर दी, हाथ उठाकर यह घोषणा कर दी कि संपत्ति समाज रूप ईश्वर की है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत

भारतीय संस्कृति के आर्थिक पहलू का नियमन करने वाली यह आद्य और मूलभूत घोषणा है। इसी को आधार मानते हुए समाज के कुछ व्यक्तियों को अथवा एक वर्ग को संपत्ति का ट्रस्टी बनाकर उसके संयम और विनियोग के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य में पारंगत

1. ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध: कस्य स्विद्धनम्।।

बनाने की दृष्टि से व्यवस्था की गई और ऐतिहासिक रूप में यह ध्यान देने की बात है कि जब संसार के अन्य देशों, विशेषकर यूरोप में जन-समाज राजाओं तथा सामंतों द्वारा विकृत अर्थव्यवस्था में शोषित हो रहा था, तब भारत में ट्रस्टीशिप के इस सिद्धांत के अंतर्गत संपूर्ण राष्ट्र विविध धन-धान्य से सुखी अपने जीवन को आध्यात्मिक, नैतिक तथा कलात्मक दिशाओं में विकसित करता हुआ जीवनयापन कर रहा था। आज भले ही ट्रस्टीशिप का यह सिद्धांत बिगड़ गया हो और राष्ट्र की संपत्ति के ट्रस्टी व्यक्तिगत सुख-संपन्नता बढ़ाने में ही उसका उपयोग करने लग गए हों, यह निर्विवाद है कि जब तक संपत्ति को समाज की मानने की यह भावना उनमें जीवित रही, तब तक उन्होंने आधी टाँगों तक धोती-मिरजई और सिर पर पगड़ी लगाकर ही अपने कर्तव्य का पालन किया और देश को सुख-समृद्धि से भर दिया।

मानव समाज का वर्गीकरण

एक वर्ग को संपत्ति के संचय और विनियोग का समस्त कार्य सौंप देने का कारण यह था कि भारतीय संस्कृति हर व्यक्ति को हर कार्य के उपयुक्त नहीं मानती है। उसने मनोवैज्ञानिक दृष्टि से मनुष्य समाज के चार भाग किए और वृत्तियों के आधार पर इनमें से एक वैश्य वर्ग को यह दायित्व दिया। मानव समाज को कुछ भागों में बाँटने का यह भारतीय प्रयोग प्रायः सभी देशों में किसी-न-किसी रूप में किया जाता रहा है। अति प्राचीन काल में ग्रीक दार्शनिक प्लेटो ने भी अपनी आदर्श समाज जीवन की कल्पना देते हुए समाज को तीन भागों में बाँटने की बात कही थी और आज कम्युनिस्ट देशों में चलने वाला वर्गविहीन समाज का प्रयोग भी उसे तीन वर्गों तक ही बाँटकर रह गया है। अतः इन सबसे पहले किया गया भारतीय प्रयोग निस्संदेह विश्व इतिहास की एक सफल व्यवस्था कहा जाएगा। ट्रस्टीशिप की इस व्यवस्था की ओर ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह अमर्याद नहीं था। उस पर सदा मर्यादाएँ रहीं और इसी कारण वह समाज के लिए लाभकर सिद्ध हुआ। मर्यादित ट्रस्टीशिप अपने शुद्ध रूप में और शुद्ध भावनाओं के साथ चलने पर समाज के कल्याण का कारण होती है। यहाँ ट्रस्टीशिप से भी अधिक महत्त्व की बात मर्यादा की है। व्यक्ति, निगम या राज्य कोई भी ट्रस्टी हो, यदि वे अमर्याद हुए तो अव्यवस्था शुरू हो जाएगी। कम्युनिस्ट देशों में आज राज्य की अमर्याद ट्रस्टीशिप है और उसके राजनीतिक दुष्परिणामों से कौन अपरिचित है।

धर्म और श्रम

भारत की वर्तमान परिस्थितियों में जब उसे राजनीतिक स्वतंत्रता मिल गई है, आर्थिक स्वतंत्रता दिलाने का सवाल खड़ा होता है। यह आज का मुख्य राष्ट्रीय प्रश्न है।

इस प्रश्न को हल करने के विभिन्न उद्योग विभिन्न प्रणालियों से तथा विभिन्न दिशाओं में किए जा रहे हैं। हमारे लिए यह प्रश्न इस रूप में आता है कि हम उसको भारतीय ढंग से किस प्रकार हल कर सकते हैं। हम जानते हैं कि भारतीय ढंग सदा से धर्म का (मज़हब का नहीं) ढंग रहा है और धर्म के इस ढंग पर ही आर्थिक नवनिर्माण के नए नक्शे को तैयार करने की ज़रूरत है। भारतीय वाङ्मय में धर्म की जो व्याख्याएँ समय-समय पर दी गईं, उनमें से सबसे पुरातन होने के कारण वेदों की व्याख्या को हम लेते हैं, जिसमें उसके 12 लक्षण गिनाए गए हैं। इनमें धर्म का आद्य लक्षण सबसे महत्त्वपूर्ण है। (श्रमेण तपसा सृष्ठा⋯) और वह है 'श्रम'। भारतीय ऋषियों ने जीवन में श्रम की अन्यतम महत्ता को भलीभाँति जान लिया था और इसीलिए उन्होंने 'श्रम' को धर्म का पहला लक्षण बताया। श्रम की महत्ता का ज्ञान मार्क्स और एंजेल्स के जन्म तक रुका नहीं रहा, वह अति पुरातन काल में सहज अनुभूति से हमने मानवता को दे दिया था।

श्रम मनुष्य का कर्तव्य

आधुनिक शब्दावली में इसी बात को यों कह सकते हैं कि श्रम करना मनुष्य का मूलभूत कर्तव्य है (Duty to work)। इसी प्रकार मनुष्य को श्रम करने का यह अधिकार देना राज्य का भी मूलभूत कर्तव्य हो जाता है। आज जब समाज व्यवस्था बिगड़ी हुई है और श्रम करने वाले मनुष्य को भी, पहले तो उसे श्रम करने का अवसर ही नहीं मिलता, अवसर मिले भी तो उसे भरपेट खाना नसीब नहीं होता, तब राज्य की अपेक्षा में मनुष्य का यह श्रम करने का कर्तव्य कर्तव्य न रहकर अधिकार बन जाता है और इसी अधिकार की माँग, उसकी स्थापना तथा उसी पर आधारित व्यवस्था की रचना ही उसका मुख्य कर्तव्य अथवा परम धर्म बन जाता है।

श्रम का अधिकार

अतः श्रम का अधिकार (Right to work) मनुष्य का संवैधानिक अधिकार है। राज्य का यह पहला कर्तव्य है कि वह प्रत्येक नागरिक को उसकी योग्यता और क्षमता के अनुसार काम करने का अवसर दे। इन अवसरों में किसी प्रकार का भेदभाव, न जाति का, न रंगभेद और न लिंग का होने दें। राष्ट्र के आर्थिक पुनर्निर्माण की जो भी योजना बनाई जाए, उसका उद्‌देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना (Full employment) होना चाहिए। भारत की आर्थिक नवरचना के लिए जो पंचवर्षीय योजना बनाई गई है अथवा भविष्य में इस प्रकार की जितनी भी योजनाएँ बनाई जाने की संभावना है, उनका उद्‌देश्य सभी व्यक्तियों को काम दिलाना ही होना चाहिए। इसके बिना ये योजनाएँ न राष्ट्रीय कही जा सकती हैं और न भारतीय ही।

जनशक्ति का आधार

इस प्रकार भारतीय अर्थव्यवस्था में जो व्यक्ति काम करेगा, वही खाएगा। काम या श्रम वह है, जिसका परिणाम होता है उत्पादन। लोगों को अधिक-से-अधिक खाने को मिले, अर्थात् राष्ट्रीय वैभव अधिक-से-अधिक बढ़े, इसके लिए उत्पादन को अधिक-से-अधिक बढ़ाने की चेष्टा करनी होगी। इस उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए जिन साधनों का भी उपयोग करना पड़े, करना चाहिए। लेकिन साधन वाली इस बात की एक मर्यादा है। वह यह कि अपने ही पैरों पर खड़े होने का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ना चाहिए। विदेशों की सहायता लेकर अर्थात् उनके पैरों पर खड़े होकर चलने का उपक्रम किसी दिन अपने आपको बिल्कुल लँगड़ा बना डालना है और यह ग़लत मार्ग है। इस दृष्टि से देखने पर लगेगा कि भारत में पूँजी की कमी भले ही हो, जनशक्ति की कमी कदापि नहीं है। उस जनशक्ति को काम का अधिकार (Right to work) देना भी है। अत: जनशक्ति के आधार पर ही अधिक उत्पादन की योजनाएँ बनाई जानी चाहिए। कृषि और उद्योग दोनों को ही जनशक्ति के सहारे उठाने की ज़रूरत है।

भूमि व्यवस्था में परिवर्तन

कृषि-क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने और संपूर्ण जनशक्ति का उपयोग करने के लिए वर्तमान भूमि व्यवस्था को बदलने की आवश्यकता है। भूमि का पुन: वितरण करना होगा। प्रश्न खड़ा होता है कि इस वितरण का आधार क्या हो? काम का अधिकार सिद्धांत के अनुसार इसका सीधा उत्तर यह कि जोतने वाले ज़मीन के अधिकारी बनें। संत विनोबा इसी वितरण के लिए भूदान का महान् यज्ञ कर रहे हैं।[2] वे वृत्ति परिवर्तन की बात कहते हैं, जो भारतीय सिद्धांत के अनुसार सही है। वृत्ति परिवर्तन के साथ इस आशय का क़ानून तो बनाना ही होगा। भूमि के पुनर्वितरण का दूसरा प्रश्न यह है कि ज़मींदार-नंबरदार आदि नामों से स्थान-स्थान पर रहने वाले बीच वालों का क्या हो। स्पष्ट है कि बिना मुआवज़ा दिए उनका उन्मूलन होना चाहिए, परंतु उनके पुनर्वास के लिए शासन की ओर से सहायता अवश्य दी जानी चाहिए। तीसरा प्रश्न भूमिहीन श्रमिकों (Landless labour) का है। वस्तुत: ग्रामोद्योगों की उचित व्यवस्था हो जाने पर यह प्रश्न इतना कठिन नहीं रहता, क्योंकि ग्रामवासी तब समग्र रूप से भूमि पर निर्भर नहीं रहते। फिर भी ऐसे श्रमिकों के हित में भूमि पर उनके लिए कुछ पारंपरिक अधिकारों का विकास करना होगा। जैसे भूमि पर से उनका हटाया न जाना। भूमि की बिक्री अथवा हस्तांतरण की स्थिति में भी उन्हें उस पर काम करने दिया जाएगा आदि।

---

2. विनोबा भावे (1895-1982) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के सत्याग्रही, सर्वोदय समाज की परिकल्पना करते हुए 1951 में 'भूदान यज्ञ' आंदोलन की नींव रखी। इसके अंतर्गत वे बड़े ज़मींदारों से स्वेच्छया भूमि दान करने के लिए आग्रह करते थे और दान में मिली वह भूमि कृषि के लिए भूमिहीनों को दे दी जाती थी।

कृषि का उत्पादन

कृषि का उत्पादन बढ़ाने के संबंध में कृषकों को अच्छा बीज, हल, आर्थिक सहायता आदि देने की भी व्यवस्था अवश्य करनी होगी। समुचित रूप से कृषि शिक्षा की भी व्यवस्था अनिवार्य है। आज धन प्राप्ति की दृष्टि से बहुत मात्रा में लगाई जाने वाली फ़सलों (Cash crops) के कारण अन्न की फ़सल (Food crops) का उगाया जाना घट गया है और खाद्याभाव का यह भी एक प्रमुख कारण है। अतः दोनों प्रकार की फ़सलों में संतुलन पैदा करते हुए उत्पादन की योजना की जानी चाहिए।

छोटी और सस्ती मशीनों का उपयोग

खेती में ट्रैक्टर आदि का उपयोग किया जाए अथवा नहीं, यह प्रश्न खड़ा होने पर यही कहना पड़ता है कि वर्तमान स्थिति में इनका उपयोग विशेष कृषि योजनाओं को छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं किया जाना चाहिए। अभी तो हल ही पर्याप्त है। उसमें जो सुधार संभव हो, किए जा सकते हैं। छोटे और सस्ते ट्रैक्टर जो सुना है, जापान में बनने लगे हैं, यदि हों तो उनका प्रयोग आरंभ करने का विचार किया जा सकता है।

भूमि कर कितना हो, यह भी महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। हमारा निश्चित मत है कि सरकार ज़मींदार से जितना कर लेती थी, उतना ही कृषक से भी ले। शेष धन का उपयोग विविध रूप से ग्राम सुधार में ही किया जाना चाहिए। ग्राम सुधार और कृषक उन्नति के लिए सहकारी संस्थाओं का बड़ा महत्त्व है और उनके विकास पर पूर्ण ध्यान दिया जाना चाहिए।

कुटीर उद्योग

औद्योगिक क्षेत्र में उत्पादन बढ़ाने, जनता को आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी बनाने तथा संपत्ति के सम विभाजन की व्यवस्था करने के लिए हमें कुटीर-उद्योगों को पुनः विकसित करना पड़ेगा। प्राचीन भारत का संपूर्ण आर्थिक ढाँचा इन कुटीर उद्योगों पर ही खड़ा था। उस समय न केवल देश स्वावलंबी था, वरन् लघुतम इकाई ग्राम तक स्वावलंबी थे और संपत्ति के संचय का प्रश्न भी नहीं था। इसके अलावा उत्पादित सामग्री के कलात्मक मूल्य भी बहुत अधिक थे। अंग्रेज़ों ने भारतीय समाज जीवन की इसी रीढ़ को तोड़ने की सफल चेष्टा की और इसी के बाद वे अपने यहाँ उत्पादित अधिक सामग्री को यहाँ खपा सके। आर्थिक स्वाधीनता के लिए हमें इसी रीढ़ को पुनः खड़ा करना होगा। इस काल में विश्व जो वैज्ञानिक उन्नति कर चुका है, उसको ध्यान में रखते हुए इस व्यवस्था का बाहरी रूप कुछ बदलना होगा। जापान इस दिशा में भारत की बहुत कुछ सहायता कर सकता है। कुटीर-उद्योगों में ही हम संपूर्ण जनशक्ति का उपयोग कर सकते हैं, जो हमारी एक प्राथमिक ज़िम्मेदारी है।

वितरण व्यवस्था

उत्पादन के बाद अब वितरण का सवाल आता है। उत्पादन की जो उपर्युक्त व्यवस्था हमने देखी उसमें वितरण को असमान न होने देने की क्षमता है। समानता के लिए पूँजी का केंद्रीकरण न हो, इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है। इसीलिए विकेंद्रित उद्योग-धंधों की व्यवस्था है। जहाँ तक कुटीर उद्योगों का सवाल है, यह ख़तरा बहुत कम है। लेकिन जहाँ बड़े उद्योगों का क्षेत्र शुरू होता है, वहाँ यह ख़तरा उत्पन्न होता है। सुरक्षा उद्योगों का तो राष्ट्रीयकरण अनिवार्य है। अब प्रश्न बनता है पूँजी उद्योगों का। उनका भी अंतिम रूप से राष्ट्रीयकरण कर देना उद्देश्य होना चाहिए। आज पूँजी उद्योग व्यक्तिगत क्षेत्र में आते हैं। उनसे व्यक्तिगत क्षेत्र का क्रमिक उन्मूलन किया जाना चाहिए। जब तक यह राष्ट्रीयकरण अंतिम रूप से संपन्न नहीं हो जाता तब तक बड़े उद्योगों के गुट (Cartela and combines) बनने देने की प्रवृत्ति को रोकना चाहिए। जिन उद्योगों में ये गुट बन गए हों, उनका राष्ट्रीयकरण कर लिया जाए। कुटीर उद्योगों का विकास करते समय भी इस बात का ध्यान रखना होगा कि उनके गुट बनाकर पूँजीपति उन पर नियंत्रण न स्थापित कर लें। जापान में वितरण तथा संपत्ति की असमानता का कारण वहाँ के कुटीर उद्योगों पर पूँजीपतियों का नियंत्रण ही है।

श्रम और पूँजी का संबंध

बड़े उद्योगों के साथ ही श्रम और पूँजी के संबंध का प्रश्न भी खड़ा होता है। उद्योगों पर दोनों का समान दायित्व और समान अधिकार मानना मूल बात है। इसका परिणाम होता है—अधिक काम और अधिक काम। मज़दूरों की माँगों को मनवाने का अस्त्र हड़ताल है, लेकिन उसका उपयोग बहुत सोच-समझकर और अंतिम रूप में ही किया जाना चाहिए। भारतीय सिद्धांत के अनुसार श्रम यदि अधिकार है, तो कर्तव्य भी है, यह हम कह चुके हैं। कोई दूसरा हमें इस अधिकार से वंचित न करे और न हम स्वयं इससे स्वत: को वंचित होने दें। हड़तालों को घटाने के लिए औद्योगिक न्यायालयों में सुधार करना पड़ेगा। यह व्यवस्था करनी होगी कि वे शीघ्र निर्णय दें और उनके निर्णय पूँजीपतियों द्वारा भी मनवाए जाएँ।

संयमित उपभोग

तीसरा और अंतिम प्रश्न है उपभोग का। पश्चिमी देशों की आर्थिक क्रांति और विचार प्रक्रिया के संपूर्ण इतिहास में अर्थव्यवस्था के इस तीसरे पक्ष की ओर प्राय: बिल्कुल ध्यान नहीं दिया गया है। भारतीय संस्कृति न केवल इसकी ओर ध्यान देती है, वह इस पर बल भी देती है। वह कहती है कि अनियंत्रित उपभोग असमान वितरण का

कारण है। उपभोग में संयम बरतने वाला और सादा व्यक्ति अपनी चेष्टा से अपने परिवार का ही नहीं, संपूर्ण समाज और मानवमात्र का जीवन बदल दे सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार उत्पादन उपभोग का नियंत्रण नहीं करता, उपभोग ही उत्पादन का नियंत्रण करता है। अमर्यादित और असंयत उपभोग की वह वृत्ति है, जो स्वदेश के उत्पादन से तृप्त न होकर विदेशों पर नज़र डालती है और उन्हें खा डालने की इच्छा से साम्राज्यवाद के भयंकर रूप में प्रगट होती है।

मोटे तौर पर यह भारतीय विकेंद्रित अर्थ नीति की रूपरेखा है। इसमें संपत्ति सिद्धांततः समाज की है, मनुष्य को काम करने का अधिकार है और सभी व्यक्तियों को काम दिलाने की ज़िम्मेदारी भी है। विश्व की नई आर्थिक क्रांतियों में इस प्रकार के प्रयोग नहीं हुए हैं।

आमदनी के अनुपात के निर्णय का प्रश्न यद्यपि पीछे से नाक पकड़ना है परंतु यदि उसे भी लें तो भारतीय जनसंघ आमदनियों का अनुपात 1 और 20 करने का निर्णय कर चुका है। यदि कम-से-कम आमदनी 100 रुपए हो तो अधिक-से-अधिक 2000 होनी चाहिए। कर्मचारियों, किसानों, मज़दूरों तथा पूँजीपतियों सभी की आमदनी को इस अनुपात में लाने की चेष्टा की जानी चाहिए।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 25, 1954

□

5

भारतीय जनसंघ वार्षिक अधिवेशन, बंबई महामंत्री प्रतिवेदन*

भारतीय जनसंघ का दूसरा राष्ट्रीय वार्षिक अधिवेशन बंबई में 24-26 जनवरी, 1954 को संपन्न हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता भारतीय जनसंघ के दूसरे अध्यक्ष पंडित मौलिचंद्र शर्मा ने की। इस अधिवेशन में दीनदयालजी द्वारा प्रस्तुत भारतीय जनसंघ के वर्ष 1953 का महामंत्री प्रतिवेदन।

भारतीय जनसंघ का प्रथम वार्षिक अधिवेशन कानपुर में दिनांक 29, 30, 31 दिसंबर, 1952 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में हुआ। यह अधिवेशन अनेक दृष्टियों से अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। जनसंघ की स्थापना यद्यपि 21 अक्तूबर, 1951 को दिल्ली में हो गई थी, फिर भी आम चुनावों के पूर्व इसका स्वरूप और संगठन जनता के सम्मुख केवल निर्वाचन की दृष्टि से ही आया था। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने चुनावों के संबंध में अपने देशव्यापी भ्रमण में इस बात को स्पष्ट कहा था कि जनसंघ का लक्ष्य केवल निर्वाचन लड़ना नहीं अपितु देश का सुनिश्चित आधार पर नव-निर्माण करना है। किंतु देश ने जनसंघ के इस स्थायी स्वरूप का दर्शन गत अधिवेशन में ही किया। अधिवेशन में भारत के अनेक प्रांतों से 607 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। गणतंत्र परिषद् के प्रधान श्री प्रफुल्ल चंद्र भंजदेव[1] तथा राजासाहेब पटना[2] भी विशेष निमंत्रण पर उपस्थित थे।

---

* देखें परिशिष्ट II, पृष्ठ संख्या 277।

1. प्रफुल्लचंद्र भंजदेव ने कानपुर जनसंघ अधिवेशन की त्रिदिवसीय कार्रवाई में भाग लिया था।
2. राजासाहेब पटना, राजेंद्र नारायण सिंह देव एक दिन के लिए जनसंघ के कानपुर अधिवेशन में सम्मिलित हुए। राजेंद्र नारायण सिंह देव भी गणतंत्र परिषद् से जुड़े थे।

अधिवेशन में पारित प्रस्तावों में से दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण थे। एक जनसंघ के सांस्कृतिक कार्यक्रम के संबंध में तथा दूसरा जम्मू और कश्मीर राज्य के विषय में। प्रथम से हमने अपने विशुद्ध राष्ट्रीय अधिष्ठान का विवेचन किया तथा दूसरे से भारत की एकता की रक्षा के लिए संघर्ष का आह्वान किया। डॉ. मुखर्जी यद्यपि संघर्ष के लिए उतावले या मतवाले नहीं थे किंतु वे जानते थे कि सत्ताधीश संघर्ष के बिना सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाएँगे। सार्वजनिक भाषण, कार्यकर्ताओं की बैठक तथा व्यक्तिगत वार्त्तालाप में हर प्रकार से संपूर्ण वातावरण में आने वाले तूफ़ान की गूँज सुनाई देती थी।

जम्मू-कश्मीर आंदोलन

गत वर्ष के प्रारंभिक मास जम्मू-कश्मीर आंदोलन में ही बीते। अधिवेशन के समाप्त होते ही डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू तथा जम्मू और कश्मीर राज्य के तत्कालीन मुख्यमंत्री शेख़ मुहम्मद अब्दुल्ला को पत्र लिखकर नीति परिवर्तन की माँग की[3]। पंडित नेहरू का उत्तर आया, किंतु उसमें विषय टालने की ही चेष्टा थी। कांग्रेस के हैदराबाद अधिवेशन में उन्होंने जो भाषण दिया, उससे भी स्पष्ट हो गया कि उनका कश्मीर संबंधी दृष्टिकोण जनसंघ से भिन्न था और वे शेख़ मुहम्मद अब्दुल्ला पर अंधविश्वास करके ही अपनी नीति निर्धारित कर रहे थे।

पंडित नेहरू के उत्तर के प्रकाश में इस संबंध में नीति निर्धारित करने के लिए अखिल भारतीय कार्यसमिति की बैठक हुई तथा भारत सरकार का दृष्टिकोण स्पष्ट होते हुए भी यह निर्णय किया कि समझौते का मार्ग ढूँढ़ने के लिए और भी प्रयत्न किया जाए। फलतः डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और पंडित नेहरू में बिना विलंब पत्र-व्यवहार हुआ, किंतु उसका कोई परिणाम नहीं हुआ। डॉ. मुखर्जी ने सुझाव दिया कि पंडित नेहरू से मिलकर इस विषय पर बातचीत की जाए और हल ढूँढ़ा जाए। किंतु पंडित नेहरू ने मिलने से इनकार कर दिया। ऐसी परिस्थिति में सिवाय शांतिपूर्ण सत्याग्रह के और कोई मार्ग नहीं बचा। रामराज्य परिषद् और हिंदू महासभा, जिन्होंने इस विषय में सहयोग का निश्चय कर लिया था, के प्रतिनिधियों को लेकर बनी संयुक्त समिति ने शांतिपूर्ण सत्याग्रह का निश्चय किया और इसकी घोषणा डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने दिल्ली में आयोजित एक विराट् जनसभा में दिनांक 6 मार्च, 1953 को कर दी। यह भी

---

3. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जम्मू और कश्मीर में मौलिक अधिकारों, नागरिक अधिकारों, उच्चतम न्यायालय, राष्ट्रपति की शक्तियाँ और वित्तीय एकीकरण को सुनिश्चित कराने के लिए जवाहरलाल नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला को पत्र लिखे। जनवरी-फरवरी, 1953 के मध्य हुए ये सभी पत्राचार 'Integrated Kashmir, Mookerjee—Nehru & Abdullah Correspondence' किताब में संकलित किए गए हैं। पं. दीनदयाल उपाध्याय द्वारा इन सभी पत्रों का संकलन प्रकाशित किया गया। दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय के खंड दो के परिशिष्ट में इसे सम्मिलित किया गया है।

निश्चय हुआ कि जम्मू के शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करके सत्याग्रह की पद्धति निश्चित की जाए। दिल्ली सरकार ने अंतिम घड़ी में धारा 144 की घोषणा करके जुलूस पर पाबंदी लगा दी। स्वभावत: जब लक्षावधि जनता बलिदानी वीरों की स्मृति में श्रद्धांजलि अर्पित करने एकत्र हुई हो, इस प्रकार की कोई क़ानूनी पाबंदी उठाए हुए तूफ़ान को नहीं रोक सकती। लाठियों और अश्रु गैस के बीच डॉ. मुखर्जी, वैद्य गुरुदत्त[4], बैरिस्टर निर्मलचंद्र चटर्जी[5] तथा श्री नंदलाल शास्त्री[6] बंदी बना लिए गए।

सत्याग्रह तथा दमन

देश भर में इस अन्यायपूर्ण पाबंदी के विरुद्ध हड़ताल हुई तथा प्रांतों से सत्याग्रही जत्थे दिल्ली और पठानकोट की ओर चल दिए।

दिल्ली तथा अन्य प्रादेशिक सरकारों ने सत्याग्रह को दबाने के लिए सभी उचित अनुचित हथियारों का प्रयोग किया। उत्तर प्रदेश में तो धारा 144 लगाकर सत्याग्रहियों को माला पहनाना तथा उन्हें अपने घर में ठहराना अथवा उनके प्रति सहानुभूति भी प्रदर्शित करना बंद कर दिया गया। जम्मू और कश्मीर राज्य के भारत में विलीन होने की माँग करने वाली सभाओं तथा पत्रकों आदि पर तो प्रतिबंध था, जबकि इसके विरोध में बोलने वालों को खुली छूट थी। प्रांतीय सरकारों के इस प्रकार के अप्रजातंत्रीय कार्यों का विरोध शांतिपूर्ण तरीक़े से चारों ओर किया गया। पंजाब सरकार ने तो सत्याग्रह प्रारंभ होने से एक मास पूर्व ही जनसंघ के सभी कार्यकर्ताओं को बंदी बना लिया था और इस प्रकार जम्मू के बंधुओं के प्रति सहानुभूति के मूल स्रोत को ही अवरुद्ध करने का प्रयत्न किया।

उत्तर प्रदेश में भी स्थान-स्थान पर धारा 144 का उल्लंघन करने के कारण जनसंघ के कार्यकर्ता बंदी बनाए गए तथा सहारनपुर में दो कार्यकर्ताओं को नज़रबंद भी किया गया। सरकार के सभी प्रकार के दमन के उपरांत भी सत्याग्रहियों की बाढ़ रुकी नहीं। दिल्ली में न केवल सत्याग्रहियों को पीटा जाता था अपितु रास्ता चलने वाली जनता पर भी लाठी प्रहार किया गया। जेल की यातनाएँ देकर सत्याग्रहियों के नैतिक बल को समाप्त करने का प्रयत्न हुआ। क़ानून के विरुद्ध शांतिपूर्ण तरीक़े से धारा 144 के उल्लंघन मात्र के लिए सश्रम कारावास और भारी जुरमाने की सजाएँ दी गईं। कार्यालय या निवास स्थान में रात्रि में छापा मारकर पकड़े हुए सत्याग्रहियों पर भी धारा 144 के

---

4. वैद्य गुरुदत्त भारतीय जनसंघ के दिल्ली के अध्यक्ष थे।
5. निर्मल चंद्र चटर्जी (1895-1971) हिंदू महासभा से संबद्ध थे। निर्मल चंद्र चटर्जी पहली (हिंदू महासभा) तीसरी (स्वतंत्र) और चौथी (स्वतंत्र) लोकसभा के सदस्य क्रमशः हुगली, वर्धमान और वर्धमान (सभी पश्चिम बंगाल) में चुने गए।
6. नंदलाल शास्त्री रामराज्य परिषद् से संबद्ध थे। नंदलाल शास्त्री पहली लोकसभा में सीकर, राजस्थान से सदस्य चुने गए।

उल्लंघन का मुक़दमा चलाया गया। जुरमाने की रकम वसूल करने के लिए घर के सभी सामान कुर्क किए गए यहाँ तक कि दुधमुँहे बच्चों की दूध की बोतलें भी पुलिस उठाकर ले गई।

इन उपायों से सत्याग्रह तो दब नहीं सकता था, किंतु हमने यह तय किया कि हमारी लड़ाई क़ानून की लड़ाई है और इसलिए पुलिस या मजिस्ट्रेट के ग़ैर-क़ानूनी व्यवहार को सहन करना न्यायपूर्ण सत्याग्रह की भावना के विरुद्ध होगा। फलत: न्यायालयीन क्षेत्र में हमने शासन के अन्यायों के विरुद्ध लड़ना प्रारंभ किया।

इसका श्रीगणेश डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी प्रभृति नेताओं की बंदी के विरुद्ध श्री रामनारायण सिंह[7] (एम.पी.) द्वारा सुप्रीम कोर्ट में दी गई हैबियस कॉर्पस अरजी से हुआ। सुप्रीम कोर्ट ने अरजी को मंजूर किया और डॉ. मुखर्जी आदि को मुक्त करने का आदेश दिया। देश में चारों ओर सरकारी अन्याय का ढोल पिट गया। सभी समाचार-पत्रों ने सरकार के इस क़दम की निंदा की। पार्लियामेंट में भी इस संबंध में विवाद हुआ किंतु चिकने घड़े पर पानी का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। जिन सत्याग्रहियों को सज़ाएँ दी गई थीं, उनकी भी अपीलें कीं और आपको यह जानकर हर्ष होगा कि शत-प्रतिशत मामलों में दी सज़ाओं को अन्यायपूर्ण ठहराते हुए या तो उन्हें रद्द कर दिया गया या बिल्कुल कम कर दिया गया। नज़रबंद किए व्यक्तियों को भी, जिनकी संख्या सौ से अधिक थी, सुप्रीम कोर्ट ने दो को छोड़कर सभी को मुक्त कर दिया।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने जेल से बाहर आने पर संपूर्ण भारत का दौरा किया तथा भारत-कश्मीर एकता के महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर जनमत संगठित किया। वैसे भी जनसंघ की ओर से आयोजित सभाओं, सत्याग्रहियों की विदाई, शहीदों की अस्थियों के जुलूस तथा अन्य कार्यक्रमों ने कश्मीर के प्रश्न को जनता का प्रश्न बना दिया। प्रारंभ में जो समाचार-पत्र हमारे साथ नहीं थे, वे भी साथ देने लगे। इसी प्रश्न पर लड़े गए सभी चुनावों में हमारी विजय हुई। किंतु नेहरूजी दलगत भावनाओं और सम्मान के मोह में नीति परिवर्तन के लिए तैयार नहीं थे।

जनसंघ यद्यपि संघर्ष कर रहा था, किंतु हमारा उद्देश्य सरकार से हार-जीत की लड़ाई का नहीं अपितु जम्मू के नेताओं से बातचीत करके सरकार अपनी नीति बदले, यह था। सत्याग्रह करते हुए भी हम बातचीत के लिए सदैव दरवाज़ा खटखटाते रहे। डॉ. मुखर्जी ने पार्लियामेंट में नेहरूजी से ज़ोरदार शब्दों में अपील की कि वे अपनी नीति बदलें। जम्मू की वस्तुस्थिति जानने का तथा प्रजा परिषद् के नेताओं एवं कश्मीर सरकार के बीच सद्भावना का वातावरण उत्पन्न करने का भी बराबर प्रयत्न करते रहें। इसके

---

7. रामनारायण सिंह हज़ारीबाग, बिहार से स्वतंत्र रूप से पहली लोकसभा के सदस्य चुने गए।

लिए कानपुर अधिवेशन द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव के अनुसार एक शिष्टमंडल भेजने का निश्चय किया, किंतु उसे कश्मीर-प्रवेश के लिए अनुमति-पत्र नहीं दिया गया। पंजाब प्रादेशिक जनसंघ के उपप्रधान अवश्य किसी तरह जम्मू पहुँच गए तथा उन्होंने जो रिपोर्ट दी वह अत्यंत ही चिंताजनक थी। सत्याग्रह के प्रारंभ होने पर बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी[8] एवं प्रो. वी.जी. देशपांडे[9] ने भी जम्मू जाने के लिए अनुमति-पत्र माँगा। उन्हें भी अनुमति नहीं दी गई। फलतः वे बिना परमिट के ही कश्मीर के लिए निकले। उन्हें जालंधर में नज़रबंद कर लिया गया।

कश्मीर के इस लौह-आवरण को भेदकर जम्मू जाने का डॉ. मुखर्जी ने निश्चय कर लिया। शेख़ मोहम्मद अब्दुल्ला और भारत सरकार को इसकी सूचना दे दी गई। डॉ. मुखर्जी 6 मई, 1953 को प्रातःकाल दिल्ली से चले। हज़ारों नागरिकों ने 'भारत-कश्मीर एक हो', 'डॉ. मुखर्जी की जय हो' के गगनभेदी नारों के बीच अपने नेता को विदाई दी। गोकुल से मथुरा जाते समय कृष्ण विदाई का यह दृश्य था। आँखें भरी हुई थीं, किंतु हृदय में लालसा थी, अन्याय का घेरा तोड़ने वाले अपने महान् नेता का अनुकरण करने की। मार्ग में स्टेशन-स्टेशन पर स्वागत हुआ। दिल्ली, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब उमड़ पड़ा।

आशा थी कि पंजाब सरकार डॉ. मुखर्जी को पठानकोट तक नहीं जाने देगी तथा मार्ग में ही बंदी बना लेगी। किंतु आशा के विपरीत सरकार ने उन्हें कश्मीर में प्रवेश करने का पूर्ण अवसर योजनानुसार दिया। कश्मीर राज्य की सीमा में पहुँचते ही उन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया तथा श्रीनगर की सब-जेल में रखा गया। भारत और कश्मीर सरकार के इस षड्यंत्र एवं डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी से संपूर्ण भारत में रोष की लहर दौड़ गई। चारों ओर विरोध दिवस मनाया गया। विरोध सभा के लिए दिल्ली में दीवान हॉल में एकत्र जनता पर निर्मम प्रहार हुआ। पठानकोट में 'परमिट तोड़ मोरचा' क़ायम हुआ। सत्याग्रहियों के जत्थे उधर बढ़ चले। 500 से अधिक सत्याग्रही पुलिस की आँख बचाकर दुर्गम नदी और वनों को पार कर जम्मू तक पहुँचे एवं उन्होंने वहाँ सत्याग्रह किया। दिल्ली में भी सत्याग्रह का वेग बढ़ गया।

चारों ओर से बढ़ते हुए दबाव को सहन करना शासन के लिए असह्य हो गया। शेख़ अब्दुल्ला भी अपनी नीतियों का परदाफ़ाश होते देख अधिक खुलकर खेलने पर उतारू हुआ। नेहरूजी कश्मीर गए। उन्हें अपनी नीति की विफलता साकार दिखी। बातचीत का दौर आरंभ हुआ। किंतु किसी अंतिम निर्णय पर पहुँचने के पहले ही

---

8. उमाशंकर त्रिवेदी भारतीय जनसंघ से पहली और तीसरी लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए।
9. वी.जी. देशपांडे गुना, मध्य भारत (अब मध्य प्रदेश) संसदीय क्षेत्र से पहली लोकसभा के सदस्य निर्वाचित हुए। देशपांडे अखिल भारतीय हिंदू महासभा से संबद्ध थे, लेकिन दूसरी लोकसभा में चुनाव हारने के बाद ये भारतीय जनसंघ में शामिल हो गए।

नेहरूजी महारानी एलिजाबेथ के राज्याभिषेक समारोह के निमित्त लंदन चले गए। बातचीत लौटने तक स्थगित हो गई किंतु लौटने पर··· ।

डॉ. मुखर्जी की कश्मीर में गिरफ़्तारी ग़ैर-क़ानूनी थी। अत: उनकी मुक्ति के लिए सुप्रीम कोर्ट में अरजी देने का विचार हुआ। उनके क़ानूनी सलाहकार ने पहले कश्मीर हाई कोर्ट में प्रार्थना-पत्र देना ही उचित ठहराया। फलत: उमाशंकर त्रिवेदी, डॉ. मुखर्जी के क़ानूनी सलाहकार के रूप में श्रीनगर गए। शेख़ अब्दुल्ला ने उन्हें डॉ. मुखर्जी से अकेले में मिलने की अनुमति नहीं दी, किंतु हाई कोर्ट ने आदेश दिया कि उन्हें अकेले में मिलने दिया जाए। बैरिस्टर त्रिवेदी ने हाई कोर्ट में डॉ. मुखर्जी की मुक्ति के लिए अरजी दी। उसका फ़ैसला 23 जून को होने वाला था। किंतु 23 जून की रात्रि को डॉ. मुखर्जी का देहांत हो गया।

डॉ. मुखर्जी का देहांत! एक अकल्पनीय घटना थी वह। देश उसके लिए तैयार नहीं था। हमें उनकी बीमारी की कोई सूचना नहीं मिली। और वास्तव में वे बीमार हुए भी नहीं। जेल में उन्हें हृदय का दौरा हुआ। जेल के डॉक्टर तथा डॉ. अली मोहम्मद ने उनकी चिकित्सा की और उसका परिणाम हुआ उनकी कश्मीर के अस्पताल में मृत्यु। यह मृत्यु रहस्यमय परिस्थितियों में हुई। न तो उनके साथियों को और न बैरिस्टर त्रिवेदी को ही उनके पास रहने दिया। योग्य चिकित्सा का अभाव, दुर्लक्ष्य तथा योजनाबद्ध अवहेलना के साथ देश के विचारवान व्यक्ति भी डॉ. मुखर्जी की मृत्यु को प्राकृतिक मृत्यु कहते हुए हिचकिचाते हैं। एक संदेह सबके मन में घर कर गया है। अत: चारों ओर से 'जाँच' की माँग हुई। पार्लियामेंट के बाहर और भीतर इसे बलपूर्वक रखा गया। किंतु भारत सरकार अपने माथे के कलंक को धोने के लिए तैयार नहीं। बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद जाँच की आवश्यकता एवं उसके औचित्य को समझते हैं, किंतु उसके लिए सक्रिय सहयोग के लिए वे भी समय रहते हाथ नहीं बढ़ाना चाहते। जनसंघ के विधानसभा सदस्य श्री ज्ञानेंद्रकुमार चौधरी ने बंगाल विधानसभा में जाँच के लिए प्रस्ताव रखा, जो सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ। विभिन्न प्रकार से हम इस माँग को लेकर आगे बढ़े हैं तथा जब तक यह पूरी नहीं होती, हम चैन नहीं लेंगे।

डॉ. मुखर्जी की मृत्यु पर कश्मीर सरकार ने वैद्य गुरुदत्त, श्री टेकचंद्र शर्मा तथा पं. प्रेमनाथ डोगरा को भी मुक्त कर दिया।[10] साथ ही जम्मू प्रजा परिषद् के भूमिगत नेताओं के साथ संपर्क स्थापित करके समझौते का हाथ बढ़ाया। कश्मीर के उप-गृहमंत्री, श्री दुर्गाप्रसाद धर तथा वहाँ के उस समय के उप-मुख्यमंत्री तथा आज के मुख्यमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद भी दिल्ली आए तथा पं. मौलिचंद्र शर्मा एवं पं. प्रेमनाथ डोगरा से

10. वैद्य गुरुदत्त और टेकचंद शर्मा ने डॉ. मुखर्जी के साथ ही 10 मई, 1953 को कश्मीर में प्रवेश किया था। बाद में इन्हें 'सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम' के तहत गिरफ़्तार किया गया था।

बाचचीत की। प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने एक वक्तव्य निकालकर सत्याग्रह बंद करके सहयोग की अपील की। संपूर्ण बातचीत का परिणाम यह हुआ कि संयुक्त संघर्ष समिति ने सत्याग्रह समाप्त करने का निश्चय कर लिया तथा सरकार को अवसर दिया कि वह अपनी नीति में परिवर्तन कर भारत-कश्मीर एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त करे। आगे की घटनाओं ने बताया है कि दिशा बदली है, यद्यपि अभी लक्ष्य पूरा नहीं हुआ है।

आंदोलन का भार बहुत कुछ दिल्ली, पंजाब और उत्तर प्रदेश को वहन करना पड़ा। किंतु बिहार, राजस्थान, मध्य भारत और पेप्सू[11] तथा बंगाल से भी काफ़ी संख्या में सत्याग्रहियों ने भाग लिया। सौराष्ट्र, महाराष्ट्र, बंबई, कर्नाटक, आंध्र, विंध्य प्रदेश से भी सत्याग्रही जत्थे गए। किंतु इनके प्रारंभिक दो-चार जत्थे ही सत्याग्रह कर पाए थे कि सत्याग्रह स्थगित हो गया। कुल मिलाकर 10,751 सत्याग्रहियों ने भाग लिया।

7 जुलाई को सत्याग्रह बंद करने की घोषणा हुई। इसके पूर्व ही कार्य समिति ने इस संबंध में विचार किया तथा आगे जनसंघ का संगठन दृढ करने की दृष्टि से योजना बनाई। पं. मौलिचंद्र शर्मा के सबल कंधों पर प्रधानमंत्री (जनसंघ) के साथ-साथ कार्यकारी अध्यक्ष का भी भार सौंपा गया। अपने स्वास्थ्य की भी चिंता न करते हुए उन्होंने सतत भ्रमण करके जनसंघ के संगठन कार्य के लिए कितना श्रम किया है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। आज हमने पुनः उन पर यह भार सौंपा है और हमें विश्वास है कि जिस महान् ध्येय की पूर्ति के लिए जनसंघ चला है, उसकी निरंतर प्रेरणा उनसे मिलती रहेगी।

15-16 अगस्त, 1953 को प्रयाग में अखिल भारतीय प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन हुआ। उसमें जनसंघ के आगे के कार्यक्रमों पर विचार हुआ। विधान में कतिपय संशोधन किए गए तथा डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का स्मारक बनाने का निश्चय हुआ। तदर्थ निधि एकत्र करने के लिए अपील निकलवाने तथा ट्रस्ट बनाने की व्यवस्था की गई है। अधिवेशन से लौटकर हमें निधि एकत्र करने के काम में जोरों से जुट जाना पड़ा।

यद्यपि वर्ष के 6 मास जम्मू-कश्मीर आंदोलन में ही गए, फिर भी संगठनात्मक दृष्टि से कोई काम नहीं हुआ, ऐसा नहीं है। गत वर्ष पंजाब, दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल, राजस्थान और मध्य भारत में ही संविधान के अनुसार प्रादेशिक समितियाँ बनी थीं तथा उनके सम्मेलन हुए थे, किंतु इस वर्ष उपर्युक्त प्रांतों के अतिरिक्त पेप्सू, गुजरात, बंबई, मध्य प्रदेश एवं विंध्य प्रदेश में भी समितियाँ बन गई हैं। इसके अतिरिक्त महाराष्ट्र, कर्नाटक और आंध्र में मंडल समितियाँ बन गई हैं। दो समितियाँ आसाम में भी काम कर

11. पेप्सू : पटियाला एंड ईस्ट पंजाब स्टेट्स यूनियन भारत का एक राज्य था। 1956 में राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफ़ारिशें लागू होने के बाद इसे समाप्त कर उसके क्षेत्र को पंजाब और हिमाचल प्रदेश में मिला दिया गया।

रही हैं। तमिलनाडु एवं उड़ीसा ही केवल ऐसे बचे हैं, जहाँ जनसंघ का काम अभी प्रारंभ नहीं हुआ। हैदराबाद राज्य को हमने अपने कानपुर अधिवेशन के प्रस्ताव के अनुसार तीन भागों में विभक्त करके महाराष्ट्र, कर्नाटक एवं आंध्र के साथ मिला दिया है। इस प्रकार कुल 536 मंडल समितियाँ इस समय काम कर रही हैं, जिनमें अधिकांश के अंतर्गत औसतन पाँच स्थानीय समितियाँ हैं। सदस्यों की संख्या अनुमानतः डेढ़ लाख है।

जनसंघ के सिद्धांतों एवं विचारधारा के प्रचार एवं सम्यक् आकलन की दृष्टि से स्वाध्याय मंडलों के आयोजन का विचार हुआ। कुछ अंशों में स्थान-स्थान पर उनका प्रारंभ भी हुआ किंतु उस दिशा में अभी बहुत काम करना बाक़ी है। हाँ, कार्यकर्ताओं की बैठकें तथा सम्मेलन विशेष रूप से आयोजित करके उनमें एकात्मता तथा वैचारिक दृष्टि से प्रौढ़ता लाने का प्रयत्न अवश्य हुआ। इस प्रकार के प्रयत्न महाराष्ट्र, मध्य भारत, उत्तर प्रदेश तथा पंजाब में किए गए। अन्य प्रांतों को भी इस दिशा में प्रयत्न करना होगा।

जनसंघ एक नया राजनीतिक दल है किंतु वह एक आदर्शवाद लेकर चला है। उसमें ऐसे लोगों की गुंजाइश नहीं, जो या तो यथास्थिति बनाए रखकर निहित स्वार्थों को पूरा करना चाहते हैं या जो अपने स्वार्थ पूरे न होने 'है-नहीं' होने के कारण असंतुष्ट हैं। हमारा संगठन उनका जमघट नहीं बन सकता। उनमें से यदि कोई हमारे बीच आता है या तो हमें उसे अपने आदर्शवाद में दीक्षित करना होगा या दूर से ही नमस्कार। राजस्थान जनसंघ को अपने कुछ विधानसभा सदस्यों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्रवाई करनी पड़ी। हमारे सदस्यों की संख्या तो 7 से घटकर 2 रह गई है, किंतु उसके बदले में जनता से हमने कई गुना शक्ति प्राप्त की है। अनुशासन किसी भी संगठन का प्राण है और हमारा निश्चय है कि किसी भी परिस्थिति में हम उसकी पकड़ ढीली नहीं होने देंगे।

चुनावों में उत्तरोत्तर सफलता

निर्वाचन की दृष्टि से भी जनसंघ आगे बढ़ा है। दिल्ली के तो सभी उपचुनावों में, दो को छोड़कर, जनसंघ की भारी बहुमत से विजय हुई है। फलतः वहाँ तो ऐसी धाक बैठ गई है कि कांग्रेस सरकार चुनावों से भयभीत होकर नामजदगी का सहारा लेने लगी है। अजमेर विधानसभा के दोनों उपचुनावों में जनसंघ की विजय हुई। किंतु राजस्थान, मध्य भारत, उत्तर प्रदेश एवं विंध्य प्रदेश में जो उपचुनाव लड़े, उनमें हम सफल नहीं हो पाए। इनमें राजस्थान, उत्तर प्रदेश में तथा मध्य भारत में तो स्थान नवीन क्षेत्र थे। किंतु हमने विंध्य प्रदेश और मध्य भारत में थोड़े-थोड़े मतों से स्थान खो दिया। मध्य भारत का क्षेत्र अकालग्रस्त था। कांग्रेस सरकार ने 6 लाख रुपए तकाषी में बाँटे। उसका उपयोग किया गया वोट ख़रीदने में। फिर भी हमें केवल 421 वोट कम मिले। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के रिक्त स्थान पर भी हमें सफलता नहीं मिली। स्पष्ट है कि वह

स्थान जनसंघ के पास एक महान् व्यक्तित्व के वरदान के स्वरूप था। निर्वाचनों में धनाभाव सभी जगह रहा है। जहाँ तक नगरपालिकाओं एवं अन्य स्थानीय संस्थाओं के निर्वाचनों का प्रश्न है, जनसंघ को आशातीत सफलता मिली है। पंजाब में यद्यपि 'सत्याग्रह काल' में चुनाव हुए थे, जबकि हमारे अनेक कार्यकर्ता जेलों में थे, फिर भी पठानकोट, पानीपत, सोनीपत, अंबाला आदि कई म्युनिसिपल कमेटियों पर हमारा अधिकार हो गया है। पेप्सू में बरनाला, फगवाड़ा और नारनौल में हमारी विजय हुई है। राजस्थान में किशनगढ़, नवलगढ़ आदि के चुनाव हमने जीते हैं। मध्य प्रदेश में बिलासपुर नगरपालिका हमारे अधिकार में है। वर्धा और आकोला में हमारे प्रधान हैं। जनपद चुनाव संयुक्त मोरचा बनाकर लड़े थे, जिसमें 27 लोग विजयी हुए। बिहार में सीतामढ़ी में पाँच में से तीन स्थानों पर हमारी विजय हुई तथा बाक़ी दो स्थानों पर केवल एक और आठ वोटों से हारे। बंगाल में हावड़ा के यूनियन बोर्डों में लड़े हुए स्थानों में से बहुमत पर हम विजयी हुए हैं। कलकत्ता के उपनगर में गार्डन रीच म्युनिसिपल चुनावों में हमें आठ में से चार स्थान मिले हैं। सौराष्ट्र में राजकोट में भी हमारी विजय हुई है तथा सौराष्ट्र जनसंघ के मंत्री श्री हरिसिंह गहलोत राजकोट म्युनिसिपैलिटी के प्रमुख हैं। महाराष्ट्र में जलगाँव में हमने एक उप-चुनाव जीता। मध्य भारत में यद्यपि नगरपालिकाओं के आम चुनाव नहीं हुए, किंतु जहाँ-जहाँ निर्वाचन हुए हैं, हमें अच्छी सफलता मिली है। सांवेर, मनासा, जावद और कुक्षी में हमारा बहुमत है। कुक्षी में तो हमने आठ में से सात स्थानों पर प्रत्याशी खड़े किए और सभी सफल हुए। अंजड़, सेंधवा, जावरा और आगरा में भी हमें सफलता मिली है। कुल मिलाकर 66 स्थानों में से हमने 46 लड़े, जिनमें 25 पर हमारी विजय हुई, जो कुल का 37 प्रतिशत तथा लड़े हुए स्थानों का 54 प्रतिशत आता है। विंध्य प्रदेश में महाराजपुर नगरपालिका में भी हम बहुमत से विजयी हुए।

किंतु सबसे प्रभावी विजय उत्तर प्रदेश के नागरिक चुनाव में हुई है। वहाँ इसने बोर्डों की सदस्यता के लिए 970 उम्मीदवार खड़े किए। उनमें से 581 सफल हुए हैं। जो 389 असफल रहे, उनमें से 37 लोगों को सफल होने के लिए केवल एक, दो या चार वोटों की कमी पड़ी। 107 की सफलता केवल दस या दस से कम वोटों से रह गई। आज वहाँ 39 स्थानों पर हमारे अध्यक्ष निर्वाचित हुए हैं। इनके अतिरिक्त 23 स्थानों पर हमारे अध्यक्ष निर्वाचित नहीं हो सके। परंतु वहाँ बोर्ड में हमारा ही बहुमत है। भगवान् की कृपा से अयोध्या, मथुरा, वृंदावन, गोकुल, बलदाऊ, हरिद्वार तथा ऋषिकेश आदि तीर्थ स्थानों पर जनसंघ के अध्यक्ष चुने गए। अहिंसा का ढोल न पीटते हुए भी हमारे अध्यक्ष ने मथुरा में गो-वध ही नहीं, पशु वध भी बंद कर दिया है तथा पुराने कांग्रेसी प्रधान द्वारा आयोजित कसाईखाने को रद्द कर दिया है। यद्यपि प्रांतीय सरकार ने हमारे मार्ग में रुकावट डालने की घोषणा की है किंतु जनता जनार्दन ने जनसंघ के प्रतिनिधियों को सेवा का अवसर

दिया है। दृढता से सेवा के पथ पर अग्रसर होंगे, नहीं तो कुरसियों को लात मार जनता के कंधे-से-कंधा मिलाकर नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए लड़ेंगे।

स्थानीय प्रश्नों पर आंदोलन

कश्मीर के राष्ट्रीय प्रश्न को लेकर आंदोलन करने के साथ ही जनसंघ ने स्थानीय महत्त्व के प्रश्नों पर भी विभिन्न रूपों में आंदोलन किया है। नागरिकों की साधारण अड़चनों को दूर करने से लेकर कर-वृद्धि विरोध तक के लिए ये आंदोलन हुए हैं। उत्तर प्रदेश के गोरखपुर ज़िले में हमारे प्रादेशिक उपप्रधान श्री ठाकुरदास साहनी ने गन्ना उत्पादक कृषकों का संगठन करके मिल चालकों की ज़्यादतियों के विरुद्ध सफल मोरचा लिया। प्रांतीय सरकार द्वारा आयोजित बिजली कर तथा अन्य करों की वृद्धि के विरुद्ध भी आंदोलन किया गया। बिहार में नहर कर में वृद्धि के विरोध में आंदोलन हुआ। श्री रामचंद्र शर्मा 'वीर'[12] ने जब बिहार में गो-हत्या विरोध के लिए अनशन किया तो उस प्रश्न को लेकर प्रांत भर में 200 गो-हत्या निषेध समितियों की स्थापना करके इस राष्ट्रीय आंदोलन को आगे बढ़ाया। आज बिहार विधानसभा ने इस संबंध में एक विधेयक जनमत जानने को भेजा है। महाराष्ट्र में भी इस दिशा में जनसंघ के कार्यकर्ता सतर्क हैं। पूना नगरपालिका के सदस्यों द्वारा जब मानधन लेने का प्रस्ताव किया गया तथा कमिश्नर ने व्यवस्थार्थ कर के लगाने का निश्चय किया, तब जनसंघ ने उनके विरुद्ध सफल आंदोलन खड़ा करके जनता को राहत दिलाई। मध्य प्रदेश में छुईखदान गोली कांड[13] के विरुद्ध सर्वपक्षीय आंदोलन के सूत्रपात का नेतृत्व जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने ही किया। वहाँ के बुनकरों के प्रश्न को लेकर हमारे कार्यकर्ता खड़े हुए तथा प्रादेशिक शासन द्वारा उनकी माँगों के प्रति उपेक्षा दिखाने पर केंद्र से मनवाने में सफल हुए। कर्नाटक में, मंगलौर में भी बुनकरों की समस्या को हमने हाथ में लिया है और इसके लिए शिष्टमंडल के रूप में मद्रास के मुख्यमंत्री श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से भी मिले। आंध्र में यद्यपि जनसंघ का कार्य नया है, फिर भी गोदावरी की बाढ़ से ग्रस्त क्षेत्रों में वहाँ के कार्यकर्ताओं ने पर्याप्त सहायता कार्य किया।

---

12. रामचंद्र शर्मा (वीर) ने गो-हत्या पर रोक लगाने के लिए 64 दिन लंबा अनशन किया था। रामचंद्र शर्मा ने क़रीब इस तरह के 80 अनशन किए थे। ये हिंदू महासभा के नेता थे। राजस्थान के जयपुर ज़िले के अंतर्गत 'बैराठ' (विराटनगर) पंचखंड पीठ, वज्रांग मंदिर के संस्थापक थे।
13. मध्य प्रदेश सरकार द्वारा छुईखदान तहसील (वर्तमान राजनंदगाँव, छत्तीसगढ़) को ख़त्म कर उसे बंद करने का निर्णय किया गया। 9 जनवरी, 1953 को तहसील भवन से ट्रेज़री और अभिलेख हटाते समय वहाँ की जनता ने विरोध-प्रदर्शन किया, जिसके बाद हुई पुलिस गोलीबारी में 5 लोगों की मृत्यु हो गई और सैकड़ों लोग घायल हो गए थे। इसके विरोध में जनसंघ के नेतृत्व में हुए सर्वपक्षीय आंदोलन के बाद सरकार ने नागपुर उच्च न्यायालय के माननीय न्यायमूर्ति श्री बी.के. चौधरी की अध्यक्षता में 14 जनवरी, 1953 को घटना की जाँच के लिए एक आयोग की नियुक्ति की थी।

विंध्य प्रदेश में बिजली कर में अनुचित और अनियमित वृद्धि के विरुद्ध भी हमने जोरदार और सफल आंदोलन चलाया। रीवा में हाउस टैक्स के विरोध में आंदोलन किया तथा उसमें भी सफलता मिली। पन्ना में किसानों की भूमि के प्रश्न को लेकर भी आंदोलन किया। मध्य भारत में वन्य जातियों को भूमि और लकड़ी काटने का अधिकार दिलाने के लिए आंदोलन चल रहा है। जयपुर में चुंगी विरोधी आंदोलन के पीछे हमारी शक्ति थी तथा नेतृत्व जनसंघ के नेता श्री चिरंजीलाल मिश्र ने किया।

इस क्षेत्र में जो कुछ स्थान-स्थान पर किया गया है, उसमें से कुछ की ओर इंगित मात्र किया गया है। आज के शासन में जनता के ऊपर होने वाले अन्यायों तथा नौकरशाही के अत्याचारों की मात्रा काफ़ी बढ़ गई है। उनके विरुद्ध हिम्मत के साथ आवाज़ उठाने वाले लोग नहीं रहे। कम्युनिस्ट पार्टी आदि के कार्यकर्ता जहाँ हैं, वे इन प्रश्नों को हाथ में लेते तो हैं किंतु उनका उद्‌देश्य समस्या का सुलझाव नहीं बल्कि असंतोष और संघर्ष ही रहता है। उनके आंदोलन के परिणामस्वरूप जनता को राहत नहीं मिलती, हाँ उनके मन में अधिक कड़वाहट और विफलता की भावना घर कर जाती है। हमें इस ओर अधिक ध्यान देना होगा। इस मार्ग से ही हम जनता को और जनता हमें समझ सकेगी तथा हमारी योजनाएँ ठोस और व्यावहारिक बनेंगी। दुःख में साथ खड़े होने वाला ही सच्चा मित्र तथा अन्याय और अत्याचारों से मुक्ति दिलाने वाला ही देवदूत माना जाता है। शक्ति और संगठन की यही कुंजी है।

रचनात्मक कार्य

आंदोलनात्मक ही नहीं, रचनात्मक मार्ग से भी हमारे कार्यकर्ताओं ने जनसेवा का प्रयास किया है। उत्तर प्रदेश में हमारे कार्यकर्ता 36 जूनियर स्कूल तथा गोरखपुर में एक शिशु मंदिर चला रहे हैं। 7 स्थानों पर निर्धन बस्तियों में निःशुल्क चिकित्सालय खोले हैं। बिहार में भी ऐसे औषधालय चल रहे हैं। मध्य प्रदेश में वन्य जातियों के लिए एक आश्रम की भी व्यवस्था की गई है। देहरादून के कार्यकर्ताओं ने ग्रामीण जनता के सहयोग से एक साढ़े चार मील लंबी नहर बनाई, जिसमें उन्होंने कुल 185 रुपया ख़र्च किया, जबकि उसका सरकारी तखमीना 85,000 रुपए का था। गोरखपुर और देवरिया ज़िलों में जहाँ सिंचाई का कोई प्रबंध नहीं, कई स्थान पर पोखरों को ठीक किया है। गाँव से लेकर मुख्य सड़क तक मार्ग बनाने का काम भी उत्तर प्रदेश तथा राजस्थान में कई स्थानों पर किया गया। जलगाँव में एक सार्वजनिक हौद का निर्माण किया है। और भी अनेक क्षेत्रों में कार्यकर्ता इस दिशा में काम कर रहे हैं। किंतु रचनात्मक कार्य में जुटे हुए लोग प्रसिद्धि परांङ्मुख होने के कारण अपना वृत्त भी केंद्रीय कार्यालय में भेजने से सकुचाते हैं।

श्रम संगठन नीति तथा कार्य

श्रम संगठनों की ओर भी जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने ध्यान दिया है। अभी तक हमारी नीति प्राय: स्वतंत्र यूनियन बनाने की नहीं। अत: हमारे कार्यकर्ता वर्तमान यूनियनों में ही काम कर रहे हैं। रेल कर्मचारियों में राजस्थान, बिहार और उत्तर प्रदेश में हमारे कार्यकर्ताओं ने अच्छा काम किया है। उज्जैन, रतलाम, भोपाल आदि में मज़दूर जनसंघ के नाम से हम श्रमिक संगठन का काम कर रहे हैं। वहाँ तालाबंदी आदि के विरुद्ध मज़दूरों ने जनसंघ के नेतृत्व में आंदोलन किया है। तलेगाँव में सुरक्षा उद्योग के कर्मचारियों का संगठन किया है। बीड़ी उद्योग में लगे हुए कर्मचारियों के संगठन का भी प्रयत्न हो रहा है। बिहार में अनेक स्थानों पर रिक्शा मज़दूर यूनियन, बिजली कर्मचारी यूनियन तथा मेहतर यूनियन आदि बनी हैं। बिहार तथा उत्तर प्रदेश के अनेक नगरों में दुकान-कर्मचारी संघ की स्थापना की है। दिल्ली में सिनेमा कर्मचारी संघ में श्री वी.पी. जोशी प्रधान के रूप में उनका काम कर रहे हैं।

यदि यह कहा जाए तो अत्युक्ति नहीं होगी कि श्रम क्षेत्र में अभी हमने प्रवेश ही किया है किंतु दो वर्ष की संस्था के लिए यह भी कोई कम नहीं है। हाँ, जहाँ-जहाँ हमने लोगों को संगठित करने का प्रयास किया है, हमारे कार्यकर्ता श्रमिकों के सहज ही विश्वास और श्रद्धा के केंद्र बन गए हैं। किंतु इन संगठनों की हमें दिशा निश्चित करनी होगी। अभी तक अहमदाबाद के कुछ संगठनों को छोड़कर मज़दूर-यूनियनें मार्क्सवादी सिद्धांत पर ही बनती और चलती हैं कि मालिक और मज़दूर के हित पृथक् हैं तथा उनमें सतत संघर्ष है। मज़दूर अपनी शक्ति से उस संघर्ष में विजयी हों, इसके लिए उसे संगठित होने की आवश्यकता है। कम्युनिस्ट कार्यकर्ता तो संगठन और शक्ति संचय का साधन भी संघर्ष मानकर मौक़े-बे-मौक़े संघर्ष के अवसर की तलाश में रहते हैं। जनसंघ को वर्ग संघर्ष का सिद्धांत मान्य नहीं। मालिक और मज़दूर दोनों का हित उद्योग की वृद्धि और विकास में है। वह कैसे हो, इसका विचार करना चाहिए। उत्पादन के दौरान अधिकाधिक सहकार्य तथा उपज का समतर बँटवारा हो सके, इसके लिए कोशिश करनी होगी। अत: वास्तव में तो हमें उद्योग-मंडलों की स्थापना करनी चाहिए, जो मज़दूर और मालिक दोनों के हितों की न्यायपूर्वक रक्षा कर सकें, एक के द्वारा दूसरे पर किए गए अन्यायों को रोक सकें तथा उनके लिए आचार-धर्म की व्यवस्था दे सकें। इसी आदर्श को प्राप्त करने के लिए आज हमें व्यवहार में किन मर्यादाओं के अंतर्गत काम करना चाहिए, यह छोटे तथा बड़े उद्योगों में काम करने वालों को पृथक् रूप से निश्चित करना होगा।

किसानों में हमारे लिए अच्छा क्षेत्र है। किंतु उस ओर अभी कार्यकर्ताओं का पर्याप्त ध्यान नहीं गया है। उत्तर प्रदेश में सीतापुर में प्रादेशिक सम्मेलन के अवसर पर एक किसान सम्मेलन का आयोजन किया गया, जिसमें आशातीत सफलता मिली। बंगाल और राजस्थान दोनों ही प्रदेशों में, जहाँ की कांग्रेस सरकारें ज़मींदारी और ज़मींदारी उन्मूलन की बातें

करते हुए भी उनके निहित स्वार्थों की रक्षा का प्रच्छन्न प्रयत्न कर रही हैं, हमारे विधानसभाई सदस्यों ने कृषकों के हितों के लिए संघर्ष किया है। हम हलवाहे को 'क्षेत्रपाल' बनाना चाहते हैं और उसके लिए भूमि के पुनर्वितरण की आवश्यकता समझते हैं। किंतु यह कार्य सहज नहीं तथा लुभावने नारों को लेकर खड़े होने वाले संगठनों ने इसे और भी कठिन बना दिया है। कृषि हमारे देश का मुख्य धंधा है। आज की कुटीर और ग्रामोद्योगों की गिरी हुई अवस्था में तो वह हमारा जीविकोपार्जन का एकमात्र साधन रह गया है। अतः भूमि की भूख सबको है। हमें उसे पूरा करना ही होगा। किंतु हमें भूमि लेनी होगी उन भूस्वामियों से, जो कल तक ज़मींदार थे और आज हज़ारों एकड़ के स्वामी किसान बन गए हैं। गुजारे के लायक़ भूमि पर खेती करने वाले किसान इस प्रकार के आंदोलनात्मक प्रचार से भयभीत होकर अपने सहयोगी खेतिहर मज़दूरों को सशंक दृष्टि से न देखने लगें, इसकी चिंता करनी होगी। दूसरे दलों ने गाँवों के वातावरण को विषाक्त बनाकर वहाँ के सामाजिक सामंजस्य को बिगाड़ दिया है। आवश्यकता है कि हम गाँवों में जाएँ और वहाँ के समाज को संगठित करें, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक न्याय और आर्थिक समता के अवसर उपलब्ध करा सकें। हमें अपने बंधुओं को राजनीतिक दलों के शोषण से बचाना होगा।

जनसंघ का कार्य महिलाओं में नगण्य था। कानपुर अधिवेशन में केवल 7 महिला प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। किंतु इस वर्ष इस क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई है। कश्मीर सत्याग्रह में लगभग 70 महिलाओं ने भाग लिया, जो उत्तर प्रदेश, दिल्ली, राजस्थान तथा मध्य भारत से आईं। स्थान-स्थान पर महिलाओं में काम करने के लिए विशेष विभाग खोला गया है। प्रायः सभी प्रादेशिक सम्मेलनों के साथ महिला-सम्मेलनों का भी आयोजन किया गया तथा इस अधिवेशन में भी उसका आयोजन है। महाराष्ट्र महिला-समाज इस दृष्टि से अन्य प्रांतों की अपेक्षा अधिक आगे है।

इस प्रकार हमने कार्य तो गत वर्ष में बहुत किया है। किंतु अभी भी बहुत कुछ करना बाक़ी है। हमारी अपनी कमज़ोरियाँ भी हैं, जिन्हें हमको प्रयत्नपूर्वक दूर करना होगा। समाज और परिस्थिति की आवश्यकताएँ भी हैं, जिन्हें पूरा करने के लिए हमें आगे बढ़ना होगा।

यह तो मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हमारे कार्यकर्ता परिश्रम, सेवा और त्यागभावना में तथा राजनीतिक सूझबूझ में दूसरे दलों के कार्यकर्ताओं से हर प्रकार से आगे हैं। किंतु उनका दृष्टिकोण विधायक है। अतः ऐसे अवसरों पर जब किसी भी समस्या या अवसर का अनुचित लाभ उठाकर दूसरे दल के लोग अशांति और अव्यवस्था उत्पन्न कर अपनी क्रियाशीलता का परिचय तथा सामर्थ्य का आभास देते हैं, वह शांत रहता है। फलतः कई बार उसे ऐसा लगता है कि मानो दूसरे आगे निकल गए। हमें उनका अनुकरण नहीं करना है। हाँ, विधायक कार्य का वेग हम जितना अधिक बढ़ाएँगे, उतना ही दूसरे

समाज को बहका नहीं सकेंगे। लिखा-पढ़ी तथा कार्यालयीन व्यवस्था की आदत अभी तक हमारे कार्यकर्ताओं को नहीं है, वह हमें डालनी होगी।

राष्ट्र का सैनिकीकरण

पाक-अमरीका सैनिक संधि हमारे देश के लिए एक संकट का कारण है। और भी अनेक संकट हमारे सम्मुख हैं। हमें उन सबका डटकर मुक़ाबला करना होगा और उसके लिए देश को तैयार करना होगा। शासन देश की रक्षा सामर्थ्य बढ़ाए, इस संबंध में हमने सरकार से माँग की है। 'राष्ट्र का सैनिकीकरण' यही हमारा नारा है। राष्ट्र की सुरक्षा के लिए हम योग्य वातावरण उत्पन्न करें।

स्वदेशी का प्रचार

अपने इस मोरचे को मज़बूत करने के साथ ही देश की आर्थिक समृद्धि की भी चिंता करनी होगी। जनता की दशा को सुधारने तथा बेकारी को रोकने के लिए हमने कुटीर उद्योगों को अपना आधार माना है। तदर्थ विधायक रूप से हमें 'स्वदेशी' का व्यापक प्रसार करना होगा। जनता स्वदेशी का अधिकाधिक व्यवहार करे, यहाँ तक कि हम विदेशी उद्योगपतियों के मुक़ाबले एक प्रबल मोरचा खड़ा कर सकें। हमारे कार्यकर्ताओं को इस क्षेत्र में आदर्श उपस्थित करना होगा। हम हाथकरघे का ही कपड़ा उपयोग में लाएँ। हम देशी साबुन का उपयोग करें, लाइफबॉय, लक्स और सनलाइट का नहीं। हम थोड़ा सा ध्यान दें तो हमें अपनी ज़रूरत की प्राय: सभी वस्तुएँ स्वदेशी और कुटीर-उद्योगों से भी मिल सकेंगी।

गाँवों की ओर

हमें यह भी ज्ञात है कि भारत गाँवों का देश है। गाँवों में अभी हमें बहुत काम करना है। अत: आवश्यकता है कि हमारी दृष्टि 'ग्रामोन्मुखी' हो। किंतु एक बात का हम ध्यान रखें। गाँवों में जाकर उपदेश देने वालों की हमारे देश में कमी नहीं है। यदि कमी है तो ग्रामवासियों के साथ एकरस होकर ठोस काम करने वाले कर्मठ कार्यकर्ताओं की। इस कमी को हमें पूरा करना है। साथ ही हमें गाँवों में उत्पन्न हो रही नई चेतना का स्वागत करना है और उसे ठीक दिशा देना है। वह दिन दूर नहीं है, जबकि गाँवों का नेतृत्व उन्हीं लोगों के हाथ में होगा। सेवा, विनम्रता तथा कार्यकुशलता से हमें नगरों तथा गाँवों के बीच जीवित कड़ी का काम करना है। अब तक देश का धन, श्रम तथा प्रतिभा गाँवों से खिंच-खिंचकर नगरों में केंद्रित होती रही है। हमें इस प्रवाह को उलटा करने का प्रयत्न करना है। अत: हम 'गाँव की ओर चलें' का घोषवाक्य लेकर आगे बढ़ें। समय हमारे साथ है।

जन शिक्षा

बालिग मताधिकार के फलस्वरूप देश की सर्वोच्च शक्ति सर्वसाधारण जनता के हाथ में पहुँच गई है। निरक्षरता, अज्ञान तथा आर्थिक अभाव के कारण कभी-कभी हमें बालिग मताधिकार का दुरुपयोग होता हुआ दिखाई देता है। लेकिन निराश होने का कारण नहीं। बालिग मताधिकार जनता को राजनीतिक दृष्टि से शिक्षित करने का एक बड़ा साधन है। लोकतंत्र की सफलता के लिए हमें जनता को योग्य शिक्षा देनी होगी। एक हज़ार साल की ग़ुलामी ने हमारे दृष्टिकोण को बिगाड़ दिया है। किसी भी समस्या पर राष्ट्रीय हित की दृष्टि से विचार करना हम भूल सा गए हैं। राष्ट्रीय सम्मान तथा श्रद्धा केंद्रों के प्रति उदासीनता का भाव आ गया है। संकीर्णता तथा रूढ़िवाद ने प्रगति को रोक रखा है। छुआछूत का भेदभाव समाज की जड़ को खोखला कर रहा है। अंग्रेज़ी शिक्षा ने असत्य मूल्यों को हमारे जीवन में प्रतिष्ठित कर दिया है। श्रम की प्रतिष्ठा घट गई है। अनुशासन तथा संयम का अभाव दिखाई देता है। हमें देश को सुशिक्षित करके जीवन के सही मूल्यों को फिर से स्थापित करना है। कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैले हुए विशाल राष्ट्र की एकात्मता का अनुभव करना है। सर्वसाधारण को राष्ट्रीय दृष्टिकोण देना है। जिससे वह समाज विरोधी तत्त्वों के हाथ में खेलने से बच सके और कोई दल अथवा व्यक्ति उसके अज्ञान तथा अभाव का अनुचित लाभ न उठा सके। जन शिक्षा केंद्रों द्वारा जनता को योग्य राजनीतिक शिक्षा देने का कार्यक्रम अपनाया जा सकता है। जागरूक जनता देश के उज्ज्वल भविष्य की गारंटी होती है।

उपर्युक्त घोषवाक्य हमारे आगामी कार्यक्रम की रूपरेखा निश्चित करते हैं। इनके साथ ही नागरिक चुनाव कई प्रदेशों में हो चुके हैं तथा शेष में होने बाक़ी हैं। जनसंघ को उनमें भाग लेना होगा और उसकी तैयारी हमें अभी से करनी चाहिए। चुनावों में कई बार असफलता का कारण आख़िरी घड़ी सब काम करना भी होता है। पेप्सू में अभी हम 11 स्थानों पर तथा केरल में एक स्थान पर चुनाव लड़ रहे हैं। आसपास के प्रदेशों को उनकी सहायता करनी होगी। धनाभाव सभी ओर है, पर वह कभी बाहर से पूरा नहीं होता। समाज से ही हमें वह एकत्र करना होगा; स्वयं पेट बाँधकर बचाना होगा और मितव्ययितता के साथ ख़र्च करना होगा। अपने लक्ष्य पर दृष्टि केंद्रित कर आत्मविश्वास और निष्ठा के साथ हम आगे बढ़ें। विश्वास रखें, भविष्य हमारे साथ है। किंतु हम भविष्य में देश के लिए एकता, समता, संपन्नता और आध्यात्मिकता के महान् आदर्शों को साकार कर सकें, यह उत्तरदायित्व हमारे ऊपर है, उसे पूरा करने को भगवान् ने हमें भारत माँ की कोख से जन्म दिया है, इस निष्ठा से हम अपने मार्ग पर अग्रसर हों।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 8, 1954

□

6

फ्रेंच बस्तियों में तत्काल पुलिस कार्रवाई हो

दीनदयालजी ने इंदोर में 13 अप्रैल को फ्रांसीसी बस्तियों[1] में भारतीयों पर चल रहे भीषण दमनचक्र के प्रति गंभीर चिंता व्यक्त करते हुए भारत सरकार से यह माँग की कि वहाँ शीघ्र पुलिस कार्रवाई की जाए। पूरा वक्तव्य।

भारत में फ्रांसीसी बस्तियों के निवासियों ने एक साम्राज्यवादी जाति से मुक्त होने के लिए एक शांतिपूर्ण संघर्ष प्रारंभ कर दिया। स्वतंत्र होने का अधिकार परंपरागत है। भारत में ब्रिटिश राज्य की समाप्ति पर यह आशा की जाती थी कि फ्रांसीसी और पुर्तगाली शासन भी इसी प्रकार का बुद्धिमत्तापूर्ण मार्ग अपनाएँगे तथा उपनिवेशवाद के अंतिम चिह्न से इस महान् देश को मुक्त कर देंगे। समय की माँग को समझने में इन शक्तियों के असफल होने से एवं शांतिपूर्ण समझौते के सभी मार्गों की समाप्ति हो जाने से इन क्षेत्रों के निवासियों ने स्वयं अपने पर ही अपने को स्वतंत्र करने का पुनीत कर्तव्य भार लिया है। वे अब और अधिक बंधन, जिसमें उनको बाँध रखा है, सहन करने को प्रस्तुत नहीं।

भारत की सरकार तथा जनता अभी तक पांडिचेरी तथा अन्य क्षेत्रों में जो हो रहा है, उसके शांत दर्शक रहे हैं। फ्रांसीसी अधिकारियों ने आतंक का एक वातावरण निर्माण कर दिया है।[2] जनता के द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि कौंसिलर तथा मेयर पदच्युत कर दिए

---

1. फ्रांसीसी बस्तियाँ : 1674 में फ्रांस ने अपना प्रथम उपनिवेश दक्षिणी-पूर्वी भारत के कोरोमंडल तट पर पांडिचेरी (फ्रांसीसी साम्राज्य की राजधानी) को बनाया, तत्पश्चात् 1688 में चंद्रनगर (प. बंगाल), 1723 में यनम, 1725 में माहे और 1739 में कराइकल पर अधिकार किया।
2. भारतीयों पर दमनचक्र तत्कालीन फ्रांसीसी गवर्नर जनरल आंद्रे मेनार्ड (1950-1954) और जार्ज एस्वर्गुएइल (अक्तूबर 1954-नवंबर 1954) के आदेश पर चलाया गया था।

जा रहे हैं और नज़रबंद किए जा रहे हैं। सहस्रों की संख्या में व्यक्तियों को जेल भेजा जा रहा है और उन्हें सभी प्रकार के अमानवीय कष्ट दिए जा रहे हैं। राष्ट्रीय व्यक्तियों को फ्रांस शासित क्षेत्र में प्रवेश की अनुमति नहीं दी जाती। यद्यपि फ्रांसीसी पुलिस ने निर्दोष व्यक्तियों को बंदी बनाने तथा सज़ा देने के लिए बार-बार भारतीय सीमाओं का उल्लंघन किया है।

इन सीमाओं में स्थित हमारे बंधुओं के प्रति हमारा महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। हम परस्पर संबंध से बँधे हुए हैं। हम उन्हें अपने रहते सताए जाते हुए नहीं देख सकते।

उन्हें हमारे क्रियात्मक सहयोग की आवश्यकता है, अतएव भारत सरकार को 'ठहरो व देखो' की नीति को छोड़कर भारत के विरुद्ध इन बर्बरताओं का अंत करने के लिए एक शक्तिशाली क़दम उठाना चाहिए। तत्काल ही पुलिस कार्रवाई की जाने की शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है। यदि सरकार अपने कर्तव्य को पूरा करने में असफल होती है तो भी भारत के निवासी हज़ारों की संख्या में अपने बंधुओं की सहायता के लिए जाएँगे और हम देखेंगे कि दुष्ट शक्तियाँ जड़ से उखाड़ दी जाती हैं तथा राष्ट्रीयता की भावना प्रसारित होती है। जनसंघ इस महान् उद्देश्य के लिए अपना पूर्ण सहयोग प्रदान करता है।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 26, 1954

□

7

विदेशी उपनिवेशवाद का अंत हो

दीनदयालजी द्वारा छिंदवाड़ा में, मध्य प्रदेश जनसंघ के अधिवेशन का उद्‍घाटन भाषण।

भारत की विदेशी बस्तियों में जो मध्ययुगीन साम्राज्यवाद और शोषण अभी तक बना हुआ है, उसका हमें न केवल एशियावासी के नाते बल्कि भारतीय के नाते भी अंत करना ही चाहिए, क्योंकि पांडिचेरी, माहे, करैकल तथा यनम में हमारे बंधु अपने आपको विदेशी बंधनों से मुक्त करने के लिए बड़ा कड़ा संघर्ष कर रहे हैं।

स्वतंत्र विदेश नीति

फ्रांस तथा पुर्तगाल की सरकारों को हिंद चीन से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। राष्ट्रवादी शक्तियों को अधिक समय तक दबाकर नहीं रखा जा सकता। यदि विदेशी शासन स्थिति को नहीं पहचानते और जन-भावनाओं का आदर नहीं करते तो उन्हें विवश होकर अपना आधिपत्य छोड़ना पड़ेगा।

भारतीय राष्ट्रवाद न केवल विदेशी बस्तियों में प्रभावी हो रहा है बल्कि उसका प्रभाव अंतरराष्ट्रीय क्षेत्रों में भी दिखाई देता है। इस क्षेत्र ने दो शक्तिशाली गुटों से अलग रहकर एक स्वतंत्र नीति को चुना है। चूँकि हमारी सरकार ने इस पृथकत्व की नीति का दृढता से पालन नहीं किया है, हम अपनी तटस्थता की नीति पर डटे रहने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं। हमारी इस ढुलमुल नीति के कारण अमरीका हमसे न केवल रुष्ट हो गया है बल्कि उसने पाकिस्तान को, जहाँ कि भारत विरोधी भावना बिल्कुल

स्पष्टतया दिखाई देती है, सैनिक सहायता देने का निश्चय किया है। भारत ने अमरीका द्वारा दी जाने वाली इस सहायता को भारत के प्रति अमैत्रीपूर्ण माना है।

संभवत: अमरीका भारत को डरा-धमकाकर अपने गुट में मिलाना चाहता है। भारत का हित एवं उसकी आत्म-प्रतिष्ठा, दोनों ही इस बात में है कि हम ऐसी धमकियों के आगे झुकने से इनकार कर दें।

कर नीति

भारत सरकार एवं राज्य सरकारों की कर नीति दुर्भाग्यपूर्ण है। अंतरराज्यीय बिक्री-कर संविधान का स्पष्ट उल्लंघन है। मध्य प्रदेश में पुस्तकों पर लगने वाले बिक्री-कर की जितनी आलोचना की जाए, कम है। कपड़ा, कपास आदि पर जो विभिन्न कर लगाए जा रहे हैं, वे साधारण जनता पर ही भार बनते हैं।

पेकिंग समझौता

पेकिंग समझौता करके भारत सरकार ने तिब्बत में नेपाल के हितों की उपेक्षा कर ठीक नहीं किया, जबकि नेपाल की सारी विदेश नीति भारत पर ही निर्भर करती है।

कश्मीर

कोलंबो में श्री मोहम्मद अली से कश्मीर के प्रश्न पर वार्त्ता करने से इनकार कर नेहरूजी ने बड़ा साहस का क़दम उठाया है, जिसके लिए हमें उन्हें बधाई देनी चाहिए। किंतु नेहरूजी को एक बात यह करनी चाहिए थी कि वे भी अली से कश्मीर का वह एक-तिहाई भाग वापस माँगते, जो आज अवैध रूप से पाकिस्तान के हाथ में है। इसके लिए राष्ट्रपति का आदेश बहुत पहले ही होना चाहिए था।

बख्शी सरकार की टालमटोल नीति

बख्शी सरकार की टालमटोल नीति निंदनीय है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि भारत सरकार ने अब्दुल्ला की भाँति बख्शीजी को भी बहुत से मामलों में ढील सी दे रखी है। अभी तक कश्मीर का संविधान निर्मात्री परिषद् ने राज्य के भविष्य के बारे में जो कुछ तय किया है, उसे राष्ट्रपति की वैधानिक स्वीकृति तो प्राप्त हो ही जानी चाहिए। साथ ही यह भी आवश्यक है कि राज्य के संविधान को बनाने के लिए राज्य के विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों को साथ लिया जाए। वास्तव में तो राज्य पुनर्गठन आयोग को इस राज्य के भविष्य का भी निर्णय करना चाहिए था।

कश्मीर में नए चुनाव हों

कश्मीर में शीघ्र ही आम चुनाव होने चाहिए। कश्मीर जाने के लिए अब तक परमिट व्यवस्था लागू है, जबकि इस प्रथा की समाप्ति के लिए भारत को अपने आज के एक महान् सपूत डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का बलिदान देना पड़ा।

—पाञ्चजन्य, मई 10, 1954

□

8

फ्रेंच बस्तियों के बारे में नेहरूजी का वक्तव्य निराशाजनक

नागपुर से दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य।

भारत स्थित फ्रेंच बस्तियों के विषय में फ्रांसीसी शासकों से वार्त्ता करने के बारे में दिया गया अभी हाल का प्रधानमंत्री पंडित नेहरू का वक्तव्य 'निराशाजनक' है। घड़ी को पीछे लौटाने का यह प्रयत्न सर्वथा अविवेकपूर्ण होगा। जिस सरकार का अस्तित्व ही नहीं रहा, उससे वार्त्ता का अर्थ क्या है?

भारत सरकार को अविलंब मुक्त हुए विभिन्न क्षेत्रों की जन-सरकारों को मान्यता देनी चाहिए और साथ ही उन्हें समस्त संभव सहायता प्रदान कर शेष बस्तियों को मुक्त करने में योग देना चाहिए।

प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने पहले फ्रेंच बस्तियों को भारत सरकार को हस्तांतरित कर देने की माँग रखी थी। वर्तमान वक्तव्य में प्रारंभिक माँग से मुँह मोड़ना और देशभक्त तत्त्वों के प्रति सरासर विश्वासघात करना होगा।

फ्रेंच बस्तियों की जनता को मैं अपना मुक्ति संघर्ष जारी रखने का आह्वान करता हूँ और साथ ही भारतीय जनता की ओर से उसे समस्त संभव सहायता का आश्वासन देता हूँ।

—पाञ्चजन्य, मई 17, 1954

□

9

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग

हम लोग अपने समाज का संगठन करने के लिए इस संघ कार्य में लगे हैं और अपने समाज की समस्याएँ हम सुलझाएँगे ही, ऐसा हमारा विश्वास है। तब यह प्रश्न उठता है कि हमारे समाज की परिधि कितनी है। कई बार इसको संकुचित लोग कहते हैं। तब शायद उनका यही अर्थ होगा कि हमने जो सीमा हिंदू की बाँध कर रखी है, उसका ही संगठन क्यों? फिर पारसी, मुसलमान आदि का क्यों नहीं? या फिर मनुष्य मात्र का ही क्यों नहीं या फिर इस ग्रह में रहने वाले प्राणिमात्र या दूसरे ग्रह में रहने वाले व्यक्तियों का क्यों नहीं? अब तो दुनिया छोटी हो गई है, अब तो फ़ौरन समाचार इधर-से-उधर पहुँच जाते हैं तो फिर संपूर्ण मानवता का हमारे संगठन से कोई संबंध है या नहीं?

तो फिर मानव का ही संगठन क्यों करें? यह अपील क्यों है कि हम मानव का संगठन करें। हममें व मानव में कुछ समानता है, जिसमें अपील है, कुछ नाता-रिश्ता रहता है। यदि केवल भौतिक दृष्टि से देखें तो कोई अपील है नहीं। समान स्वार्थ पूर्ति के लिए एक जगह पर आए मनुष्यों से समाज बनता है, ऐसा भौतिकवादी कहते हैं। कहते हैं, स्वतंत्रता का युग, नहीं तो अंतरनिर्भरता (Inter dependence) का युग है। एक-दूसरे के बिना जब काम चलता नहीं तो फिर समान स्वार्थ के आधार पर संपूर्ण मानव का ही आधार मानना चाहिए। यह रूसो के सामाजिक अनुबंध सिद्धांत (Social Contract theory) का अगला क़दम है। इसी प्रकार मार्क्स व एंजेल्स ने कहा 'दुनिया के मज़दूरों एक हो'। चूँकि दुनिया के सारे मज़दूरों का स्वार्थ एक है, इसलिए उसी समान स्वार्थ के आधार पर मज़दूरों के समाज (वर्ग) की रचना हो। फिर राष्ट्र की रचना या ट्रेड यूनियन की रचना, यह सब समान स्वार्थ के आधार पर ही होती है।

पर यह सिद्धांत ठीक नहीं। स्वार्थ की समानता पर जो संगठन होता है, उसमें उदात्त

भावनाओं का प्रगटीकरण नहीं होता। उसमें तप, त्याग, बलिदान की कोई व्याख्या नहीं। नहीं तो राजस्थान की मरुभूमि के लिए इतने बलिदान क्यों हुए? बाजरे की फ़सल भी नहीं हो पाती। अभी एक स्थान पर पानी पिलाया तो कहा कि यह दो वर्ष पुराना है। जिस मरुस्थल की प्यास करोड़ों वर्षों से सूरज पानी बरसाकर बुझा नहीं सका, उसे हमारे पूर्वजों ने अपने रक्त से कैसे बुझाया? एक सज्जन ने कहा कि कश्मीर का एक-तिहाई हिस्सा तो क्षति का क्षेत्र (Deficit area) है, उसे पाने के लिए क्यों कष्ट सहें। मैंने कहा, वह तो हमारी मातृभूमि है, इसलिए करें। इसीलिए उसके लिए लोगों ने बलिदान किए।

एक बच्चा दुर्घटना ग्रसित हो जाता है तो हम दौड़कर उठा लेते हैं। माता पुत्र से क्यों प्रेम करती है? क्यों रोटी बनाकर खिलाती है? यह इसीलिए कि एक सूत्र मानव जीवन में चलता है। मनुष्य के व्यक्तित्व में ठेस पहुँची कि वह प्रतिक्रिया के लिए दूसरा रास्ता निकाल लेता है। कहावत है, कुम्हारिन से बस न चला तो गधे के कान ऐंठ दिए। चपरासी झुँझला गया, उसने आगंतुक को भी, माँ को और बच्चे को भी झुँझला दिया। जैसे मनुष्य का व्यक्तित्व होता है, वैसे उसमें सामूहिक प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। मानस शास्त्री कहते हैं, मनुष्य में ज्ञान, कर्म व भक्ति (भावनाएँ) हैं—तीन प्रकार की वस्तुएँ, जिसके आधार पर व्यक्तित्व बनता है। कभी किसी की प्रधानता कभी दूसरे की, यही बहुत बार विचार पास-पास बैठे व्यक्ति को आता है। यह ज्ञान का संचार है। ज्ञान का संचार मेस्मेरिज़्म या हाव-भाव के द्वारा भी होता है। एक-दूसरे का अनुकरण सब करते हैं—यह कर्म की एकरूपता बनाती है। सहानुभूति भी होती है, यह भावना हर एक के अंदर होती है। व्यक्तित्व जब दूसरे से मिलता है तो दोनों के मिलने से समान विचार, समान कर्म, समान भावनाओं का निर्माण होता है, यानी सामुदायिक भावना निर्माण होती है। इसी प्रकार कई व्यक्ति मिलकर सामुदायिक मन बनाते हैं। इसी को तत्त्ववेत्ताओं ने ब्रह्म कहा, कहा कि यह सबमें है। संपूर्ण जगती का एक अधिष्ठान है, इसके कारण एक संगठन हो सकता है। स्वार्थ के ऊपर खड़ा किया गया संगठन अस्थायी होता है, टिकाऊ नहीं; क्योंकि नवीन स्वार्थ उत्पन्न होते रहते हैं। उदात्त भावना रहती नहीं, त्याग के लिए गुंजाइश नहीं, इस प्रकार विश्व की सभी क्रियाओं की कारण मीमांसा कर नहीं सकते।

एक ब्रह्म हममें है, इसी के कारण समान व्यक्तित्व का बनना होता है। फिर परिवार का एक व्यक्तित्व हो जाता है। कुल की मर्यादाएँ एवं रीतियाँ हो जाती हैं। मानव समाज का एक सामुदायिक मन है, पर उसकी प्रतीति आत्मीयता की कल्पना पर निर्भर होती है। एक सिपाही युद्ध से आया, सराय में रात को ठहरा। कल्पना घर की, बच्चे की करने लगा, उसी के स्वप्न देखने लगा। एकाएक बच्चे के रोने की आवाज़ से उसकी आँख खुल गई। सराय के मालिक से कहा कि यह सोने नहीं देता। मालिक ने कहा, बच्चा बीमार है, वह स्त्री यहाँ से जाती नहीं। तब वह स्त्री और बच्चे को वहाँ से

निकालने के लिए उधर गया तो देखा कि वह महिला उसी की स्त्री व बीमार बच्चा उसी का था। वह टहल करने लगा। आत्मीयता मानव की अनुभूति का आधार है। गीता में लिखा है, तत्त्वदर्शी पुरुष ब्राह्मण, चांडाल, गाय, हाथी में एक ही ब्रह्म देखता है। यह आत्मीयता जैसा जीवन चल रहा है, उसी में से निर्माण होती है। यह संप्रदाय, जाति, वर्ण आदि इसी प्रकार बनते हैं और यह सामुदायिक मन जब एक भूखंड से संलग्न हो जाते हैं, तब यह एक राष्ट्र की इकाई बनती है।

इसी प्रकार सामुदायिक चेतना अनेक प्रकार के इन समूहों से संलग्न होती है। इन सब इकाइयों को निगड़ित करके जब चलते हैं, तब सफलता मिलती है और जब हम इनको भुलाकर चलें, प्रतिक्रिया के लिए तब काम कभी हुआ नहीं? मूलभूत प्रवृत्तियों की अवहेलना करके नहीं चल सकते। पर मन को sublimation यानी ऊँचा उठाना पड़ता है।

इस कार्य को दो प्रकार से संसार में किया जा रहा है। एक तो पश्चिमी जगत् में। ईसाई धर्म में बीच की दीवारें तोड़कर, जो ईसाई वह एक, मानकर प्रयत्न किया। पोप का साम्राज्य बना और अंत में राष्ट्र की भावना बलवती होने पर वह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। मुसलमान भी स्वाभाविक इकाइयों की अवहेलना करके चले। एक खलीफा को बनाकर सरकार चलेगी। पर राष्ट्रीयता की अवहेलना करने वाला ख़लीफ़ा राज्य ख़त्म हो गया। ऐसा ही प्रयत्न कम्युनिस्ट कर रहे हैं। एक ख़लीफ़ा,[1] एक पोप, जो मॉस्को में रहेगा, उसी के अनुसार सब कार्य चलेंगे, एक राज्य चलेगा। अंतर इतना ही कि वे मज़हब का आधार लेते थे, साम्यवादियों ने भौतिकता का आधार रखा।

फिर मानव की एकता क्या कोरा स्वप्न है? नहीं, एक दूसरा इसका आधार हो सकता है, वह हमारा है, सभी इकाइयों को मानकर। ये इकाइयाँ मानव की एकता के लिए विघातक नहीं वरन् संपूरक हैं, यह समझकर चलें। परिवार समाज के लिए विघातिक न हो, वर्ण राष्ट्र के लिए न हो, इसी तरह राष्ट्र भी मानव मात्र के लिए विघातक नहीं, विरोधी नहीं। आज संसार एकरूपता देखना चाहता है, एकता नहीं। इसलिए संसार के मानव जीवन के विकास के लिए इन इकाइयों को नष्ट करने की आवश्यकता नहीं। इन इकाइयों को मानवता के लिए पोषक बनाना चाहिए। पेड़ को काटने में एकरूपता हो सकती है, जैविक एकता नहीं।

—जून 8, 1954

□

---

1. मुहम्मद साहब के निधन के बाद इसलाम के प्रमुख को ख़लीफ़ा कहते थे, 1924 तक इसलामी जगत् पर उस्मानों (ऑटोमन तुर्क) का दबदबा बना रहा, लेकिन टर्की के शासक कमाल पाशा ने इस पद को समाप्त कर गणराज्य घोषित कर दिया।

10

संघ शिक्षा वर्ग, बौद्धिक वर्ग

कल हमने विचार किया कि संपूर्ण मानवता का ध्यान रखकर हमारे पूर्वजों ने राष्ट्र कार्य प्रारंभ किया। मानवता व राष्ट्रीयता विरोधी भावना नहीं। अपितु जो लोग मानवता के लिए राष्ट्र तत्त्व को भुलाकर आगे बढ़े, वे मानवता की एकता को तो सिद्ध कर नहीं सके, वरन् अपने को भी खंड-खंड कर बैठे। मानवता के लिए राष्ट्र की इकाई हमने रखी है। संघ के जन्मदाता ने राष्ट्र को ही इकाई क्यों रखा, कुल व जाति की अवहेलना क्यों की?

पहले तो लोकसंग्रह में क्या संभाव्य हो सकता है? दूसरा, जिस आधार पर यह संगठन संपूर्ण संसार में निर्माण कर सकते हैं, वह हमारे पास है क्या? तब तक क्या करें? संसार को तब तक यह लगेगा नहीं, जब तक कि हम अपने देश में सुखी जीवन व्यतीत करते हुए संसार को नहीं दिखते। यदि आध्यात्मिकता के आधार पर मानव मात्र को चलाना आवश्यक है तो जिनके पास वह थाती है, जिनमें वर्षानुवर्ष यह अध्यात्म चला आया है, वे सुखी व बलशाली जीवन जीते हुए संसार को दिखने चाहिए। तो फिर यह करने के लिए हम जो कोई भी इस देश में रहते हैं, उन सबका संगठन क्यों न करें!

पर संगठन का आधार क्षणिक नहीं स्थायी होना चाहिए। रेल के डिब्बे में भीड़ रहती है। बाहर से नए यात्री को नहीं आने देते। पर आपस में मैं-मैं, तू-तू भी हो जाती है। ट्रेड यूनियन, ज़मींदार एसोसिएशन सब अस्थायी आधार पर बन जाते हैं। 1921 में कांग्रेस द्वारा चलाए गए ख़िलाफ़त आंदोलन के समय स्वामी श्रद्धानंद[1] ने दिल्ली की

---

1. स्वामी श्रद्धानंद (1856-1926) ने 1922 के जामा मसजिद भाषण में भारत की स्वाधीनता के लिए प्रत्येक नागरिक को पांथिक मतभेद भुलाकर एकजुट होने का आह्वान किया था। 23 दिसंबर, 1926 को नया बाज़ार (दिल्ली) स्थित निवास स्थान पर अब्दुल रशीद नामक युवक ने शास्त्रार्थ के बहाने प्रवेश कर हत्या कर दी।

जामा मसजिद से भाषण दिया, पर उनको मुसलमानों ने मार डाला। मोपला विद्रोह[2] हुआ, मुसलमान अलग हो गए।

संगठन का एक लक्ष्य उदात्त होना चाहिए। लक्ष्य को मन में रखकर जितना व्यापक हो सकता है, उतना व्यापक होना चाहिए और आधार स्थायी होना चाहिए। अभी जो पंजाबी भाषा-भाषी प्रांत की माँग सिक्खों ने सांप्रदायिक आधार पर रखी, वहाँ एक सज्जन ने सिक्खों की बुराई करते हुए कहा कि इनके गुरुद्वारों की तो सन् 1946-47 में रक्षा हमने की। मैंने कहा, आप उनकी बहुत बुराई करते हैं, अच्छा होता गुरुद्वारा नष्ट हो जाता। उन्होंने कहा, वाह! ऐसा कैसे हो सकता था, गुरुद्वारा तो हमारा है, इसलिए रक्षा की। एक स्थान पर एक सज्जन ने बताया कि किस प्रकार एक मंदिर की रक्षा करने के लिए मुसलमानों से झगड़ा मोल लिया। मैंने कहा, आप तो मूर्ति पूजक नहीं और संघ की शाखा पर यह कहकर नहीं आए कि ध्वज पूजा होती है। उन्होंने कहा, मैं मूर्तिपूजक न होऊँ, पर मंदिर तो हमारा है, अर्थात् हिंदू का है। काशी के बाबा विश्वनाथ के मंदिर में हरिजनों को न जाने देने के समर्थक भी 'हरिजन ईसाई बन रहे हैं', सुनकर कहते हैं कि आख़िर वे हिंदू हैं, हम प्रेम से उनके लिए मार्ग निकालेंगे, पर वे गिरजाघर क्यों जाएँ। बंगाल, बिहार का कितना झगड़ा सन् 1912 से और आज भी चल रहा है। पर नोआखाली में अत्याचार हुआ तो बिहार ने प्रतिक्रिया की,[3] कहा, हिंदू पर अत्याचार है। नेपाल में या जो आज भारत के भाग नहीं हैं, वहाँ 'भारत माता की जय' पर आपत्ति हो सकती है पर 'हिंदू की जय' कहने में नहीं। मज़दूर पर गोली चली तब चिंता हो सकती है, पर आँसू भी आँखों में नहीं आते। कितने लाख वर्ष हुए, राम के विलाप को पढ़कर आज भी आँखों में आँसू आ जाते हैं। प्रतिवर्ष काग़ज़ का रावण जलाकर हम कुकृत्य का बदला लेते हैं, जब तक लेते रहेंगे, तब तक राम का हमारा सबंध अटूट रहेगा। 'हिंदू' शब्द से इतिहास से हमारा नाता जुड़ जाता है। जो यहाँ 'आदिवासी' कहकर पुकारा जाता है—यह ग़लत है, उन्होंने भी अपने को 'आदि हिंदू' कहा। एक ईसाई हो गए हैं मेरे रिश्तेदार। भगवान् कृष्ण से नाता टूट गया, जन्माष्टमी के दिन का आनंद चला गया। केवल ईसाई कहने से ही सारा संबंध देश के महापुरुषों और इतिहास से छूट गया।

जैसे माला के अंदर एक सूत्र होता है, वैसा यह सूत्र हिंदू का है। इस सूत्र के द्वारा

---

2. मोपला विद्रोह : केरल के मालाबार क्षेत्र में मोपला मुसलमानों द्वारा 1921 में हिंदुओं के विरुद्ध किया गया दंगा था। एनी बेसेंट ने आरोप लगाया था कि इस दौरान मुसलिम मोपलों ने बहुतेरे हिंदुओं का जबरन पंथ परिवर्तन कराया और ऐसे क़रीब एक लाख लोगों की हत्या कर दी या उन्हें अपना घर छोड़कर कहीं और पलायन के लिए मजबूर कर दिया, जो अपना पंथ बदलने के लिए राजी नहीं हुए।
3. मुसलिम लीग द्वारा 16 अगस्त, 1946 को 'प्रत्यक्ष कार्रवाई दिवस' के तहत उकसाने पर नोआखाली नरसंहार में हज़ारों हिंदुओं का क़त्लेआम हुआ था, जिसकी प्रतिक्रिया में उत्तरी बिहार व सीमावर्ती इलाकों में दंगे हुए थे।

इस राष्ट्र की धारणा हुई। शंकराचार्य ने कहा कि सबमें ब्रह्म है, पर फिर संगठन किया तो भारत का ही, केवल चार मठ यहीं बनाए। उन्होंने कहा, यह साधन है, सीढ़ी है, अपना देश जो संपूर्ण जगत् की एकता का साक्षात्कार का साधन है, जैसे माता यशोदा ने संपूर्ण विश्व का दर्शन कृष्ण के लालन-पालन करने में ही पाया।

फ़ौज में भी अपना-अपना कार्य अलग-अलग होता है। एक-दूसरे के ऊपर लादने का प्रयत्न भी कोई करता नहीं। पर एक-दूसरे के पोषक बनकर रहें। सब राष्ट्रों को अपनी-अपनी विशेषताओं को लेकर मानव धर्म का पालन करना चाहिए। केरल में माता अधिकारिणी है, सब संपत्ति का उत्तराधिकार पुत्री को मिलता है। यहाँ पिता संपत्ति के अधिकारी हैं और पुत्र को उत्तराधिकार प्राप्त है। पर दोनों स्थानों पर ही समाज चल रहा है। विविधता में सुखी है। अपने विकास के लिए उपयुक्त क्षेत्र व उसी के द्वारा समाज ब्रह्म की सेवा हो रही है। लादी हुई एकरूपता हमें नहीं चाहिए। सब राष्ट्र मानवता की सेवा करें। यह ही स्वाभाविक प्रकृति है। हमने किसी के ऊपर विचार लादा नहीं।

जो व्यक्ति केवल अपनी चिंता करते हैं या जिसे व्यवस्था में वैचारिक अनुशासन कहा है, ये दोनों अंधकार को प्राप्त करते हैं। ऐसा अपने यहाँ कहा गया है। परंपरा और संस्कृति सबको नष्ट कर दिया तो देश कहाँ रहेगा? आज चीन में उसकी आत्मा प्रगट होती है क्या? ईरान में भी राष्ट्रीयता का जोश उठ खड़ा हुआ है।

हमारी कल्पना तो एक स्वार्थ की नहीं, एक अधिष्ठान की है। इसीलिए जब हम अपने राष्ट्र का संगठन कहते हैं, तब यह मानवता विरोधी नहीं, पर उसका पोषक संगठन है। हम सही आधार पर हैं। मानव का संगठन सत्य व व्यापक आधार पर यदि हो सकता है तो हिंदू तत्त्वज्ञान पर ही हो सकता है। यह हमारी धरोहर है, थाती है, हमारे सिवा और किसी के पास न यह तत्त्वज्ञान है, न यह दृष्टि है, न यह धरोहर है। संपूर्ण शक्तियाँ लगाकर हिंदू का संगठन कर इसको प्रगट करना होगा।

—जून 9, 1954

□

11

जनसंघ की पुनर्गठन नीति

बंबई में दीनदयालजी की पाञ्चजन्य से विशेष भेंट।

राज्य पुनर्गठन[1] के संबंध में जनसंघ के अनुसार देश में एक राज्य तथा एक ही मंत्रिमंडल होना चाहिए। कार्य व्यवस्था की दृष्टि से लगभग 100 जनपद हों और इसकी व्यवस्था के लिए केंद्र द्वारा राज्यपाल नियुक्त किए जाने चाहिए। इससे हमें लाभ होगा, इससे भारत की एकता दृढ हो सकेगी। इससे फूटपरस्ती, द्वेष आदि की कुभावना भी नष्ट हो सकेगी। आर्थिक दृष्टि से भी इस व्यवस्था में कम ख़र्चा होगा और राज्य-सूत्र संचालन में भी सुगमता होगी। इसके लिए अवश्य ही संविधान में हेर-फेर करना होगा, लेकिन राष्ट्र के हित के लिए संविधान में परिवर्तन किया जा सकता है और किया जाना चाहिए। पुनर्गठन की दृष्टि से संविधान में परिवर्तन तो करना ही होगा।

जनसंघ ने वर्गीकरण करते समय अपने समक्ष यह सिद्धांत रखा है कि देश में कम-से-कम राज्य बनाए जाएँ। संघ ने विलीनीकरण को माना है और विघटन कम-से-कम करने का प्रयत्न किया है। सिर्फ़ हैदराबाद, मध्य प्रदेश, बंबई और उत्तर प्रदेश के चार ज़िलों का विघटन माना है। आपने बताया कि भाषा का महत्त्व है और वह जीवन का अंग है, लेकिन जनसंघ राज्य पुनर्गठन में भाषा को ही सबकुछ नहीं मानता है।

महाराष्ट्र और गुजरात जिन्होंने मिलकर बंबई को उन्नतिशील बनाया है, एक ही

---

1. 22 दिसंबर, 1953 को न्यायाधीश फजल अली की अध्यक्षता में पहले राज्य पुर्नगठन आयोग की स्थापना हुई। इस आयोग के अन्य दो सदस्य ह्दयनाथ कुंजरू एवं के.एम. पणिक्कर थे। आयोग ने 30 सितंबर, 1955 को अपनी रिपोर्ट केंद्र सरकार को सौंपी और इसी रिपोर्ट के आधार पर 1956 में नए राज्यों का निर्माण हुआ और 14 राज्य एवं 6 केंद्र शासित राज्यों का गठन किया गया।

राज्य में रहें। पिछले बहुत समय से महाराष्ट्रीय और गुजराती मिलकर रह रहे हैं। अतः इनके जीवन में एकरूपता आ गई है। अतः जनसंघ पश्चिम प्रदेश के निर्माण की माँग करता है। इस प्रांत में लगभग सभी मराठी और गुजराती भाषाभाषी आ जाते हैं। केवल भाषा का आधार ग़लत है। यदि पुनर्गठन के लिए केवल भाषा पर ही ध्यान दिया तो यह भावना आज नहीं तो कल अवश्य ही घर कर जाएगी कि एक भाषाभाषी दूसरे पर अधिकार कर लेगा। अतः वे अपने प्रांत में दूसरों को बसने न देने का प्रयत्न करेंगे। क्योंकि उन्हें यह शंका रहेगी कि कहीं इनका बहुमत न हो जाए और अलग राज्य की माँग न कर दें। कारण क्या होगा? क्या वे अपने राज्य में दीवार बनाकर बैठ जाएँगे? क्या कहीं आएँगे-जाएँगे नहीं?

भाषाओं को निश्चित करना ही कठिन है, जैसे—बेलगाँव, वहाँ का प्रत्येक व्यक्ति कन्नड़ और मराठी दोनों भाषा जानता है। बताइए, यह कौन से प्रदेश में मिलेगा। जैसे यहाँ पर महाराष्ट्रियों द्वारा यह शिकायत प्रस्तुत की जाती है कि गुजरातियों के कारण हमारी प्रगति रुकी तो उसी प्रकार कर्नाटक का कहना है कि महाराष्ट्रियों के कारण हमारी प्रगति रुकी।

इसका अर्थ यह कदापि नहीं कि एक भाषा का होना नुक़सानदायक है, वैसे हमारा यह भी आग्रह नहीं कि दो भाषा ही होनी चाहिए। लेकिन संघ यह मानता है कि भाषा के अलावा अन्य विषयों, जैसे—आर्थिक एवं सुरक्षा आदि पर विचार किया जाना आवश्यक है। वैसे ही एक भाषा के दो राज्य भी हो सकते हैं, जैसे—विंध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत, राजस्थान और बंगाल को एक भाषा का ही राज्य हमने माना है।

वर्तमान परिस्थिति के अनुसार देश के हित को दृष्टि में रखते हुए सुरक्षा के विचार से पश्चिमी प्रदेश आवश्यक है।

शिक्षा माध्यम के बारे में तथा शिक्षण नीति आदि के बारे में राज्यपाल विचार करें और जहाँ जो भाषाभाषी अधिक हों, वहाँ उस भाषा का माध्यम हो सकता है। आज भी जहाँ शासकीय कार्रवाई 4 या 5 भाषाओं में प्रकाशित होती है, वहाँ एक और भाषा में अधिक प्रकाशित करनी होगी। लेकिन केवल उसके लिए तो दो भाषाओं का अंत करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती।

अगर किसी भी परिस्थिति में पश्चिम प्रदेश का निर्माण नहीं होता है तो बंबई को महाराष्ट्र में मिलाया जाना चाहिए। लेकिन भाषा के आधार पर नहीं। अगर बंबई में एक भी महाराष्ट्रीय नहीं हो तो भी बंबई महाराष्ट्र का अंग है, वैसे ही कलकत्ता में एक भी बंगाली न हो तो भी वह बंगाल का अंग है। हमें भौगोलिक दृष्टि से भी पुनर्गठन के समय विचार करना होता है। आपने कहा कि मैं यह बात मानने को तैयार नहीं हूँ कि वहाँ के लोग क्या कहते हैं। क्या हम बार-बार ऐसे छोटे-छोटे पहलुओं पर जनमत

लेंगे? इसके अलावा अन्य बहुत सी ऐसी बातें रहेंगी, जिनके लिए जनता से अवश्य राय ली जाएगी। जैसे हमने गोवावासियों से नहीं पूछा कि तुम भारत से मिलना चाहते हो या नहीं। हमें उनकी इच्छा का पता ही है।

प्रांतीय विधानसभाओं को तो समाप्त कर ही देना चाहिए, क्योंकि वे केवल अपने प्रांत की ही दृष्टि से विचार विनिमय करती हैं। संपूर्ण देश में एक ही राज्य चलेगा और वह आज नहीं तो कल को बनेगा।

इस राज्य पुनर्गठन ने तो यह सार्वजनिक रूप से सिद्ध कर दिया है कि भारतवर्ष में केवल भारतीय जनसंघ ही एकमेव अखिल भारतीय संस्था है, जिसने एक आवाज़ से राज्य पुनर्गठन रचना की एक ही माँग की है। इसके साथ ही यह भी सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस, अखिल भारतीय संस्था नहीं है, क्योंकि वह ऐसे प्रश्न पर एकमत होकर अपनी माँग प्रस्तुत नहीं कर सकी।

'जनसंदेश' हिंदी पाक्षिक के उद्घाटन के अवसर पर मैं आपको बधाई देता हूँ। पत्र में केवल सही और सत्य रूप से ही प्रचार किया जाना चाहिए। पत्रकार का कार्य ही होता है सत्य का वर्णन करना। आप आदर्शवादी मनोवृत्ति से पत्र चलाएँ, जिससे सबको प्रेरणा मिल सके। मैं अपनी संपूर्ण शुभकामनाएँ प्रेषित करते हुए उत्तरोत्तर वृद्धि की कामना करता हूँ। भौतिक दृष्टि से उन्नति न भी हो तो भी आदर्श का अभिप्राय सदैव बना रहे।

—पाञ्चजन्य, जून 14, 1954

□

12

दीनदयालजी का बिहार दौरा

दीनदयालजी ने 27 से 30 जून तक बिहार का भ्रमण किया। इस भ्रमण के सिलसिले में वे पटना, मुंगेर, बेगूसराय, फॉरबिसगंज आदि स्थानों पर गए। पटना में वे केवल कार्यकर्ताओं से मिल सके और उन्हें मुखर्जी स्मारक-पक्ष को अधिकाधिक सफल बनाने के लिए मार्ग-निर्देश किया। मुंगेर, बेगूसराय, फॉरबिसगंज आदि स्थानों पर भी दीनदयालजी ने भाषण दिए।

हमारी असफल विदेश नीति

नेहरूजी की विदेश नीति यथार्थवाद पर टिकी न होने के कारण अभी तक उसमें असफलताएँ परिलक्षित होती रही हैं।

अफ्रीका या श्रीलंका के प्रवासी भारतीयों के कल्याण के लिए अभी तक कौन सी व्यवस्था हो सकी है? कश्मीर का प्रश्न अभी भी सुरक्षा-परिषद् में पड़ा हुआ है। आज भारत चारों ओर भय के वातावरण से घिर गया है। एक ओर अमरीका पाकिस्तान के सहारे या पाकिस्तान अमरीका का सहारा लेकर भारत को निगलने का सपना देख रहा है और दूसरी ओर रूसी दलाल पंचमांगियों का रुख़ अख्तियार कर देश को रूस की साम्राज्य-छाया में ला रखने का षड्यंत्र कर रहे हैं।

देश की यह स्थिति है और हमारे प्रधानमंत्री पं. नेहरू को अंतरराष्ट्रीय स्थिति की ही अधिक पड़ी है। उन्हें हर अंतरराष्ट्रीय विषय पर कुछ-न-कुछ बोलते रहने की आदत सी लग गई है और अनावश्यक होने पर भी वे हर जगह टाँग अड़ाते रहते हैं।

भारत की विदेश-नीति को 'बिल्कुल तटस्थ' रखने की आवश्यकता है। हर सत्ता शिविर को ख़ुश रखने की नीति से हम ख़तरा मोल लेते हैं। चीन के प्रधानमंत्री के साथ

हमारे प्रधानमंत्री की जो बातें हुई हैं, उनमें भी भारतीय हित की पृष्ठभूमि को सामने रखा नहीं गया।

प्राचीन भारतीय संस्कृति की पारस्परिक सद्भावना के आधार पर स्थिर की गई सरकार राष्ट्र के लिए यथार्थतः कल्याणकारी हो सकती है। भारत की भी आंतरिक समस्याएँ हैं, किंतु उनके समाधान के लिए कांग्रेस या अन्य संस्थाएँ जो नीति अपनाती हैं, वह अनुचित है। राग-द्वेष या इस प्रकार की अन्य बातों का सहारा लेने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए यथार्थवादी और रचनात्मक दृष्टि को अपनाना होगा, तभी सच्चा वैभव सुलभ हो सकेगा।

□

—पाञ्चजन्य, जुलाई 12, 1954

13

'पुर्तगाली, गोवा छोड़ो' लीगेशन के सामने विराट् प्रदर्शन*

भारतीय जनसंघ की ओर से पुर्तगाली बस्तियों[1] में चलने वाले दमनचक्र[2] और अड़े रहने की नीति के विरोध में नई दिल्ली में एक विशाल प्रदर्शन का आयोजन किया गया। 2,000 से अधिक व्यक्ति सायंकाल 5:30 बजे गांधी मैदान में एकत्र हुए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की पुण्य तिथि के अवसर पर उनके जयघोष 'आज़ादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' के गगनभेदी नारे लगाते प्रदर्शनकारी पुर्तगाली दूतावास की ओर बढ़ चले। जुलूस का नेतृत्व भारतीय जनसंघ के महामंत्री दीनदयाल उपाध्याय कर रहे थे। नगर के प्रमुख बाज़ार चाँदनी चौक, जामा मसजिद और अंत में नई दिल्ली में कनॉट प्लेस से होता हुआ जुलूस निश्चित समय पर ठीक 8 बजे हार्डिंग्स एवेन्यू स्थित पुर्तगाली दूतावास के सम्मुख पहुँचा।

'विदेशियों भारत छोड़ो', 'गोवा हमारा है', 'जहाँ गए अंग्रेज़ फिरंगी, जाएँ वहीं उनके साथी संगी', के नारों से आकाश गूँज रहा

---

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ संख्या 361 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 369।

1. पुर्तगाली बस्तियाँ : 1498 में वास्को डी गामा के कालीकट (मालाबार तट) आगमन के साथ ही पुर्तगालियों ने भारत में अपनी कंपनियाँ स्थापित करनी प्रारंभ कीं, इसी क्रम में प्रथम पुर्तगाली वायसराय फ्रांसिस्को डी अल्मीडा (1450-1510) ने 1500 में कोचीन (केरल) को व 1510 में गोवा को मुख्यालय बनाते हुए दमन (1558), दीव (1535), दादर व नगर हवेली पर अपना अधिकार किया।
2. पुर्तगाली बस्तियों में भारतीय नागरिकों व जनसंघ द्वारा चलाए जा रहे मुक्ति आंदोलनों पर दमनचक्र गवर्नर जनरल पाउलो बेनार्ड गुएड्स (1952-1958) के आदेश पर चला था।

था। पुर्तगाली दूतावास में अँधेरा था। केवल कुछ घबराए हुए कर्मचारी बैठे थे। यद्यपि इस विषय की पूर्वसूचना दी गई थी, परंतु कोई भी ज़िम्मेदार व्यक्ति वहाँ उपस्थित नहीं था। चारों ओर पुलिस का कड़ा पहरा था।

दीनदयालजी ने वहाँ उपस्थित कर्मचारी से पूछा, "यदि कोई ज़िम्मेदार व्यक्ति हो तो बात करना चाहेंगे।" परंतु उसने यही अनुरोध किया कि जो भी आप चाहते हैं, वह लिखित रूप में दे दीजिए। हम पहुँचा देंगे। हम तो केवल कर्मचारी हैं। इस पर उपाध्यायजी ने अपने वक्तव्य की एक प्रति कर्मचारी को दे दी। तत्पश्चात् उन्होंने उपस्थित जनता के सम्मुख पुर्तगाली और अन्य विदेशी बस्तियों की स्थिति रखी। दीनदयालजी का वक्तव्य।

आज की पुण्य तिथि को ही लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु हुई थी।

उनकी यह घोषणा, 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'[3] आज हम पुनः पुर्तगाली बस्तियों में रहने वाले बंधुओं की ओर से पुर्तगाली दूतावास के सामने इस प्रदर्शन द्वारा उनकी सरकार तक पहुँचाना चाहते हैं। गोवा और अन्य विदेशी बस्तियाँ देश का अविभाज्य अंग हैं और उनका यह अधिकार है कि वह राजनीतिक रूप से भी अपनी मातृभूमि के साथ मिल सकें। उनसे इस मौलिक अधिकार का छीना जाना न केवल उनकी स्वतंत्रता का अपहरण है, परंतु उनकी राष्ट्रीयता को भी अमान्य करना है। यह भारत की सार्वभौमिकता और मध्ययुगीन उपनिवेशवाद को विश्व से समूल नष्ट करने के लिए दृढ प्रतिज्ञा उसकी स्वतंत्रताप्रेमी जनता को खुली चुनौती है।

□

—पाञ्चजन्य, अगस्त 9, 1954

---

3. बाल गंगाधर तिलक 'लोकमान्य' (1856-1920) ने 1914 में मांडले जेल (म्याँमार) से रिहा होने के बाद मूलतः मराठी में 'स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा' उद्घोषणा के साथ 'इंडियन होम रूल लीग' की नींव रखी थी।

14

सरकार अधिनायकवाद की ओर

लखनऊ के अमीनुद्दौला पार्क में विशाल जनसमूह के सम्मुख दीनदयालजी का भाषण।

यह बात अत्यंत लज्जास्पद है कि जनता को गोवध बंद कराने के लिए सत्याग्रह करना पड़ा। सरकार को यह पता नहीं कि गोवध के प्रश्न को लेकर देश में बड़ी-से-बड़ी क्रांति हो सकती है। हम अंतरराष्ट्रीयवाद के मतिभ्रम में राष्ट्रीय समस्याओं की उपेक्षा करते प्रतीत हो रहे हैं। हमें ध्यान रहे कि हमारा गौरव अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों पर आधारित न होकर राष्ट्रीय विकास पर आधारित है। हमें तटस्थ रहना चाहिए। इसमें संदेह नहीं, किंतु हाल ही में प्रकट हुई घटनाओं से प्रतीत होता है कि हमारे प्रधानमंत्री निरंतर एक गुट की ओर झुकते जा रहे हैं। ऐसा वे पश्चिमी साम्राज्यवाद एवं क्षेत्रीय संधियों के विरोध के नाम पर कर रहे हैं, किंतु वे अभी तक कम्युनिस्ट गुट के आक्रामक व्यवहार पर पूर्णतः मौन हैं। उनका तिब्बत पर चीन का अधिकार[1] चुपचाप स्वीकार कर लेना अत्यंत ही अहितकर रहा है। कम्युनिस्ट चीन ने फारमोसा[2] विजय का नारा लगाकर विश्व के उस शांत वातावरण को आतंकित कर दिया है, जो जिनेवा में उत्पन्न हुआ था। पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों पर रूस का अधिकार रखना क्षेत्रीय संधि से भी भयंकर है।

यह बात उल्लेखनीय है कि हमारी विदेश नीति कश्मीर, गोवा, लंका तथा दक्षिण

1. अक्तूबर 1950 के चामडो युद्ध (Battle of Chamdo) में पीपल लिबरेशन आर्मी ऑफ चीन ने विस्तारवादी नीति पर अमल करते हुए तिब्बत पर आक्रमण कर 1951 में ख़म प्रांत पर आधिपत्य जमा लिया व ल्हासा सरकार को अमान्य करार देते हुए 1959 तक पूरे तिब्बत में चीन ने अधिकार कर लिया।
2. चीन में 1 अक्तूबर, 1949 को माओ के नेतृत्व में साम्यवादी शासन की स्थापना के बाद च्यांग काई शेक की राष्ट्रवादी सरकार को भागकर फारमोसा (ताइवान) में शरण लेनी पड़ी थी।

अफ्रीका के भारतीयों की समस्या को किंचित् भी नहीं सुलझा पाई है। विदेशी सहायता के आधार पर भारत के विरुद्ध आक्रामक रुख़ अपनाने वाले पाकिस्तान की कार्रवाइयों को भी हम किंचित् नहीं रोक पाए हैं। गोवा एवं एक-तिहाई कश्मीर की मुक्ति हमारी विदेश नीति के मुख्य स्पर्शीय विषय होने चाहिए। संतोष का विषय है कि हमारे प्रधानमंत्री ने ग़ैर गोवा निवासियों के गोवा में प्रविष्ट होने का अधिकार स्वीकार कर लिया है, किंतु उनके मतानुसार उसके लिए अभी उपयुक्त समय नहीं है। जनसंघ का विचार है कि इस समस्या को सुलझाने में हमें वैसे ही विलंब हो गया है। यदि हमने कुछ मास और प्रतीक्षा की तो समस्या अधिक उलझ जाएगी। पुर्तगाल सरकार इस समस्या के संबंध में वार्त्तालाप करने को तो तैयार है ही नहीं, अपितु उन बस्तियों में निरंतर सैनिक तैयारियाँ कर रही है। पाकिस्तान भी गोवा में दिलचस्पी ले रहा है। नाटो का क्षेत्र भी विस्तृत किए जाने का प्रयत्न चल रहा है, जिससे वह गोवा समस्या में भी दखल दे सके। पुर्तगाल सरकार के आतंकवादी एवं दमनकारी व्यवहार के परिणामस्वरूप भारतीय सीमा के अंदर जनसाधारण अधीर हो रहे हैं। यदि परिस्थिति ऐसी ही चलती रही तो हो सकता है कि भारतीय जनता प्रतिबंध एवं भारतीय पुलिस की उपेक्षा करके भी गोवा की सीमा में प्रविष्ट हो जाए।

पाकिस्तान कश्मीर प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में ले जाने के लिए उद्यत है। हमें उसे अंतिम बार बता देना चाहिए कि कश्मीर से वह अपना हाथ पूरी तरह खींच ले। भारत के साथ कश्मीर का विलय अंतिम एवं पूर्ण रूप से हो चुका है। इसके अतिरिक्त हमें कश्मीर को लेने के शांतिपूर्ण उपाय अपनाने चाहिए।

अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी एवं बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद की प्रधानमंत्री पद पर नियुक्ति के पश्चात् भी कश्मीर में सर्व कुशल नहीं है। आशा थी कि नए प्रधानमंत्री जनता के सब वर्गों का सहयोग लेकर कश्मीर को समृद्धिशाली बनाएँगे, किंतु कम्युनिस्टों ने उनको ऐसा नहीं करने दिया। प्रजा परिषद् से, जो कि जम्मू की जनता की भावनाओं की सच्ची प्रतीक है, उन्होंने कभी औपचारिक या अनौपचारिक मंत्रणा नहीं की। हालाँकि वहाँ का विधान बन रहा है। जनसंघ का मत है कि कश्मीर में भारत का विधान लागू हो तथा उसके अनुसार फिर से निर्वाचन कराए जाएँ, जिससे जम्मू के नागरिक वास्तविक प्रतिनिधित्व प्राप्त कर सकें। समाज-विरोधी एवं अब्दुल्ला समर्थक तत्त्व फिर से अव्यवस्था पैदा करने लगे हैं। उनमें से बहुत ने नवनिर्मित प्रजा-समाजवादी दल की सदस्यता का चोला ग्रहण कर लिया है।

हम विदेशी एजेंटों के संबंध में तो सतर्क रहें, क्योंकि वे रूस, अमरीका तथा पाकिस्तान को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सहायता करके भारत में राष्ट्रघातक कार्य करते हैं।

वर्तमान सरकार शनैः-शनैः अधिनायकवाद की नीति अपनाती जा रही है। यह बात अत्यंत लज्जास्पद है कि जनता को गोवध बंद कराने के लिए सत्याग्रह करना पड़ा। सरकार को यह पता नहीं कि गोवध के प्रश्न को लेकर देश में बड़ी-से-बड़ी क्रांति हो सकती है। सरकार को जनता की भावनाओं का आदर करना चाहिए। डॉ. सीताराम कमेटी[3] ने भी पूर्ण गोवध निषेध की सिफ़ारिश की है। फिर सरकार को यह क़ानून बनाने में कौन सी अड़चन पैदा होती है? जनता चाहती है। विशेषज्ञ सिफ़ारिश करते हैं, केवल कुछ स्वार्थी कांग्रेसी विरोध करते हैं। मैं सरकार से अनुरोध करता हूँ कि वह दलबंदी से उठकर गोरक्षा के लिए उद्यत हों, जिससे राष्ट्रीय उत्थान एवं आर्थिक विकास हो सके। इसके साथ-साथ मैं पुलिस के व्यवहार की कटु आलोचना करता हूँ। भारतीय शासन के अंतर्गत पुलिस का यह दुर्व्यवहार अशोभनीय एवं लज्जास्पद है।

सरकार शैक्षणिक संस्थाओं पर भी अपना प्रभाव जमाना चाहती है। जनसंघ इसका विरोध करता है। यह बात सत्य है कि कुछ विश्वविद्यालयों में दलबंदी के कारण विद्यार्थियों में अनुशासनहीनता उत्पन्न हो रही है, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं कि वह सरकार उन पर अधिकार कर ले, जो स्वयं दलबंदी से ऊपर नहीं है। जनतंत्र ख़तरे में है, हमें उसकी रक्षा करनी चाहिए।

सरकार ने बाढ़-पीड़ितों के लिए जो सहायता दी है, वह अपर्याप्त है एवं ठीक रूप में नहीं है। ग़ैर-सरकारी संस्थाओं को उसके लिए आगे बढ़ना चाहिए। जनसंघ अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ सहायता के निमित्त प्रस्तुत है।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 11, 1954

□

---

3. डॉ. सीताराम कमेटी के अलावा गोवध निषेध पर सरदार बहादुर दातर सिंह कमेटी (1947-48), उत्तर प्रदेश कमेटी (1948) और नंदा कमेटी (1954-55) का गठन हुआ था, सभी ने पूर्ण गोवध प्रतिबंध की अनुशंसा की थी।

15

जनसंघ और राष्ट्र

'ऑर्गनाइज़र' के संपादक को दिए गए एक विशेष साक्षात्कार में दीनदयालजी ने देश की विभिन्न समस्याओं पर चर्चा की।

सं. जनसंघ कितना मज़बूत है?

दी. पूरे देश में कार्य बढ़ रहा है। यह दिल्ली, उत्तर प्रदेश, मध्य भारत और राजस्थान में विशेष रूप से अच्छी तरह से बढ़ रहा है। उड़ीसा और तमिलनाडु को छोड़कर पूरे देश में हमारी शाखाएँ हैं।

सं. आपको क्या लगता है कि जनसंघ का अगले आम चुनाव में प्रदर्शन कैसा होगा?

दी. हमें अच्छे प्रदर्शन की उम्मीद है। देश की विधानसभाओं में हमारी शक्ति हमारी संगठनात्मक और लोकप्रिय शक्ति का सही सूचकांक नहीं है। कुछ छोटे दल ही क्यों, यहाँ तक कि कुछ प्रांतीय दलों का भी वर्तमान में विधानसभाओं में जनसंघ से बेहतर प्रतिनिधित्व है, जो चार मान्यता प्राप्त अखिल भारतीय दलों में से एक है। अन्य तीन दलों में कांग्रेस, प्रसोपा और भाकपा हैं। हमें अपनी वास्तविक और विधायी शक्ति में इस वर्तमान असमानता को आगामी आम चुनावों में दूर करने की उम्मीद है और इसका बहुत कुछ अर्थ होगा।

सं. पंडितजी, विशेष विवाह विधेयक पर आपकी क्या राय है?

दी. मेरी इसके बारे में कोई बहुत अच्छी राय नहीं है। विवाह को एक संस्कार न मानकर मात्र एक अनुबंध मानने का विचार हमारे लिए अरुचिकर है। परस्पर

सहमति के अलावा किसी बात के बिना भी तलाक़, जिसका प्रावधान यह विधेयक करता है, वह तो संयुक्त राज्य अमरीका और फ्रांस जैसे देशों में भी अनसुनी बात है। वास्तव में भारत में ग़रीब पत्नी को सहमति के लिए मजबूर किया जाएगा।

यह बात स्पष्ट रूप से समझ ली जानी चाहिए कि शादी सिर्फ़ एक व्यक्तिगत मामला नहीं है। अगर यह ऐसा हो, तो हमें खुले यौनाचार की ही नहीं, तो समलैंगिक संबंधों की भी अनुमति देनी होगी। इस कारण विवाह संबंधी क़ानून व्यक्ति की इच्छा के अनुरूप तैयार नहीं किए जा सकते हैं। यह एक संस्था है, जिसके ज़बरदस्त सामाजिक परिणाम हैं। इस कारण इसे व्यापक सामाजिक हितों में नियंत्रित किया जाना चाहिए।

सं. और विधवा पुनर्विवाह के बारे में आपकी राय क्या है?

दी. वास्तव में विधवा पुनर्विवाह एक उतना ही पुराना तथ्य है, जितना स्वयं हिंदू समाज है। यह तो केवल हम आधुनिक लोग हैं, जिन्होंने इसे एक 'सामाजिक सुधार' बना दिया है। हमारे समाज के एक बड़े वर्ग में यह हमेशा रहा है और यह अब भी है। मेरी आपत्ति इसके 'संहिताकरण' भाग को लेकर है। संहिताकरण करके हमने जिन्हें 'निचले' वर्ग कहा जाता है, उनके लिए तलाक़ की शर्तों को कठोर बना दिया है, और 'उच्च' वर्गों के लिए उन्हें सरल बना दिया है। यह तो प्रोक्रस्टीज के बिस्तर (यूनानी कथा के अनुसार एक लुटेरा दैत्य, जो लोगों को बिस्तर पर फिट आने के लिए खींच देता था या तराश देता था) की तरह होगा, कुछ लोगों के लिए बहुत अच्छा, अन्य के लिए बहुत बुरा। हमारा स्टैंड यह है कि विभिन्न वर्गों के लोगों का जीवन का अपना स्वयं का स्तर होता है, जो उनके मानसिक और नैतिक विकास से निर्धारित होता है। हमें 'एकरूपता' के अप्रासंगिक नाम पर क़ानून के बाह्य बल द्वारा कई वर्गों के इस आंतरिक संतुलन को उलट-पुलट नहीं करना चाहिए।

सं. सामुदायिक परियोजनाओं के प्रति आपका दृष्टिकोण क्या है?

दी. हमारा दृष्टिकोण सहानुभूति और प्रशंसा का है। लेकिन हम महसूस करते हैं कि काम करने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह नहीं है। इसका ज़ोर अमरीकी दान पर बहुत ज़्यादा है और स्थानीय संसाधनों और ग्रामीणों की सामुदायिकता की भावना पर बहुत ही कम है। मैंने देखा है कि पानी के पंप बेकार पड़े हैं। उन्हें गाँवों में स्थापित किया गया था। लेकिन एक बार बिगड़ जाने के बाद, जो कि अप्रशिक्षित हाथों के नाते अकसर होता ही है, उनकी मरम्मत का

कोई ज़रिया नहीं है। परियोजनाओं के वर्तमान कार्य के प्रति मेरी एक अन्य आपत्ति यह है कि वह ईसाई मिशनरियों के लिए देश के भीतर प्रवेश करने का एक अवसर होता जा रहा है। कुछ मामलों में मिशनरियों को परियोजनाओं पर काम में लगाया गया है। हम चाहते हैं कि सरकार परियोजनाओं को उनकी अवधारणा, कार्यक्षेत्र और निष्पादन में और अधिक राष्ट्रीय बनाए।

सं. क्या आप आर्थिक विकास की गति और दिशा से संतुष्ट हैं?

दी. मुझे भय है कि मैं ज़रा भी संतुष्ट नहीं हूँ। सरकार भारी जनसंख्या जैसी समस्याओं आदि की बात कर रही है। मैं सोचता हूँ कि अधिक बल दूसरी दिशा में दिया जाना चाहिए। अगर हमारे सामने बड़ी समस्याएँ हैं, तो हमारे पास उससे भी अधिक संसाधन हैं। सरकार 35 करोड़ मुँह तो याद करती है, लेकिन 70 करोड़ हाथों को भूल जाती है। हमारी आर्थिक नीति का पहला सिद्धांत मानवशक्ति की हमारी इस विशाल संपदा का लाभ उठाने का होना चाहिए। भारतवर्ष के लिए उद्योग कोई नई बात नहीं हैं। सरकार गाँव के कारीगर को एक तकनीशियन बनाने के लिए, प्रशिक्षित करने के लिए क्या कर रही है? सरकार जब भी गाँवों के उत्थान या कुटीर उद्योग के बारे में विचार करती है, तो उसकी पहली उत्सुकता जापान या अमरीका के लिए एक प्रतिनिधिमंडल को उड़ान से भेजने की होती है। मेरा मानना यह है कि भारत में स्थितियाँ इन देशों की स्थितियों से इतनी भिन्न हैं कि इन महँगे सैर-सपाटों से कोई उपयोगी प्रयोजन संभवत: पूरा नहीं किया जा सकता है।

सरकार एक तरफ़ तो देसी छोटे उद्योगों को प्रोत्साहन देने की बात करती है और दूसरी तरफ़ उन्हें बरबाद होने देती है। प्लास्टिक उद्योग का उदाहरण लीजिए। इसने हमारे काँच उद्योग को बरबाद कर दिया है। गाँवों के चूड़ी निर्माता बरबाद हो गए हैं। यही हाल संगमरमर, चंदन की लकड़ी, लाख और काग़ज़ की लुगदी का कार्य करने वालों का है। हमें कुटीर उद्योगों की 'सहायता' की धारणा छोड़ देनी चाहिए। हमें उन्हें अपने औद्योगिक जीवन के केंद्रीय तथ्य के रूप में स्वीकार करना चाहिए। यहाँ दान से काम नहीं चलेगा। हमें पूरा न्याय करना चाहिए।

सरकार बड़े पैमाने पर सोच रही है। लेकिन यह छोटी बातों को भूलने का कोई बहाना नहीं है। पूरे देश में बड़े बिजली संयंत्रों की स्थापना की जा रही है। लेकिन क्या हम गाँवों में बिजली के समुचित औद्योगिक उपयोग के लिए तैयार हैं? ऐसे में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कुछ बिजली संयंत्रों को पता ही नहीं है कि अपनी पूरी क्षमता का उपयोग कैसे करें।

वर्तमान में गाँवों में बिजली का इस्तेमाल या तो अमीरों के लिए पंखों में या चावल या आटा मिलों के काम में किया जा रहा है। इससे गाँवों के उद्योगों को गति देने के लिए कुछ नहीं किया जा रहा है।

सं. भाषाई राज्यों के बारे में आप के क्या विचार हैं?

दी. हम सरकार के एक एकात्मक स्वरूप में विश्वास करते हैं, न कि 'स्वायत्त' राज्यों में। जहाँ हम 'भाषाई राज्यों' में विश्वास नहीं करते हैं, वहीं अपनी सभी भाषाओं के पूर्णतम विकास में दृढता से विश्वास करते हैं। इस कारण हम उच्चतम शिक्षा मातृभाषा में प्रदान किए जाने का समर्थन करते हैं। निस्संदेह हिंदी सबके लिए अनिवार्य होगी।

सं. संविधान में संशोधन करने के विभिन्न प्रस्तावों के बारे में आपकी क्या राय है?

दी. मैं उनमें से नहीं हूँ, जो सोचते हैं कि संविधान में संशोधन नहीं किया जाना चाहिए। हमारा संविधान बहुत ज़्यादा विदेशी है। इसके भारतीयकरण की आवश्यकता है। इस कारण हम संविधान की प्रकृति ही बदल जाए, इतने संशोधनों के विचार के विरोध में नहीं हैं और यहाँ संविधान में संशोधनों से संबंधित वर्तमान प्रस्तावों पर हम आपत्ति करते हैं। हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर लगातार किए जा रहे आक्रमणों से विशेष रूप से विक्षुब्ध हैं। मैं इस संबंध में यह कहूँगा कि अगर हमें संविधान में संशोधन करने की आवश्यकता हो, तो हमें अनुच्छेद 19 (ए) में पहले किए गए कुख्यात संशोधन को रद्द करने के लिए यह संशोधन अवश्य करना चाहिए।

सं. आपको क्या लगता है कि बेरोज़गारी की स्थिति कैसी है?

दी. स्थिति शहरों में ख़राब और गाँवों में और भी ज़्यादा ख़राब है। शहरों में लोग चिल्लाते हैं और सरकार उनके लिए कुछ टुकड़े फेंक देती है। लेकिन सुदूर, ग़ैर-संगठित, बेआवाज़ ग्रामीणों की परवाह कौन करता है? शहरों के उद्योग गाँवों के उद्योगों को बरबाद कर रहे हैं। कुछ समय पहले दो जहाज़ भरकर अमरीकी कंघियाँ बंबई में उतारी गईं। क्या इसकी कल्पना की गई है कि देसी कंघी उद्योग के लिए इसका क्या अर्थ है? सरकार को न केवल शहरी उद्योगों को संयमित करना चाहिए, बल्कि ग्रामीण उत्पादों को आधुनिक पसंद के अनुरूप करने के लिए ग्रामीण तकनीक के आधुनिकीकरण के क़दम भी उठाने चाहिए।

सं. पंडित नेहरू की विदेश नीति के बारे में आप क्या सोचते हैं?

दी. मोटे तौर पर हम इससे सहमत हैं। शक्ति गुटों की राजनीति में भारत की

तटस्थता की वांछनीयता और आवश्यकता को लेकर कोई दो मत नहीं हो सकते हैं। तटस्थ गुट को सुदृढ करना और शांति क्षेत्र का विस्तार करना हमारी विदेश नीति का सतत प्रयास होना चाहिए। यह भी प्रसन्नता की बात है कि विदेश मंत्री दुनिया के भाँति-भाँति के दु:खों के बारे में कम बात कर रहे हैं। उन्होंने ब्रिटिश गुयाना और ग्वाटेमाला के मामलों पर खुद सुझाव नहीं दिए हैं। इससे इस तथ्य को स्वीकार करने का संकेत मिलता है कि हम सार्वजनिक रूप से ग़ुस्सा जताकर मामलों में सुधार नहीं कर सकते हैं।

इस प्रकार जहाँ हम सरकार की विदेश नीति से मोटे तौर पर सहमत हैं, वहीं हमें यह देखकर अफ़सोस भी होता है कि सकारात्मक उपलब्धियाँ नाममात्र ही हैं। कश्मीर को लेकर संयुक्त राष्ट्र में हम बुरी तरह विफल रहे हैं। तिब्बत की घटनाएँ भी नई दिल्ली के लिए कोई श्रेयस्कर नहीं हैं। सीलोन (अब श्रीलंका), बर्मा (अब म्याँमार) और दक्षिण अफ्रीका में हमारे नागरिकों की जो दुर्दशा 1947 के बाद से हुई है, वह पहले कभी नहीं हुई। इन तथ्यों के प्रकाश में हम कह सकते हैं कि देश की विदेश नीति ज़रा भी यथार्थवादी नहीं रही है।

हमारी 'तटस्थ' नीति के आंतरिक पहलू का एक और भी अधिक परेशान करने वाला पक्ष यह है कि हमने विदेशी विचारधाराओं को भारत को एक युद्धक्षेत्र बना लेने दिया है, अमरीका और सोवियत संघ को ऐसी स्वतंत्रता के साथ काम करने की अनुमति दी गई है, जो किसी भी अन्य स्वतंत्र देश में अकल्पनीय है। भारतीय जनता को लुभाने के अंधाधुंध प्रयासों में दोनों पक्षों द्वारा सभी प्रकार के मोरचे प्रायोजित किए गए हैं। अगर दोनों में से किसी पक्ष द्वारा नई दिल्ली में अपनी खुद की पसंद की सरकार स्थापित करने का अवसर निकाला जाता है, तो मुझे बिल्कुल भी आश्चर्य नहीं होगा। ग्वाटेमाला, ईरान और पाकिस्तान के घटनाक्रम अन्य सभी देशों के लिए एक पूर्व चेतावनी है कि उनके साथ भविष्य में क्या हो सकता है।

इस कारण भारतीय जनसंघ इस स्थिति के प्रति बहुत हठीले ढंग से विरुद्ध है। जहाँ पी.एस.पी. अमरीकापरस्त है; वहीं भा.क.पा. रूस समर्थक है; और कांग्रेस अस्पष्ट ढंग से दोनों की समर्थक है। जनसंघ एकमात्र अखिल भारतीय पार्टी है, जो कह सकती है कि वह इन दोनों का हिस्सा नहीं है। जब स्वयं तटस्थ भारत अपने आप में विदेशी विचारधाराओं का मैदान बना हुआ है और इस कारण ज़रा भी तटस्थ नहीं रह गया है, तो हम तटस्थ राष्ट्रों का

एक गुट कैसे बना सकते हैं? इस कारण जनसंघ एक तटस्थ भारत के पक्ष में है, जो अपने स्वयं के, अर्थात् भारतीयता के मार्ग पर मज़बूती से डटा है और विचारधाराओं से निष्प्रभावी है। जनसंघ देश के भीतर एक शक्तिशाली 'तीसरी शक्ति' के पक्ष में है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 15, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

16

इंदौर में जनसंघ की महासमिति का ऐतिहासिक अधिवेशन*

इंदौर में भारतीय जनसंघ की राष्ट्रीय कार्यसमिति का ऐतिहासिक सम्मेलन हुआ। इस 5 दिवसीय सम्मेलन में दीनदयालजी की उपस्थिति के विषय में ऑर्गनाइज़र ने लिखा है–

"The moving spirit in whole session was lean and thin Deendayal Upadhyaya, the gifted General Secretary of organisation."

इस सम्मेलन में दीनदयालजी ने एक प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया। जनसंघ की नीति व कार्यपद्धति पर प्रस्तुत इस प्रस्ताव का समर्थन श्री दत्तोपंत ठेंगड़ी ने किया था। तदनुसार जनसंघ व्यक्ति स्वातंत्र्य एवं क़ानून के शासन वाले लोकतंत्र में विश्वास करता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए तानाशाही एवं हिंसक कार्यपद्धति का निषेध करता है। सच्चे लोकतंत्र में विमति की एक भी आवाज़, जिसमें सत्यांश है, का स्वागत किया जाता है, जिसका लक्ष्य आम सहमति बनाना होता है। बहुमत के बल पर किसी मत का आरोपण नहीं। जनसंघ सच में एक लोकतांत्रिक संगठन है और देश में लोकतंत्र की सफलता के लिए प्रतिबद्ध है। पाञ्चजन्य तथा ऑर्गनाइज़र में इसका प्रतिवेदन 30 अगस्त, 1954 को प्रकाशित हुआ है। ऑर्गनाइज़र में प्रकाशित प्रतिवेदन को परिशिष्ट के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 30, 1954

□

* देखें परिशिष्ट IV, पृष्ठ संख्या 350।

17

सच्चे लोकतंत्र के लिए भारत का पुनर्गठन जनपदीय आधार पर किया जाए

आज जबकि प्रांतों की पुनर्रचना के निमित्त उच्चाधिकार संपन्न आयोग कार्यशील है, हमें इस प्रश्न पर गंभीरता एवं मौलिक दृष्टि से विचार करना चाहिए। कारण, जो पग हम इस समय उठाएँगे, उसका परिणाम दूर तक होगा। आंध्र का निर्माण[1] करके हमने जो उदाहरण हिंसात्मक आंदोलन के सम्मुख झुकने तथा जल्दबाज़ी में कुछ भी कर बैठने का उपस्थित किया है, वही आज दूसरों के लिए नज़ीर बन गया है। हमें भारत की भावी दिशा निश्चित करनी है। अत: आवश्यक है कि हम भावनाओं, दलगत अथवा व्यक्तिगत स्वार्थों तथा क्षुद्र, संकुचित एवं सांप्रदायिक भावों से ऊपर उठकर इस प्रश्न का विचार करें।

यह तो निर्विवाद है कि आज के प्रांतों की रचना किसी निश्चित आधार पर नहीं हुई। वे विगत ढाई सौ वर्षों के इतिहास का परिणाम हैं। उनके पीछे हमारे जातीय जीवन के विकास की मूल प्रवृत्तियाँ रहीं। अंग्रेज़ों ने ज्यों-ज्यों भारत के विभिन्न भागों को अधिकृत किया, वे अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रांत बनाते गए। समकालीन विजित भाग प्राय: एक प्रांत बन गया। सन् 1857 के स्वातंत्र्य संग्राम के पश्चात् नए प्रांतों का निर्माण बढ़ी हुई राष्ट्रीय शक्ति में दरारें डालने, सांप्रदायिक अथवा विघटनकारी मनोवृत्ति को तुष्ट एवं पुष्ट करने के हेतु से हुआ। आज भी जो माँगें की जा रही हैं, उनके लिए

1. आंध्र प्रदेश के निर्माण में हिंसात्मक आंदोलनों का इतिहास रहा है। पोट्टी श्रीरामलू के आमरण अनशन के चलते हुई मृत्यु (15 दिसंबर, 1952) के बाद मद्रास प्रेसीडेंसी के कई शहरों में हिंसात्मक आंदोलन हुए। तत्पश्चात् 19 दिसंबर, 1952 को जवाहरलाल नेहरू ने आंध्र प्रदेश के गठन की घोषणा की और 1 अक्तूबर, 1953 को नए राज्य का गठन हुआ।

अंग्रेज़ों की कूटनीति तथा गत अर्ध शताब्दी की राजनीतिक गतिविधियाँ ज़िम्मेदार हैं।

हमारे स्वातंत्र्य आंदोलन के दो पहलू रहे हैं—1. सुधारवादी, 2. क्रांतिवादी। प्रथम पहलू की दृष्टि से हमने शासन में अधिकाधिक प्रवेश की तथा सुविधाओं की माँग की। परकीय राज्य के कारण हमारी जिन-जिन भावनाओं को चोट लगती थी, उनको लेकर हमने आंदोलन चलाए। हमारा ध्यान दासता से उत्पन्न परिणामों पर रहा। दूसरे पहलू में हमारा लक्ष्य केवल भारत की स्वतंत्रता थी और उसकी दृष्टि से हमने सार्वदेशिक प्रयत्न किए। किंतु ये दोनों धाराएँ एक-दूसरे से इतनी मिलती हुई चली हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। एक को दूसरे से सहारा मिलता रहा। इसीलिए 'स्वराज्य मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है' का नारा बुलंद करने वाले लोकमान्य तिलक भी 'जितना मिले उतना लो तथा आगे के लिए आंदोलन करो', कहकर सन् 1919 के सुधारों[2] को स्वीकार करने के पक्ष में थे। दूसरी ओर अंग्रेज़ों ने ऐसा कोई विधान नहीं बनाया, जिसमें भारतीय जीवन पर परिणाम करने वाले विषबीज न बोए हों। हमने उन बुराइयों को देख उनके विरुद्ध प्रस्ताव भी पास किए। किंतु हम उनको पूर्णतः तो ठुकरा ही नहीं सकते थे तथा अधूरा ले नहीं सकते थे। हमने उन सुधारों को बुराइयों समेत लिया और उनका फल भोगा। कम्यूनल अवॉर्ड[3] इसका उत्तम उदाहरण है।

शासन का भारतीयकरण

शासन में अधिकाधिक हाथ होने की इच्छा के कारण नौकरियों का भारतीयकरण हमारी पहली माँग रही। चूँकि अंग्रेज़ों ने संपूर्ण भारत को एक साथ नहीं जीता तथा अंग्रेज़ी शिक्षा का जो नौकरियों के लिए आवश्यक थी, शनैः-शनैः प्रसार हुआ, यह स्वाभाविक हो गया कि नौकरियों में कुछ प्रांतवासियों का बाहुल्य हो गया तथा अन्य पिछड़ गए। इतना ही नहीं, जब नए-नए प्रांत जीते गए तो वहाँ सरकारी नौकर बनकर वे लोग आए, जिन्हें अंग्रेज़ी की कुछ शिक्षा मिल चुकी थी और कुछ अंग्रेज़ों के कारोबार से परिचित थे। शासन के भारतीयकरण की माँग, जो अंग्रेज़ों के विरोध में की गई थी,

2. भारत शासन अधिनियम 1919 को मोंटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार भी कहा जाता है। इस अधिनियम को भारतीय नागरिकों की भारत सरकार (ब्रिटिश) में भागीदारी निश्चित करने के लिए ब्रिटेन की संसद् ने पास किया। बाल गंगाधर तिलक ने इस अधिनियम को अपर्याप्त, असंतोषजनक और निराशाजनक बताया। लेकिन वे इस अधिनियम का प्रयोग चुनाव लड़ने के लिए लोगों को संगठित करने और प्रभावी तरीक़े से स्वतंत्रता आंदोलन को तीव्र करना चाहते थे। तिलक अपने जीवित रहते स्वराज्य हासिल करना चाहते थे। इसके लिए उन्होंने अप्रैल 1920 में कांग्रेस लोकतांत्रिक दल की स्थापना की। दुर्भाग्यवश मृत्यु ने तिलक को हरा दिया। तिलक का निधन 1 अगस्त, 1920 को हुआ।

3. कम्यूनल अवार्ड, ब्रिटिश प्रधानमंत्री रामसे मैक्डोनाल्ड द्वारा 16 अगस्त, 1932 को ब्रिटिश भारत में पृथक् निर्वाचक मंडल देने के लिए बनाया गया। इसके अनुसार फॉरवर्ड जातियों, निम्न जातियों, मुसलिम, बौद्ध, सिख, एंग्लो-इंडियंस, ईसाइयों, यूरोपीय और दलितों के लिए अलग से प्रतिनिधित्व प्रदान करने की घोषणा की गई।

वह धीरे-धीरे प्रांत विशेष के प्रति विरोध की भावना में बदल गई। नौकरियों के अनुपात में ज्यों-ज्यों उम्मीदवारों की संख्या बढ़ती गई, त्यों-त्यों यह असंतोष तीव्र होता गया। इसका एक ही उपाय लोगों को सूझा कि अपना प्रांत अलग कर लिया जाए। फलत: बंगाल से अलग आसाम, बिहार एवं उड़ीसा की माँग हुई। सिंध ने बंबई से अलग होने की इच्छा प्रगट की। आंध्र और कर्नाटक के निर्माण का भी प्रश्न सामने आया। पढ़े-लिखे लोगों की बेकारी के कारण आज भी यह भावना ज्यों-की-त्यों बनी हुई है, यद्यपि उपर्युक्त अनेक प्रांतों का निर्माण हो चुका है।

नौकरियों के समान अन्य राजनीतिक अधिकारों की लालसा भी अनेक प्रदेशों की माँग के लिए ज़िम्मेदार है। अंग्रेज़ों ने भारत को एक़दम मुक्त नहीं किया और न हम लड़कर स्वतंत्र हुए। अपितु हमें धीरे-धीरे अधिकार मिले हैं और वह भी प्रांतीय आधार पर। स्वाभाविकतया लोगों को लगा कि यदि उन्हें अधिकार चाहिए तो उनका पृथक् प्रांत होना चाहिए। मुसलमानों को अधिकार देने के लिए ही सिंध को बंबई से अलग किया गया।[4] यह भावना आज भी काम कर रही है।

भारत की क्रांतिकारी राष्ट्रीयता का दमन करने के लिए भी अंग्रेज़ों ने कई प्रांतों का निर्माण किया। मुसलमानों का बहुमत स्थापित करने के लिए तथा बंगाल की कमर तोड़ने के लिए बंगाल का विभाजन किया।[5] जब बंगभंग के विरुद्ध ज़ोरदार आंदोलन हुआ और उसके सामने झुकना ही पड़ा तो बिहार को बंगाल की लपटों से बचाने के लिए तथा मुसलमानों का प्रभावी अल्पमत बनाए रखने के लिए बिहार और उड़ीसा को बंगाल से अलग कर दिया। साथ ही पूर्व में न सही, पश्चिम में ही सही, बंगाल के ऊपर एक प्रहार कर दिया, जो आज भी विवाद का विषय बना हुआ है। भारतीय स्वशासन का अनुभव ताज़ा था। ऐसे दो प्रांत महाराष्ट्र और पंजाब थे। पंजाब में सिख, ग़ैर-सिख तथा मुसलमान के भेद निर्माण कर उसे पंगु बनाने का प्रयास किया तथा महाराष्ट्र के अस्तित्व को मिटाकर उसे कई प्रांतों में बाँट दिया। छत्रपति शिवाजी के अनुसार हिंदू पदपादशाही की आकांक्षा चाहे न रही हो, किंतु स्वराज्य के सेनानी संयुक्त महाराष्ट्र का सपना आँखों में सँजोए अवश्य चलते रहे हैं।

---

4. सिंध प्रांत से बंबई का विभाजन 1 अप्रैल, 1936 को हुआ। 15 अगस्त, 1947 के भारत विभाजन में सिंध पाकिस्तान का हिस्सा बना।
5. बंगाल विभाजन (बंगभंग) की घोषणा जुलाई, 1905 में वायसराय लॉर्ड कर्जन ने की। इसके अनुसार अक्तूबर 1905 में प. बंगाल के पूर्वी क्षेत्र को अलग कर आसाम राज्य का निर्माण किया। इस विभाजन का पुरज़ोर विरोध किया गया। बंगालवासियों ने इस विभाजन के विरोध में ब्रिटेन में बने वस्त्रों का बहिष्कार किया। अंतत: दिसंबर 1911 के दिल्ली दरबार में ब्रिटेन के राजा जॉर्ज पंचम ने अपने संबोधन द्वारा पूर्वी बंगाल के 15 ज़िलों को आसाम से अलग कर पुन: पश्चिम बंगाल में मिला दिया। लेकिन बिहार एवं उड़ीसा को बंगाल प्रांत से विभाजित कर दिया गया।

भाषा नीति

अंग्रेज़ों की भाषा-नीति भी आज की मनोभावनाओं के लिए ज़िम्मेवार है। अंग्रेज़ी का प्रयोग न केवल सार्वदेशिक भाषा के रूप में किया गया, अपितु उसने प्रादेशिक भाषाओं का भी स्थान ले लिया। अतः प्रादेशिक भाषाओं के लिए लड़ाई भी स्वराज्य की लड़ाई का एक अंग बन गई। भाषिक सांप्रदायिकता को इससे बल मिला तथा उसका हानिकारक स्वरूप राष्ट्रीयता की ओट में छिप गया। हिंदी वाले आज भी इसका शिकार बने हुए हैं।

इन सबका फल यह हुआ कि जहाँ एक ओर हम अंग्रेज़ों से मुक्ति के लिए सार्वदेशिक आधार पर संघर्ष करते रहे, वहाँ दूसरी ओर हम प्रांतीय भावनाओं को भी प्रश्रय देते चले। हमारे प्रादेशिक राष्ट्रवाद एवं मुसलमानों को किसी-न-किसी प्रकार लेकर चलने की इच्छा ने इस भावना को और भी बल दिया। हम इस बात को भूल गए कि हमारा अति प्राचीनकाल से चला आया हुआ एक राष्ट्र है, जिसके कारण हम संपूर्ण भारत, उसके जन एवं संस्कृति के प्रति एकात्मकता का अनुभव करते हैं। एकात्मानुभूति ही हमारी स्वातंत्र्य लालसा का वास्तविक प्रेरणास्रोत है। हमने तो सोचा कि हमें एक नया राष्ट्र बनाना है और उसके लिए जब इधर-उधर से आदर्श ढूँढ़ने लगे तो संयुक्त राज्य अमरीका की ओर दृष्टि गई। फलतः सभी छोटी-मोटी भावनाओं को मान्यता देकर उनका समन्वय करने की कल्पना से हमने भाषानुसार प्रांत रचना का समर्थन किया। इसी आधार पर हमारे यहाँ संघात्मक विधान की कल्पना ने जड़ पकड़ी।

उपर्युक्त कारणों तथा पिछले वर्षों के सतत प्रचार से आज लोगों की यह धारणा हो गई है कि भारत के लिए संघात्मक विधान ही उपयुक्त है। इतना ही नहीं वे एकात्मक विधान को प्रजातंत्र के विरुद्ध भी मानते हैं। यह तो सत्य है कि जब अंग्रेज़ यहाँ पर राज्य करते थे तथा संपूर्ण सत्ता उनके हाथ में थी, तब थोड़े-बहुत अधिकारों का मिलना, चाहे वे प्रांतों में ही क्यों न हों, जनता की जीत समझी जाती थी। इसी आधार पर सन् 1919 के विधान का स्वराज्य पक्ष ने स्वागत किया तथा सन् 1935 के विधान के अनुसार कांग्रेस ने मंत्रिमंडल बनाए। किंतु अब जनता और शासन दो पक्ष नहीं हैं। अब तो केंद्र का शासन भी जनता का शासन है। अब किसी से अधिकार छीनने या लेने की बात नहीं। अतः प्रजातंत्र की रक्षा विधान के स्वरूप पर निर्भर नहीं। संघात्मक एवं एकात्मक दोनों ही विधान प्रजातंत्रीय हो सकते हैं।

अंग्रेज़ों की नीति

अंग्रेज़ों ने भी हमारे लिए संघात्मक विधान का स्वरूप विशेष प्रयत्नों से रखा। उनकी नीति सदा ही बँटवारे की रही है। यद्यपि सन् 1857 तक वे बराबर केंद्रीकरण की

ओर अग्रसर होते रहे, किंतु ज्यों-ज्यों हमारा आंदोलन जोर पकड़ता गया। उन्होंने बँटवारे की तथा मुख्य सत्ता न छोड़ते हुए भी कुछ टुकड़े डाल देने की नीति अपनाई। सन् 1919 के विधान में प्रांतीय परिषदों को कुछ अधिकार दिए गए। सन् 1935 में तो प्रांतीय स्वराज्य देकर एक संघात्मक विधान ही बनाया गया। इस विधान के अनुसार प्रांतों को सत्ता भारत के केंद्र से नहीं अपितु सीधे ब्रिटिश शासन से प्राप्त हुई थी। स्पष्ट है कि इसमें प्रांतों को ही नहीं, भारत की 562 देशी रियासतों को भी पृथक् इकाई के रूप में मान्यता दी गई थी। सन् 1942 के क्रिप्स प्रस्ताव तो यहाँ तक बढ़ गए थे कि वे प्रांतों को विलग होने का अधिकार तक देने को तैयार थे। कैबिनेट मिशन की योजना भी संघ, उपसंघ एवं प्रांत, इस प्रकार की तीन इकाइयाँ बनाने की थी। प्रत्येक बार सुधार के नाम पर भारत के विघटनकारी तत्त्वों को बढ़ावा देने का प्रयत्न किया गया।

हिंदू-मुसलिम एकता की धुन में कांग्रेस भी इन प्रयत्नों का खुलकर विरोध नहीं कर सकी। मुसलमानों की ओर से जब यह हल्ला मचाया गया कि हिंदू बहुमत उन्हें खा जाएगा तो उन्हें आश्वस्त करने के लिए प्रांतों के अधिकार को स्वीकार किया गया, जिससे वे मुसलिम बहुल प्रांतों में अपनी इच्छा के अनुसार काम कर सकें। यह तुष्टीकरण भारत के विभाजन को तो नहीं रोक पाया, हाँ, हमारे राष्ट्र जीवन में यह विषबीज अवश्य बो गया। मुसलमानों का यह प्रश्न हमारी राजनीतिक पृष्ठभूमि से अलग होते ही हमारी दृष्टि में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ तथा जो विधान प्रारंभ में केंद्र को केवल 3 विषयों में अधिकार देने की सोचता था, वह आज बहुत आगे बढ़ गया है।

भावी निर्माण का आधार

ऊपर विवेचन किए हुए प्रतिक्रियात्मक कारणों को छोड़कर भावी भारत का चित्र हमें विधायक आधार पर बनाना होगा। भावात्मक दृष्टि से भारत अनेक इकाइयों को मिलाकर बना हुआ कोई संयुक्त निकाय नहीं अपितु वह स्वतः एक इकाई है। भारत यूनियन नहीं यूनिट है। प्रांत आदि जो भी विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण दिखते हैं, वे उसके अंग हैं तथा उनका प्रभाव या परिणाम तत्क्षेत्रीय जीवन के सभी क्षेत्रों पर नहीं बल्कि किसी विशेष क्षेत्र में ही है। यह सत्य नहीं है कि विभिन्न प्रदेशों की अपनी अलग संस्कृति है। संपूर्ण भारत की एक ही संस्कृति है। विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं के साहित्य भी भिन्न नहीं हैं। भाषा को छोड़कर यदि साहित्य की आत्मा को देखा जाए तो सबमें एक ही आत्मा के दर्शन होते हैं। कारण, वह एक ही समाज के प्रतिबिंब है। भक्ति, संत और वीर काव्य आदि की धाराएँ सभी साहित्यों के समान रूप में समकालीन दृष्टिगत होती हैं। जब भारत एक है, उसके जन, संस्कृति और राष्ट्र एक है तो उसका राज्य भी एक होना चाहिए। यहाँ अनेक राज्यों की गुंजाइश नहीं। फिर उन राज्यों और

केंद्र में चाहे जैसे संबंध हों, चाहे अवशिष्ट शक्ति केंद्र में हो तथा राज्यों को पृथक् होने का अधिकार न हो। संघ शासन एक समझौते की भावना लेकर चलता है। संधि राज्यों और केंद्र के बीच होती है। किसकी कितनी शक्ति हो, यह संधि की शर्तों पर निर्भर होता है। संविधान इस संधि का ही एक स्वरूप है।

भारतीय संविधान एकात्मक एवं संघात्मक प्रकृतियों के मिश्रण से बना है। जहाँ एक ओर अंग्रेज़ी ज़माने की शिक्षा, राजनीतिक गतिविधियों आदि के परिणामस्वरूप हमारे संविधान के निर्माता प्रांतीय आधार पर विचार करते थे, वहाँ दूसरी ओर सहस्रों वर्षों से चली आई भारतीय जीवन की एकात्मकता भी हृदय की श्रद्धा बन चुकी थी। अत: अंग्रेज़ों के जाते ही हम एकात्मकता की ओर बढ़े। देशी राज्यों के एकीकरण के निमित्त सरदार बल्लभभाई पटेल के प्रयत्नों में हमें यही प्रवृत्ति दिखाई देती है। हमारी इस एकात्मक भावना के कारण हमने कुछ मौलिक बातें स्वीकार कर ली हैं—

1. संपूर्ण भारत की एक ही नागरिकता है।
2. संपूर्ण देश के लिए एक विधान, एक प्रधान एवं एक निशान स्वीकार किया है। संयुक्त राज्य अमरीका में हर राज्य का अपना अलग विधान है, प्रांतों के राज्यपाल निर्वाचित नहीं, अपितु राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत हैं।
3. संपूर्ण देश की एक राज्यभाषा है।
4. निर्वाचन आयोग संपूर्ण देश के लिए एक है।
5. वित्तीय दृष्टि से भारत एक है।
6. न्याय व्यवस्था संपूर्ण भारत की एक है।
7. अवशिष्ट शक्ति राज्यों के पास नहीं, अपितु केंद्र के पास है।
8. समवर्ती सूची में किसी विषय पर राज्य के विधान की अपेक्षा केंद्रीय विधान अधिक शक्तिशाली है।
9. राष्ट्रपति को राज्यों के मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार है।
10. भारतीय जन एक हैं और उसकी गणना एक साथ तथा एक ही आयोग के अंतर्गत होती है।

उपर्युक्त तथा ऐसी अनेक बातें हैं, जो हमारी एकात्मक प्रवृत्ति की परिचायक हैं किंतु साथ ही हम संघात्मक मनोवृत्ति का शिकार बनने से भी स्वयं को रोक नहीं पाए। हमने प्रांतीय दृष्टि से न केवल सन् 1935 के संघात्मक विधान का प्राय: अनुकरण किया बल्कि प्रांतों को राज्य की संज्ञा देकर बड़ी भारी भूल कर ली। भारत को हमने राज्यों का संघ कहकर घोषित किया। केंद्र में राज्यसभा की निर्मिति विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधि के रूप में की। इसी प्रकार केंद्रीय शासन का छोटा स्वरूप हमने प्रत्येक राज्य में खड़ा किया। यहाँ तक कि जिस प्रकार केंद्र में राष्ट्रपति वैधानिक प्रमुख के रूप में हैं,

उसी प्रकार प्रत्येक राज्य में राज्यपाल या राज्यप्रमुख इसीलिए रखा गया है कि वह राष्ट्रपति की भाँति प्रांतों में वैधानिक प्रमुख का कार्य करे। प्रत्येक प्रांत के लिए अलग हाईकोर्ट की व्यवस्था की गई। विधायक शक्ति को संविधान के अनुसार केंद्र तथा राज्यों में बाँटा गया है।

परिवर्तन के सुझाव

संविधान में दोनों भावनाओं का सम्मिश्रण होने के कारण भारत की भावी दिशा अनिश्चित सी हो गई है। सन् 1947 के पश्चात् हमारा विधान धीरे-धीरे विकसित हो रहा था। यदि हमने विधान बनाने में कुछ समय और लिया होता तो मुझे विश्वास है कि वह और भी निखर गया होता। वैसे समय-समय पर हमने जो संशोधन किए हैं तथा राष्ट्रपति को जो पग उठाने पड़े हैं, वे इस बात के द्योतक हैं। किंतु देश में ऐसे तत्त्वों की कमी नहीं है, जो इस स्वाभाविक विकास के स्थान पर अभी तक अंग्रेज़ी काल में पाली-पोसी गई विघटनात्मक प्रवृत्ति का सहारा लेकर आगे बढ़ना चाहते हैं। बिना किसी वैज्ञानिक आधार पर बने हुए प्रांतों से उत्पन्न असंतोष तथा प्रादेशिक अभिनिवेश उन्हें और भी बल देते हैं। फलत: स्थान-स्थान पर थोड़े-बहुत प्रमाण में यह प्रदेशों का आंदोलन प्रारंभ हुआ तथा कई स्थानों पर काफ़ी जोर पकड़ गया। यहाँ तक कि आंध्र में तो व्यापक पैमाने पर हिंसात्मक कार्रवाई भी हुई। इस परिस्थिति में दो ही मार्ग थे— 1. धर आयोग[6] के अनुसार आज की माँगों के पीछे अराष्ट्रीय अथवा उपराष्ट्रीय भावना होने के कारण इस प्रश्न को अगले 20 वर्षों के लिए टाल दिया जाए, 2. इस प्रश्न का व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया जाए तथा भारत के मानचित्र एवं संविधान का अवैज्ञानिक आधार छोड़कर उसकी सही तौर पर रचना की जाए।

भारतीय जनसंघ ने दूसरा मार्ग ही उपयुक्त समझा। कारण, प्रश्न को टालने से बढ़ते हुए असंतोष का लाभ उठाकर अराष्ट्रीय तत्त्व राष्ट्र के लिए और भी संकट पैदा कर सकते हैं। अत: यह सुझाव रखा गया कि एक उच्चाधिकार संपन्न आयोग नियुक्त किया जाए, जो प्रांतों की पुनर्रचना, सुरक्षा, प्रशासन तथा वित्तीय संपन्नता का विचार करे। भाषा इस प्रांत रचना का आधार नहीं हो सकता। यह भी हमने स्पष्ट किया। हाँ, यह सत्य है कि भाषा की एकता प्रशासन की दृष्टि से कुछ सुविधा अवश्य उत्पन्न कर देती है। वैसे बंबई जैसे बहुभाषा-भाषी प्रांत शासन संस्था की दृष्टि से आज बिहार, राजस्थान, मध्य भारत, पंजाब आदि एकभाषी प्रांतों से पिछड़े हुए नहीं, बल्कि आगे ही

---

6. धर आयोग : भाषाई आधार पर राज्यों के पुनर्गठन की माँग पर व्यावहारिक अध्ययन करने के लिए जून 1948 में भारत सरकार ने जस्टिस एस. के. धर की अध्यक्षता में आयोग का गठन किया। आयोग ने इस माँग को खारिज कर दिया था।

हैं। भारत सरकार ने यह सुझाव मान्य कर लिया तथा आयोग की नियुक्ति[7] भी हो गई।

आयोग के नियुक्त होते ही देश में नए-नए प्रांतों की माँग की एक होड़ सी लग गई। दक्षिण में ही नहीं, जहाँ यह माँग बहुत दिनों से है, उत्तर में अनेक प्रांतों की माँग हुई। बिहार जैसे एक भाषा-भाषी प्रांत में भी मिथिला, भोजपुर तथा झारखंड प्रांत की माँग रखी गई है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में ब्रज, कुरु तथा जांगल आदि प्रांतों की चर्चा है। उत्तर प्रदेश भी कई हिस्सों में बँटना चाहता है। विभिन्न माँगों के पीछे जो स्वार्थ हैं, उन्हें छोड़कर हम उस तत्त्व का विचार करें, जिसका सहारा लेकर वे आगे बढ़ रहे हैं। इसके लिए हमें भारतीय जीवन का विश्लेषण करना होगा।

संपूर्ण भारत का जनजीवन यद्यपि एक है, किंतु यह अनेक धाराओं में अभिव्यक्त एवं उनसे पुष्ट हुआ है। हमारी संस्कृति अपनी आधारभूत एकता को बनाए रखते हुए भी विविध रूपेण विकसित हुई है। हमने इन विविधताओं को नष्ट नहीं किया अपितु उनको विकास का लक्षण मानकर व्यक्त होने का अवसर दिया है। इन विविधताओं के बीच समानता का दर्शन कई स्तरों पर होता है। उसका प्रथम दर्शन जनपदों में होता है, जहाँ के निवासी प्राय: एक बोली बोलते हैं तथा अपनी कुछ विशेषता रखते हैं। ब्रज, अवध, भोजपुर, मगध, मिथिला, कोशल, कलिंग, विदर्भ, खानदेश, मालव, कोंकण तथा मालाबार आदि जैसे अनेक जनपद हैं। इन जनपदीय विभाषाओं में समय-समय पर कोई विभाषा साहित्य का माध्यम बनकर खड़ी हो जाती है तथा उसे अपनाकर चलने वाले अनेक जनपद कुछ निकट आ जाते हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, बंगाल आदि ऐसी इकाइयाँ हैं। भारतीय जीवन के समुचित विकास के लिए इन सबका विचार करना होगा।

जनपदीय आधार

आज जो प्रांत बने हैं या जिन प्रांतों की माँग की जा रही है, उनमें जनपदीय जीवन की अवहेलना की जा रही है। फलत: हम ऐसी व्यवस्था की ओर बढ़ रहे हैं, जो जनता की अपनी व्यवस्था नहीं कही जा सकती। कोंकण का जीवन, साहित्य, उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ आदि नष्ट हो गईं तो पूना की पेशवाई परंपरा या शतारा का जीवन उनके विकास का माध्यम नहीं बन सकता। आज उनकी आत्मा रो रही है। जिस अवधी के माध्यम से तुलसीदास की रामभक्ति और राष्ट्रभक्ति फूट पड़ी थी, आज उसको छोड़कर हिंदी के सहारे बड़े-से-बड़े कवि लोकहृदय की हृदतंत्री के तारों को झंकृत नहीं कर पाते। जयशंकर प्रसाद और निराला की कविताओं का पाठ घर-घर में नहीं हो सकता।

7. 1 अक्तूबर, 1953 को आंध्र प्रदेश निर्माण के बाद भाषाई आधार पर अनेक नए राज्यों की माँग उठी। इस माँग को देखते हुए दिसंबर 1953 में फज़ल अली आयोग का गठन किया गया, सितंबर 1955 में दी गई अपनी रिपोर्ट में आयोग ने भाषाई आधार की अनुशंसा की थी।

अत: आवश्यकता है कि केंद्र में एक सुदृढ सर्वप्रभुतासंपन्न संसद् हो, जो देश की संपूर्ण राज्य व्यवस्था के लिए उत्तरदायी हो। इस शासन का विकेंद्रीकरण छोटी-छोटी इकाई ग्रामों तक हो। साधारण व्यवस्था का कार्य ग्राम पंचायतों को सौंपकर अन्य नियम बनाने की शक्ति, जो आज की म्युनिसिपैलिटियों से अधिक किंतु राज्य विधानसभाओं से कम होगी, जनपद सभाओं को दी जाए। विधायक शक्ति केवल संसद् की ही रहे। बीच की राज्यों की विधानसभाएँ समाप्त कर दी जाएँ। हाँ, शासन की दृष्टि से अनेक जनपदों को मिलाकर प्रांत बनाए जाएँ, जिनका भार गवर्नरों के ऊपर हो, किंतु वह आज की तरह दिखाऊ न होकर वास्तविक रूप से शासक हों। इस प्रकार हम आज की विधानसभाओं एवं प्रांतीयता से एक ओर तो जनजीवन को कुचलने से बचा लेंगे, दूसरी ओर राज्यों की एकता के लिए उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले संकट को भी टाल देंगे। वह संकट केवल काल्पनिक नहीं, कश्मीर में शेख़ अब्दुल्ला के तत्त्वावधान में हम उसको देख चुके हैं। केंद्र और प्रांतों में दो विरोधी दलों की सरकार बनाने पर अन्य प्रांतों में भी ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है।

आज की बढ़ती हुई प्रांतीयता के काल में यह विरोध बहुत कुछ संभव है। अत: आज तो यही आवश्यक है कि हम राष्ट्रीय शक्ति को मज़बूत करें तथा उसके लिए सुदृढ केंद्र की स्थापना करें। इस शक्ति का विकेंद्रीकरण आवश्यक है। वह जनपदों में ही होना चाहिए। आज जो राज्यसभाएँ बनाकर रखी हैं, उनमें प्रथम तो विकेंद्रीकरण का भाव नहीं। उल्टे संघात्मक कल्पना होने के कारण प्रांतों ने ही कुछ शक्ति केंद्र को दी, यही भाव है। दूसरे यह विकेंद्रीकरण एक ओर भारत की राष्ट्रीयता के लिए संकट है तो दूसरी ओर जनपदीय जीवन को कुचलकर प्रजातंत्र को भी ख़त्म कर रहा है।

यह भी प्रश्न उठता है कि जनपदों और केंद्र में शक्ति का बँटवारा कैसे हो? आज उसका निश्चित स्वरूप नहीं रखा जा सकता। हाँ, हमारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि केंद्र अपने पास कम-से-कम सत्ता रखकर शेष को विकेंद्रित करता जाए। किंतु यह शनै:-शनै: होगा।

प्रादेशिक भाषा का शासन एवं शिक्षा में क्या स्थान होना चाहिए, उसी दृष्टि से भारत में क्षेत्रों की व्यवस्था की जाएगी और वह आज के भाषानुसार हो सकती है, किंतु उसमें किसी अलग सांस्कृतिक इकाई, अलग राज्य या अलग विधानसभा की गुंजाइश नहीं।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 4, 1954

□

18

हम सिर नहीं, चरित्रवान व्यक्ति एकत्र कर रहे हैं

लखनऊ में विजयादशमी[1] के पुण्य पर्व पर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के गणवेशधारी स्वयंसेवकों के मध्य दीनदयालजी का बौद्धिक वर्ग।

आज विजय की शुभ वेला में हम यहाँ एकत्र हुए हैं। हिंदू के नाते हम यह उत्सव मनाते हैं। आज के ही पुण्य पर्व पर हिंदू राष्ट्र स्थापना का निश्चय लेकर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना की गई थी। अत: आज का दिवस हमें विगत विजय का स्मरण तो दिलाता ही है, अपितु इस युग में इस भावना को साकार करने के लिए अवसर भी प्रदान करता है।

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का यह स्थापना दिवस हमारे सम्मुख प्रश्न उपस्थित कर सकता है कि 'संघ की स्थापना क्यों हुई?' हम सभी स्वयंसेवक हैं। हमारे लिए यह प्रश्न अत्यंत ही आश्चर्यजनक है, क्योंकि हमारे हृदय में प्रेरणा है और उत्साह है, निरंतर कार्य भी करते जा रहे हैं। हम शक्ति चाहते हैं। इसके निमित्त उपासना कर रहे हैं। आज का दिन भी शक्ति का है। अत: स्वाभाविक रूप में शक्ति के परिणामों को जानने की हमारी इच्छा रह सकती है।

शक्ति का स्वरूप कोई एक नहीं है। वह लक्ष्य के अनुसार बदलता रहता है। यदि

---

1. विजयादशमी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ द्वारा अपनी सभी शाखाओं में मनाए जाने के लिए सुनिश्चित छह राष्ट्रीय उत्सवों में से एक है। यह आश्विन शुक्ल दशमी को होता है।

कोई शास्त्रार्थ में विजय प्राप्त करना चाहता है तो उसे ज्ञानार्जन करना होगा। यदि कोई बड़ा पहलवान बनना चाहता है तो शारीरिक बल के रूप में ही उसके लिए शक्ति का महत्त्व है। लक्ष्य के निश्चय के साथ-ही-साथ शक्ति का स्वरूप भी निश्चित किया जा सकता है। तब हमें पहले यह निर्णय करना होगा कि हमारा लक्ष्य क्या है? लक्ष्य के अलग होने पर साधन में भी अंतर आ जाता है। उदाहरणार्थ, अंग्रेज़ों के जाने से पूर्व भारत में सभी का लक्ष्य 'स्वराज्य' था। किंतु जो शक्ति के बल पर अंग्रेज़ों को निकालने में समर्थ थे, वे क्रांतिकारी बने। जो सबको साथ लेकर चलने का विचार रखते थे, वे कांग्रेसी हुए तथा जो शासन में भाग लेकर उसे भारतीय बनाना चाहते थे, वे लिबरल यानी उदार बन गए। हिंदू राष्ट्र की स्थापना का निश्चय लेकर चलने वाले लोगों ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना का आधार अपनाया। इससे यह स्पष्ट है कि 'स्वराज्य' शब्द तो एक था, किंतु लक्ष्य अलग होने के कारण उसको प्राप्त करने के साधन नितांत भिन्न हो गए।

हमारे अतिरिक्त भी अन्य लोग शक्ति की चाह लेकर चलते हैं किंतु उन्हें स्वयं ज्ञात नहीं कि उनका लक्ष्य क्या है? अत: हम शक्ति क्यों चाहते हैं, का विश्लेषण आवश्यक है। उदाहरणार्थ, अंग्रेज़ भारत से चले गए तथा हमने एक संविधान स्वीकार किया। 21 वर्ष की आयु के प्रत्येक व्यक्ति को मत देने का अधिकार दिया गया।[2] लोगों ने इसी को शक्ति प्राप्त करने का साधन समझना प्रारंभ कर दिया है, क्योंकि उन्हें आशा रहती है कि वे मतों के आधार पर राज्य प्राप्त कर सकेंगे।

इस समान मताधिकार के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक स्तर पर आ गया है, यह अच्छा हुआ। परंतु इस वयस्क मताधिकार के कुछ और भी परिणाम हुए हैं। ईमानदार, बेईमान सभी एक स्तर पर आ गए हैं। जो व्यक्ति 51 प्रतिशत वोटरों को अपने पीछे खड़ा कर सके, वही राजा बन सकता है। फिर चाहे वे 51 प्रतिशत बेईमान, स्वार्थी और अराष्ट्रीय व्यक्ति क्यों न हों। लोकसंग्रह का भी लोगों ने यही अर्थ समझ लिया है। वे केवल अपने पीछे सिरों की अधिक-से-अधिक संख्या खड़ी करना चाहते हैं। उनके लिए चरित्र आदि का कोई महत्त्व नहीं।

हम विचार करें—हमारा मार्ग कौन सा है? सिर गिनने से चाहे राजनीतिक शक्ति भले ही प्राप्त हो जाती हो किंतु राज्य जीवन का लक्ष्य नहीं। क्योंकि जिनके सामने कुरसी का लक्ष्य रहा, वे बौरा गए। जिनके सहारे आगे बढ़े, उन्हीं को धक्का देकर पीछे हटाने का प्रयत्न किया। उनका हाल नहुष का सा रहा, जो कि स्वर्ग में पहुँचकर शची से मिलने के लिए उत्साह में इतना उन्मत्त हुआ कि उन्हीं सप्तर्षियों को गाली दी तथा उन्हें

2. भारतीय संविधान में 61वें संशोधन (1988) द्वारा वयस्क मताधिकार की उम्र 21 से घटा कर 18 वर्ष की गई थी।

कोड़े लगाए, जो उसके आधार थे। इसका क्या परिणाम रहा, सर्वविदित है।

संघ का कार्य अन्य प्रकार चलता है। हम सदैव से कहते रहे हैं कि स्वराज्य साधन है, साध्य नहीं। हमारा लक्ष्य हिंदू जीवन का सर्वांगीण संगठन है। राज्य हमारे सामने उद्देश्य नहीं। दूसरे लोग 51 सिर अपने पीछे खड़ा करने का प्रयत्न करते रहे, किंतु हमारे सामने समाज कल्याण का उद्देश्य है। हम तत्काल प्रभाव की बात सुनने को तैयार नहीं। जब परमपूज्य गुरुजी ने दक्षिण में भाषावार प्रांत रचना का विरोध किया तो एक सज्जन ने कहा, ''यहाँ संयुक्त महाराष्ट्र की भावना बड़ी प्रबल है। यदि आप उसका विरोध करेंगे तो आपका राजनीतिक भविष्य अंधकारमय रहेगा।'' तो गुरुजी ने उत्तर दिया, ''मुझे राष्ट्रीय भविष्य की चिंता है, राजनीतिक भविष्य की नहीं।''

जब मैं भी दक्षिण के दौरे पर गया तो उक्त सबने मुझसे भी कहा कि गुरुजी का कार्य तो सांस्कृतिक है किंतु आप तो कम-से-कम संयुक्त महाराष्ट्र का विरोध न करें। किंतु मैंने भी यही उत्तर दिया कि जो राष्ट्रहित के लिए आवश्यक है, वही मुझे भी कहना चाहिए।

यदि हम भी अपनी शक्ति को राज्य शक्ति के आधार पर नापने लगे तो हमारा स्टैंडर्ड ग़लत रहेगा। जैसे दूध नापने के लिए गज़-फुट का पैमाना काम में नहीं लाया जा सकता, वैसे ही अपनी शक्ति को राज्य शक्ति के आधार पर नहीं नापा जा सकता। हम 35 करोड़ भारतीयों को भगवा ध्वज के नीचे एकत्र करने का विचार रखते हैं, यह ठीक है; किंतु 35 करोड़ सिर नहीं।

एक बार एक सज्जन ने एक प्रश्न पूछा, ''भगवान् राम ने व्यर्थ में इतना कष्ट क्यों किया, क्यों नहीं रावण को अपनी असीम शक्ति से एक क्षण में समाप्त कर दिया, जैसे नृसिंह ने हिरण्यकशिपु को नष्ट किया था? भगवान् कृष्ण ने इतना बड़ा महाभारत क्यों रचा? क्यों नहीं दुर्योधन को क्षणमात्र में नष्ट कर दिया। वे तो सर्वशक्तिमान थे।''

इसके लिए हमें विचार करना होगा। अवतार के दो कार्य होते हैं—दुष्ट-दमन तथा धर्म स्थापना। क्षणमात्र में रावण या दुर्योधन को नष्ट करने से दुष्टों का नाश तो हो जाता, किंतु जन-जन के हृदय में वह धर्म स्थापना नहीं हो पाती, जो राम के वन-वन घूमने पर उत्पन्न हो सकी। दुष्टों का दमन प्रमुख नहीं। प्रमुख है, धर्म की संस्थापना।

राम की वह भावना हमें चाहिए, जिसके कारण उन्होंने सोने की लंका को ठोकर मार दी तथा लक्ष्मण के कहने पर कि ''चौदह वर्ष हो गए हैं। न जाने भरत का मन कैसा बदल गया होगा। व्यर्थ में अयोध्या जाने की अपेक्षा यही अच्छा है कि लंका में शासन करें'' उन्होंने कहा—

"अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।"

अर्थात् मुझे जन्मभूमि के सम्मुख स्वर्ग भी अच्छा नहीं लग सकता। लक्ष्मण को सोने की लंका भाई थी, यही लक्ष्मण का भाव था। रावण को अपने देश का कल्याण भाया था, यही राम का भाव था।

एक सज्जन ने मुझसे कहा, गो-हत्या के संबंध में किफायती दृष्टि से विचार बताइए। मेरे विचार में जो आज गाय का मूल्य रुपए-पैसे में आँकते हैं, वे कल देश को भी रुपए-पैसे के अनुसार ही तौलेंगे। प्रश्न यह है कि हम किस-किस वस्तु को रुपए-पैसे के हिसाब से तौलते हैं? माता-पिता, पुत्र, पत्नी, भाई का मूल्य तो रुपए-पैसे में नहीं गिनते।

एक बार एक गांधी टोपीधारी सज्जन ने कश्मीर आंदोलन के समय भी ऐसा प्रश्न किया, "यदि कश्मीर पाकिस्तान के हाथ चला जाए तो क्या हर्ज़ है? हम पर आर्थिक भार कम ही होगा, क्योंकि हमें काफ़ी धन उस पर व्यय करना पड़ता है।" यदि ऐसा ही है तो राजस्थान के लोग इतना बलिदान क्यों करते? उनका क्षेत्र तो पूरी तरह मरुस्थल है।

हम लोकसंग्रह करेंगे, किंतु आदर्श लोगों का। बालू के कण नहीं तो लोहे के कण एकत्र करते हैं। हमने एक पद्धति अपनाई है, जो हमारे जीवन में निरंतर संस्कार डालती है। राष्ट्रभाव उत्पन्न करती है। लक्ष्य प्राप्त करने में व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा अत्यंत बाधक है। इसका उज्ज्वल उदाहरण पांडवों का है। जब युधिष्ठिर अपना राज्य परीक्षित[3] को देकर कैलास की ओर चले तो मार्ग में ही एक-एक करके सभी भाई तथा द्रौपदी गिर गए। भीम को सबके गिरने का कारण स्पष्ट करते हुए युधिष्ठिर ने कहा था कि पतन का कारण उनका अभिमान है। युधिष्ठिर के साथ एक कुत्ता अंतिम समय तक रहा। जब इंद्र की आज्ञा से देवता युधिष्ठिर को स्वर्ग ले जाने के लिए विमान लाए तो उन्होंने कुत्ता साथ ले जाने का आग्रह किया। इस पर देवताओं ने आपत्ति की किंतु युधिष्ठिर ने उनकी एक न मानी और कुत्ता साथ ले जाने का आग्रह जारी रखा, कुत्ते के रूप में युधिष्ठिर के साथ धर्म था। जो बाद में प्रगट हो गया तथा दोनों विमान पर चढ़कर स्वर्ग गए।

इस उदाहरण से पता चलता है कि अभिमान का परिणाम कितना भयंकर होता है। ध्येय मार्ग में वह अत्यंत बाधक है। यदि अभिमान अनजाने में भी व्यक्ति में कहीं जिंदा रहा तो पतन निश्चित कराएगा। यह व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है।

हम गिरने वालों की चिंता न करें। बड़े-से-बड़े व्यक्ति भी हमारा साथ नहीं दे सके

---

3. महाभारत के बाद युधिष्ठिर ने राज्य-त्याग कर हिमालय जाने पर जिसे सम्राट् बनाया, वह परीक्षित थे। अभिमन्यु और उत्तरा के पुत्र। नाग जाति के तक्षक ने परीक्षित की हत्या की थी।

तो कोई चिंता नहीं। उनके शोक में हम हाथ-पर-हाथ धरकर बैठे न रहें। वरन् युधिष्ठिर की भाँति निरंतर बढ़ते रहें। किंतु एक बात ध्यान रखें, जो छोटे-से-छोटे व्यक्ति भी हमारे साथ हैं, उनकी भी अवहेलना न करें वरन् उनको साथ रखें। चाहे फिर वे कुत्ते के समान निम्न कोटि के ही क्यों न हों, वे हमारे साथ हैं। हम उन्हें अपने साथ रखें।

यदि हमने यह सब किया तो वास्तव में हमारी शक्ति आराधना सफल होगी और हम व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा से रहित, देश प्रेम में पूर्ण, सच्चरित्र व्यक्तियों का संगठन खड़ा कर सकेंगे।'

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 11, 1954

□

19

लंका-भारत प्रधानमंत्री समझौता असंतोषजनक

लंका स्थित भारतीयों के प्रश्न पर भारत और श्रीलंका[1] के प्रधानमंत्रियों के बीच हुए समझौते पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

दोनों प्रधानमंत्रियों के बीच हुए समझौते में मतैक्य की अपेक्षा मतभेद ही अधिक है। प्रधानमंत्री श्री नेहरू सदैव के मैत्रीपूर्ण रवैये के पश्चात् भी लंका में रहने वाले बहुसंख्यक भारतीयों के लिए नागरिकता के अधिकार प्राप्त नहीं कर सके हैं, जब तक लंका सरकार इन लोगों के प्रति अब तक का अपना अमैत्रीपूर्ण रुख़ नहीं बदलती, तब तक उनका ज़ीवन तथा जीविकोपार्जन सुरक्षित नहीं हो सकता। इस बात का कोई संकेत नहीं कि लंका सरकार इन नागरिकता विहीन लोगों के प्रश्न पर सहानुभूति से विचार करेगी। इसके विपरीत वह उन्हें भारत की नागरिकता स्वीकार करने के लिए विवश कर रही है, जिसका अर्थ एक-न-एक दिन लंका से उनके निष्कासन में होगा। भारत सरकार को इन व्यक्तियों को लंका की नागरिकता के अधिकार प्रदान किए जाने पर ज़ोर देना चाहिए था और नौकरी की शर्तें तथा अन्य सुविधाओं के बारे में ब्योरा तय कर लेना चाहिए था, जिससे वे लंका सरकार की ज़्यादती तथा भेदभावपूर्ण व्यवहार से बच सकें।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 18, 1954

□

1. उस दौरान श्रीलंका के प्रधानमंत्री जॉन कॉटिलवाला (1895-1980) थे।

20

सरकार द्वारा सत्याग्रहियों को पकड़कर जंगल में छुड़वाना नितांत अवैधानिक

दीनदयालजी ने गो-हत्या निरोध समिति द्वारा संचालित सत्याग्रह के संबंध में निम्न वक्तव्य दिया।

सत्याग्रह गांधीजी की देन है। उनके पूर्व सत्याग्रह नहीं हुए, यह बात नहीं किंतु जन-आंदोलन के एक महान् अस्त्र के रूप में इसको उन्होंने ही विकसित किया। इसके पीछे एक उच्च तत्त्वज्ञान की सृष्टि भी उन्होंने की। किंतु सत्याग्रह शास्त्र उनके साथ ही अपने विकास की अंतिम सीमा पर पहुँच गया, यह नहीं कहा जा सकता। जीवमान शस्त्र होने के कारण यह बराबर प्रगति करता जा रहा है।

प्रारंभ में सत्याग्रह को निःशस्त्र प्रतिकार का नाम दिया गया। निर्बल एवं शस्त्रविहीन लोगों के सम्मुख अन्याय के प्रतिकार का कोई अन्य मार्ग न होने के कारण यही मार्ग उपयुक्त समझा गया। शासन के साथ असहयोग का भाव भी इसके पीछे आया, किंतु गांधीजी ने बताया कि सत्याग्रह दुर्बलता का नहीं अपितु शक्ति का परिचायक है। साथ ही सत्याग्रही के मन में न तो शासन के प्रति कोई प्रतिशोध की भावना होती है और न वह मूलतः असहयोग ही है। यदि वह असहयोग करता भी है तो अन्याय को चालू रखने में करता है, जो शासन ज़बरदस्ती से चलाना चाहता है। सत्याग्रह किसी भी अन्याय के विरुद्ध उठाए जाने वाले अनेक वैधानिक मार्ग में से एक है। उसका मंतव्य शासन उलटने का नहीं और न शासन के ऊपर जनमत के दबाव के अतिरिक्त अन्य कोई दबाव डालने का है। अतः स्वतंत्र भारत में ही सत्याग्रह को स्थान है और वह पूर्णतः वैधानिक है।

सत्याग्रह श्रद्धा का विषय है। उसमें तर्क के लिए गुंजाइश नहीं। जब सत्याग्रही को

यह लगता है कि अन्याय को सहन करने की अपेक्षा कष्ट सहन करना उचित है तो वह आगे आ जाता है। यह हृदय का प्रश्न है। सत्याग्रह युद्ध के अनेक दाँवपेचों में से एक नहीं और न उसका स्टंट के ही नाते विचार किया जा सकता है। अतः किसी भी सत्याग्रह को असामयिक नहीं कहा जा सकता, जो असामयिक कहते हैं, वे सत्याग्रह तत्त्व से अनभिज्ञ हैं तथा उसे स्ट्रेटजिक दृष्टि से ही देखते हैं। उनकी श्रद्धा में भी कहीं कमी हो सकती है। जितनी उनकी श्रद्धा है, उसके अनुकूल जब वातावरण होगा, वे अपने को नहीं रोक सकेंगे।

सत्याग्रह श्रद्धा का विषय होने के कारण सत्याग्रही उसकी सफलता-असफलता की भी चिंता नहीं करता। वास्तव में सत्याग्रह कभी असफल नहीं होता। माता द्वारा की गई बच्चे की सेवा या भक्त द्वारा भगवान् की आराधना कभी असफल नहीं हो जाती। उसकी सिद्धि तो कर्म में ही है। दृष्टि फल भी उसका परिणाम है। जैसे माली के पानी और खाद आदि का परिणाम वृक्ष का फल होता है। यद्यपि उसका पारस्परिक संबंध आम व्यक्ति की समझ में नहीं आता।

हृदय का प्रश्न होने के कारण ही सत्याग्रही किसी भी समय अपनी ग़लती महसूस होने पर उसे निर्भयता से स्वीकार कर लेता है। इसी प्रकार सत्याग्रही के सम्मुख कभी भी प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं होता। अधिकारियों को वह पराया मानकर नहीं चलता। इसीलिए सदैव शांतिपूर्ण मार्ग निकालने को तैयार रहता है, किंतु उसके हृदय का समाधान होना चाहिए।

सत्याग्रही क़ानून की अवज्ञा नहीं करता। क़ानून उसका पालन न करने पर दंड का विधान करता है। सत्याग्रही क़ानून को तोड़ता है किंतु विधानतः दंड स्वीकार करने को भी तैयार रहता है। सत्याग्रह के इस पहलू का विकास सर्वप्रथम जनसंघ आदि दलों के कश्मीर सत्याग्रह में हुआ। विधान से निश्चित दंड से अधिक या विपरीत दंड देना और उसे स्वीकार करना सत्याग्रही के लिए उचित नहीं होगा।

अतः गांधीजी के समय में शासन सत्याग्रह के विरुद्ध सब प्रकार की नियम विरुद्धता का अवलंबन करता था। वह अब संभव नहीं रहा। मुक़दमा लड़ना और पूरी तरह लड़ना इसका आवश्यक अंग हो गया है।

आजकल पुलिस ने सत्याग्रहियों को पकड़कर न्यायालय के सम्मुख उपस्थित करने के स्थान पर उन्हें खींच घसीटकर दूर जंगल में छोड़ देने की प्रक्रिया अपनाई है। निश्चित ही पुलिस के ये सभी कृत्य अवैधानिक हैं। उन्हें उसकी नियम विरुद्ध कृतियों के लिए दंड दिलवाया जा सकता है। यह भी प्रचार किया जाता है कि पुलिस द्वारा जेल न भेजकर वैसे ही छोड़ देने से सत्याग्रह हो ही नहीं पाता। जेल सत्याग्रह का अंग नहीं। न दंड की मात्रा ही इनकी तीव्रता का निकष है। वह निकष सत्याग्रही की भावना एवं

जनजागरण का ही है। सत्याग्रही द्वारा विरोध प्रदर्शन करने के साथ चाहे जो व्यवहार हो, सत्याग्रह प्रारंभ हो जाता है। हाँ, जो अनियमित व्यवहार किया जाता है, उसके लिए क़ानूनी सहारा अवश्य लिया जाता है। सत्याग्रही सदैव अपनी पद्धति निश्चित करके चल सकता है। सत्याग्रह प्रथम तो युद्ध नहीं, फिर आज की परिभाषा में 'Total War' (पूर्ण युद्ध) तो कदापि नहीं। वह तो अन्याय के परिमार्जन के लिए एक कष्ट सहन का मार्ग अपनी श्रद्धा से अपनाता है। उसके मन में विरोध, प्रतिशोध या विद्वेष की भावना नहीं और न सत्याग्रही होने के नाते वह अपने अधिकारों से वंचित या कर्तव्यों से मुक्त हो जाता है।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 18, 1954

□

21

राष्ट्र की स्थिति

भारत का राजनीतिक माहौल अंतरराष्ट्रीयता से इतना आवेशित है कि इसके सम्मोहक प्रभाव के तहत हम अपने देश की अहम समस्याओं को नज़रअंदाज़ करने लगते हैं और भूल जाते हैं। यहाँ तक कि जब हम उन पर दृष्टि डालते हैं, तो हम ऐसा राष्ट्रीय दृष्टिकोण से कम और अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण से अधिक करते हैं। हालाँकि यह याद रखा जाना चाहिए कि विदेशों में हमारी प्रतिष्ठा, या विश्व शांति के लिए हमारा योगदान,पवित्र घोषणाओं और अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों से अधिक राष्ट्रीय घटनाक्रमों और लोगों की एकजुटता पर निर्भर करेगा।

नेहरू की तटस्थता स्वाभाविक नहीं है

दो शक्ति गुटों के मध्य गुटनिरपेक्षता की नीति के लिए हमारा रुख़ उचित ही है, लेकिन हमारे प्रधानमंत्री ने न केवल ग़ैर-भागीदारी की नीति का पालन नहीं किया है, बल्कि हाल के घटनाक्रमों से हमें यह महसूस हो रहा है कि वह धीरे-धीरे एक तरफ़ अधिक झुक रहे हैं। पश्चिमी उपनिवेशवाद और हाल ही में किए गए क्षेत्रीय समझौतों की निंदा करने का उनके पास औचित्य है। लेकिन उन्हें कम्युनिस्ट गुट के आक्रामक षड्यंत्रों पर मौन क्यों रखना चाहिए?

तिब्बत पर चीन के आधिपत्य को स्वीकार करना, और वह भी उस देश में भारत के हितों की क़ीमत पर स्वीकार करना ग़लत था। कम्युनिस्ट चीन ने फारमोसा पर फ़तह को एक पवित्र कार्य के रूप में घोषित किया है और इस प्रकार जिनेवा में बनाया गया शांति का माहौल ख़राब हो गया है। पूर्वी यूरोपीय राष्ट्रों पर सोवियत रूस का पूर्ण नियंत्रण विभिन्न क्षेत्रीय समझौते से भी बदतर है। सह-अस्तित्व का अर्थ होता है, ऐसे

स्वतंत्र देशों का अस्तित्व जो अपने लोगों की निहित प्रकृति और प्रतिभा के अनुसार अपनी नियति को आकार देने के लिए स्वतंत्र हों।

गोवा में ख़तरा

यह भी उल्लेखनीय है कि हमारी विदेश नीति कश्मीर, गोवा, सीलोन और दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की स्थिति के संबंध में हमारे लिए मददगार नहीं रही है। हम उस पाकिस्तान को भी नहीं रोक सके, जो अपने भारत विरोधी और आक्रामक इरादों के लिए विख्यात है और विदेशी सहायता के बूते मज़बूत होता जा रहा है। गोवा और कश्मीर के एक-तिहाई भाग की विदेशी शासन से मुक्ति हमारी विदेश नीति की कसौटियाँ हैं। यह संतोष की बात है कि प्रधानमंत्री ने गोवा में प्रवेश करने और मुक्ति आंदोलन में भाग लेने के ग़ैर-गोवा भारतीयों के अधिकार को स्वीकार किया है। हालाँकि वह यह महसूस करते हैं कि यह उचित समय नहीं है। तथापि जनसंघ महसूस करता है कि पहले ही बहुत देर हो चुकी है; अगर हम कुछ महीनों के लिए भी इंतज़ार करते हैं, तो समस्या और भी जटिल हो जाएगी। पुर्तगाल की सरकार बात करने के लिए तैयार नहीं है, बल्कि वह छोटी बस्तियों में सैन्य तैयारी कर रही है। पाकिस्तान गोवा में रुचि ले रहा है। गोवा के प्रश्न को शामिल करने के लिए नाटो के दायरे के विस्तार की माँग की जा रही है। गोवा सीमा के इस पक्ष के लोग पहले से ही अधीर हो रहे हैं—विशेष रूप से पुर्तगाली सरकार के बढ़ते आतंकवाद और अत्याचारों के कारण। अगर यही परिस्थितियाँ जारी रहीं, तो हो सकता है कि लोग भारतीय पुलिस द्वारा लगाए गए प्रतिबंध की अनदेखी करके गोवा में प्रवेश करें।

कश्मीर की स्थिति

पाकिस्तान का इरादा कश्मीर के प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में ले जाने का है। उसे एक बार में हमेशा के लिए बता दिया जाना चाहिए कि वह कश्मीर से दूर रहे। भारत में कश्मीर का परिग्रहण अंतिम और पूर्ण है। अगर कश्मीर का कोई प्रश्न है, जिसका पाकिस्तान से संबंध है, तो वह कश्मीर के एक-तिहाई हमारे इलाके का है, जिस पर पाकिस्तान ने अवैध रूप से क़ब्ज़ा किया हुआ है। यदि संभव हो तो उस क्षेत्र को शांतिपूर्ण तरीक़े से प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी और प्रधानमंत्री के रूप में बख़्शी की नियुक्ति के बावजूद कश्मीर में सभी कुछ ठीक नहीं है। यह आशा की गई थी कि नए प्रधानमंत्री समाज के सभी वर्गों को विश्वास में लेंगे और उनके सक्रिय सहयोग से एक समृद्ध और सुखी कश्मीर का निर्माण करेंगे। लेकिन कम्युनिस्ट सहयोगियों ने उन्हें प्रजा परिषद् का सहयोग

लेने की गुंजाइश नहीं दी है। प्रजा परिषद, जो वास्तव में जम्मू के लोगों का प्रतिनिधित्व करती है, उससे आधिकारिक या अनाधिकारिक तौर पर तब भी विचार-विमर्श नहीं किया गया है, जब राज्य के संविधान का निर्माण किया जा रहा है। जनसंघ का मत है कि भारत के संविधान को राज्य में लागू किया जाना चाहिए और भारत के संविधान के तहत नए सिरे से चुनाव कराने चाहिए, ताकि जम्मू के लोगों को उनका उचित प्रतिनिधित्व मिल सके। असामाजिक और अब्दुल्ला समर्थक तत्त्व फिर से भिन्न वेश में शरारत करने पर आमादा हैं; उनमें से कई तो हाल ही में गठित प्रसोपा में शामिल भी हो गए हैं।

दो शक्ति गुट अपने प्रभाव क्षेत्रों का विस्तार करने की कोशिश कर रहे हैं। उनके एजेंट भारत में भी काम कर रहे हैं। देश में बड़ी संख्या में लोग और संगठन रूस, अमरीका या पाकिस्तान के प्रति गुप्त या खुली सहानुभूति—और यहाँ तक कि वफ़ादारी- के साथ काम कर रहे हैं। वे भारत को परस्पर विरोधी विचारधाराओं और प्रभावों के लिए एक युद्ध का मैदान बनाने पर आमादा हैं। यदि हम वास्तव में अपने स्वतंत्र चरित्र को बनाए रखना चाहते हैं, तो हमें इन राष्ट्रविरोधी गतिविधियों की अनुमति नहीं देनी चाहिए और इसके बजाय एक राष्ट्रीय शक्ति का निर्माण करना चाहिए। जनसंघ इस महत्त्वपूर्ण कार्य को करना चाहता है।

अधिनायकवादी प्रवृत्तियाँ

वर्तमान सरकार अधिक-से-अधिक अधिनायकवादी रवैया अपना रही है। यह वास्तव में शर्मनाक है कि लोगों को गाय-वध पर प्रतिबंध लगाने के लिए सत्याग्रह शुरू करने के लिए मजबूर किया जाए। वह सरकार जो विदेशी नहीं है, उसे भिन्न-भिन्न प्रकार से लोगों की भावनाओं से अवगत कराया जा चुका है। यहाँ तक कि डॉ. सीताराम समिति ने भी इस प्रकार के प्रतिबंध की सिफ़ारिश की है। फिर वह कौन सी चीज़ है, जो सरकार को यह क़ानून बनाने से रोकती है? लोग यह चाहते हैं, विशेषज्ञ इसकी सलाह देते हैं। केवल कांग्रेस में राजनेता और पक्षपाती लोग इसका विरोध करते हैं। मैं सरकार से अपील करता हूँ कि वह गाय और गोवंश को बचाने के लिए राजनीतिक और पार्टी जुड़ाव से ऊपर उठे, जिसके बिना राष्ट्रीय पुनर्जागरण और आर्थिक विकास सफल नहीं हो सकता है।

मैं महिला सत्याग्रहियों पर पानी फेंकने और उन्हें जबरन हटाकर लखनऊ से 15 मील की दूरी पर छोड़ने के पुलिस व्यवहार की भी निंदा करता हूँ। अगर पुलिस विधायकों के लिए रास्ता साफ़ करना चाहती थी, तो भी इस कार्य के लिए उन फाटकों में से किसी एक को चुना जा सकता था, जहाँ पुरुष सत्याग्रहियों द्वारा धरना दिया जा रहा था। पुरुष सत्याग्रहियों पर अत्याचार करके और महिलाओं के साथ यह अशोभनीय

व्यवहार करके पुलिस ने अपने निर्लज्ज चरित्र का परिचय दिया है। इस हरकत की कड़े शब्दों में निंदा की जानी चाहिए।

सरकार हमारे विश्वविद्यालयों के स्वायत्त स्वरूप को समाप्त करने की भी कोशिश कर रही है। जनसंघ इस प्रवृत्ति को चिंताजनक मानता है। यह मानी हुई बात है कि कई विश्वविद्यालयों में पार्टीगत तकरारें विश्वविद्यालय के मानकों के पतन और छात्रों में अनुशासनहीनता की भावना के लिए ज़िम्मेदार रही हैं। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि जो सरकार स्वयं पार्टी के भीतर षड्यंत्रों से मुक्त नहीं है, उसे शिक्षण संस्थानों में अपना इस्पाती हाथ डालना चाहिए। इन अधिनायकवादी प्रवृत्तियों के कारण लोकतंत्र ख़तरे में है।

बाढ़ राहत

बाढ़ और सूखे ने हमारे लाखों देशवासियों को अकथनीय दुःख दिया है। सरकार की सहायता अत्यंत अपर्याप्त है। इससे भी बढ़कर यह ज़रूरतमंदों तक नहीं पहुँचती है, बल्कि उन लोगों द्वारा उड़ा ली जा रही है, जिनकी अधिकारियों तक पहुँच है। इस खाई को भरने के लिए ग़ैर-सरकारी संगठनों को आगे आना चाहिए। अपने अल्प संसाधनों, लेकिन निस्स्वार्थ कार्यकर्ताओं के एक विशाल तंत्र के साथ जनसंघ ने पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में बाढ़ राहत कार्य हाथ में लिया है। मैं पीड़ित लोगों तक मदद का हाथ बढ़ाने के लिए सभी से अपील करता हूँ।

—ऑर्गनाइज़र, अक्तूबर 18, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

22

मनुष्य या मशीन

मनुष्य ने मशीन को अपनी सहायता और सुविधा के लिए बनाया। किंतु आज वह उसका ग़ुलाम बन गया है। फिर भी वह नई-नई मशीनें बनाता जाता है, इसी आशा में कि हर नई मशीन उसे नई और अधिक शक्ति प्रदान करेगी। आज सारा संसार इसी होड़ में लगा है और नई-नई उलझनें पैदा करता जा रहा है। चाहे हम साम्यवाद को लें या पूँजीवाद को, दोनों की समस्याएँ मशीन युग की देन हैं। मशीनों ने शक्ति के केंद्रीकरण में सहायता दी है और वह ही सब समस्याओं की जड़ में है।

भारत ग़ुलामी के अभिशाप के कारण ही क्यों न हो, मशीनों की इस दौड़ में काफ़ी पिछड़ गया है। अंग्रेज़ी राज्य के मातहत हम अंग्रेज़ों की विकसित मशीनों से प्राप्त शक्ति के द्वारा शोषित ही रहे। मशीनों को खाने के लिए कच्चा माल देना तथा उनसे बनी हुई वस्तुओं के लिए बाज़ार जुटाना मात्र हमारा काम रहा। अब जब अंग्रेज़ चले गए हैं तथा हम स्वयं अपने भाग्य के विधाता हैं, हमारे मन में भी मशीनों की दौड़ में हिस्सा लेने की स्वाभाविक इच्छा उत्पन्न होती है। जिस शक्ति के सहारे अंग्रेज़ हमें ग़ुलाम बनाकर रख सके, यदि वह हमें भी प्राप्त हो जाए तो हम दृढ हो सकेंगे, यह सीधा सा तर्क हमारे समक्ष है। किंतु हमें गंभीरतापूर्वक सोचना चाहिए और पिछले डेढ़ सौ वर्ष के अभिशाप को वरदान में बदलना चाहिए।

मशीन से अधिक उत्पादन की शक्ति प्राप्त होती है। साधारणतया अधिक उत्पादन समृद्धि का लक्षण माना जाता है, किंतु यह सर्वांगपूर्ण विचार नहीं। उत्पादन अपने में ही हमारा लक्ष्य नहीं हो सकता। उत्पादन तो उपभोग के लिए चाहिए। अतः यदि उत्पाद वस्तु उपभोग्य या उपयुक्त नहीं हुई तो उसका अवमूल्यन हो जाएगा तथा वह समृद्धि का द्योतक नहीं होगा।

मनुष्य अधिकाधिक उपभोग तो करना चाहता है किंतु उसकी उपभोग-सामर्थ्य असीम नहीं है। वह अमर्यादित रूप में नहीं बढ़ सकती, यद्यपि यह सत्य है कि आज अधिकांश व्यक्तियों की इस सामर्थ्य में पर्याप्त वृद्धि की गुंजाइश है। (यहाँ हम इसका विचार नहीं करेंगे कि इस वृद्धि से कहाँ तक वास्तविक सुख एवं आनंद की उपलब्धि संभव है) किंतु यह सामर्थ्य एकाएक नहीं बढ़ सकती। सामाजिक रीति-रिवाज, व्यवस्था एवं जीवन के मूल्यों के साथ-साथ मनुष्य की क्रयशक्ति भी उसकी सामर्थ्य का निर्णय करती है।

आज भारत के जन-साधारण की क्रयशक्ति बढ़ाना ही हमारा प्रमुख लक्ष्य होना चाहिए। उसके लिए प्रथम आवश्यकता है, प्रत्येक को काम मिलता रहे। बेकारी क्रयशक्ति को बिल्कुल समाप्त कर देती है। भारत के हर व्यक्ति को काम मिले, उसके लिए नए उद्योग-धंधे प्रारंभ करने होंगे, किंतु वे ऐसे होने चाहिए कि उनके बने हुए माल को बाज़ार मिल सके तथा वहाँ किसी चलते हुए उद्योग को बंद करके बेकारी और न बढ़ा दे। बाज़ार देश और विदेश दोनों ही स्थानों पर मिल सकते हैं। किंतु विदेश के स्थान पर हमें देश के बाज़ार की ओर पहले ध्यान देना होगा, कारण-विदेशों के बाज़ार में दूसरे देश हमसे बहुत पहले पहुँच चुके हैं। उन्हें हटाना सहज नहीं, वरन् बाज़ारों को अपने पास रखने के लिए दुनिया के देश जिस युद्ध की तैयारी कर रहे हैं, हमें भी उसमें साथ देना होगा। उस हालत में हमारा ध्यान युद्ध सामग्री को इकट्ठा करने की ओर जाएगा, जो विकास के स्थान पर विनाश के लिए उत्तरदायी होगा।

देश का बाज़ार दो प्रकार से प्राप्त होगा। प्रथम बाहर से आने वाले माल पर प्रतिबंध लगाकर स्वदेशी का आश्रय ग्रहण करने से, दूसरे जन-साधारण की क्रयशक्ति को बढ़ाने से जो कि धन के समांतर वितरण एवं विकेंद्रीकरण से हो सकेगा।

जब मशीन मनुष्य को हटाकर उसका स्थान ले लेती है, तब क्रयशक्ति क्षीण होने लगती है। फलतः उत्पादित वस्तु की माँग कम होने से उसका मूल्य गिर जाता है। मज़दूरों को हटाने से यद्यपि ख़र्चा कुछ कम हो जाता है किंतु ऊपर का ख़र्चा (Establishment and Management) तो कम होता नहीं, यहाँ तक कि वह अनुपात में बढ़ ही जाता है। और इस प्रकार उद्योग को कोई बड़ा लाभ नहीं होता, जब तक कि वह नया बाज़ार न ढूँढ़ ले। यह तभी संभव है जबकि या तो विदेशों में बाज़ार मिल जाए या देश में दूसरे उद्योग-धंधों को हानि पहुँचाए। यद्यपि दूसरे उद्योग धंधों को हानि पहुँचाने पर वहाँ भी बेकारी बढ़ती है, जो क्रय शक्ति को और भी घटाने का कारण बनती है। अतः पश्चिम के अनेक देश अपने देश की समृद्धि विदेशों के बाज़ार पर ही टिकाते आए हैं।

जहाँ तक भारत का संबंध है, वह विदेशी बाज़ारों के भरोसे अपना आर्थिक ढाँचा खड़ा नहीं कर सकता। उसे तो अपने ही सहारे खड़ा होना होगा। अतः हम मशीनों को

बिना सोचे-समझे स्वीकार नहीं कर सकते। बड़ी-बड़ी मशीनें हमारी प्रगति का नहीं अपितु परागति का लक्षण होंगी।

भारत की सबसे बड़ी पूँजी हमारी जनशक्ति है। हमें पहले उसका पूर्ण उपयोग करना होगा। गाँवों में काम करने वाले खेतिहर मज़दूरों को ही वर्ष में औसतन 189 दिन काम मिलता है। शेष दिन उनकी शक्ति बेकार जाती है। हमें पहले उनकी शक्ति का उपयोग करना होगा। आज उनकी कुल आमदनी 447 रुपए प्रतिवर्ष है। हमें इसमें वृद्धि करनी होगी। क्या इनके लिए बड़ी-बड़ी मिलें खोली जाएँ। उस हालत में इन्हें गाँव से बाहर आना होगा तथा गाँव में मज़दूरों की समस्या हो जाएगी। फिर साढ़े तीन करोड़ लोगों को मिल में खपाने के लिए कितनी मशीनें चाहिए, उनसे जो माल बनेगा, वह खपेगा कहाँ?

खेतिहर मज़दूरों के अतिरिक्त भी हमारे यहाँ बेकारों की एक बड़ी संख्या है। शहरों में विभिन्न प्रकार काम करने वाले घरेलू नौकर, कुली, मज़दूर आदि की भी क्रयशक्ति बहुत कम है। उसे भी हम बड़ी-बड़ी मिलों के द्वारा नहीं बढ़ा सकते। वैज्ञानिकता के कारण दिन-प्रतिदिन मज़दूर बेकार होते जा रहे हैं। हम मशीन का पेट भरने के लिए मनुष्य को भूखा रख रहे हैं।

आज जो भी नए-नए उद्योग प्रारंभ होते हैं, वे पुराने छोटे उद्योगों को नष्ट करते जाते हैं। एक बाटा का कारखाना यद्यपि हज़ार-दो हज़ार लोगों को काम देता है किंतु वह गाँवों में हज़ारों की संख्या में जूते बनाने वालों को बेकार बना देता है। अंग्रेज़ी राज्य में मैनचेस्टर और लिवरपूल के कारख़ानों ने भारत के उद्योग-धंधों को चौपट किया था तथा हमें बेकार बनाया, आज अहमदाबाद और कानपुर में ही मैनचेस्टर हो गए हैं। सिवाय इसके कि वे हमारे पूँजीपतियों को तथा थोड़े से मज़दूरों को लाभ पहुँचाते हैं, वे हमारे बुनियादी उद्योगों को चौपट करते जा रहे हैं।

अतः आवश्यकता है कि हम अपने गाँवों में तथा क़स्बे में चलने वाले उद्योगों को अपना आधार बनाएँ। उनका विकास एवं उनकी वृद्धि करने की कोशिश करें। उनके द्वारा हमारे बाज़ार की जो माँग पूरी होती है, उसके लिए न तो विदेशी और न देशी बड़े-बड़े उद्योगों को प्रतियोगी होने दें।

हमारी जिन आवश्यकताओं की पूर्ति इन छोटे-छोटे उद्योगों से नहीं हो सकती, उन्हें नए सिरे से गाँवों और क़स्बों में प्रारंभ करें किंतु वह भी छोटे आधार पर। बड़े-बड़े उद्योग इन छोटे उद्योगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए, जैसे उत्पादक वस्तुओं के लिए ही चलाए जाएँ। इस प्रकार सभी उपयोगी वस्तुएँ छोटे और गृह उद्योगों द्वारा उत्पादक वस्तुएँ बड़े उद्योगों द्वारा तैयार होंगी। वे एक-दूसरे के पूरक हो सकेंगे। इसमें भारत के हर व्यंक्ति को काम मिल सकेगा। आर्थिक शक्ति के विकेंद्रीकरण के कारण

जन-साधारण की क्रयशक्ति का स्तर ऊँचा होगा, जिससे ज्यों-ज्यों उत्पादन बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों उसकी माँग भी बढ़ती जाएगी।

संक्षेप में भारत की आर्थिक समस्या का हल यह है कि हम मनुष्य और मशीन की लड़ाई में मनुष्य को प्रमुखता दें। हम मशीन युग के पुजारी नहीं, मानव युग के ही पुजारी बने रहें। हाँ, ज्यों-ज्यों मानव की शक्ति मशीन को क़ाबू में रखने की बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों मशीन विकसित होती जाएगी।

—*पाञ्चजन्य, अक्तूबर 25, 1954*

□

23

तार : श्री आर. बाला सुब्रमण्यम को

भारतीय जनसंघ फ्रांसीसी बस्तियों के इस स्वतंत्रता संग्राम की सफलता[1] पर हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त करता है और अखंड भारत की ओर बढ़ने वाले एक पग के रूप में इसका स्वागत करता है। अब हम पुर्तगाल शासन में रहने वाले अपने बंधुओं को मुक्त कराने की प्रतिज्ञा करें।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 8, 1954

□

1. फ्रांसीसी बस्तियाँ पांडिचेरी (अब पुदुचेरी), कराइकल, माहे और यनम का भारतीय गणराज्य में वास्तविक हस्तांतरण 1 नवंबर, 1954 को अर्पण की संधि (treaty of cession) 28 मई, 1956 को विधिसम्मत अंतरण 16 अगस्त, 1962 तथा विलयन 1 जुलाई, 1963 को हुआ था।

24

पं. मौलिचंद्र का त्यागपत्र*

मौलिचंद्र शर्मा के इस्तीफ़े पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

समाचार-पत्रों की रिपोर्टों से मुझे पता चला है कि पं. मौलिचंद्र शर्मा ने भारतीय जनसंघ के अध्यक्ष पद और साधारण सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया है। यह आश्चर्य की बात है कि केंद्रीय कार्यालय को अब तक ऐसा कोई त्यागपत्र प्राप्त नहीं हुआ है। इसके विपरीत, पंडित शर्मा ने, जिनसे कल इन अफ़वाहों की पुष्टि करने के लिए संपर्क किया गया था, कोई त्यागपत्र दिए होने से इनकार किया है।

पं. मौलिचंद्र शर्मा ने एक बयान भी जारी किया है, जिसकी अधिकृत प्रति हमारे कार्यालय को प्राप्त नहीं हुई है और समाचार-पत्रों ने अलग-अलग वक्तव्य प्रकाशित किए हैं। उनके लिए यह उचित होता कि वह अपने विचार, चाहे वह कितने भी निराधार हों, कार्यसमिति के समक्ष प्रस्तुत करते, जिसकी बैठक 7 और 8 नवंबर, 1954 को हो रही है। ज़ाहिर तौर पर उनका इस्तीफ़ा उनके बयान में व्यक्त किए गए इरादों से प्रेरित नहीं है। कार्यसमिति की बैठक शीघ्र ही हो रही है और वह सारी बातों पर यथेष्ट ध्यान देगी।

हालाँकि,एक स्पष्टीकरण मुझे व्यक्तिगत रूप से देना है, क्योंकि पं. मौलिचंद्र ने उल्लेख किया है कि मैं भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक नहीं बुला रहा हूँ। यह सच है कि प्रतिनिधि सभा ने अगस्त में अपने इंदौर अधिवेशन में पं. मौलिचंद्र शर्मा द्वारा अपने अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त किए गए कुछ विचारों पर कड़ी आपत्ति की थी, जो उनकी अनुपस्थिति में पढ़ा गया था, और एक सर्वसम्मत प्रस्ताव पारित करके प्रतिनिधि सभा के अगले सत्र में उन बिंदुओं के स्पष्टीकरण की माँग की थी। प्रतिनिधि सभा ने यह

---

* देखें परिशिष्ट VII, पृष्ठ संख्या 359।

इच्छा कभी नहीं की कि मात्र इस उद्देश्य के लिए एक बैठक बुलाई जानी चाहिए।

इंदौर सत्र के बाद दो महीने से अधिक की चुप्पी के बाद पं. मौलिचंद्रजी ने इच्छा व्यक्त की कि प्रतिनिधि सभा की एक बैठक 7 और 8 नवंबर को दिल्ली में बुलाई जानी चाहिए। कुछ प्रांतों में पहले से ही इन तारीख़ों पर सम्मेलन तय किए गए हैं और भारतीय प्रतिनिधि सभा की बैठक से उनके कार्यक्रम अस्त-व्यस्त होते। इसके अलावा कार्यसमिति की बैठक आहूत करने का अधिकार जनसंघ संविधान के अनुच्छेद 12 (ई) के अनुसार मात्र प्रतिनिधि सभा में ही निहित है, इस प्रकार इस विषय को कार्यसमिति की आगामी बैठक के एजेंडे में रखा गया है। अध्यक्ष के आदेश पर भी संविधान के प्रावधानों की अनदेखी करना मेरे लिए उचित नहीं होता।

प्रतीत होता है कि वस्तुत: पं. मौलिचंद्र शर्मा न तो कार्यसमिति के सदस्यों का सामना करने के लिए तैयार हैं और न ही प्रतिनिधि सभा के सदस्यों का, इस कारण प्रतिनिधि सभा की बैठक में भाग लेने के लिए इंदौर जाने से जान-बूझकर बच रहे हैं, और जब कार्यसमिति 7 को पूर्व निर्धारित है, तो वह एक बयान के साथ प्रेस में आ गए हैं, जिसकी जनसंघ कार्यालय को एक प्रति भेजने का भी सौजन्य उन्होंने नहीं दरशाया है।

— ऑर्गनाइज़र, नवंबर 8, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

25

नज़रबंदी क़ानून अवैधानिक

लखनऊ में दीनदयालजी ने दोपहर के समय छात्र संघ भवन में देश की वर्तमान परिस्थिति पर छात्रों को संबोधित किया तथा सायंकाल पत्रकार वार्त्ता में निम्न वक्तव्य दिया।

भारतीय जनसंघ और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सिद्धांत समान हैं, किंतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्यक्षेत्र सांस्कृतिक है, जबकि जनसंघ राजनीतिक क्षेत्र को भारतीय संस्कृति से आलोकित करने का प्रयत्न कर रहा है। श्री मौलिचंद्र शर्मा ने त्यागपत्र दिया है। जनसंघ में कोई आंतरिक मतभेद नहीं है। श्री शर्मा वर्तमान शासन की विदेश नीति के समर्थक थे, जबकि जनसंघ उसे पूर्ण रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं।

भारतीय जनसंघ साधारण परिस्थिति में निरोधात्मक नज़रबंदी क़ानून के विरुद्ध है। इस प्रकार का क़ानून सदैव बनाए रखना किसी प्रकार न्यायसंगत नहीं है। गृहमंत्री का वक्तव्य कि यह क़ानून देश का सर्वसाधारण क़ानून है, इस बात का द्योतक है कि सरकार अधिनायकवाद की ओर अग्रसर हो रही है। देश की जनता में मानसिक परिवर्तन, जिससे वह क़ानून का आदर करे, इस प्रकार के अन्याय पर आधारित क़ानूनों से नहीं लाया जा सकता। इनसे तो क़ानून की अवहेलना की भावना ही बढ़ेगी। इसके अतिरिक्त महत्त्वपूर्ण बात यह है कि अभी तक इस क़ानून का उपयोग राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों के ही विरुद्ध किया गया है। अधिकतर नज़रबंद व्यक्तियों को हाईकोर्ट तथा सुप्रीम कोर्ट द्वारा छोड़ा जाना इस बात का पर्याप्त प्रमाण है कि क़ानून का उपयोग न्याय अनुसार नहीं किया गया। मैं देश के सभी जनतांत्रिक तत्त्वों से इस क़ानून का विरोध करने का अनुरोध करता हूँ।

हमारा मत है कि देश के क़ानून में क्रांतिकारी परिवर्तन की आवश्यकता है।

क़ानून कमीशन नियुक्त करने की माँग की जा चुकी है। परंतु सरकार बिना विशेषज्ञों का मत लिए ही भारतीय दंड विधान में संशोधन करने की जल्दी कर रही है। यह संशोधन जिससे केवल सरकारी कर्मचारी तथा मंत्रियों का ही लाभ होगा, न केवल प्रजातंत्र की हँसी कराएगा, अपितु जनता का शासन पर से विश्वास भी कम करा देगा। बहुत कुछ शोर मचाने के पश्चात् भी देश में बढ़ती हुई अराजकता को हम बंद नहीं कर सके हैं। पुलिस की मनमानी नित्य बढ़ती जा रही है। प्रस्तावित संशोधन से हम लोगों को एक अनैतिक पुलिस राज में ही रहना पड़ेगा।

पाकिस्तान भारत से बहुत सी अभी तक अनिर्णीत समस्याओं पर बातचीत आरंभ करने का विचार कर रहा है। शांतिपूर्ण समझौतों का हम सदैव स्वागत करते हैं। परंतु पाकिस्तान का रवैया अभी तक सहायक नहीं रहा है। उससे सदैव हमारी उदार सरकार ने कुछ सुविधाएँ प्राप्त करके समस्याओं को अनिर्णीत ही छोड़ दिया है। विशेषकर पाक-अमरीका समझौते ने सारी स्थिति में ही परिवर्तन कर दिया है।

जहाँ तक कश्मीर का संबंध है, उसका भारत में विलय का प्रश्न तो पाकिस्तान अथवा किसी अंतरराष्ट्रीय संस्था से बातचीत का विषय हो ही नहीं सकता। जबकि कश्मीर संविधान सभा ने भारत के साथ विलय को मान्य कर दिया है, जो पहले भी वैधानिक रूप से पूर्ण था, तब इस अध्याय को समाप्त ही कर देना उचित है। केवल कश्मीर के उस एक-तिहाई भाग के बारे में विचार किया जा सकता है, जिस पर पाकिस्तान ने अवैधानिक रूप से बलपूर्वक अधिकार कर रखा है। हमें भय है कि भारत की सरकार कश्मीर का विभाजन युद्ध विराम रेखा पर स्वीकार करना चाहती है। परंतु इससे भारत तथा कश्मीर की जनता के साथ, जिसने प्रधानमंत्री का विश्वास किया विश्वासघात होगा।

जम्मू तथा कश्मीर राज्य की आंतरिक स्थिति ठीक नहीं है। बख्शी सरकार राज्य के सभी वर्गों का सहयोग प्राप्त करने में असमर्थ रही है। प्रजा परिषद् को, जिसका जम्मू में प्रतिनिधित्व विभिन्न प्रकार से प्रगट हो चुका है, समाप्त करने के लिए योजनाबद्ध प्रयत्न हो रहे हैं तथा महत्त्व के प्रश्नों पर भी मत की उपेक्षा की जाती है। इसके विपरीत साम्यवादी सरकार का दुरुपयोग करते हुए पृथकीकरण की भावना उत्पन्न कर रहे हैं। अब्दुल्लावादी पुनः क्रियाशील हो गए हैं। प्रजा समाजवादी दल ने उनको कार्य करने के लिए एक मंत्र देकर सहायता प्रदान की है। राज्य, अमरीका तथा रूस की राजनीति का क्षेत्र बन रहा है। श्री अशोक मेहता पर श्रीनगर में किया गया निंदनीय आक्रमण भविष्य में होने वाली घटनाओं का द्योतक है। इस परिस्थिति से बचने का यही उपाय है कि भारत के संविधान को कश्मीर तथा जम्मू राज्य पर पूर्ण रूप से लागू किया जाए। राष्ट्रपति शासन की घोषणा की जाए तथा नवीन चुनाव कराए जाएँ।

गो-रक्षा सत्याग्रहियों पर अत्याचारों के समाचार विशेष चिंता का विषय बन रहे हैं। सत्याग्रहियों को तन्हाई में तथा अन्य बंदियों के साथ रखा जाता है और उनके साथ अनुचित व्यवहार किया जाता है। उन्हें राजनीतिक बंदी समझना चाहिए। दमन से कोई आंदोलन दबता नहीं, केवल कटुता बढ़ती है।

जनसंघ का वार्षिक अधिवेशन जोधपुर में दिनांक 30, 31 दिसंबर, 1954 तथा 1 जनवरी, 1955 को होने वाला है। अधिवेशन में अगली पंचवर्षीय योजना के संबंध में विचार किया जाएगा। कई प्रांतों ने ज़िले के अनुसार सर्वेक्षण करके योजना बनाई भी है।

विभिन्न मोर्चों पर जनसंघ के कार्य को समन्वित करने पर भी विचार होगा। मज़दूर, किसान, वनवासी तथा हरिजन क्षेत्रों में काम प्रारंभ किया गया। ये कार्यकर्ता विशेष रूप से आमंत्रित हैं।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 29, 1954

□

26

देश की स्थिति

अमृतसर से जारी एक प्रेस विज्ञप्ति में दीनदयालजी ने प्रांतीय, राष्ट्रीय और साथ ही अंतरराष्ट्रीय स्तर पर देश के हितों को प्रभावित करने वाली कई प्रमुख समस्याओं पर अपनी सुविचारित टिप्पणी से प्रकाश डाला है।

पंजाब में क़ानून और व्यवस्था की स्थिति

इस स्थिति में एक उल्लेखनीय गिरावट और साथ ही पुलिस के अत्याचारों ने प्रशासन के प्रति लोगों के विश्वास को हिलाकर रख दिया है। एक विश्वास है कि जो लोग सत्ता में हैं, वे वास्तव में असामाजिक तत्वों के साथ परस्पर मिले हुए थे। रोहतक और सिरसा की हाल की घटनाओं को उदाहरण के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। केंद्र सरकार को पंजाब के मामलों के लिए जाँच बैठानी चाहिए और यह ध्यान रखना चाहिए कि इस सीमा प्रांत की रक्षा क्षमताओं पर प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

इन दिनों दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन के संदर्भ में संसद् में बहस चल रही है। हालाँकि देश के सारे क़ानूनों में भारी बदलाव की आवश्यकता है, लेकिन प्रस्तावित संशोधन अवांछनीय हैं, क्योंकि वे अभिमत की स्वतंत्र अभिव्यक्ति का गला घोंटते हैं और इस प्रकार नागरिकों के लोकतांत्रिक अधिकारों के प्रतिकूल हैं।

कश्मीर समस्या

भारत के इस राज्य के विलय की समस्या को अब एक बंद अध्याय के रूप में देखा जाना चाहिए। कश्मीर पर कथित भारत-पाक वार्ता में चर्चा का एकमात्र विषय इस राज्य के एक-तिहाई हिस्से की मुक्ति का होना चाहिए, जो पाकिस्तान के अवैध

क़ब्ज़े में है। प्रधानमंत्री को अपने ही इस रुख़ को नहीं भूलना चाहिए कि पाकिस्तान को अमरीकी सैन्य सहायता दिए जाने के कारण कश्मीर समस्या में बदलाव आ चुका है, और उन्होंने संघर्ष विराम रेखा के साथ राज्य का विभाजन करने की संभावित सरकारी इच्छा को अस्वीकार कर दिया है।

जहाँ तक कश्मीर की आंतरिक स्थिति का सवाल है, बख्शी सरकार ने सभी पक्षों के सहयोग को स्वीकार करने की आशाओं को ग़लत साबित किया है और प्रजा परिषद् द्वारा बढ़ाए गए हाथ को ठुकरा दिया है। राज्य में नए चुनाव कराए जाने चाहिए, विशेष रूप से इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि कश्मीर विधानसभा उस राज्य के चार संसद् सदस्यों के विरुद्ध अविश्वास प्रस्ताव पारित कर चुकी है और इस तरह उनका प्रतिनिधि का दर्जा वापस ले चुकी है।

गोवा की स्थिति

वहाँ की स्थितियाँ बिगड़ती जा रही हैं और सरकार से आग्रह है कि वह भारतीय क्षेत्र में पुर्तगाली पुलिस की लूटपाट पर नियंत्रण करे। संविधान में बार-बार संशोधन हालाँकि संविधान को जनसंघ इतना पवित्र नहीं मानता कि उसमें कोई भी संशोधन न किया जा सके, लेकिन थोड़ा-थोड़ा करके किए गए संशोधन केवल समाज के व्यवस्थित विकास की प्रक्रिया को क्षीण करते हैं। इस मामले पर विचार के लिए एक छोटी प्रतिनिधि समिति स्थापित की जानी चाहिए।

बैंक अवॉर्ड

बेहतर होता अगर सरकार ने इसके कार्यान्वयन पर पूरी तरह रोक लगा दी होती। राजाध्यक्ष समिति[1] को एक ट्रिब्यूनल के रूप में काम करने की क्षमता दी जानी चाहिए और अगर आवश्यक हो तो एक नया अधिनिर्णय किया जाना चाहिए।

दूसरी पंचवर्षीय योजना

कुटीर, ग्रामीण और लघु उद्योगों को अपना आधार बनाए बिना कोई भी आर्थिक योजना सफल नहीं हो सकती। पूँजी आधारित परियोजनाओं के लिए सरकार का पूर्वाग्रह

---

1. नवंबर 1954 में ऑल इंडिया बैंक एंप्लाइज़ एसोसिएशन (ए.आई.बी.ई.ए.) ने भारत सरकार द्वारा पूँजीपतियों के दबाव में श्रम अपीलीय न्यायाधिकरण के निर्णय में फेरबदल करने के विरोध में तथा कई वर्षों से लंबित वेतनवृद्धि की माँग को लेकर अखिल भारत स्तर पर सफल हड़ताल की। इसके बाद 10 दिसंबर को पुन: व्यापक हड़ताल की धमकी के बाद भारत सरकार ने बैंक कर्मचारियों की समस्या सुलझाने के उद्देश्य से बंबई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश जे.एस. राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में समिति का गठन किया था। जस्टिस राजाध्यक्ष 1952 में गठित प्रथम प्रेस आयोग के भी अध्यक्ष थे।

बेरोज़गारी की समस्या को बढ़ा चुका है। अगर उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन लघु उद्योग क्षेत्र को सौंपा जाता और बड़े पैमाने के उद्योगों के लिए केवल पूँजीगत वस्तुओं का ही उत्पादन आरक्षित किया जाता, तो ग्रामीण खेत मज़दूर, जो अभी वर्ष में आधे समय बेकार रहते हैं, उन्हें लाभकारी रोज़गार देना संभव हो जाता।

नेहरू की विदेश नीति

पंडित नेहरू की विदेश नीति धीरे-धीरे गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत से हट रही है। यहाँ तक कि अतीत में भी, जब देश ने हस्तक्षेप न करने को प्राथमिकता दी है, प्रधानमंत्री ने देश को उन मामलों में शामिलकरा दिया है, जिसके साथ हमारा किसी भी रूप में कोई संबंध नहीं था। जनसंघ नेता ने कहा कि इसका परिणाम यह है कि कश्मीर और गोवा जैसे प्रश्नों तथा सीलोन, दक्षिण अफ्रीका व अन्य देशों में भारतीयों की स्थितियों जैसे मामलों में भारत की मदद करने के लिए दूसरे राष्ट्र तैयार नहीं हैं। हमारी विदेश नीति तिब्बत में भी भारत के हितों की रक्षा करने में विफल रही है। जहाँ पं. नेहरू हिंद-चीन और जर्मनी के लिए तटस्थता की नीति की वकालत करते हैं, वहीं दूसरी ओर वह अमरीका और रूस को विभिन्न एजेंसियों के माध्यम से इस देश में अपने प्रभाव क्षेत्रों का इस हद तक विस्तार करने की अनुमति दे रहे हैं कि भारत एक दिन इन दो विचारधाराओं का वास्तविक युद्ध-क्षेत्र बन सकता है। इसलिए यह आवश्यक है कि लोगों में राष्ट्रवाद की एक मज़बूत भावना भरी जाए, ताकि कम्युनिस्ट और साथ ही अमरीकी षड्यंत्रों को मात दी जा सके।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 29, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

27

बंबई प्रदेश जनसंघ का अधिवेशन*

बंबई प्रदेश भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में दीनदयालजी का वक्तव्य।

भारतीय जनसंघ में दरार की बातें निराधार हैं। एक अनुशासित दल के रूप में जनसंघ आगे बढ़ रहा है। हम संगठित हैं एवं राष्ट्र की सेवा के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। जनसंघ की लोकतंत्र में आस्था है, वह संस्था को आंतरिक दलबंदी एवं क्षुद्र व्यक्तिगत झगड़ों में नहीं पड़ने देगा।

भारत की सरकार क्रमशः अधिनायकवादी अधिकार प्राप्त करती जा रही है। दंड प्रक्रिया क़ानून में संशोधनों एवं निवारक निरोधक अधिनियम के कार्यकाल में वृद्धि ने सरकारी इरादों का परदाफ़ाश कर दिया है।

देश की जनता को एवं सरकार को सजग होना चाहिए, क्योंकि विदेशों के प्रति निष्ठा रखने वाली संस्थाएँ देश में कार्य कर रही हैं। अतः हमें एक क़ानून बनाकर इस प्रकार की भारत विरोधी निष्ठा को देशद्रोह घोषित कर भारत को विश्व की परस्पर विरोधी संस्थाओं की समरभूमि बनने से बचाना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 13, 1954

□

* देखें परिशिष्ट VIII, पृष्ठ संख्या 361।

28

लोगों का 'राष्ट्रीयकरण', देश का 'सैनिकीकरण' तथा अर्थव्यवस्था का 'स्वदेशीकरण'

महाराष्ट्र प्रदेश का प्रथम अधिवेशन 3-5 दिसंबर, 1954 को पूना में हुआ। पाञ्चजन्य में इस अधिवेशन के संदर्भ में जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई, वह सूचना मात्र थी। अतः निम्न वक्तव्य पाञ्चजन्य तथा ऑर्गनाइज़र से प्राप्त दीनदयालजी के भाषणों का संदर्भित अंश है। 3 दिसंबर को पूना में महाराष्ट्र के प्रथम अधिवेशन में दीनदयालजी का उद्‌घाटन भाषण।

वोट-लोलुप राजनीति को आदर्शवाद की राजनीति में बदलना आज के युग की सबसे बड़ी आवश्यकता है। शेष सभी पार्टियाँ जनता के वोट हड़पने की कलाकारी से अपने को सिद्ध करती नज़र आ रही हैं, वहीं जनसंघ न्यायसंगत एवं जनहितकारी क्रांति उत्पन्न करने का प्रयत्न कर रहा है। लोगों की राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक भावनाओं को संतुष्ट कर हम इसमें सफलता प्राप्त करेंगे।

जो छत्रपति शिवाजी की 'स्वराज्य' अभिकल्पना थी, वह आज के नेताओं में दिखाई नहीं देती। जनसंघ 'स्वराज्य' की इसी भावना को पुनर्जाग्रत् करना चाहता है। आज की वयस्क मताधिकार व्यवस्था राजनेताओं के हाथ लगा एक औजार है, जिससे वे अपनी सत्ता-पिपासा को शांत कर सकें। मतदाताओं की राष्ट्र-भावना सर्वाधिक

महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, किंतु इस व्यवस्था में इसकी घोर उपेक्षा हुई है।

कुविचारित पंचवर्षीय योजनाओं को हमें समझना होगा, समाज में व्याप्त छुआ-छूत से लड़ना होगा तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था को पूरी तरह बदलना होगा। हमारे लिए यह तपस्या एवं साधना का अवसर है।

5 दिसंबर का समारोप भाषण

जनसंघ का विश्वास आज की परिस्थिति में इन तीन सिद्धांतों पर है—लोगों का राष्ट्रीयकरण हो, देश का सैनिकीकरण हो तथा अर्थव्यवस्था का 'स्वदेशीकरण' हो। यह सिद्धांत ही राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय जगत् में भारत को बलवान बना सकता है।

—पाञ्चजन्य तथा ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 13, 1954

□

29

भारत को विश्व की प्रथम शक्ति बनाया जाए

बिहार जनसंघ के प्रतिनिधियों की दो दिनों की बैठक 27, 28 नवंबर को आरा में पं. शिवकुमार द्विवेदी की अध्यक्षता में संपन्न हुई। भारतीय जनसंघ के महामंत्री दीनदयालजी के शुभागमन ने प्रतिनिधियों में और भी उत्साह भर दिया। 27 नवंबर को चार बजे सायंकाल 'भारत माता की जय, दीनदयालजी युग-युग जीएँ' के नारों से स्टेशन गूँज उठा, जब वे देहली एक्सप्रेस से आरा पहुँचे। तुरंत ही चार बजे मैना सुंदरी धर्मशाला में प्रतिनिधि सभा का उद्‌घाटन किया। उस दिन रात्रि में प्रादेशिक पदाधिकारियों के निर्वाचन संपन्न हुए। दीनदयालजी ही निर्वाचन अधिकारी के रूप में कार्य कर रहे थे। करतल ध्वनि के बीच पं. श्री शिवकुमार द्विवेदी प्रधान एवं ताराकांत झा प्रधानमंत्री निर्वाचित हुए। श्री केशरी प्रसाद सिंह एवं श्री राजेंद्र प्रसाद क्रमशः उपप्रधान एवं कोषाध्यक्ष निर्वाचित हुए। दूसरे दिन प्रातःकाल प्रांत की मंडल समितियों के मंत्रियों ने अपने कार्य का विवरण प्रस्तुत किया, जिससे प्रत्यक्ष था कि जनंसघ का कार्य बिहार के किसानों और मज़दूरों के बीच बढ़ रहा है। अलबत्ता महिलाओं के बीच कार्य अभी तक शुरू भी नहीं हुआ है। सायंकाल जनसभा में दीनदयालजी ने भारतीय जनसंघ के सिद्धांतों, नीतियों और अब तक की प्रगति से परिचित कराया।

भारतीय जनसंघ निश्चित सिद्धांतों को लेकर आया है, जिसे वह राजकीय व्यवस्था से मान्यता दिलाना चाहता है। जनसंघ व्यक्तिवादी नहीं, इसका इससे बढ़कर क्या प्रमाण हो सकता है कि जनसंघ के प्रणेता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु के बाद भी जनसंघ देश में बढ़ा है। दिल्ली, उत्तर प्रदेश, पंजाब, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि के नगरपालिका चुनावों, विधानसभाओं के उपचुनावों के परिणाम जनसंघ के पक्ष में ही रहे हैं। अभी भी जनसंघ प्रांतों में अपनी शाखाओं का जाल बढ़ा रहा है। आंध्र और महाराष्ट्र का प्रथम वार्षिक अधिवेशन भी हो रहा है।

29 नवंबर को श्री दीनदयालजी ने पटना के कार्यक्रम में प्रेस प्रतिनिधियों से वार्त्तालाप करते हुए अपने कश्मीर, गोवा, गो-हत्या निरोध सत्याग्रह, नज़रबंदी क़ानून, बिहार की बाढ़ और सूखा की समस्याओं से संबंधित प्रश्नों पर विचार प्रगट किए। सायंकाल अंजुमन इसलामिया हॉल में दीनदयालजी ने भाषण दिया।

नेहरूजी की विदेश नीति बड़ी दुभाग्यपूर्ण है। तृतीय शक्ति की खोज में निकले हुए प्रधानमंत्री को कहीं भी यश नहीं मिलेगा, यदि भारत स्वयं प्रथम शक्ति नहीं बन पाया। स्वदेश नीति पर ध्यान देना चाहिए। भारत को सभी विदेशी शक्तियों के प्रभाव से बचाकर स्वतंत्रता की रक्षा कर भारत को शक्ति की उपासना में लगाना है, जिससे बल मिले, वही सच्ची विदेशी नीति है।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 13, 1954

□

30

भारतीय जनसंघ वार्षिक अधिवेशन, जोधपुर महामंत्री प्रतिवेदन

भारतीय जनसंघ का तीसरा राष्ट्रीय वार्षिक अधिवेशन, जोधपुर में 30 दिसंबर, 1954 से 1 जनवरी, 1955 तक हुआ। इस अधिवेशन की अध्यक्षता जनसंघ के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने की थी। दीनदयालजी ने जनसंघ की 1954 की संपूर्ण गतिविधियों का महामंत्री प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था। इस प्रतिवेदन की वास्तविक रिपोर्ट प्राप्त नहीं हो पाई। पाञ्चजन्य में महामंत्री प्रतिवेदन का सारांश 'जनता के कष्टों को दूर करने के लिए हमें सदैव तत्पर रहना चाहिए' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ।

हमें ध्यान रखना चाहिए कि जनता के दुःखों के समय उसका मार्गदर्शन करना उसके निराकरण के लिए आगे आना जनता के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति करना है। वही सच्चा मित्र है, जो कठिन प्रसंग पर साथ दे। जनता इस बात को पहचानती है और इसलिए इस वर्ष कई नगरपालिका, विधानसभा तथा ग्राम पंचायतों में हमारे प्रतिनिधियों को जनता ने चुना।

कुछ दिन पूर्व ही जनसंघ पर एक आपत्ति आई, जब पं. मौलिचंद्र ने इस्तीफ़ा दे दिया। जनसंघ के कार्य से बैर रखने वालों ने ऐसा सोचा था कि अब यहाँ हड़कंप मच जाएगा। किंतु आज हमने यह सिद्ध कर दिया है कि जनसंघ कुछ व्यक्तियों के आधार पर नहीं खड़ा। यह तो सिद्धांतों की शक्ति पर खड़ा है। इसीलिए उसकी प्रगति अबाध है।

प्रगति

हमारा संगठनात्मक कार्य बढ़ रहा है। पिछली बार जब हम मिले थे, तब हमारे यहाँ कई ऐसे प्रांतों के प्रतिनिधि थे, जहाँ विधिवत् जनसंघ की स्थापना नहीं हुई थी, किंतु आज यदि तमिलनाडु, उड़ीसा व आसाम प्रांत छोड़ दिया जाए तो शेष सभी प्रांतों में जनसंघ का कार्य आरंभ हो चुका है। कर्नाटक, महाराष्ट्र, आंध्र इन तीनों प्रांतों में जहाँ कि पिछले वर्ष में एडहॉक कमेटी काम कर रही थी, अब वहाँ से आए प्रतिनिधि वहाँ के निर्वाचित प्रतिनिधि हैं। फिर भी अभी इसी ओर हमें बहुत कुछ कार्य करना शेष है।

प्रत्येक मतदान केंद्र पर स्थापना हो

पिछले वर्ष हमने जो नीति निश्चित की थी कि हम कुछ मंडल चुन लें और उनमें व्यापक रीति से कार्य करें। अगले वर्ष के लिए हमारा यह नारा हो कि देश के प्रत्येक मतदान केंद्र पर जनसंघ की स्थापना हो। यद्यपि चुनाव हमारा ध्येय नहीं किंतु एक राजनीतिक पार्टी के नाते हमें चुनाव लड़ना पड़ता है, इसलिए यह योजना लेकर आए।

सदस्यता आंदोलन

सदस्यता का आंदोलन हमने इस वर्ष चलाया तो है, किंतु सदस्यता के संबंध में हमें जितनी ज़ोर से कार्य करना चाहिए, वैसा किया नहीं गया। हो सकता है कि हमारी इस मनोवृत्ति के कारण कोई ऐसा-वैसा आदमी हमारे कार्य में आए। अन्य संस्थाओं के समान 'मास ड्राइव' लेने की बात हमें रुचती नहीं। यह ठीक भी है, क्योंकि हमें उनका अनुकरण नहीं करना। किंतु फिर भी हमें हमारे प्रचार के लिए अधिक व्यक्तियों के पास जाना चाहिए। इसलिए इस वर्ष अधिक-से-अधिक सदस्य बनाने का कार्य भी किया जाए। दिल्ली प्रदेश ऐसा प्रदेश है, जहाँ सदस्यता नहीं हुई। दिल्ली की एक समस्या है। उसकी जाँच के लिए जाँच समिति बनी और समिति के अनुसार केंद्र उस क्षेत्र को देख रहा है। आशा है, आगामी वर्ष में वहाँ भी अधिक-से-अधिक सदस्यता होगी।

अन्य समस्याओं की ओर भी हमने कुछ निश्चय किए थे।

मज़दूर

मज़दूर क्षेत्र में काफ़ी प्रगति हुई है। कार्यसमिति ने इस बढ़ते हुए कार्य को देखकर ऐसा मत प्रगट किया है कि आज देश में चल रही विभिन्न यूनियनों को एकत्र करने के लिए केंद्रीय ढंग से कुछ प्रयास किया जाए। अगले वर्ष यह कमी दूर होगी।

पिछड़े हुए वर्ग

पिछड़े हुए वर्ग में काम कम हुआ है। यह बात सत्य है कि अन्य पार्टियों की तरह

हम इन पिछड़े हुए लोगों को अपने से अलग नहीं समझते और इसलिए इस क्षेत्र में जितना कार्य करते हैं, उसका प्रचार अधिक नहीं करते। सबको सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भारतीय संविधान में प्रदत्त अधिकारों को उन्हें व्यावहारिक रूप से दिलाने के लिए जनसंघ के कार्यकर्ता सचेष्ट रहे हैं और आगे भी वे रहेंगे।

महिला

महिलाओं के क्षेत्र में भी हमारा काम बढ़ा है। महाराष्ट्र के क्षेत्र में इस वर्ष बहुत अच्छा काम हुआ है। इस कार्य की प्रगति के लिए हमने यह प्रयत्न किया है कि प्रत्येक आयोजनों में महिला सम्मेलन भी किए जाएँ। जहाँ-जहाँ इस प्रकार सम्मेलन हुए, वहाँ-वहाँ माताओं ने बहुत सहयोग दिया।

फिर जनजागरण के कार्य के लिए इस वर्ष भी हमने विभिन्न दिवस व सप्ताह मनाए। 15 अगस्त को अखंड दिवस, विदेशी बस्तियों के विलयन के संबंध में सप्ताह, स्व. डॉ. मुखर्जी स्मारक निधि संग्रह सप्ताह मनाया। आगे भी हमें इस कार्य को आगे बढ़ाते रहना है। आगामी वर्ष में इस संबंध में कुछ दृश्य रूप से दे सकेंगे।

आंदोलनात्मक स्वरूप

जब मैं आंदोलन के संबंध में सोचता हूँ तो मुझे लगता है कि मैं क्या कहूँ। आंदोलन का अर्थ यही होता है कि जनता को संगठित कर जनता की कठिनाइयों के हल के लिए सरकार पर दबाव डाला जाए। इस प्रकार के बहुत से आंदोलन हुए, जिनमें कुछ प्रांतीय स्तर पर भी हुए हैं, गोवा मुक्ति आंदोलन ही है। किंतु सक्रिय रूप से हमने दो-तीन प्रांतों को ही लगाया। कर्नाटक, महाराष्ट्र व सौराष्ट्र, गोवा मुक्ति के मुख्य केंद्र रहे हैं। इसे अभी आगे भी हाथ में लेना है।

दूसरा आंदोलन गो-हत्या निरोध का है। उत्तर प्रदेश के अपने कार्यकर्ताओं ने उसमें पूर्ण सहयोग दिया है और जैसा कि लाला हरदेव सहाय[1] ने कहा, "सरकार झुकेगी अवश्य, चाहे वह कुछ देर से ही क्यों न झुके।" एक और आंदोलन, जो मध्य भारत के वनवासियों को भूमि दिलाने में सफल रहा।

पंजाब में नागरिक स्वतंत्रता की रक्षा के लिए पुलिस की ज्यादतियों के विरुद्ध आंदोलन चल रहा है। हमारे प्रांतीय महामंत्री तथा अन्य कई कार्यकर्तागण अभी भी जेल में हैं।

---

1. लाला हरदेव सहाय (1892-1962) स्वदेशी तथा गोरक्षा के लिए समर्पित स्वाधीनता सेनानी, गोहत्या पर प्रतिबंध न लगाए जाने से असंतुष्ट लालाजी ने गोरक्षा आंदोलन का सूत्रपात करते हुए 1953 में प्रयाग के कुंभ में 'भारत गो सेवक समाज' की स्थापना की व 'गोधन' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

इसी प्रकार अन्य कई छोटे-छोटे तथा बड़े भी आंदोलन हुए हैं। आगे भी हमें ध्यान रखना चाहिए कि जनता के दुःखों के समय उसका मार्गदर्शन करना उसके निराकरण के लिए आगे जाना जनता के प्रति अपने कर्तव्यों की पूर्ति करना है। वही सच्चा मित्र है, जो कठिन प्रसंग पर साथ दे। जनता इस बात को पहचानती है और इसलिए इस वर्ष कई नगरपालिका, विधानसभा तथा ग्राम पंचायतों में हमारे प्रतिनिधियों को जनता ने चुना।

सबसे बड़ा कार्य

गत वर्ष हमारा सबसे बड़ा कार्य घोषणा-पत्र को स्वीकार करना रहा है। तीन दिन तक प्रतिनिधि सभा ने विचार किया। हम कह सकते हैं कि हमने देश के सामने एक ऐसा घोषणा-पत्र रखा है कि देश के प्रत्येक विषय पर हमारा सुनिश्चित विचार और कार्यक्रम उसमें है और उसे हमने जनता के समक्ष रखा है। उसे यदि आप देखेंगे तो उस घोषणा-पत्र में एकात्मता पाएँगे। सही रीति में समझने के लिए उसकी विभिन्न बातों को अलग-अलग नहीं लेना चाहिए। पूरे घोषणा-पत्र को एक ही विषय मानकर देखेंगे तो हमें प्रत्येक समस्या के समय मार्गदर्शन मिलेगा।

दूसरा हमारा सबसे बड़ा काम, जो हमने इंदौर प्रतिनिधि सभा में किया, वह है जनसंघ का वैधानिक और संगठनात्मक स्वरूप निर्धारित करना। हमने हमारे सक्रिय सदस्यों, मंडल समितियों और स्थानीय समितियों आदि के नियम बनाए और निश्चित रूपरेखा के साथ आज आगे बढ़ रहे हैं।

इसी प्रकार स्वदेशी के संबंध में भी हमें प्रयत्न करना है। उसे अपने दैनिक व्यवहार में स्थान देना और जनता के बीच भी इस बात का आग्रहपूर्वक प्रचार करना है कि अधिक-से-अधिक स्वदेशी वस्तुओं को अंगीकार करें।

यह हमारा सौभाग्य है कि हमें पं. प्रेमनाथजी डोगरा जैसे महान् नेता का मार्गदर्शन प्राप्त हुआ है। जिस प्रकार उनके नेतृत्व में जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् ने जम्मू में अद्वितीय स्थान प्राप्त कर लिया है, शेष सभी पार्टियाँ पीछे पड़ गई हैं, उसी प्रकार हम उनके नेतृत्व में अब जनसंघ को भारत की जनता की एकमेव प्रतिनिधि संस्था बनाएँगे। जनसंघ का कार्य बढ़ रहा है और वह निकट भविष्य में घर-घर में पहुँचे एवं देश की सभी समस्याओं को हल करने के लिए जाग्रत् सक्रिय जनबल तैयार करे, इसके लिए हमें कटिबद्ध होना है।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 10, 1955

□

31

सरकार का एकात्मक ढाँचा वांछित है

यह लेख पहले पाञ्चजन्य में 4 अक्तूबर, 1954 को 'सच्चे लोकतंत्र के लिए भारत का पुनर्गठन जनपदीय आधार पर किया जाए।' शीर्षक से प्रकाशित हुआ, जो इस खंड में पृष्ठ संख्या 109 पर है। बाद में ऑर्गनाइज़र में प्रकाशित हुए अंग्रेज़ी लेख में कुछ नए तथ्य होने के कारण इसे भी लिया गया।

पिछले वर्ष भारत सरकार ने राज्यों के पुनर्गठन के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त आयोग का गठन किया था, जो अपनी कार्रवाई कर रहा है। इस कारण हमारे लिए यह आवश्यक हो गया है कि हम इस समस्या और इससे देश का जो बदला हुआ चेहरा सामने आएगा, उस पर पूरी गंभीरता और गहराई से विचार करें। एक हिंसक भाषाई आंदोलन द्वारा पृथक् राज्य के रूप में आंध्र प्रदेश अस्तित्व में आया था, जो श्री रामलू की मृत्यु का एक सुविधाजनक औजार के रूप में उपयोग कर लिया। अब यह आशंका जताई जा रही है कि अन्य प्रांत इसका प्रयोग एक सफल उदाहरण के तौर पर कर सकते हैं। लेकिन अब अपने देश के भाग्य निर्माता हम हैं और यह हम पर निर्भर है कि इस तरह की घटनाओं एवं स्थितियों और साथ ही विघटनकारी, सांप्रदायिक तथा स्वार्थी मनोवृत्ति की चपेट में आकर राष्ट्रीय प्रगति को क्षति न पहुँचाएँ।

यह एक स्पष्ट स्थापित तथ्य है कि प्रांतों की वर्तमान व्यवस्था के पीछे कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है। यह व्यवस्था हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूलभूत विकासक्रम में निहित नहीं है। दूसरी ओर यह हमारे राष्ट्रीय जीवन के मूलभूत विकास के इतिहास की दुर्घटनाओं का शुद्ध परिणाम है और इससे केवल देश के विभिन्न भागों पर अंग्रेज़ों की

क्रमिक विजय का पता भर चलता है। 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद, अंग्रेज़ों ने नए सिरे से प्रांतों का गठन किया था। ऐसा उन्होंने जान-बूझकर सांप्रदायिक और विभाजनकारी प्रवृत्तियों के बीज रोपने और उस राष्ट्रीय जागरण को दबाने के लिए किया था, जो अत्यंत प्रेरणादायी रूप में प्रकट हुआ था।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता के लिए हमारे संघर्ष ने दो प्रकार की प्रवृत्तियों को बिल्कुल उजागर कर दिया है। इनमें से एक सुधारवादी प्रवृत्ति है और दूसरी क्रांतिवादी प्रवृत्ति है। लेकिन ये दोनों प्रवृत्तियाँ इतनी बारीक़ी से एक-दूसरे की पूरक थीं कि उन्हें अलग करना संभव नहीं था। यहाँ तक कि जिन लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है' का प्रेरक आदर्श वाक्य दिया और जिन्हें 'भारत में अशांति का पिता' कहा गया, उन्होंने भी 1919 में सुधारवादी पंथ को स्वीकार कर लिया और उपदेश दिया कि 'जो कुछ भी दिया जाता है, उसे स्वीकार कर लो, और अधिक के लिए आंदोलन करो'। इस अवधि के दौरान जो भी संवैधानिक सुधार विदेशी शक्तियों ने हमारे लिए तैयार किए, उनके भीतर भारतीय समाज के लिए विषबीज अनिवार्य रूप से समाहित थे। हमने उनका विरोध किया और उनके ख़िलाफ़ प्रस्ताव पारित किए। लेकिन हम इन संवैधानिक सुधारों को न तो पूरी तरह से अस्वीकार कर सकते थे और न ही पूरी तरह से स्वीकार कर सकते थे। हमने न केवल उनके ख़राब बिंदुओं को देखा था, बल्कि उनके दुष्प्रभावों का भी सामना किया। इस संदर्भ में 'सांप्रदायिक अधिनिर्णय' (communal award) एक प्रमुख उदाहरण है।

हमारी मुख्य माँग थी प्रशासन का भारतीयकरण। यह बात छोड़ भी दी जाए कि अंग्रेज़ों ने किस हद तक इस माँग को स्वीकार किया; तो इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस माँग की स्वीकृति के क्रम में ही उन्होंने यहाँ आपसी नफ़रत और कलह के बीज बो दिए। अंग्रेज़ी शिक्षा सरकारी सेवा के लिए पासपोर्ट थी और इसका अर्थ था देश के अधिक-से-अधिक प्रांतों पर अंग्रेज़ों की विजय के साथ-साथ राष्ट्रीय जीवन पर अंग्रेज़ी भाषा के प्रभाव का बढ़ना। जिन लोगों के पास अंग्रेज़ी शिक्षा थी, उन्होंने सरकार से रोज़गार प्राप्त कर लिया। परिणामस्वरूप कुछ प्रांतों के लोगों को सरकारी सेवाओं में अधिक शक्ति प्राप्त हो गई। हालाँकि प्रशासन के राष्ट्रीयकरण की माँग अंग्रेज़ियत के विरोध में उठी थी, लेकिन इसका परिणाम यह हुआ कि व्यवहार में इसने प्रांतों के लोगों के बीच प्रतिद्वंद्विता और परस्पर घृणा को उकसाया। इस स्थिति के लिए जिस अतिवादी उपाय का सुझाव दिया गया, वह अलग प्रांतों का था। यह सोचा गया था कि इस तरह के प्रांतों का निर्माण बाहरी लोगों द्वारा मूल निवासियों को नौकरियों से वंचित करने से रोक सकेगा। इस प्रकार आसाम और बंगाल का पृथक्करण हुआ तथा बिहार और उड़ीसा ने भी ऐसी ही माँग शुरू कर दी। सिंध को बॉम्बे प्रेसीडेंसी से काट दिया गया। साथ ही

आंध्र और कर्नाटक की समस्याएँ बढ़नी शुरू हो गईं।

प्रशासन में अच्छी नौकरियों के लालच के अलावा राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा ने भी शिक्षित लोगों के मन में अलगाववाद को बढ़ावा दिया था। अंग्रेज़ों ने एक ही साथ पूरे भारत को स्वतंत्र नहीं किया। न तो हम इसके लिए लड़े थे और न ही हमने एक ही झटके में इसे जीता था। हुआ यह था कि हमें एक-एक कर किस्तों में स्व-शासन दिया गया था, और वह भी प्रांतीय स्तरों पर। स्वाभाविक रूप से, लोगों ने सोचना शुरू किया कि अगर वे राजनीतिक अधिकार चाहते हैं, तो उनका अपना स्वयं का एक प्रांत होना चाहिए। यह बात आज भी स्वीकार की जाती है कि मुसलमानों को शक्तिशाली बनाने के क्रम में ही सिंध को बॉम्बे (अब मुंबई) से काट दिया गया था।

अंग्रेज़ों ने भारत में बढ़ती क्रांतिकारी राष्ट्रीय भावना के उन्मूलन की दृष्टि से नए प्रांतों की रचना करने की भी योजना बनाई। लॉर्ड कर्जन ने बंगाल प्रांत की कमर तोड़ने और इस प्रक्रिया में एक मुसलिम बहुल प्रांत बनाने के लिए बंगाल का विभाजन इसी योजना के एक भाग के रूप में किया था। लेकिन बंगाल के विभाजन के बाद हुए आंदोलन ने ऐसा विकट रूप ग्रहण कर लिया कि अंग्रेज़ों को अपने क़दम वापस लेने पड़े। लेकिन वे जो कुछ खुले तौर पर प्राप्त नहीं कर सके, उसे उन्होंने कुटिल माध्यमों से प्राप्त करने की कोशिश की। खदबदाते बंगाल में एक प्रभावी मुसलिम बहुमत बनाए रखने के क्रम में उन्होंने बंगाल से बिहार और उड़ीसा को अलग कर दिया। इस प्रकार बंगाल के विभाजन तो तब रद्द कर दिया गया था, लेकिन इस तिकड़म से उठा बंगाल-बिहार विवाद अभी भी एक रिसता हुआ ज़ख़्म है। पंजाब और महाराष्ट्र अपेक्षाकृत बाद के समय में ब्रिटिश शासन के अधीन आए, और इस कारण उनमें अभी भी स्वतंत्रता की भावना बनी हुई थी। इन दोनों प्रांतों में अंग्रेज़ों ने लोगों के आत्मसम्मान और राष्ट्रीय स्वाभिमान को उखाड़ने के व्यवस्थित प्रयास किए। पंजाब में उन्होंने सिख, ग़ैर-सिख, जाट और मुसलमानों के बीच भेदभाव के बीज डाले, जिससे प्रांत की एकता को आँच पहुँची। महाराष्ट्र में उन्होंने इसके हिस्से तीन अलग-अलग प्रांतों के बीच बाँटकर प्रांत का अलग अस्तित्व ही मिटा दिया।

भाषा के बिंदु पर भी ब्रिटिश शासकों ने विभाजनकारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देने के लिए इसी प्रकार की नीति अपनाई। उन्होंने न केवल अंग्रेज़ी को देश की लोकभाषा बनाया, बल्कि उसे व्यवस्थित ढंग से प्रांतीय भाषाओं पर थोपने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप अंग्रेज़ विरोधी संघर्ष एक अंग्रेज़ी भाषा विरोधी संघर्ष भी बन गया और बदले में इसने भाषाई अंधराष्ट्रीयता को पुष्ट किया। उन दिनों यह अंधराष्ट्रीयता सुविधाजनक ढंग से राष्ट्रवाद में छिप जाती थी। एक ओर तो अंग्रेज़ों से लड़ने के लिए सभी भारतीय एक साथ आए थे, लेकिन दूसरी ओर प्रांतीय भावनाएँ भी समय-समय

पर अपनी उपस्थिति दरशाती थीं। उसी समय मुसलमानों का तुष्टीकरण यह प्रदर्शित करने के क्रम में शुरू हुआ कि वे भी राष्ट्रीय संघर्ष में सह-सेनानी थे। यह भी अव्यक्त प्रांतीय भावनाओं का अप्रत्यक्ष पोषण साबित हुआ।

हम भूल गए कि भारत प्राचीन काल से एक राष्ट्र रहा था। हम भूल गए कि प्रत्येक भारतीय एक ही और उसी भारतीय संस्कृति का उत्पाद था। हम उस एकत्व की भावना को भी भूल गए, जिसने हमें स्वतंत्रता के लिए लड़ने के लिए प्रेरित किया। अब हमने यह कहना शुरू कर दिया कि हम एक नए राष्ट्र का निर्माण करना चाहते हैं। और जब हमने इस नए राष्ट्र के लिए दुनिया भर में एक आदर्श की व्यापक तलाश शुरू की, तो हम संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा आकृष्ट कर लिए गए। इसके परिणामस्वरूप सभी बड़े और छोटे विचारों और शर्तों के साथ समझौता करने के हमारे प्रयास भाषाई प्रांतों की वकालत की हद तक चले गए। संयुक्त राज्य अमरीका के संविधान के आधार पर एक महासंघ के विचार ने जड़ पकड़ना शुरू किया। पिछले पचास वर्षों से चल रहे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रचार ने लोगों को महसूस कराया कि केवल एक महासंघ ही भारत की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकता है। वास्तव में यह मानने की हद तक चले गए कि एक एकात्मक संविधान को अपनाने का निर्णय करना तथा संघ से इनकार करते हुए इस बात पर ज़ोर देना कि भारत एक राष्ट्र है, लोकतंत्र के ख़िलाफ़ है! वास्तव में अब भारत स्वतंत्र है और जो जनता है, वही सरकार है। चूँकि यहाँ केंद्र तक में एक लोकप्रिय प्रशासन है, इसलिए किसी के अधिकारों और शक्तियों को लूटे जाने का कोई सवाल ही नहीं है। इसलिए लोकतंत्र का संरक्षण अब संविधान के किसी विशेष रूप पर निर्भर नहीं करता है। अब संघीय और एकात्मक संविधान दोनों उतने ही लोकतांत्रिक हो सकते हैं।

अंग्रेज़ भारत के लिए संघीय संविधान का निर्माण कराने के क्रम में एक गहरा खेल खेल रहे थे। क्योंकि उनका हित देश को अधिकतम संभव टुकड़ों में बाँटने में निहित है। 1857 तक वे सत्ता के केंद्रीकरण की दिशा में बढ़ रहे थे; लेकिन जब राष्ट्रीय आंदोलन ने जड़ें पकड़ना और फलना-फूलना शुरू किया, उन्होंने केवल केंद्रीय सत्ता को बनाए रखने और भारतीयों का भरण प्रांतीय सत्ता की छिटपुट रियायतों के साथ करने की नीति अपनाई। 1919 के सुधारों ने प्रांतीय परिषदों को कुछ शक्तियाँ हस्तांतरित कर दीं, जबकि 1935 के अधिनियम ने प्रांतीय स्वायत्तता दे दी और एक संघीय संविधान की नींव रख दी। सत्ता के इस हस्तांतरण में इस बात पर ज़ोर दिया गया था कि प्रांतों को भारत में केंद्र से नहीं, बल्कि समुद्रपार ब्रिटिश सरकार की ओर से उनकी स्वायत्तता मिली है। 562 भारतीय रियासतों को परमसत्ता (paramountcy) दी गई। 1942 का क्रिप्स प्रस्ताव इससे भी आगे निकल गया और उसने प्रांतों को देश से अलग हो जाने की शक्तियाँ दे दीं। कैबिनेट मिशन योजना का लक्ष्य भी संघीय, उप संघीय और प्रांत के

रूप में तीन प्रशासनों का निर्माण करना था। संक्षेप में, हर सुधार और सत्ता का प्रत्येक हस्तांतरण देश के प्रांतवार और राज्यवार विखंडन के उद्देश्य से किया गया।

कांग्रेस, जो कि हिंदू-मुसलिम एकता की धुन में मनोगृहीत थी, इन दाँव-पेंचों का खुले तौर पर विरोध नहीं कर सकी। जब मुसलमान ऊँची आवाज़ में विलाप करने लगे कि हिंदू बाहुल्य उन्हें मिटा देगा, तो कांग्रेस ने उन्हें आश्वासन दिया कि मुसलिम बहुल प्रांतों में वे जो चाहें करने के लिए स्वतंत्र होंगे। प्रांतीय शक्तियों पर निर्णय इस आश्वासन के बाद लिया गया। मुसलमानों का इस प्रकार तुष्टीकरण विभाजन से तो बचा नहीं सका, बल्कि राष्ट्रीय जीवन में अलगाववाद के बीज अवश्य बो दिए। सांत्वना की एकमात्र बात यह है कि विभाजन के बाद मुसलिम समस्या कुछ हद तक अधिक तर्कसंगत हो गई है और पृथक् निर्वाचक मंडलों को समाप्त कर दिया गया है। संविधान तैयार करने के दौरान यह सुझाव दिया गया था कि केंद्र के पास केवल तीन क्षेत्रों में अधिकार होने चाहिए। लेकिन नए सिरे से विचार करने पर कई और अधिक शक्तियाँ केंद्र को दी गईं।

घटनाक्रम के इतिहास की ऊपर की गई चर्चा अब भूल जाना है और देश का भविष्य निर्माण रचनात्मक दिशा में किया जाना है। आध्यात्मिक दृष्टि से कहें, तो भारत विभिन्न 'राज्यों' का एक संघ नहीं है, बल्कि अपने आप में एक समांग इकाई है। यह सही नहीं है कि देश के विभिन्न भागों की विभिन्न संस्कृतियाँ हैं। यहाँ तक कि विभिन्न प्रांतीय साहित्यों में भी सामाजिक एकता की एक ही अंतर्धारा है। भारत एक है, उसके लोग एक हैं, उनका सामाजिक अस्तित्व एक है, उनकी आत्मा एक है और उनकी संस्कृति एक है। यह एक एकजुट राष्ट्र है और इसलिए इसकी एक ही सरकार होनी चाहिए। इसमें इतने सारे राज्यों के लिए कोई स्थान नहीं है।

एक महासंघ का अर्थ अलग-अलग राज्यों के बीच एक समझौता होता है और यह एक तरह की संधि को इंगित करता है। इन राज्यों का अस्तित्व या उनकी शक्ति इस संधि के अनुच्छेदों पर निर्भर करती है।

हमारा संविधान एकात्मक और संघीय प्रवृत्तियों के बीच एक समझौता है। अंग्रेज़ी में शिक्षित जिन वकीलों ने इसे तैयार किया था, वे प्रांतीय ढंग से सोच रहे थे। लेकिन उनके हृदयों ने राष्ट्रीय जीवन की सदियों पुरानी एकता की ध्वनि फिर से सुनी। प्राचीन भारत की इस पुकार ने ही हमें उस देश के एकीकरण के लिए प्रयास करने के लिए प्रेरित किया है, जिसे अंग्रेज़ पीछे छोड़ गए हैं। देसी रियासतों के सरदार पटेल के एकीकरण में भी यही पुकार प्रकट होती है। अंततः राष्ट्रीय एकता के इस अहसास ने ही हमसे संविधान में निम्न बुनियादी बातों को स्वीकार कराया है—

1. देश भर में केवल एक ही राष्ट्रीयता है।

2. हमने पूरे देश के लिए एक संविधान, एक राज्य प्रमुख और एक ध्वज स्वीकार किया है। (संयुक्त राज्य अमरीका में हर राज्य का अपना संविधान है।) प्रांतों के गवर्नर चुने नहीं जाते हैं, (जैसा कि अमरीका में होता है) बल्कि राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।
3. पूरे देश के लिए राजभाषा है।
4. पूरे देश के लिए एक चुनाव प्रणाली है।
5. आर्थिक नियोजन के मामले में संपूर्ण भारत एक समांगी है।
6. देश के लिए न्यायिक प्रणाली एक है।
7. अवशिष्ट शक्तियाँ राज्यों को नहीं, बल्कि केंद्र को सौंपी गई हैं।
8. समवर्ती सूची में, किसी भी विषय में, प्रांतीय सत्ता की तुलना में केंद्रीय सत्ता अधिक प्रभावी है।
9. राष्ट्रपति प्रांतीय मामलों में हस्तक्षेप कर सकते हैं और अगर आवश्यकता हो, तो प्रांतीय सरकारों को निलंबित कर सकते हैं।
10. पूरे देश के लोग एक हैं और उनकी जनगणना एक प्राधिकार के तहत एक साथ की जाती है।

संविधान में कई ऐसी बातें हैं, जो हमारी एकात्मक प्रवृत्ति की पुष्टि करती हैं। लेकिन साथ ही हम संघीय प्रवृत्तियों के शिकार होने से भी बच नहीं सकते हैं। प्रांतीयतावाद के शिकार होकर, जो कि हम थे, हमने न केवल 1935 के अधिनियम के संघीय ढाँचे की नक़ल की, बल्कि प्रांतों को राज्यों के रूप में निर्दिष्ट करके बड़ी ग़लती कर दी है। हमने घोषणा की कि भारत राज्यों का एक संघ है। प्रांतों में हमने द्विसदनीय प्रणाली के माध्यम से केंद्रीय प्रशासन की एक म्लान छाया स्थापित करने की कोशिश की। राज्यपालों और राजप्रमुखों को राष्ट्रपति की तर्ज पर स्थापित किया गया। अलग उच्च न्यायालयों की स्थापना की गई और उन्हें संविधान की व्याख्या करने का अधिकार प्रदान किया गया।

चूँकि हमारा संविधान एकात्मक और संघीय दृष्टिकोण का एक मिश्रण बन गया था, इस कारण देश के भविष्य की प्रगति की दिशा अनिश्चित बनी हुई है। 1947 के बाद से संविधान धीरे-धीरे विकसित हो रहा था। अगर इसकी रचना करने के लिए हमें और अधिक समय मिलता, तो यह अधिक व्यवस्थित, अधिक एकीकृत और प्रभावी बन सकता था। यह बात कि हमें समय-समय पर इसमें संशोधन करना आवश्यक महसूस हुआ और राष्ट्रपति को अपनी विशेष शक्तियों का उपयोग करना पड़ा है, इस विचार की सत्यता की पुष्टि करता है।

दुर्भाग्यवश, इस संविधान के आधार पर देश की प्रगति की इसी अवधि के दौरान अंग्रेज़ों द्वारा बोई गई पृथकतावादी प्रवृत्तियाँ भी गति पकड़ती जा रही हैं। वर्तमान प्रांतीय

सीमाओं का न तो मूल रूप से कोई वैज्ञानिक आधार था और न अभी ही किसी वैज्ञानिक दृष्टिकोण का दावा किया जाता है। प्रांतीय असंतोष का परिणाम अलगाववादी भावनाओं में निकला और इसकी परिणति भाषाई आंदोलन में हुई। आंध्र के उदाहरण को देखते हुए इस वायरस के प्रसार को रोकने के केवल दो तरीक़े हैं। उनमें से एक है, पूरी समस्या को 20 साल के लिए स्थगित करने की धर समिति की सिफ़ारिशों को स्वीकार करना, जिससे इससे उत्पन्न होने वाले राष्ट्रवाद विरोध को पराजित किया जा सके; और दूसरा है कि मुद्दे का सामना किया जाए और एक अधिक वैज्ञानिक संविधान के तहत देश के प्रशासन को फिर से व्यवस्थित किया जाए।

इन दोनों में से भारतीय जनसंघ दूसरे विकल्प को अपनाने के पक्ष में है। समस्या को टालने का अर्थ सिर्फ़ अधिक असंतोष और राष्ट्रविरोधी षड्यंत्र पैदा करना होगा। जनसंघ 1952 में यह स्पष्ट कर चुका है कि राज्यों के पुनर्गठन का एकमात्र आधार भाषा नहीं हो सकती और यह कि इस समस्या के बारे में सुरक्षा, प्रशासन की सुविधा के साथ-साथ व्यवहार्यता की दृष्टि से विचार करने के लिए एक उच्च अधिकार प्राप्त आयोग आवश्यक था। इसमें संदेह नहीं कि भाषा से प्रशासन आसान हो सकता है, लेकिन यह कभी भी एकमात्र या सर्वोपरि विचार नहीं हो सकता। बंबई का बहुभाषी राज्य प्रशासन की दृष्टि से पश्चिम बंगाल, उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे एक भाषी राज्यों से पीछे नहीं, बल्कि वास्तव में उनसे आगे है। इसलिए यह आवश्यक है कि सरकार जनसंघ का सुझाव मान ले और एक उच्च अधिकार प्राप्त आयोग का गठन करने की माँग पूरी करे।

लेकिन आयोग का गठन करने पर तुरंत ही अलग प्रांतों के गठन की माँगों का ढेर लगना शुरू हो जाएगा। दक्षिण में इस तरह की माँग नई नहीं है। लेकिन अब उत्तर भी इस महामारी का शिकार हो गया लगता है। यहाँ तक कि बिहार जैसे एकभाषी प्रांत में भी मिथिला, भोजपुर और झारखंड राज्य बनाए जाने की माँग शुरू हो गई है। उत्तर प्रदेश और राजस्थान में स्वतंत्र बृज, कुरु और जंगल राज्यों पर चर्चा शुरू हो गई है। और यहाँ तक कि खुद उत्तर प्रदेश को भी कुछ लोगों द्वारा अलग-अलग वर्गों में विभाजित किए जाने की माँग की गई थी। जो स्वार्थपरकता इस तरह की सभी माँगों को उकसाती है, हमें उसकी अनदेखी करनी होगी और भारत की राष्ट्रीय एकता प्राप्त करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा। इसके लिए हमें भारतीय जीवन की व्यवस्था का विश्लेषण करना होगा।

अब भले ही पूरे भारत का सामाजिक जीवन एक ही तत्त्व हो, इसका प्राकट्य अलग-अलग तबकों में होता है। यहाँ तक कि हमारी बुनियादी एकता को गढ़ते हुए भी हमारी संस्कृति अलग-अलग रूपों में विकसित हुई है। और हमने इस विविधता को समाप्त नहीं किया है, बल्कि इसके विकास को हमारे क्रमिक विकास के एक प्रतीक के

रूप में अनुमति दी थी। इस विविधता ने सदैव अपने में आच्छादित एक आंतरिक एकता को प्रकट किया है। इस एकता का सबसे स्पष्ट प्रकटीकरण तब होता है, जब एक ही भाषा बोली जाती है। ऐसे क्षेत्रों को जनपद के रूप में जाना जाता है। भारत में अनेक जनपद हैं, जैसे कि बृज, अवध, भोजपुर, मगध, मिथिला, कोशल, कलिंग, विदर्भ, कान्हदेश, मालवा, कोंकण, मालाबार आदि। इन जनपद क्षेत्रों में एक निश्चित भाषा को साहित्य के माध्यम के रूप में स्वीकार किया जाता है और उस भाषा का पालन करने में जनपद एक दूसरे के पूरक होते हैं। महाराष्ट्र, गुजरात, तमिलनाडु, बंगाल आदि जैसे प्रांतों का गठन इसी ढंग से किया गया था। पूर्ण राष्ट्रीय जीवन के समुचित विकास के लिए किसी योजना को इन सभी के बारे में एक साथ पूर्वानुमान करना होगा।

आज के प्रांत, चाहे वे विद्यमान प्रांत हों या जिनकी माँग की जा रही है, वे प्रांत हों, इस जनपद जीवन की उपेक्षा करते हैं। इसके परिणामस्वरूप, जो व्यवस्था स्थापित किए जाने का प्रयास किया जा रहा है, वह ऐसी है कि लोग उसे अपनी ही व्यवस्था नहीं कह सकते हैं। उदाहरण के लिए, इसकी संभावना नाममात्र ही है कि कोंकण अपनी आत्मा, भाषा, साहित्य और स्थानीय परंपरा का त्याग करने के बाद कान्हदेश के साथ लाभप्रद विलय करेगा। एक और उदाहरण के तौर पर, बृज की भावना रो रही है, क्योंकि तुलसी रामायण की भाषा को प्रख्यात अवधी कवियों द्वारा हिंदी के पक्ष में छोड़ा जा रहा है। इस दुर्दशा से बाहर निकलने का रास्ता यह है कि ग्राम पंचायतों में प्राथमिक प्रशासन की शक्तियों का निवेश किया जाए, और जनपद सभाओं का निर्माण किया जाए, जिनकी शक्तियाँ आज की नगर पालिकाओं से अधिक लेकिन आज की विधानसभाओं की तुलना में कम हों।

जब शक्तियाँ गाँव स्तर तक नीचे विकेंद्रीकृत कर दी जाएँ, तब सर्वोपरि शक्ति संसद् के पास होनी चाहिए। जनपद सभा और संसद् के बीच में पड़ने वाले सभी प्राधिकरणों को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। प्रशासनिक सुविधा के लिए जनपद सभाओं को 'राज्यों' में नहीं, बल्कि प्रांतों में एकीकृत किया जाना चाहिए। इन प्रांतों को राज्यपालों के तहत होना चाहिए, जिनके पास प्रभावी प्रशासनिक अधिकार होने चाहिए। इससे प्रांतीयतावाद द्वारा प्रांतीय लोगों की प्रगति को नष्ट करने पर रोक लगेगी और राष्ट्रीय एकता के लिए ख़तरा दूर होगा।

संघ में राष्ट्रीय एकता के लिए ख़तरे बहुत वास्तविक हैं, जैसा कि शेख़ अब्दुल्ला के कड़वे उदाहरण द्वारा सिद्ध हुआ था। आज प्रांतीयतावाद आगे बढ़ रहा है और देर-सबेर केंद्र और प्रांत के बीच संघर्ष की एक संभावना है। इसलिए हमारी राष्ट्रीय ताक़त का समेकन एक ज्वलंत आवश्यकता है। प्रशासन के लिए आवश्यक सत्ता का विकेंद्रीकरण जनपद स्तर पर ही होना चाहिए। आज की प्रांतीय विधायिकाएँ स्वीकार नहीं करतीं कि

केंद्रीय सत्ता का विकेंद्रीकरण किया गया है। इसके विपरीत, वे मानती हैं कि खुद उन्होंने केंद्र सरकार को अपनी शक्तियाँ सौंप दी हैं। इस कारण, विकेंद्रीकरण के वर्तमान प्रयास एक ओर तो राष्ट्रीय एकजुटता के लिए ख़तरा हैं, और दूसरी ओर यह जनपदीय जीवन को कुचल कर समाप्त कर रहे हैं।

कुछ लोग पूछ सकते हैं कि केंद्र और जनपद के बीच शक्तियों का बँटवारा किस प्रकार होना चाहिए? इसका विस्तृत उत्तर इस लेख के दायरे के बाहर है, लेकिन समय आने पर उपलब्ध कराया जा सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 26, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

32

जनसंघ का चुनाव अभियान शुरू

लखनऊ से लोकसभा की सीट के लिए उपचुनाव के संबंध में अमीनुद्दौला पार्क में पहली सभा हुई। श्री अटल बिहारी वाजपेयी इस सीट पर जनसंघ के उम्मीदवार थे। सभा में भाषण करते हुए दीनदयालजी ने सबसे पहले नेताजी सुभाषचंद्र बोस को श्रद्धांजलि अर्पित की। सभा में श्री राजकुमार एडवोकेट तथा श्री अटल बिहारी वाजपेयी के भी भाषण हुए। यह लेख ऑर्गनाइज़र में 7 फरवरी को प्रकाशित हुआ। दीनदयालजी का वक्तव्य।

जिनके हाथों में अंग्रेज़ शक्ति सौंपकर गए, वे आज भी अंग्रेज़ी परंपरा का पालन कर रहे हैं। उनमें आत्मविश्वास की आज भी कमी दिखाई दे रही है। यही कारण है कि भारत सरकार गोवा मुक्ति के लिए कोई प्रभावशाली एवं सक्रिय पग नहीं उठा पाती। खेद का विषय है कि कांग्रेसाध्यक्ष श्री ढेबर[1] ने अपने अध्यक्षीय भाषण में गोवावासियों को केवल नैतिक समर्थन का आश्वासन दिया है। हमारा नैतिक समर्थन तो ट्यूनीशिया और हिंद चीन को भी प्राप्त है। गोवा भारत का भू-भाग है और वहाँ के वासी भारतीय राष्ट्र के अभिन्न अंग हैं।

कश्मीर विधानसभा द्वारा भारत में विलय पर अपनी मुहर लगाना, भारतीय संविधान के कतिपय उपबंधों को कश्मीर राज्य पर लागू करना हमारे लिए संतोष का कारण है, किंतु हम तो भारत के संविधान को कश्मीर पर पूरी तरह लागू करके उसे अन्य राज्यों के

---

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 1955 का अधिवेशन आवडी (मद्रास) में हुआ था। उछरंगराय नवल शंकर ढेबर (1905-1977) कांग्रेस के 1955-59 तक अध्यक्ष रहे।

समकक्ष लाना चाहते हैं। आज भी सुप्रीम कोर्ट का पूरा अधिकार कश्मीर पर नहीं है। हमारे चुनाव आयोग या जनगणना आयोग को कश्मीर राज्य में कोई अधिकार नहीं। हिंदी वहाँ की राज भाषा नहीं। वहाँ के नागरिकों को संसद् के लिए सदस्य चुनने का अधिकार नहीं और भारत के नागरिक कश्मीर से न तो चुनाव लड़ सकते हैं, न वहाँ नौकरी या ठेका पा सकते हैं और न वहाँ अचल संपत्ति ख़रीद सकते हैं। राष्ट्रपति के भी पूरे अधिकार वहाँ पर लागू नहीं होते। कश्मीर भारत में बिल्कुल मिल गया, यह कहना धोखा देना है।

भारतीय जनसंघ जनता का प्रतिनिधित्व एवं संगठन करने के निमित्त आया है। हम लोकसभा के चुनाव में इसलिए उतरे हैं।

—पाञ्चजन्य, जनवरी 31, 1955

□

33

भारत अखंड करने और माता के कष्ट मिटाने के लिए

26 जनवरी गणतंत्र दिवस पर रीवा के पद्मधर पार्क में आयोजित सभा में दीनदयालजी का भाषण।

आज ही 26 जनवरी के दिन हम भारतीयों ने रावी के तट पर खड़े होकर प्रतिज्ञा की थी कि हम भारत को पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त कराकर रहेंगे। मोतीलाल नेहरू[1] अधूरी ही स्वतंत्रता लेने के लिए तैयार थे, किंतु उनके पुत्र जवाहरलालजी का इसी बात पर झगड़ा हुआ था। इसलिए हमारी स्वतंत्रता पूर्ण उसी समय होगी, जब हम कॉमन वेल्थ से संबंध तोड़कर, अंग्रेज़ों के आर्थिक बंधन से हटकर तथा ब्रिटेन के कमांडर-इन-चीफ (कामन वेल्थ के सर्वश्रेष्ठ सेना अधिकारी) के नियंत्रण को समाप्त कर अंग्रेज़ों के प्रभाव से मुक्त होंगे। सच्ची बात तो यह है कि रावी के तट पर की गई प्रतिज्ञा रावी के किनारे ही पूरी होगी। जब तक रावी हमारे पास नहीं, हमें चैन नहीं।

'नेहरूजी के हाथ मज़बूत करने के लिए कांग्रेस को मज़बूत करो।' आजकल यह बहुत कहा जा रहा है। प्रत्येक देशभक्त को अपने प्रधानमंत्री के हाथ मज़बूत करने का अधिकार है, केवल कांग्रेस को ही नहीं। क्या जनसंघ नेता स्व. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने अपना महान् बलिदान देकर भी कश्मीर को विदेशी कुचक्र में फँसाने वाले शेख़

---

1. पं. मोतीलाल नेहरू (1861-1931) ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए 1923 में स्वराज पार्टी का गठन किया था। 1928 में प्रस्तुत 'नेहरू रिपोर्ट' में पूर्ण स्वराज को स्थान न देकर आंशिक स्वतंत्रता की माँग की गई थी, लेकिन पं. जवाहर लाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर अधिवेशन (1929) में भारत की पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य पारित हुआ था।

अब्दुल्ला से बचाकर भारत के प्रधानमंत्री के हाथ नहीं मज़बूत किए? इसके विपरीत कश्मीर समस्या के बारे में कांग्रेस तो हमेशा हाथ कमज़ोर ही करती रही है।

हमारा देश रूस, अमरीका और ब्रिटेन इन तीन विदेशी शक्तियों के चंगुल में फँसता जा रहा है। नेहरू की तथाकथित तटस्थ नीति ग़लत होने के कारण ही ऐसा हो रहा है। तटस्थता का जनसंघ पक्षपाती है किंतु नेहरूजी की तटस्थता हमारी समझ के परे है। तटस्थता में दो बातें हैं। एक यह कि हम किसी के झगड़े में न पड़ें और दूसरी कि हम किसी सैनिक गठबंधन के साथ न मिलें। हमारे प्रधानमंत्री ने दूसरी बात निभाई, लेकिन पहली बात नहीं निभाई। जिन झगड़ों से हमारा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, उनमें भी हमारे नेहरूजी को बोले बग़ैर चैन नहीं पड़ता। इतना ही नहीं, बल्कि हमारे देश के प्रधानमंत्री एक ही पक्ष में बोलते हैं। कम्युनिस्ट देशों के पक्ष में अपना मत व्यक्त करते हैं। वे रूसी पक्ष के इंडो-चाइना, ट्यूनिशिया, फारमोसा के बारे में कह सकते हैं, किंतु रूसी दासता में जकड़े पोलैंड और यूगोस्लाविया के बारे में चुप रहते हैं।[2] यह एकपक्षीय नीति हमारे देश में देशद्रोही रूसी एजेंटों की मदद करती है।

हमने तटस्थता की बात की किंतु कोई मित्र न बनाकर शत्रु ही खड़े किए। कश्मीर, गोवा, सीलोन[3] तथा अफ्रीका के प्रश्न पर सब हमारे विरोधियों का साथ देते हैं। हम सहअस्तित्व की बात करते हैं, किंतु चीन तिब्बत के बारे में हमारी बात को ठुकरा देता है। तिब्बत को उसने हड़प लिया और बाद में हमने उसे मान भी लिया। इस प्रकार यदि राष्ट्रीय हित की कसौटी पर कसकर देखें तो हमें ज्ञात होगा कि हमारी विदेश नीति पूर्णत: असफल रही है।

हमारी तटस्थ नीति ऐसी होनी चाहिए कि दोनों गुटों से अलग रहें और किसी की उलझन में न पड़कर सब झगड़ों से अपने देश को मुक्त रखें।

आज रूसी कम्युनिस्ट भिन्न-भिन्न संगठनों के नाम पर अपना जाल हमारे देश में फैला रहे हैं। कहीं मज़दूर सभा, तो कहीं शांति परिषद् के नाम पर वे काम करते हैं। उसी प्रकार अमरीका भी कहीं ईसाई प्रचारकों के नाम पर अथवा व्यापार करने या कम्युनिटी प्रोजेक्ट में काम करने के नाम पर अपना षड्यंत्र भारत में चला रहा है। प्रजा समाजवादी नेता भी उसके चंगुल में फँस रहे हैं। कश्मीर में अमरीकी षड्यंत्र के भागीदार शेख़ अब्दुल्ला के साथियों को लेकर प्रजा समाजवादी नेताओं ने अपना काम शुरू कर दिया है। इन सब बातों से हमें सावधान रहना पड़ेगा। हमारे प्रधानमंत्री की

---

2. द्वितीय विश्वयुद्ध के दौर में यूगोस्लाविया व पोलैंड (1945), सोवियत प्रभाव क्षेत्र में कम्युनिस्ट शासन के अधीन हो गए थे। इसके अलावा सोवियत संघ ने उत्तरी ईरान (1941), हंगरी (1944), रोमानिया (1944), चेकोस्लोवाकिया (1944), उत्तरी नॉर्वे (1945), आस्ट्रिया (1945) पर भी क़ब्ज़ा कर लिया था।

3. सीलोन : वर्तमान श्रीलंका का प्राचीन नाम।

'Open door policy' देश के लिए ख़तरनाक सिद्ध हो रही है। कम्युनिस्टों और ईसाइयों की हरकतें मालूम होते हुए भी तथा भूतपूर्व गृहमंत्री तथा वर्तमान के रक्षा मंत्री डॉ. कैलाशनाथ काटजू के द्वारा स्वीकार करने पर भी कि उनके पास प्रमाण हैं, उनके विरुद्ध कोई कठोर क़दम नहीं उठाए जा रहे हैं। भारतीय जनसंघ यह सहन नहीं कर सकता। देशद्रोहियों को दंड मिलना ही चाहिए। हम भारत माता के सच्चे सपूत के नाते माता के अखंड स्वरूप के पुजारी हैं, इसलिए देश को पहली ताक़त बनाना है, तीसरी शक्ति नहीं। हम विशुद्ध राष्ट्रवाद के आधार पर भारत को ही अपना श्रद्धा केंद्र मानकर इसे भारत ही बनाना चाहते हैं, रूस तथा अमरीका नहीं।

भारत को मातृभूमि, पितृभूमि, पुण्यभूमि, कर्मभूमि, धर्मभूमि मानकर प्रबल राष्ट्रीय शक्ति निर्माण करने का कार्य केवल जनसंघ ही कर रहा है।

रूस और अमरीका लड़ाकू मनोवृत्ति के देश हैं, लेकिन वे अपने घर में लड़ाई नहीं चाहते। बटेरों के समान दूसरे-दूसरे देशों को लड़ाकर, युद्धभूमि बनाकर तथा उनमें एटम बमों और हाइड्रोजन बमों का प्रयोग एक-दूसरे के विरुद्ध करके नग्न दृश्य देखना चाहते हैं। 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस पर हम राष्ट्रीय शक्ति मज़बूत करने की प्रतिज्ञा करें और निश्चय करें कि भारत को रूस और अमरीका के लड़ने का मैदान नहीं बनने देंगे।

देश को सुखी, भौतिक साधनसंपन्न बनाने के लिए योजना अपने ही देश की होनी चाहिए। खेद की बात है कि प्रथम पंचवर्षीय योजना का आधार विदेशी मशीन और वहीं के कारीगर थे। इन विदेशी प्रभुत्वों से हमें मुक्त होना पड़ेगा।

खेती के लिए विदेशी ट्रैक्टर, फिर ट्रैक्टर के लिए विदेशी तेल और उससे उत्पन्न धुआँ को भारत के लिए हानिकारक है। कृषि के क्षेत्र में गाय और बैल के उपयोग पर हमें जोर देना चाहिए। स्वतंत्र भारत में गोवध बंद न होना नितांत दुःख की बात है। गोमाता को केवल पवित्र भावना से देखने वालों के प्रति घृणा करने वालों से मैं पूछता हूँ, यदि भावना को आप नहीं मानते तो फिर गांधीजी की समाधि पर फूल क्यों चढ़ते हैं? कपड़े के एक तिरंगे टुकड़े, राज्यध्वज के लिए प्राणार्पण की बात क्यों करते हैं? सबकुछ भावना पर ही है। भावना के ही आधार पर माता-पिता, पुत्र हैं। भावना के ही कारण रेगिस्तानी राजस्थान को हमने अपने रक्त से सींचा है।

सबको काम मिल सके, इसलिए हमें गृह-उद्योगों को बढ़ाने की योजना बनानी चाहिए। कांग्रेस व प्रजा समाजवादी नेता कहते हैं कि गृह उद्योग भी जीवित रहें और जनसंघ कहता है कि गृह-उद्योग ही जीवित रहें और बड़े उद्योग उनकी पूर्ति के रूप में ही काम करें, जैसे सूत मिलों में बने और कपड़ा करघों पर।

कांग्रेस व प्रजा समाजवादी दलों के बारे में हम समझें। ये सब अखिल भारतीय

दल नहीं रहे, क्योंकि वे जगह-जगह अलग-अलग प्रकार की बात कहते हैं। राज्य पुनर्गठन के बारे में उनके भिन्न-भिन्न स्थानों के कार्यकर्ता एकमत नहीं। जनसंघ पूरे देश में एक स्वर से एक ही बात कहता है, इसलिए उसे ही केवल अखिल भारतीय दल के नाते बने रहने का अधिकार है।

कांग्रेसी और प्रजा समाजवादी भाषा के आधार पर राज्यों के निर्माण के लिए ख़ून की नदी बहाने की बात करते हैं। मेरा कहना है कि जब देश के टुकड़े हो रहे थे, तब इनका जोश और यौवन कहाँ गया था? मेरा तो आह्वान है कि अभी भी यदि बूढ़ी कांग्रेस में कुछ ख़ून है, कुछ जवानी है, जोश है तो वह आगे आए और हमारे कंधे-से-कंधा मिलाकर भारत को पूर्ण स्वतंत्र करने के लिए, कश्मीर और गोवा को मुक्त करने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगाए और शक्ति एकत्र कर भारत को अखंड करने के लिए आगे बढ़े।

—पाञ्चजन्य, फरवरी 7, 1955

□

34

दीनदयालजी बंबई में

दीनदयालजी ने बंबई में जनसंघ कार्यकर्ताओं को संबोधित किया। यहाँ वे गोवा की राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पीटर अलवारेस से मिले। गोवा मुक्ति संघर्ष के ज़ोर पकड़ने के विषय पर उनसे विचार विमर्श किया और उन्हें यह सुझाव भी दिया कि यह संघर्ष सभी पार्टियों को साथ लेकर चलाया जाना चाहिए। इस अवसर पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

हमारे सामने दो समस्याएँ हैं; इनमें पहली तो कांग्रेस को सत्ता से बाहर करना है और दूसरी कम्युनिस्टों से लड़ना। इसलिए हमारा संघर्ष त्रिकोणात्मक हो जाता है। कांग्रेस में उदारवादी प्रबुद्ध और गंभीर लोग थे और फिर भी वे लोकप्रिय नेतृत्व की अगली पंक्ति में नहीं रह सके, क्योंकि वे केवल बयानबाज़ी करके संतुष्ट हैं। कांग्रेस के वर्तमान नेतृत्व को हटाकर जनसंघ उदारवादी परंपरा को पुनर्जीवन नहीं देना चाहती।

आंध्र के चुनाव

यह कहना मुश्किल था कि जनसंघ के कुछ उम्मीदवार कितने सफल रहेंगे। जनसंघ की सभाओं में उपस्थिति अच्छी रही है और वक्ताओं को लिखित रूप से भेजे गए सभी प्रश्नों का ध्यानपूर्वक उत्तर दिया गया है, जो चुनाव सभाओं की एक स्वागतयोग्य विशेषता थी। विजयवाड़ा में हर एक मतदाता से कार्यकर्ताओं ने व्यक्तिगत रूप से संपर्क किया था, जो सुबह पाँच बजे से रात ग्यारह बजे तक काम करते थे।

चुनाव समय के दौरान मतदाता सूची की तैयारी बहुत महत्त्वपूर्ण थी और जनसंघ

कार्यकर्ताओं को यह देखना चाहिए कि इन सूचियों को तोड़ा-मरोड़ा न गया हो। लखनऊ में, जहाँ से जनसंघ के सचिव श्री अटल बिहारी संसदीय सीट पर चुनाव लड़ रहे हैं,[1] यह पाया गया था कि जनसंघ कार्यकर्ताओं के पूरे मुहल्लों को सूची से हटा दिया गया है।

एक समाजवादी समाज का पं. नेहरू का नारा

यह जराजीर्ण कांग्रेस को सिर्फ़ एक नया जीवनदान देने के लिए किया गया था। पं. नेहरू ने शुरुआत सहकारी राष्ट्रमंडल के नारे के साथ की थी, उसके बाद उन्होंने एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की बात की, फिर एक कल्याणकारी राज्य की और अंत में एक समाजवादी राज्य पर आ गए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि ये सभी सिर्फ़ क्षणिक नारे हैं। वास्तविक समाजवाद में न केवल एक विशेष आर्थिक पैटर्न समाहित होता है, बल्कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति का पूर्ण और सर्वांगीण विकास समाहित होता है। ऐसा करने के बजाय दूसरी तरफ़ कांग्रेस शासकों और शासितों के बीच व्यापक खाई पैदा कर रही है।

ऐसी सभी बातों के साथ परेशानी यह है कि यह किसी भी रचनात्मक काम के आधार के बिना मात्र अटकलबाज़ी करती है। समय की माँग इस तरह बातें करने की नहीं, बल्कि एक रचनात्मक कार्यक्रम की है, जो भारतीय समाजशास्त्र के स्थायी सिद्धांतों पर आधारित समाज का विकास करे। जब तक ऐसा नहीं होता, तब तक सभी बातें विफल ही होंगी। उदाहरण के लिए, सहकारी आंदोलन को लेकर बहुत हल्ला मचा था, लेकिन सिद्धांत रूप में अच्छा होने के बावजूद यह व्यवहार में विफल रहा है; क्योंकि अभी हमारे लोगों में सहकारिता की भावना का अभाव है।

—ऑर्गनाइज़र, फरवरी 21, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

☐

1. विजयलक्ष्मी पंडित (1900-1990) द्वारा 1955 में लखनऊ लोकसभा सीट छोड़ने के बाद हुए उपचुनाव में अटल बिहारी वाजपेयी ने जीत दर्ज कर अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत की थी।

35

वर्तमान भारतीय राजनीति

भारत में अभी तक राजनीति का उचित विकास नहीं हुआ है। हाल ही में हुआ लखनऊ का उपचुनाव इसका प्रमाण है। वहाँ पर सिद्धांतों का कोई प्रश्न नहीं था। उदाहरणत: वहाँ पर समाजवादियों ने अपने सिद्धांतों को एक तरफ़ रखकर साम्यवादियों से गठबंधन किया। मुसलमान गत आम चुनावों में कांग्रेस के साथ थे। परंतु इस बार वे समाजवादियों के साथ हो गए। समाजवादी प्रत्याशी श्री त्रिलोकी सिंह कायस्थ थे। अत: कायस्थ जाति के बहुत से लोगों ने उनको ही मत दिए। कांग्रेस को बहुसंख्यक मत मिले, पर यह कहना कठिन है कि बहुसंख्यक जनता उनके साथ है। किसी ने भी दल के सिद्धांतों को नहीं समझा।

कांग्रेस सबसे पुरानी राजनीतिक संस्था है। यह समझ में नहीं आता कि कांग्रेस का सिद्धांत क्या है। अगस्त 1947 तक अवश्य उसका सिद्धांत था 'स्वतंत्रता'। परंतु तत्पश्चात् अभी तक उसके सिद्धांत के आगे प्रश्नवाचक चिह्न ही लगा हुआ है। मज़हब के नाम पर कांग्रेस ने जिस समय पाकिस्तान स्वीकार किया, उसी समय उसने राष्ट्रवाद को दफना दिया। स्वतंत्रता के पश्चात् कांग्रेस ने ध्येय रखा सहकारी समाज (Co-operative Commonwealth), पंथनिरपेक्षता (Secularism), समाजवाद (Socialism) और आवडी[1] में ध्येय बताया समाजवादी ढाँचे की समाज-रचना (Cooperative Society with a Socialistic Pattern) अब प्रश्न उठता है कि समाजवाद कौन सा? श्री नेहरू का समाजवाद या श्री टी.टी. कृष्णमाचारी[2] का, श्री देशमुख[3] या

1. आवडी (मद्रास) में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का 1955 में अधिवेशन हुआ था, जिसके अध्यक्ष उछरंगराय नवल शंकर ढेबर (1905-1977) थे।
2. तिरुवेल्लोर थात्तई कृष्णामाचारी (1899-1974), भारत के वित्त मंत्री (1956-58 व 1964-66) थे। भारत के पहले मंत्री, जिन्हें मुंधरा घोटाले में नाम आने पर इस्तीफ़ा (1958) देना पड़ा था।
3. चिंतामन द्वारकानाथ देशमुख (1896-1982), भारतीय रिज़र्व बैंक के प्रथम भारतीय गवर्नर (1943-49) व भारत के वित्त मंत्री (1950-57) थे।

श्री मन्नारायण[4] का। अभी तक कोई अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

'समाजवाद' अर्थात् समाज की भलाई की योजना, इसे कौन स्वीकार नहीं करेगा? क्या कांग्रेस के समाजवाद का स्वरूप राष्ट्रीयकरण के अंतर्गत निहित है। क्या कांग्रेस के समाजवाद में व्यक्तिगत संपत्ति राष्ट्र की समझी जाएगी? संपत्ति का समाज 'ट्रस्टी' बनकर रहेगा या बड़े उद्योगों का प्रबंध निगम द्वारा होगा? इनमें से कौन स्वरूप कांग्रेसी समाजवाद का होगा, वह समझ में नहीं आता।

कांग्रेसी आगामी वर्ष के आय-व्यय को समाजवादी बतलाते हैं। किंतु बजट में समाजवाद कहाँ है? रोज़मर्रा की वस्तुओं, जैसे विद्युत् बल्ब, दियासलाई, आबकारी और रेलवे भाड़ा ऐसे ही लगभग 26 वस्तुओं की क़ीमतें बढ़ गई हैं। अतः आज किसी को किसी के शब्दों के पीछे जाने की आवश्यकता नहीं है, वरन् वास्तविक कृति देखकर अनुसरण करने की आवश्यकता है। राजनीति सिद्धांतों के आधार पर चलती है। किंतु आज तो लोगों की विचित्र स्थिति है। एक मंच से एक बात और दूसरे मंच से दूसरी बात कहते हैं।

हमने प्रजातंत्र को स्वीकार किया है। इसकी ज़िम्मेवारी भारत की 35 करोड़ जनता पर है। प्रजातंत्र के स्थायित्व के लिए उसके अनुकूल दल बनाने पड़ेंगे। उसके आधार पर मतदान करना होगा। उसकी पूर्ति के लिए आंदोलन करने होंगे। उस दिशा में रचनात्मक कार्य करना होगा। यही कार्य जनसंघ कर रहा है, क्योंकि भारतीय जनसंघ की स्थापना सिद्धांतों के आधार पर हुई है। विमर्श चला कि प्रेरणा-स्रोत का आधार क्या बनाया जाए—अंग्रेज़ों द्वारा लादी गई भौतिकता या भारतीय आध्यात्मिक जीवन का सर्वांग विचार। यह निश्चय करना होगा कि भारत को किस नींव पर खड़ा करना है। भारतीय जनसंघ भारतीय आधार लेकर चला है। किसी भी स्थान की कोई भी अच्छी बात होगी तो उसे भारतीयता का रंग देकर अवश्य स्वीकार किया जाएगा। यही अंतर है जनसंघ और दूसरे दलों के बीच।

कांग्रेस मूलतः भौतिकवाद (पाश्चात्य) को लेकर चली है। अतः हर पहलू के संबंध में उसका वही दृष्टिकोण रहता है और हर पहलू पर दृष्टिकोण बदलता भी जाता है, जैसे विवाह विच्छेद, विवाह पश्चिम में एक सौदा समझा जाता है, जबकि हमारे यहाँ जीवन का ध्येय कर्तव्य पूर्ति के लिए पितृधर्म का साधन है।

भारत में समाजवाद लाना है तो समाज के 35 करोड़ भारतीयों की आत्मा को समझा जाए। पंडित नेहरू के समक्ष प्रश्नवाचक चिह्न उपस्थित हो गया कि कुंभ मेले में दस लाख लोग कैसे आए। जब यही समझ में नहीं आता तो समाजवाद कैसे आएगा?

---

4. श्रीमन्नारायण अग्रवाल (1912-1978) ने महात्मा गांधी की आर्थिक अवधारणाओं पर 1944 में 'The Gandhian Plan for Economic Development of India' पुस्तक लिखी थी।

गांधीजी ने समझा था, और उसी की देन है—सत्य, अहिंसा परंतु आज तो वह केवल लिखा हुआ ही दिखाई पड़ता है। कार्य रूप में परिणत होते हुए नहीं। जनसंघ इसे कार्य रूप में परिणत करना चाहता है।

आज की समानता एक धोखा है। कहाँ है समानता। आत्मीयता को लाना है। प्रत्येक को अपनी योग्यता और आवश्यकता के अनुसार मिलना चाहिए। आज आत्मीयता का दृष्टिकोण उत्पन्न करना है, अगर यह भावना होती तो क्या आज की सरकार हमें गोवा मुक्ति संग्राम में भाग लेने से रोकती। गोवा हमारा है। कश्मीर से कन्याकुमारी और अटक से कटक तक देश अखंड है। किसी भी आधार पर भेद करना अनुचित है।

हमारे प्रधानमंत्री कहते हैं, फारमोसा चीन को मिल जाना चाहिए। फिर गोवा को भारत से मिलाने के लिए क़दम क्यों नहीं उठाया जाता? हमारी सेना कोरिया जाए या हिंदचीन किंतु इस सेना का कोई उपयोग नहीं, यदि वह गोवा को मुक्त कराने में असमर्थ है। स्वतंत्र सार्वभौम सत्ता के प्रधान श्री नेहरू यदि हमारे गोवावासी बंधुओं की यातनाओं को दूर करने के लिए आगे नहीं आते तो लज्जास्पद है—उनके लिए और उनके प्रधानमंत्रित्व के लिए। 11 अमरीकियों को चीन द्वारा बंदी बनाए जाने पर अमरीका युद्ध के लिए उद्यत हो गया। किंतु हमारे कितने ही बंधु अब भी यातनाएँ सह रहे हैं। कितनी विडंबना है कि सरकार बोलती तक नहीं। 15 अगस्त को जनसंघ के सेनानी, श्री हेमंत सोमन ने राष्ट्रीय तिरंगा गोवा की राजधानी में फहरा दिया। यह कार्य ग़ैर-सरकारी संस्थाओं या इक्के-दुक्के व्यक्तियों का नहीं है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि बेकार के कार्य सरकार कर रही है, किंतु कश्मीर को बचाने के लिए हमको जाना पड़ा, हमारे नेता का बलिदान हो गया। यह कैसा विधान है।

ऐसा लगता है कि शासन तंत्र काम करने के बजाय खुशामद में लगा हुआ है। इसलिए समस्या खड़ी हो जाती है। गोवा इसका ज्वलंत प्रमाण है। शासन द्वारा अवहेलना देखकर हमें वहाँ जाने के लिए कहीं विवश न होना पड़े। गोवा अमरीका-पाक अड्डा बन सकता है। अत: यही उचित अवसर है क़दम उठाने का। यह हमारा भाग है। इसे भारत में सम्मिलित करने से अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियाँ कैसे बिगड़ सकती हैं?

दस वर्ष और ठहरे तो गोवा ही क्या, एक छोटे से प्रश्न पर लड़ाई भी छिड़ सकती है। दु:ख इतना ही है कि वर्तमान शासन की गृह और विदेश नीति में मेल नहीं बैठता।

बाहर जिस प्रकार की तटस्थता बरती जाती है, वैसे यहाँ नहीं। साम्यवादियों द्वारा रूस अपना जाल फैला रहा है। श्री एस.के. पाटिल[5] कहते हैं कि आंध्र में साम्यवादियों

5. सदाशिव कनोजी पाटिल (1898-1981), महाराष्ट्र के कांग्रेस नेता, जो क्रमश: तीन बार 1949, 1950 और 1951 में बंबई के मेयर रहे।

की कब्र खुद गई। ज़रा विचार तो करें कि साम्यवादियों को कितने मत मिले, यह तो केवल श्री पाटिल ही जानते हैं। किंतु साम्यवादियों को बढ़ावा देने वाली कांग्रेस ही है। दूसरी ओर अमरीका ईसाई मिशनरियों द्वारा अपना जाल फैला रहा है। इसी प्रकार चलता रहा तो भारत भी ग्वाटेमाला, चीन या ईरान बन सकता है।

कश्मीर की समस्या भी अभी तक उलझी पड़ी है। वहाँ हमारे सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार सीमित हैं। हमें वहाँ नागरिकता के अधिकार नहीं हैं तथा चुनाव आयोग व लेखा परीक्षक को वहाँ पर भी कोई अधिकार नहीं है। कांग्रेस एक छोटी सी चीज़ कर ले, समस्या का हल निकल आएगा। कश्मीर में नेशनल कॉन्फ्रेंस को इंडियन नेशनल कांग्रेस में मिला ले। बख्शी साहब हर सम्मेलन में आते ही हैं। ऐसा ही पांडिचेरी में भी हुआ। कोई राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय बवंडर खड़ा नहीं हो सकता। तब समस्या हल हो जाएगी। यदि यह समस्या उलझी रही तो भारत तीसरी युद्धभूमि बन सकता है। यही नहीं तो आज़ादी हाथ से निकल जाएगी।

कहीं बाहर से हमें प्रेरणा नहीं मिल सकती। विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर देश की राजनीति को ढालना होगा। जनसंघ यह कार्य करना चाहता है।

भारतीय जन एकसूत्र होकर, राजनीतिक अवसरवादिता को त्यागकर सिद्धांत पर आएँ। फिर वह किसी भी संस्था में जाएँ, इसकी कोई चिंता नहीं। कांग्रेस के पास सिद्धांत नहीं, घोषणार्थ है। भारतीय जनसंघ भारतीय जीवन-दर्शन लेकर चला है।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 4, 1955

□

36

संशोधन की भावना का समर्थन और उत्तराधिकार विधेयक की आलोचना

28 मार्च को अपने बंबई-महाराष्ट्र-मराठवाड़ा दौरे से लौटे दीनदयालजी ने ऑर्गनाइज़र संवाददाता को बताया कि गोवा के मुद्दे पर जनता बहुत ज़्यादा उत्तेजित है। दीनदयालजी का वक्तव्य।

जिन क्षेत्रों में मैंने दौरा किया, मैंने पाया कि जनसंघ का काम संतोषजनक ढंग से चल रहा है। विशेष रूप से मराठवाड़ा में जनसंघ के काम के लिए अच्छी गुंजाइश है। पीजेंट्स एंड वर्कर्स पार्टी, जो पहले शक्तिशाली थी, अब मृतप्राय हो गई है और उसके नेता या तो कांग्रेस या कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए हैं। जनसंघ भी श्रमिक कार्यकर्ताओं को संगठित कर रहा है।

बंबई राज्य परिवहन और बंबई अनिवार्य पास्चराइज़ेशन विधेयक

राज्य का परिवहन महँगा और लेट-लतीफ़ था और यात्री सुविधाओं में कमी थी। जनसंघ पास्चराइज़ेशन विधेयक के विरोध में था। एक बात तो यह कि वैज्ञानिक राय में दूध को अत्यधिक गरम और ठंडा किए जाने में, जो पास्चराइज़ेशन में निहित है, दूध के महत्त्वपूर्ण तत्त्व नष्ट हो जाते हैं। इसके अलावा, विधेयक दूध व्यापार की वर्तमान पद्धति को विकृत करेगा। वर्तमान में यह मोटे तौर पर एक छोटा व्यवसाय है। अनिवार्य पास्चराइज़ेशन से पूरा व्यापार अमीरों के हाथों में चला जाएगा, क्योंकि सिर्फ़ वे ही महँगे पास्चराइज़ेशन संयंत्र की व्यवस्था कर सकते हैं। तथ्य यह है कि बंबई निगम कांग्रेस

पार्टी ने भी पास्चराइज़ेशन का विरोध किया था। विधेयक वापस लिया जाना चाहिए। इस बीच जनसंघ बंबई प्रांत में विभिन्न स्थानों पर ग्वाला संघों का आयोजन कर रहा है।

जनसंघ ग़रीब आदमी के पक्ष में खड़ा है। अगर कोई संयंत्र बंद कर दिया जाता है, तो सरकार में श्रमिकों और उपभोक्ताओं के हित में उसे चालू रखने के लिए आवश्यक शक्ति होनी चाहिए। हालाँकि अगर कोई संयंत्र पूरी तरह अलाभकर हो गया हो, तो उसके हिसाब-किताब का फ़ैसला करके उसे बंद किया जा सकता है। इस कारण जनसंघ ने जहाँ संविधान के अनुच्छेद 31[1] में संशोधन की भावना का स्वागत किया है, वहीं इस बात पर खे़द व्यक्त किया जाना चाहिए कि संविधान में संशोधन बहुत ज़्यादा बार किए जा रहे हैं। अभी हाल ही में इसी अनुच्छेद में पहले भी एक बार संशोधन किया गया था। सरकार को अपनी वर्तमान ज़रूरतों की परिकल्पना कर लेनी चाहिए थी और फिर एक व्यापक संशोधन पेश किया जाना चाहिए था। अभी भी अगर एक और समस्या दबे पाँव बढ़ आती है, तो क्या अनुच्छेद में फिर एक बार संशोधन नहीं किया जाएगा? सरकार को पहले और बाद में विचार करना चाहिए और संविधान के साथ छेड़छाड़ का आभास नहीं देना चाहिए।

जनसंघ अपने आप में मुआवज़े के भुगतान में विश्वास नहीं करता। लेकिन यह महसूस किया जाता है कि संपत्ति के राष्ट्रीयकरण से प्रभावित व्यक्तियों का, अगर उनके पास आजीविका का कोई अन्य साधन न हो, तो पुनर्वास किया जाना चाहिए था। उदाहरण के लिए, अपनी भूमि के नुकसान के लिए बलरामपुर के महाराजा[2] जैसे किसी व्यक्ति को मुआवज़ा देने का कोई फ़ायदा नहीं था, क्योंकि उनके पास इमारतों, कंपनी के शेयरों आदि की तरह पर्याप्त अन्य संसाधन हैं। इसी तरह राजस्थान में, यहाँ तक कि सबसे अमीर जागीरदारों को भी उनके द्वारा भुगतान किए गए भू-राजस्व से चार गुना की दर से भुगतान किया जाना प्रस्तावित है। उनमें से कुछ को 20 लाख रुपए और अधिक का भुगतान किया जाना है। वह ग़लत था। दूसरी ओर ग़रीबों को उस 'मुआवज़े' का भुगतान किया जा रहा था, जो उनका पुनर्वास नहीं कर सकता है। इलाहाबाद में इंप्रूवमेंट ट्रस्ट ने झोंपड़ी में रहने वाले लोगों को, झोंपड़ी बनाने के लिए कोई वैकल्पिक स्थान दिए बिना, 20/40 रुपए के भुगतान पर उजाड़ दिया। यह सबसे अधिक अनुचित था।

---

1. भारतीय संविधान के चौथे संशोधन (1955) द्वारा अनुच्छेद 31 में परिवर्तन किया गया, जिसके अंतर्गत व्यक्तिगत संपत्ति को लोकहित में राज्य द्वारा हस्तगत किए जाने की स्थिति में, न्यायालय इसकी क्षतिपूर्ति के संबंध में परीक्षा नहीं कर सकती। इसके साथ ही निजी संपत्ति को अनिवार्यतः अर्जित या अधिगृहीत करने की राज्य की शक्तियों की फिर से सुव्यवस्थित ढंग से व्याख्या कर अनुच्छेद 31 (2) में संशोधन किया गया। अनुच्छेद 31 (1) की परिधि का ज़मींदारी अन्मूलन जैसे आवश्यक कल्याणकारी क़ानूनों तक विस्तार किया गया।
2. महाराजा बहादुर सर पाटेश्वरी प्रसाद सिंह (1914-64), बलरामपुर के महाराजा थे।

हीराकुंड में, बिलासपुर में और वास्तव में, सभी बाँध साइटों पर बड़ी संख्या में ग़रीब लोगों को उजाड़ा गया और केवल वह देकर, जिसे 'टोकन मुआवजा' माना जा सकता है, दफा कर दिया गया। जनसंघ इस दोहरे अन्याय के विरुद्ध है।

हिंदू उत्तराधिकार विधेयक

मैं सिद्धांत रूप में उस सामाजिक विधान के विरुद्ध हूँ, जो सभी नागरिकों के लिए लागू न होता हो। मैं समान राष्ट्रीय नागरिक संहिता का पक्षधर हूँ। वर्तमान विधेयक सामाजिक सुरक्षा के बजाय असुरक्षा पैदा करेगा। अधिकतर पुरुषों के पास कोई संपत्ति ही नहीं है और इसलिए बेटियों के लिए हिस्से का कोई सवाल ही नहीं उठता। अभी तो अधिकतर लोग बेटियों के विवाह के लिए ऋण तक लेते हैं, ताकि उन्हें अच्छी तरह बसा देख सकें। यह विधेयक बहनों के प्रति ज़िम्मेदारी की भाइयों की भावना को कमज़ोर करेगा, और इस कारण लड़कियों के लिए संकट का कारण बनेगा।

पूर्वी बंगाल से भारी संख्या में पलायन

मैं इस निश्चित मत का हूँ कि ईस्ट बंगाल के भारत में परिग्रहण के अलावा इस समस्या को किसी तरह से हल नहीं किया जा सकता है। उन्होंने कहा कि यहाँ तक कि ईस्ट बंगाल के मुसलमान भी संकट में हैं। भारी संख्या में पलायन भारत की आर्थिक स्थिरता के लिए बड़ा ख़तरा प्रस्तुत करता है।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 4, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

37

सरकारी अर्थनीति असंतुलित मध्यम व निर्धन वर्ग बुरी तरह पीड़ित

भारतीय जनसंघ के तत्त्वावधान में आयोजित एक विशाल जनसभा में बंबई में चौपाटी पर हुए दीनदयालजी के भाषण का सारांश।

आज से अखिल भारतीय हथकरघा उद्योग सप्ताह मनाया जा रहा है। यह उद्योग भारत का सबसे बड़ा उद्योग है, जिसमें लगभग एक करोड़ से भी अधिक व्यक्ति कार्यरत हैं। भारतीय जनसंघ इसको विकेंद्रित तथा अधिक श्रमिक बल वाला उद्योग मानता है। अत: हम जनता से अनुरोध करते हैं कि वह इस उद्योग की प्रगति में हर प्रकार से योग दे। हथकरघा से बनी वस्तुओं पर किसी भी प्रकार का विक्रय कर या उत्पादन कर नहीं लगाया जाना चाहिए। इसी के साथ बुनकरों को ऋण की भी सुविधा दी जानी चाहिए। आज की नीति के अनुसार उन वस्तुओं के विक्रय के ऊपर छूट कुछ हद तक सहायक बन सकती है। पर इससे वे अपने पैरों पर खड़े नहीं रह सकेंगे।

जनसंघ यह अनुभव करता है कि देश की वर्तमान आर्थिक स्थिति को देखते हुए भारत सरकार की नीति ने मध्यम और ग़रीब वर्ग को अत्यधिक ही कठिनाई में डाल दिया है। मध्यम वर्ग वास्तव में अस्त-व्यस्त हो चुका है और नवीन करों से उसका स्तर और भी गिर जाएगा। केंद्रीय वित्तमंत्री[1] ने अपनी स्थिति के लिए कर जाँच आयोग के कुछ सुझाव स्वीकार किए हैं, जिससे कि वे दबी जनता पर और भी कर लगा सकें। यह किसी भी अधिकारी के लिए उचित नहीं है कि वह सिर्फ नवीन करों को ही लागू करे। भारतीय रेलगाड़ियों के नवीन संगठन में उच्चकोटि के टिकट कर घटाए गए हैं, जबकि निम्न वर्ग

1. चिंतामन द्वारकानाथ देशमुख (1896-1982) भारत के वित्त मंत्री (1950-57) थे।

पर किराया बढ़ाया गया है।

पं. प्रेमनाथ डोगरा के हाल ही के भाषण को कुछ ग़लत ढंग से प्रसारित किया गया है। आपने ऐसा कहा बताया जाता है कि शेख़ अब्दुल्ला से सहयोग किया जा सकता है यदि वह बिना शर्त और पूर्ण रूप से कश्मीर का भारत के साथ विलीनीकरण स्वीकार कर लें। पं. प्रेमनाथ डोगरा और प्रजा परिषद् शेख़ अब्दुल्ला और उसके साथियों के काले कारनामों को सन् 1950 से जानते हैं और उन्होंने उसे प्रगट भी किया है। ऐसी स्थिति में उससे सहयोग कैसे किया जा सकता है? अर्थात् किसी भी स्थिति में उससे सहयोग नहीं किया जा सकता है। हमारा शेख़ से कोई व्यक्तिगत झगड़ा नहीं है, परंतु भारत विरोधी नीति के कारण विरोध है। पं. प्रेमनाथ डोगरा ने ऐसी अनेकों बार घोषणा की है कि जो भारत के साथ पूर्ण विलीनीकरण में बाधक बनेगा, उसे किसी भी स्थिति में स्वीकार नहीं किया जाएगा। यह बड़े दुःख की बात है कि कुछ समय से बख़्शी सरकार भी विलीनीकरण से दूर हटती जा रही है। हम बख़्शी सरकार से इसलिए सहयोग नहीं कर सकते हैं कि वह केवल अब्दुल्ला विरोधी सरकार है। हम यह चाहते हैं कि आंशिक विलीनीकरण की बात का विचार छोड़कर भारत का पूर्णरूपेण संविधान लागू किया जाना चाहिए।

भारत सरकार की वर्तमान नीति से गोवा मुक्ति संग्राम तथा भारत में पुर्तगाली बस्तियों पर बुरा असर पड़ता है। अब गोवा को मुक्त करना आवश्यक हो गया है। भारत सरकार को यह निर्णय करना चाहिए कि अमुक तारीख़ के पश्चात् किसी भी विदेशी राज्य को स्वीकार नहीं किया जाएगा और उसी के अनुसार क़दम उठाया जाना चाहिए।

भारतीय जनसंघ ने इन बस्तियों को मुक्त करने का निर्णय कर लिया है। इस प्रश्न के उत्तर में भारत सरकार के दृष्टिकोण ने समस्या को और भी विकट बना दिया है। जनसंघ की कार्यकारिणी की सभा गोवा में दिनांक 14, 15 अप्रैल, 1955 को होने जा रही है। वहाँ इस दिशा में पग उठाने का निर्णय किया जाएगा। इस प्रश्न पर दक्षिणांचल सम्मेलन में भी विचार किया जाएगा, जो कि 16, 17 अप्रैल को बेलगाम में होने जा रहा है।

जनसंघ संविधान में संशोधन बिल का समर्थन करता है। इस प्रकार की कुछ भिन्न-भिन्न व्यवस्था की जानी चाहिए, जिसमें व्यक्तिगत संपत्ति को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से लिया जाए और सामाजिक एवं आर्थिक समानता के लिए भी विधि बनाई जानी चाहिए। भूमि अधिग्रहण धारा के अंतर्गत इंप्रूवमेंट ट्रस्ट और उसी प्रकार की दूसरी संस्थाओं ने ग़रीब जनता को थोड़ा सा मुआवज़ा देकर संपत्ति हथिया ली है। इस प्रकार की धारा से सामाजिक न्याय असंभव है। इसलिए इसी प्रकार की एक सीमा बना लेनी चाहिए, जिस पर मुआवज़ा समुचित दिया जाए या मुआवज़े के स्थान पर पुनर्वास अनुदान दिया जाए।

—पाञ्चजन्य, अप्रैल 11, 1955

□

38

मुसलिम डीएसपी ने हटाए शिवाजी के चित्र

अतिवर्धित सांप्रदायिकता किस हद तक राष्ट्रीय सम्मान का अवमूल्यन कर सकती है, इसका प्रदर्शन छपरा (बिहार) में किया गया, जब 'देश दर्शन प्रदर्शनी' से छत्रपति शिवाजी के जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण पहलुओं और घटनाओं का चित्रण करने वाले कुछ कलाकृतियों और चित्रों को हटा दिया गया। इस प्रदर्शनी को बिहार प्रांतीय जनसंघ सम्मेलन के अवसर पर आयोजित किया गया था, और शिवाजी के जीवन के तथ्यों और घटनाओं से युक्त चित्रों कलाकृतियों के अलावा ईसा मसीह, बुद्ध, महात्मा गांधी, हजरत मोहम्मद, गुरु गोबिंद सिंह और अन्य महान् लोगों के जीवन के विभिन्न महान पहलुओं का भी प्रतिनिधित्व किया गया था। इस घटना पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

प्रांतीय सम्मेलन के खुले सत्र में कांड

उस पुलिस अधिकारी को इस ढंग से काम करने के लिए प्रोत्साहित किया गया था, जिस ढंग से उसने काम किया, क्योंकि उसे पूरा भरोसा था कि सरकार द्वारा किए जा रहे तुष्टीकरण के सुरक्षातंत्र के तहत, उसे निंदा के बजाय प्रशस्ति प्राप्त होगी। इन (चित्रों और कलाकृतियों) में दरशाया गया था कि अपने समकालीन औरंगज़ेब के विपरीत, शिवाजी ने न केवल मसजिदों को ध्वस्त या अशुद्ध नहीं किया, बल्कि नई

1. अफ़ज़ल खाँ : आदिल शाह सल्तनत (बीजापुर) में सेना के मुखिया। मराठों के साथ हुए प्रतापगढ़ युद्ध (1659) में छत्रपति शिवाजी के हाथों मृत्यु।

मसजिदें भी बनवाईं और उन्हें राजसहायता दी गई तथा जब भी कहीं कुरान उनके हाथ में आई, उन्होंने उसे उसी रेशमी आवरण में लिपटी स्थिति में मुसलिम मत मानने वालों को सौंप दिया। यहाँ तक कि परास्त अफ़ज़ल ख़ान[1] को भी शिवाजी द्वारा उसकी यथेष्ट कब्र बनवाकर सम्मानित किया गया था।

—ऑर्गनाइज़र, अप्रैल 25, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

39

जनसंघ के नेताओं का गुजरात का पहला दौरा

दीनदयालजी ने 2 मई को गुजरात का अपना व्यापक दौरा पूरा किया। अपने दस दिनों के प्रवास के दौरान उन्होंने सूरत, बड़ौदा, अहमदाबाद, जूनागढ़, राजकोट, मोरवी और सिद्धपुर आदि गुजरात के सभी महत्त्वपूर्ण स्थानों का दौरा किया। हर स्थान पर उनका गरमजोशी से स्वागत किया गया। सूरत, बड़ौदा, राजकोट और अहमदाबाद में प्रेस कॉन्फ्रेंसें हुई थीं; पहले तीन शहरों में उन्हें थैली भी भेंट की गई। सभी स्थानों पर उन्होंने एकाधिक जनसभाओं को संबोधित किया और प्रमुख नागरिकों के साथ अनौपचारिक बातचीत की। वापस आने पर उनका वक्तव्य।

जनसंघ को देश के अन्य सभी दलों से अलग पहचान दिलाने वाली चीज़ इसका प्रखर राष्ट्रीय दृष्टिकोण है। अन्य दल राष्ट्रीय समस्याओं को या तो एक अंतरराष्ट्रीय दृष्टिकोण से देखते हैं, या विदेशी आँखों के माध्यम से। जो पार्टी वास्तव में भारत की सेवा करेगी, उसे अपने लोगों की प्रेरणा के असली स्रोत को समझना होगा। दुर्भाग्यवश, डिस्कवरी ऑफ इंडिया के लेखक अभी तक भारत को नहीं खोज सके हैं!

यह राष्ट्रीय दृष्टिकोण एक बार में भाषाई प्रांतों के बारे में, गो-वध पर प्रतिबंध लगाने पर उसकी इच्छा, छोटे उद्योगों के विकास की उसकी ज़िद और देश में सभी विदेशी पॉकेट्स के ख़िलाफ़ उसके सक्रिय आंदोलनों पर जनसंघ की दृष्टि को स्पष्ट करता है। यह (राष्ट्रीय दृष्टिकोण) अखंड भारत में उसके विश्वास की भी व्याख्या

करता है। दूसरी ओर, इस स्पष्ट, निष्कलंक राष्ट्रीय दृष्टिकोण के अभाव ने पंडित नेहरू को ढुलमुल बना दिया है, जिन्हें हमेशा बदलते नारों का सहारा लेना पड़ता है, जैसे कि राष्ट्रमंडल, पंथनिरपेक्ष राज्य, कल्याणकारी राज्य और अब समाज का समाजवादी ढाँचा—जो उनके द्वारा दौरा किए गए पिछले देश के प्रभाव के तहत अपनाया गया या किसी अस्थायी आपद स्थिति से निपटने के लिए अपनाया गया।

सत्तारूढ़ पार्टी अकसर शिकायत करती है—लोग हमें निराश कर रहे हैं। यह मिथ्या आरोप से कम कुछ भी नहीं है। ये वही लोग हैं, जो प्रताप, शिवाजी, लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी के पक्ष में बहादुरी से खड़े रहे थे।

तो फिर लोगों को क्यों बदनाम किया जाता है? तथ्य यह है कि ये नेता हैं, जिन्होंने लोगों को बुरी तरह निराश किया है और उन्हें नीचा दिखाया है।

जनसंघ आज एक मज़बूत विपक्षी दल के रूप में खड़ा है, जिसकी अपनी खुद की एक स्पष्ट रूप से तैयार की गई सकारात्मक विचारधारा है। कांग्रेस ने आजकल सभी विपक्षी दलों के विरुद्ध ऊपर से देखने में बहुत अच्छा लगने वाला एक तर्क पेश किया है कि सभी राष्ट्र विरोधी प्रवृत्तियों और गतिविधियों के ख़िलाफ़ नेहरू के हाथ मज़बूत किए जाएँ। यह उस विपक्ष के लिए सही है, जिसके अपने अस्तित्व का श्रेय देश के बाहर की निष्ठाओं को जाता है और जो एक राष्ट्रविरोधी विचारधारा से प्रेरणा प्राप्त करता है। लेकिन जिस विपक्ष की आत्मा भारतीय है, वह लोकतंत्र की ताक़त है। इस तरह का विपक्ष, जब वह वास्तव में सत्ता पर क़ाबिज नहीं होता है, तो वह सरकार को सदा सतर्क रहने में मदद करता है, और यहाँ तक कि बाध्य करता है, और अनंत सतर्कता की क़ीमत स्वतंत्रता होती है। जनसंघ राष्ट्र के प्रति अपना कर्तव्य निर्वहन करने के लिए और सरकार से उसका कर्तव्य निर्वहन कराने के लिए सन्नद्ध है।

—ऑर्गनाइज़र, मई 9, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

40

कृषि उत्पादों की गिरती क़ीमतें थामने के लिए जनसंघ के सुझाव

22 मई, 1955 को जयपुर में प्रेस कॉन्फ्रेंस।

यह बेहूदा बात है कि पुर्तगाली हमारी ही धरती पर, हमारी आँखों के सामने हमारे लोगों पर अत्याचार करें। गोवा की मुक्ति में भारतीयों की भागीदारी पर सरकारी प्रतिबंध व्यर्थ है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पुर्तगाली बात करने के लिए भी तैयार नहीं हैं, उन्होंने कहा कि गोवा में पुलिस कार्रवाई किया जाना स्पष्टतः उचित है।

संविधान सभा द्वारा जम्मू-कश्मीर के अधिमिलन की विधिवत् पुष्टि किए जाने के बाद भारत-पाकिस्तान वार्त्ता में कश्मीर मुद्दे को फिर से उठाना ग़लत था। पाकिस्तान द्वारा अवैध रूप से क़ब्ज़ा किए गए क्षेत्र को पुनः प्राप्त करने के तरीक़े और मार्ग निकाले जाने चाहिए।

पाकिस्तान के गवर्नर जनरल और प्रधानमंत्री के अनुकूल बयानों का स्वागत

नेकोवाल[1] की गंभीर घटना और पूर्वी बंगाल[2] से हिंदुओं का भारी संख्या में जारी

1. 7 मई, 1955 को पाकिस्तान ने संघर्ष विराम का उल्लंघन करते हुए नेकोवाल (जम्मू व पाक अधिकृत कश्मीर सीमा पर स्थित भारतीय गाँव) में भीषण गोलीबारी की। इस घटना में 6 भारतीय सैनिक शहीद हो गए थे तथा 6 भारतीय नागरिक और पाकिस्तानी बॉर्डर पुलिस के 2 सदस्य भी मारे गए थे।
2. बंगाल विभाजन के बाद पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) में भीषण दंगे और हिंदुओं पर हुए अत्याचार को देखते हुए वहाँ की ज़्यादातर हिंदू जनसंख्या पूर्वी बंगाल छोड़ने पर मजबूर हुई। 1950 के दशक में 15 लाख शरणार्थियों ने प. बंगाल में प्रवेश किया, भारतीय जनगणना 1951 के अनुसार कोलकाता की आबादी का 27 प्रतिशत हिस्सा शरणार्थियों का था।

पलायन दरशाता है कि पाकिस्तान की कथनी और करनी में अंतर है।

राजस्थान में वनस्पति तेलों के आयात से हाल ही में प्रतिबंध हटाए जाने से न केवल घी उद्योग को नुक़सान होगा, बल्कि जनता का स्वास्थ्य भी प्रभावित होगा। उन्होंने कहा कि कलकत्ता और बंबई को मवेशियों के खुले निर्यात ने गोहत्या पर प्रतिबंध को निष्प्रभावी बना दिया है। उन्होंने इन मामलों में सुधारात्मक कार्रवाई का आग्रह किया।

कृषि उत्पादों की क़ीमतों में भारी गिरावट

इसके साथ-साथ कृषि वर्गों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली निर्मित वस्तुओं की क़ीमतों में कोई गिरावट नहीं हुई है। ग्रामीण ऋणग्रस्तता, जो युद्ध के समय और युद्ध के बाद कृषि उत्पादों की क़ीमतों के कारण लगभग समाप्त हो गई थी, अब इसमें फिर वृद्धि की प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। भूमि, और यहाँ तक कि घर भी बढ़ती हुई संख्या में गिरवी रखे जा रहे हैं।

इस स्थिति का सामना करने के लिए एक तीन सूत्री कार्यक्रम है। सभी कृषि उत्पादों के लिए न्यूनतम मूल्य सरकार द्वारा तय किए जाने चाहिए। दूसरे, ग्रामीण ऋण सुविधाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। मोटे कपड़े, मिट्टी का तेल, सीमेंट और स्टील जैसी ग्रामीण आवश्यकता की वस्तुएँ सरकार द्वारा निर्धारित उचित क़ीमतों पर किसानों को उपलब्ध कराई जानी चाहिए।

—ऑर्गनाइज़र, मई 30, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

☐

41

कश्मीर समस्या का हल जनमत संग्रह नहीं

कश्मीर के प्रश्न पर गत मई में भारत और पाकिस्तान के प्रधानमंत्रियों के बीच जो वार्त्ता हुई, वह अभी तक प्रगट नहीं हुई है। पाक प्रधानमंत्री श्री मुहम्मद अली के दिल्ली से रवाना होने के पूर्व जो दोनों प्रधानमंत्रियों की ओर से संयुक्त वक्तव्य निकला था, उसमें इतना ही कहा गया था कि वार्त्ता अत्यंत सद्भावनापूर्ण रही तथा अगली बैठक में इसे फिर जारी रखा जाएगा। श्री मुहम्मद अली ने स्वयं वार्त्ता पर संतोष व्यक्त किया था और कहा था कि वे समझौते के बहुत निकट आ गए हैं।

पाक द्वारा समझौते का उल्लंघन

जिस 'बांडुंग-भावना' से यह वार्त्ता हुई बतलाई जाती है तथा जिस प्रकार इसकी कार्रवाई को पूर्णतया गुप्त रखा गया, उसकी माँग थी कि जब तक पुनः वार्त्ता न होकर अंतिम निर्णय हो जाए, किसी भी ओर से इस संबंध में कोई प्रतिक्रिया न व्यक्त की जाए। जहाँ तक भारत का संबंध है, उसने इस शिष्टाचार का पालन किया है। किंतु न मालूम क्यों, पाक-प्रधानमंत्री इस विषय में मौन रहना उचित नहीं समझते। वार्त्ता के कुछ ही दिनों बाद 26 मई को कराची के एक प्रेस सम्मेलन में बताया कि कश्मीर के भविष्य का निर्णय वहाँ की जनता की इच्छा के अनुसार होना चाहिए। इस पर भारत और पाकिस्तान दोनों एक मत हैं।

उन्होंने यह भी संकेत दिया कि 'जनमत-संग्रह का तरीक़ा चुनाव भी हो सकता है।' स्पष्ट है कि चुनाव की पद्धति अपनाने से जनमत-संग्रह प्रशासक, अंतरिम शासन-व्यवस्था, सेना की संख्या आदि अनेक प्रश्न समाप्त हो जाते हैं। श्री अली के इस वक्तव्य से लोगों ने अनुमान लगाया कि जनमत-संग्रह के अतिरिक्त भी जनता की राय

जानने के जो मार्ग हैं और जिनमें किसी अंतरराष्ट्रीय शक्ति को टाँग अड़ाने की आवश्यकता नहीं रह जाती, उन पर पाक प्रधानमंत्री राजी हैं।

पाक प्रधानमंत्री के ग़लत वक्तव्य

उपर्युक्त वक्तव्य के पश्चात् श्री मुहम्मद अली ने कश्मीर के संबंध में कराची से 1 जून को रेडियो से भाषण देते समय तथा 18 जून को दमदम हवाई अड्डे पर भी कुछ विचार प्रगट किए। उनसे मालूम होता है कि वे अपना क़दम पीछे हटा रहे हैं। 1 जून को उन्होंने घोषणा की कि यदि आगामी वार्त्ता में समझौता न हुआ तो पाकिस्तान कश्मीर के प्रश्न को पुनः सुरक्षा परिषद् में ले जाएगा तथा संधि-वार्त्ता के अध्याय को बंद कर देगा। उन्होंने यह भी कहा कि पाकिस्तान कश्मीर में जनमत संग्रह संबंधी अपनी नीति पर अविचल है। 18 जून के वक्तव्य में वे और भी आगे बढ़ गए और उन्होंने कहा कि हमारे बीच तीन मुख्य प्रश्नों पर मतभेद बना हुआ है—1. जनमत गणन प्रबंधक की नियुक्ति, 2. मत-गणना के समय के प्रशासन की रूपरेखा तथा 3. जम्मू और कश्मीर के सैनिकों की संख्या। यदि इन तीन प्रश्नों पर मतभेद बना हुआ है तो कहा जा सकता है कि कश्मीर प्रश्न पर भारत और पाकिस्तान वहीं हैं, जहाँ वे सन् 1951 में या उसके पूर्व थे।

दिल्ली में हुई वार्त्ता और बाद के पाकिस्तान के रवैये से पता चलता है कि मुहम्मद अली धीरे-धीरे अपना रुख़ बदल रहे हैं। नेकोवाल कांड, उस पर संयुक्त राष्ट्र प्रेक्षकों की रिपोर्ट, जिसमें पाकिस्तान को दोषी ठहराया गया, पाकिस्तान के प्रधानमंत्री द्वारा दिल्ली में खेद प्रकाशन किंतु सब पाक पत्रों में इस कांड पर भारत के विरुद्ध प्रचार तथा हरजाने के संबंध में मौन भी इस बदलते हुए रुख का परिचायक है।

भारत की स्थिति

जहाँ तक भारत का प्रश्न है, उसकी कश्मीर के संबंध में नीति स्पष्ट है। कश्मीर भारत का अंग है तथा वैधानिक दृष्टि से उसका भारत में विलयन हो चुका है। पाकिस्तान आक्रमणकारी है। उसका मुक़ाबला होना चाहिए। भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा और उसका स्वाभिमान यही माँग करता है कि संपूर्ण कश्मीर को पाक के पाशवी पंजों से मुक्त किया जाए। किंतु हमारे प्रधानमंत्री ने राष्ट्रीयता के स्थान पर अंतरराष्ट्रीयता एवं राष्ट्र के सम्मान के स्थान पर शांति को अधिक महत्त्व दिया और इसलिए कश्मीर में युद्ध विराम स्वीकार कर समझौते का प्रयत्न कर रहे हैं। किंतु पाकिस्तान कश्मीर में उनके इन दोनों सिद्धांतों की भी हत्या करना चाहता है। इसलिए वास्तव में अभी तक समझौता नहीं हो पा रहा है।

पाक गवर्नर जनरल का हाथ

जानकार सूत्रों का कहना है कि पाकिस्तान के गवर्नर जनरल श्री ग़ुलाम मुहम्मद समझौते के बहुत अधिक इच्छुक हैं, किंतु मुहम्मद अली कुछ ढीले हैं। कहा जाता है कि दोनों प्रधानमंत्रियों की वार्त्ता के समय अस्वस्थ होने के कारण यद्यपि श्री ग़ुलाम मुहम्मद दिल्ली नहीं आ सके किंतु वे प्रतिदिन पत्र भेजते रहे और समझौते के लिए श्री अली पर दबाव भी डालते रहे। वर्तमान प्रशासनिक स्थिति में ही चुनाव कराके तथा युद्ध विराम रेखा में कुछ हेर-फेर करके जनता की राय जानने का शिष्टाचार पूर्ण कर लिया जाए, इस प्रकार का कुछ समझौता हुआ भी, किंतु एक दिन वार्त्ता आगे बढ़ाने पर भी वह निर्णायक नहीं हो पाया।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत के राष्ट्रीय तत्त्व कश्मीर के भारत-मिलन के प्रश्न को पुनः उखाड़ने के लिए बिल्कुल विरुद्ध हैं। नेकोवाल कांड के पश्चात् वार्त्ता करना तो उनकी दृष्टि से और भी अप्रतिष्ठाजनक है, साथ ही नेहरूजी के इस प्रकार कश्मीर बँटवारे के समझौते को वे मान नहीं सकते। आज की जागतिक परिस्थिति में कश्मीर का प्रश्न किसी भी तीसरी शक्ति के हाथों नहीं छोड़ा जा सकता।

रुख़ परिवर्तन का कारण

पाकिस्तान के रुख़ परिवर्तन का कारण—1. क्रमशः नरम और गरम बोलकर आगे बढ़ने वाली उसकी पुरानी नीति, 2. श्री मुहम्मद अली और श्री ग़ुलाम मुहम्मद के पारस्परिक मतभेद, 3. पाक-संविधान सभा के चुनाव अथवा 4. अंतरराष्ट्रीय शक्तियों का षड्यंत्र इनमें से कोई एक या अधिक या सब हो सकते हैं। जहाँ तक पाकिस्तान के आंतरिक झगड़ों का संबंध है, हम कुछ नहीं कहेंगे किंतु यह भी सत्य है कि कश्मीर को लोग अंतरराष्ट्रीय राजनीति का अखाड़ा भी बनाना चाहते हैं। पाक-अमेरिकी सैनिक समझौते ने इस संभावनाओं को और भी बढ़ा दिया है इसलिए कश्मीर समस्या की पृष्ठभूमि पंडित नेहरू के अनुसार बदल गई है। आज जनमत गणना प्रबंधक नियुक्त करके यदि वहाँ किसी तीसरी शक्ति को दख़ल देने का मौक़ा दिया जाता है तो स्वाभाविक है कि बाक़ी शक्तियाँ तटस्थ नहीं रहेंगी। न कश्मीर की प्रशासनिक व्यवस्था में बदल करके वहाँ की जनता के मन में अनिश्चितता पैदा की जा सकती है। सेना में कमी करने का अर्थ होगा, कश्मीर को उस स्थिति में छोड़ देना, जिसमें वह पाक-आक्रमण के पूर्व था। ये तीनों बातें संभव नहीं। आज जब फारमोसा, हिंदचीन, बर्लिन का घेरा आदि छोटे-छोटे प्रश्नों पर तीसरे युद्ध की संभावना बढ़ जाती है, उस दशा में कश्मीर को खुला छोड़ देना तथा वहाँ की जनता के आत्म-निर्णय के नाम पर विश्वशक्तियों को खुलकर खेलने की छूट देना, निश्चित ही तीसरे युद्ध की ज्वाला को प्रज्वलित करना

होगा। आज तो ऐसा लगता है कि पाकिस्तान का भी रुख कश्मीर पर राष्ट्रीय नहीं तो अमरीकी अधिक है और सोवियत या यह अमरीका है, जो मुहम्मद अली के मुँह से उन शब्दों को कहलवा रहा है, जिससे उसे दाल-भात में मूसलचंद बनने का अवसर मिले। ऐसा नहीं हो सकेगा, यह कहने की आवश्यकता नहीं। कारण, यह न तो भारत की राष्ट्रीयता को ही सुहाता है और न पंडित नेहरू की अंतरराष्ट्रीय नीति के साथ ही मेल खाता है।

—पाञ्चजन्य, जून 27, 1955

□

42

राष्ट्रीय जनतंत्र के उद्‌गाता डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी

6 जुलाई को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जन्म दिवस के अवसर पर दीनदयालजी का आलेख। यह लेख सर्वप्रथम ऑर्गनाइज़र में 20 जून, 1955 को प्रकाशित हुआ। फिर पाञ्चजन्य में इसका अनुवाद प्रकाशित हुआ।

यह संयोग की बात नहीं कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु कश्मीर में भारतीय अखंडता की रक्षा करते हुए नज़रबंदी की अवस्था में हुई। उनका बलिदान उन दोनों सिद्धांतों की रक्षा के लिए हुआ, जो उनके जीवन-कार्य में ताने-बाने के रूप में दिखाई देते हैं। वे सिद्धांत हैं—'राष्ट्रीयता और लोकतंत्र'। कश्मीर का आंदोलन केवल राष्ट्रीयता के आधार, भारत की एकता की रक्षा के लिए ही नहीं अपितु लोकतंत्र की आत्मा, नागरिक अधिकारों की रक्षा के लिए भी था। उनके बलिदान ने स्पष्ट करा दिया कि भारत में नागरिकों के मौलिक अधिकार कितने सुरक्षित हैं। जहाँ संसद् में विरोधी दल के नेता को भी नज़रबंद किया जा सकता हो तथा जेलख़ाने में उनकी मृत्यु होने पर भी जाँच न की जाए, वहाँ नागरिक अधिकार केवल संविधान की शोभा की वस्तु मात्र रह जाते हैं।

डॉ. मुखर्जी की जहाँ राष्ट्र की एकता में अटूट श्रद्धा थी, वहाँ वे लोकतंत्र के भी अनन्य पुजारी थे। उनका मत था कि भारत का ही नहीं अपितु विश्व का भविष्य लोकतंत्र के ही द्वारा सुरक्षित रह सकता है तथा विश्व की अधिनायकवादी प्रवृत्तियों को वे मानवता के लिए सबसे बड़े संकट का कारण समझते थे। जब संसद् में पंडित

जवाहरलाल नेहरू ने उन्हें कुचलने की धमकी दी तो उन्होंने प्रत्युत्तर दिया कि वे इस कुचलने वाली मनोवृत्ति को ही कुचलना चाहते हैं, "I want to crush the crushing mentality." यह उनकी केवल हाज़िरजवाबी नहीं, बल्कि उनके जीवन की श्रद्धा का प्रगटीकरण है। कुचलने की मनोवृत्ति अधिनायकवाद का मूल है। यदि यह भाव बढ़ा तो जनतंत्र चुनावों का ढकोसला मात्र रह जाएगा। आत्मा के नष्ट होने पर बाह्य आवरण से क्या लाभ?

प्रजा परिषद् की माँगों का समर्थन भी उन्होंने केवल राष्ट्रीय आधार पर नहीं अपितु जनतंत्रीय आधार पर भी किया। वे बारंबार आग्रह करते रहे कि एक बार पंडित नेहरू प्रजा परिषद् के नेताओं को बुलाकर उनके दृष्टिकोण को समझने का प्रयत्न करें। किंतु नेहरूजी तो बात करने को भी तैयार नहीं थे। जिस राज्य का प्रधानमंत्री एक नागरिक से और वह भी जिसके पीछे प्रबल जनमत हो, बात करने से इनकार कर दे, कैसे जनतंत्रीय कहा जा सकता है?

जम्मू के शहीदों की अस्थियों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने पर प्रतिबंध लगाने पर जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी, बैरिस्टर निर्मलचंद्र चटर्जी और श्री नंदलाल शास्त्री बंदी बनाए जा चुके थे, तब मैं एक दिन जेल में डॉ. मुखर्जी से मिलने गया। उन्हें क़ानून के अनुसार चौबीस घंटे के अंदर मजिस्ट्रेट के सम्मुख उपस्थित नहीं किया गया था। उन्होंने कहा, "सुप्रीम कोर्ट में व्यक्ति स्वातंत्र्य का आवेदन-पत्र देना चाहिए। मेरे सम्मुख कश्मीर का प्रश्न प्रमुख था।" अत: मैंने कहा कि अब तो सत्याग्रह छिड़ गया है, आपका स्थान जेल में है, बाहर नहीं। "जेल तो हमारे लिए रिज़र्व है ही", वे बोले, "किंतु हम यह ग़ैर क़ानूनी धाँधली नहीं चलने देंगे। भारत के नागरिक अधिकारों का मूल्य है। कश्मीर की रक्षा उनके साथ ही होगी।" मुझे उनकी बात माननी पड़ी और उस दिन से हमारे सत्याग्रह के दो पक्ष हो गए। सरकार के लगाए प्रतिबंधों को तोड़ना तथा कचहरी में न्याय के लिए लड़ना। अर्थात् हमारी मंशा जेल भरना नहीं बल्कि सरकार के अन्याय और अधिनायकवादी मनोवृत्ति का परदाफ़ाश करते हुए कश्मीर के प्रश्न की वास्तविकता की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट करना था।

उनका जनतंत्रीय पद्धति में अमिट विश्वास होने के कारण ही वे संसद् में अग्रणी हो गए। उनके लिए संसद् की सदस्यता रुपया या नाम कमाने की चीज़ नहीं बल्कि अपने जीवन की श्रद्धा की अनुभूति का एक साधन थी। संसद् लोकतंत्र की आधारभूत संस्था है और इसलिए वे संसद् में कभी अनमने ढंग से नहीं गए। संसद् के प्रत्येक कार्य को उन्होंने महत्त्व दिया और भारी अल्पमत में होते हुए भी हर विषय पर अपने मत का बलपूर्वक प्रतिपादन किया। यद्यपि किसी भी विषय पर आशु वक्तृत्व उनके लिए संभव था, किंतु वे संसद् में सदैव तैयारी करके आते थे। मुझे मालूम है कि कभी-कभी तो उनकी यह

तैयारी महीनों पहले से होती रहती थी तथा कई बार तो विदेशी राजनीतिज्ञों के मत भी वे इस दृष्टि से पत्र लिखकर मँगवाते थे। साथ ही संसद् में एक भी शब्द उन्होंने निराधार नहीं बोला। शेख़ अब्दुल्ला की शिक्षा नीति के संबंध में जब उन्हें बताया गया तो उन्होंने उसके प्रमाण माँगे और जब तक कश्मीर की पाठशालाओं की पाठ्य-पुस्तकें उनके हाथ में नहीं आ गईं उन्होंने एक शब्द भी इस विषय पर नहीं बोला। उन्होंने सदैव ही संसद् का मान किया और इसलिए संसद् ने भी उन्हें जीवन में बहुत बड़ा मान दिया। वे राष्ट्रमंडल में विंस्टन चर्चिल के जोड़ के संसद्ीय वक्ता समझे जाते थे।

संसद् में वैसे तो वे सदैव ही प्रभावी रहे किंतु वहाँ भी जब कभी किसी राष्ट्रीय महत्त्व अथवा जनतंत्रीय अधिकारों के रक्षण के प्रश्न पर बोले तो वे अपने श्रेष्ठ रूप में प्रगट हुए। उनके एतद्विषयक भाषण अत्यंत ही ओजस्वी होते थे। 'निवारक नज़रबंदी अधिनियम' तथा प्रेस ऐक्ट पर उनका भाषण संसदीय इतिहास में अमर रहेगा। पूर्वी बंगाल के हिंदुओं की स्थिति पर अथवा कश्मीर के प्रश्न पर उनका भाषण ऐसा लगता था, मानो एक-एक शब्द उनके अंतर को भेदकर निकलता था।

जीवन की इन दोनों श्रद्धाओं पर जब आघात हुआ तो उनकी रक्षा के लिए वे खड़े हो गए और अपना बलिदान देकर भारत की एकता और नागरिक अधिकारों की महत्ता की ओर संपूर्ण देश का ध्यान आकृष्ट किया। हम उनका पुण्य स्मरण इन दोनों सिद्धांतों को बल प्रदान करके ही कर सकते हैं। उनके जीवन का अधूरा कार्य तभी पूरा होगा, जब देश में विशुद्ध राष्ट्रीय आधार पर लोकतंत्रीय जीवन पद्धति में अमिट विश्वास लेकर एक सुदृढ संगठन का निर्माण होगा। आज भी इन सिद्धांतों की कितनी आवश्यकता है, यह बताने की आवश्यकता नहीं।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 4, 1955

□

43

नेहरूजी की रूस यात्रा

'विचार-वीथी' पाञ्चजन्य में दीनदयालजी का एक साप्ताहिक स्तंभ था। यह सामान्यतः ऑर्गनाइज़र की Weekly Diary स्तंभ के समान है, कभी-कभी अनुवाद भी। ये दोनों स्तंभ उन्होंने 'पराशर' नाम से लिखे।

पं. जवाहरलाल नेहरू का सोवियत रूस का दौरा समाप्त हो चुका है। रूस में वे जहाँ-जहाँ गए, उनका भव्य स्वागत हुआ। आधिकारिक तौर पर ही नहीं, जनता ने भी इस स्वागत समारंभ में उत्साह से भाग लिया। उनके इस स्वागत पर प्रत्येक भारतीय का हर्षित होना स्वाभाविक है, क्योंकि पं. नेहरू भारत के प्रधानमंत्री के रूप में देश के प्रतिनिधि बनकर रूस एवं पूर्वी यूरोप के दौरे पर गए हैं। उनका स्वागत भारत का स्वागत है।

रूस का दौरा समाप्त करने पर भारत और सोवियत रूस के प्रधानमंत्रियों ने एक संयुक्त घोषणा-पत्र पर भी हस्ताक्षर किए हैं, जिसमें पंचशील के सिद्धांतों[1] को स्वीकार किया गया तथा विश्व की कुछ वर्तमान समस्याओं पर भी मत प्रगट किया गया है। फारमोसा पर चीन के अधिकार को स्वीकार कर उसे चीन को दिलाने, चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश

---

1. 23 जून, 1955 ई. को जवाहरलाल नेहरू की सोवियत संघ की राजकीय यात्रा की समाप्ति पर प्रकाशित संयुक्त विज्ञप्ति में पंचशील के पाँच सिद्धांतों को दोनों देशों के मध्य मैत्री का मूल आधार स्वीकार किया गया था :
(1) एक-दूसरे की अखंडता और प्रभुसत्ता का सम्मान
(2) परस्पर अनाक्रमण
(3) आंतरिक विषयों में अहस्तक्षेप
(4) समानता और परस्पर लाभकारी संबंध
(5) शांतिपूर्ण सहअस्तित्व।

देने तथा अन्य राष्ट्रों को भी संयुक्त राष्ट्र संघ की सदस्यता देने का प्रस्ताव किया गया। जिनेवा समझौते[2] को पूरी तरह कार्यांवित करने तथा नि:शस्त्रीकरण की भी चर्चा की गई है। घोषणा-पत्र में प्रगट विचार नए नहीं हैं। पंचशील के सिद्धांतों की घोषणा भारत इसके पूर्व चीन; यूगोस्लाविया तथा कंबोडिया के साथ कर चुका है। रूस ने भी इस प्रकार का एक समझौता यूगोस्लाविया के साथ किया। फिर भी रूस द्वारा स्पष्ट रूप से इन सिद्धांतों की घोषणा तथा किसी दूसरे राज्य के मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत के साथ राजनीतिक, आर्थिक अथवा सैद्धांतिक कारणों को जोड़ देना साम्यवाद के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण नीति-परिवर्तन का द्योतक है। पूँजीवाद और साम्यवाद के सहअस्तित्व की ओर स्टालिन[3] ने भी संकेत किया, किंतु उसकी ओर से इसका कोई प्रमाण नहीं मिला था कि रूस जो कुछ कहता है, उस पर विश्वास भी रखता है। आज भी पंचशील के सिद्धांतों की घोषणा करने के उपरांत रूस ने 'कॉमिनफॉर्म' को भंग करने का कोई निश्चय प्रगट नहीं किया है। इतना ही नहीं, तो कम्युनिस्ट पार्टी के प्रथम सेक्रेटरी श्री ख्रुश्चेव ने तो रूस से ही एक प्रकार का आदेश जारी कर दिया कि भारत के कम्युनिस्ट नेहरू सरकार का साथ दें। क्या यह आदेश हस्तक्षेप नहीं है। आज जो सरकार का साथ देने का आदेश दे सकता है, वह कल विरोध करने का भी आदेश दे सकेगा। कथनी को करनी से सिद्ध करना होगा।

विश्व की समस्याओं के संबंध में रूस जिन-जिन प्रश्नों पर दिलचस्पी रखता था, उन पर उसने नेहरूजी से हस्ताक्षर करवा लिए। ऐसे भी प्रश्न हैं, जिनमें नेहरूजी को दिलचस्पी हो सकती है किंतु उनका जिक्र नहीं किया गया। इस दृष्टि से गोवा का ज़िक्र न होना हमें खलता है। फारमोसा की चर्चा हो सकती है, चीन को संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश मिले, इसकी घोषणा हो सकती है किंतु रंगभेद समाप्त हो, गोवा भारत में मिले, इन प्रश्नों का ज़िक्र नहीं होता। इसे हम किसकी विजय कहें, नेहरूजी की या बुल्गानिन[4] की।

शांति क्षेत्र के विस्तार की बात भी कही जाती है। रूस ने शांति की घोषणा बहुत दिनों से की है। आइजनहावर[5] भी शांति की घोषणा कर चुके हैं। आज लड़ाई की बात

---

2. द्वितीय विश्वयुद्ध पश्चात् युद्धकालीन बंदियों (नागरिक व सैन्य) के मनवाधिकारों की रक्षा और युद्धक्षेत्र में आसपास के नागरिकों व घायलों की सुरक्षा स्थापना हेतु जिनेवा (स्विट्ज़रलैंड) में 1949 में समझौता हुआ था।
3. जोसेफ़ स्टालिन (1878-1953) ने मास्को में हुई पंद्रहवीं सी.पी.एस.यू. की कांग्रेस के 'केंद्रीय समिति की राजनीतिक रिपोर्ट' (1954) में पूँजीवादी देशों के साथ शांतिपूर्ण संबंधों के रख-रखाव को अनिवार्य बताते हुए कहा है, 'दो विपरीत प्रणालियों का सह-अस्तित्व संभव है।' स्टालिन ने इससे पहले 2 अप्रैल, 1952 को प्रावदा में अमरीकी संपादकों के सवालों के जवाब में दोनों विचारों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के साथ अन्य राज्यों के आंतरिक मामलों में समानता और ग़ैर-हस्तक्षेप के सिद्धांत का प्रतिपालन तथा सहयोग करने की इच्छा पर बल दिया था।
4. निकोलाय बुल्गानिन (1895-1975), सोवियत संघ के प्रमुख (1955-58) थे।
5. ड्वाइट डेविड आइज़नहावर (1890-1969) संयुक्त राज्य अमरीका के 34वें राष्ट्रपति (1953-61) थे।

कोई नहीं करता, किंतु काम सब लड़ाई के लिए किए जा रहे हैं। रूस ने इन विषयों में भी अपनी प्रामाणिकता का कोई परिचय नहीं दिया। आस्ट्रिया के साथ शांति संधि, फारस को सोना लौटाना आदि कुछ उदाहरण अवश्य उपस्थित किए जा सकते हैं, किंतु ये अपर्याप्त हैं। जर्मन एकता का प्रश्न अभी बाक़ी है, पूर्वी एशिया में अभी शांति नहीं, पूर्वी यूरोप के देश अभी स्वतंत्र नहीं, कोरिया एक नहीं हुआ। ये सब बातें हैं, जिन पर रूस की प्रामाणिकता को कसना होगा। होने वाली पाँच बड़ों की बैठक में भी रूस के दृष्टिकोण का पता चल जाएगा।

हमारी नीति किसी गुट में मिलने की नहीं है। किंतु हमने रूस और उसके साथी देशों के साथ मेलजोल बढ़ाया है। यह सत्य है कि हमने अपने आपको किसी सैनिक गठबंधन में नहीं बाँधा, किंतु अनेक प्रश्नों पर मतैक्य प्रगट करके हमने लोगों के मन में संदेह उपस्थित करने का अवसर अवश्य दिया है। संभव है, इसके लिए अमरीका भी बहुत अंशों में ज़िम्मेदार हो, जिसने पाकिस्तान के साथ सैनिक समझौता करके हमारी सुरक्षा को ख़तरे में डाल दिया।

नेहरू-बुल्गानिन घोषणा का व्यावहारिक लाभ अभी देखना है। हाँ, इससे उन लोगों के हाथ अवश्य कमज़ोर हो जाएँगे, जो अंतरराष्ट्रीय साम्यवाद के संकट का सामना करने के लिए सब प्रकार के शस्त्र-संग्रह और युद्ध की तैयारी की बात करते हैं। किंतु यह भी तब संभव होगा, जब कॉमिनफॉर्म को भंग कर दिया जाए तथा सोवियत रूस अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में अधिक सहयोग का रुख धारण करें। अमरीका को भी अपनी असंयमित एवं मगरूरी भाषा को छोड़कर विश्व-जनमत का आदर करना होगा, अन्यथा उसका जनतंत्र का दावा केवल ढकोसला रह जाएगा।

नहरी पानी समझौता

भारत और पाकिस्तान के बीच बहुत दिनों से चल रहे नहरी पानी विवाद पर एक अंतरिम समझौता हो गया है, जिसके अनुसार भारत पाकिस्तान को यथापूर्व पानी देता रहेगा। पश्चिम पंजाब की तीनों नदियों—सिंधु, झेलम, चिनाब के पानी पर पूर्णत: पाकिस्तान का अधिकार रहेगा तथा पूरब की तीनों नदियों—सतलुज, ब्यास और रावी के पानी पर भारत का अधिकार रहेगा, किंतु जब तक पाकिस्तान अपने यहाँ की योजनाओं को पूर्ण नहीं कर लेता, हम उसे बार-बार पानी देते जाएँगे। साथ ही पाकिस्तान की योजनाओं के लिए भारत की ओर से 60 करोड़ रुपया देना भी तय हुआ है। यह रुपया देने के पश्चात् जब पाकिस्तान की मारेलीलिंक योजना पूर्ण हो जाएगी, तब कहीं भाखड़ा की नहरों में हम पानी ले सकेंगे। भाखड़ा नहरों पर हमने 42 करोड़ रुपया ख़र्च किया है तथा उन पर संपूर्ण पूर्वी पंजाब का उत्पादन, पश्चिमी पंजाब के विस्थापितों का पुनर्वास निर्भर है। साल भर हो गया कि नहरें खुद गई हैं किंतु पानी के दर्शन नहीं, कारण हमारी सरकार

पहले मसजिद में दीया जलाकर फिर घर में दीया जलाने में विश्वास रखती है। उपर्युक्त समझौते के अनुसार भी अगली रबी की फ़सल के लिए हमें पानी मिल सकेगा, कहा नहीं जा सकता। हाँ, हमारे 60 करोड़ रुपए अवश्य चले जाएँगे। इस प्रकार भाखड़ा का पानी हमें कितना महँगा पड़ेगा। जितने की टाँट नहीं, उतनी तो मुड़ाई पड़ रही है।

विद्यार्थी और अनुशासन

रात के एक बजे नीचे सड़क पर कुछ शोर सुनाई दिया, आँख खुल गई। देखा कि 20-25 विद्यार्थियों का एक गिरोह नारे लगाता जा रहा है। 'नारा' शब्द ठीक नहीं होगा, 'होली के कबीर' उपयुक्त रहेगा। पार्सल बाबू का नाम लेकर उसके माँ-बाप का उद्धार किया जा रहा था। ये थे वे विद्यार्थी, जो हाईस्कूल का परीक्षाफल जानने के लिए पार्सल बाबू के पास अख़बार लेने के लिए गए, अख़बार न मिलने पर अपना रोष सार्वजनिक रीति से प्रगट कर रहे थे। यह लखनऊ है।

एक दूसरा चित्र भी है। वह बांदा का है। वहाँ के ज़िलाधीश ने पहले से पता लगाकर परीक्षाफल के वितरण का प्रबंध किया। स्टेशन के बाहर मैदान में सभी विद्यार्थियों के एकत्र होने का प्रबंध किया गया, रोशनी का समुचित प्रबंध था। ध्वनिवर्धक लगाकर उस पर संगीत का कार्यक्रम हो रहा था। ज़िलाधीश महोदय ने अपील की कि विद्यार्थी दस या बारह के गुट बना लें तथा अपना एक मुखिया चुनकर उसे दे दें। अख़बारों की आवश्यक संख्या उसे दे दी जाएगी। परिणाम घोषित होने के बाद ज़िलाधीश ने सफल विद्यार्थियों को बधाई तथा असफल छात्रों के प्रति संवेदना प्रगट कर उनको सांत्वना देने के कर्तव्य का भी निर्वाह किया।

उपर्युक्त दो चित्र अनुशासन पर कुछ प्रकाश डालते हैं। पहले में अनुशासनहीनता है तो दूसरे में पूर्ण अनुशासन, किंतु इसकी ज़िम्मेदारी किस पर है? आजकल अनुशासन के विषय में विद्यार्थियों को दोष देने एवं उपदेश देने की प्रथा सी पड़ गई है। मैं समझता हूँ कि इस विषय पर विद्यार्थियों को कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं। अनावश्यकता अव्यवस्था की है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं में बहुत से विद्यार्थी आते हैं और वे अनुशासन का आदर्श स्वरूप प्रस्तुत करते हैं। किंतु वे ही विद्यार्थी अन्यत्र अनुशासनहीनता का परिचय देते हैं। क्यों? एक जगह व्यवस्था है तथा दूसरी जगह अव्यवस्था।

यदि हमारे अधिकारी अधिक कल्पनाशील हों तथा वे विद्यार्थियों की स्वाभाविक भावनाओं को समझकर उनके सही रूप में तुष्टीकरण की व्यवस्था करें तो अवश्य ही अनुशासन की स्थिति उत्पन्न होगी।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 4, 1955

□

44

गोवा मुक्ति यज्ञ में जनसंघ की आहुतियाँ, शहीदों के प्रति श्रद्धांजलियाँ : पुर्तगाली अत्याचारों के विरुद्ध प्रदर्शन*

पुर्तगाली शासन के बर्बर अत्याचारों के परिणामस्वरूप अखिल भारतीय जनसंघ के मंत्री, कर्नाटक केसरी श्री जगन्नाथ राव जोशी तथा महाराष्ट्र जनसंघ के उपाध्यक्ष श्री अण्णा साहेब कवड़ी की स्थिति अत्यंत चिंताजनक हो गई थी। उसके अतिरिक्त श्री जगन्नाथ राव जोशी के नेतृत्व में गोवा में प्रविष्ट होने वाले जनसंघ के जत्थे के दो सत्याग्रहियों की भयंकर यातनाओं के परिणामस्वरूप मृत्यु हो गई है। मृतकों में से एक मथुरा के श्री अमीरचंदजी गुप्त भी थे। दिल्ली में जनसंघ की ओर से राजेंद्र नगर में एक विशाल सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें हुतात्माओं के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए सरकार से पुलिस कार्रवाई की माँग की गई। सभा में दीनदयालजी का भाषण।

पुर्तगाली शासन बर्बर अत्याचारों से जनता को भयभीत करके भारतीयों को गोवा में आंदोलन करने से रोकना चाहता है, किंतु भारतवासी कायर नहीं हैं। वे पुर्तगाली अत्याचारों के सम्मुख किंचित् भी नहीं झुकेंगे।

जनसंघ इसके पश्चात् बड़ी संख्या में सत्याग्रही भेजकर आंदोलन को प्रबल बनाएगा। भारत सरकार को तत्काल पुलिस कार्रवाई कर गोवा को मुक्त कराना चाहिए।

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

पंडित पंत को तार

गृहमंत्री पंडित गोविंद वल्लभ पंत को तार भेजकर जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्याय ने श्री अमीरचंद की मृत्यु की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए श्री जोशी आदि सत्याग्रहियों की सुरक्षा की माँग की है।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 4, 1955

□

45

कानपुर हड़ताल

कानपुर के सूती मिल मज़दूरों की हड़ताल को सवा दो महीने से भी अधिक समय हो गया है। हड़ताल समाप्त होने की दृष्टि से वार्त्ता का चक्र प्रारंभ होने के संकेत तो मिल रहे हैं किंतु किसी भी सम्मानपूर्ण समझौते के आधार पर वार्त्ता समाप्त हो जाएगी, इसके लक्षण नहीं दिखाई देते। हड़ताल अभिनवीकरण के प्रश्न को लेकर हुई है। शासन इस बात पर डटा हुआ है कि अभिनवीकरण का सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए, क्योंकि नैनीताल त्रिदलीय सम्मेलन में नेताओं ने भी अभिनवीकरण को स्वीकार कर लिया था। अब हड़ताल करके उन्होंने समझौता भंग किया है। दूसरी ओर उसका यह भी कथन है कि झगड़ा मज़दूरों और मिल-मालिकों में है, अत: वे आपस में निपट लें, उसे हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं। हस्तक्षेप न करने की बात करना और दूसरी ओर हस्तक्षेप करना, यह तर्कसंगत नहीं। कानपुर के ज़िला अधिकारियों और पुलिस ने भी मज़दूरों के विरोध में ही काम किया है और केवल धारा 144 के उल्लंघन में ही नहीं, अनेक मज़दूर नेताओं को निवारक नज़रबंदी अधिनियम के अंतर्गत बंदी भी बनाया है। इलाहाबाद हाईकोर्ट ने इस नज़रबंदी को असंवैधानिक ठहराया है।

जहाँ तक कानपुर के हड़ताल का संबंध है, उसमें दलगत राजनीति ने भी स्थिति को बहुत उलझा दिया है। यह समझा जाता है कि कानपुर की राजनीति पर वही अधिकार करेगा, जिसके साथ वहाँ के मज़दूर होंगे। कांग्रेस के साथ वे नहीं हैं, यह स्पष्ट है। इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस की शाखा वहाँ बहुत कमज़ोर है। पिछले लोकसभा के उपचुनाव में कांग्रेस को वहाँ करारी हार खानी पड़ी और कांग्रेसी उम्मीदवार के विरोध में श्री राजाराम शास्त्री विजयी होकर आए।[1] आगे भी कानपुर कॉरपोरेशन के

---

1. पहली लोकसभा (1952-1957) में कानपुर मध्य संसदीय क्षेत्र में उपचुनाव हुआ। राजाराम शास्त्री (1904-1991) पी.एस.पी. के उम्मीदवार थे। इस उप चुनाव में इन्हें 65739 वोट प्राप्त हुए। वहीं कांग्रेस उम्मीदवार सी.बी.डी. कंटक को 51951 वोट प्राप्त हुए।

चुनाव आ रहे हैं। राजनीतिक दल उसके पूर्व अपनी शक्ति अजमा लेना चाहते हैं। मज़दूरों को इसका साधन चुना गया है। कांग्रेस चाहती है कि इस बार यदि कानपुर के मज़दूरों की कमर तोड़ दी जाए तो वे फिर कभी विरोधी दलों के नेतृत्व में नहीं जाएँगे। प्रजा समाजवादी और साम्यवादी दल भी हड़ताल में विजय प्राप्त करके अपनी धाक जमाना चाहते हैं। दो मुल्लों के बीच मुरग़ी हलाल। बेचारे 50 हज़ार मज़दूर दो माह से बेकार बैठे धीरे-धीरे जीवन और मृत्यु के बीच की उस स्थिति का अनुभव कर रहे हैं, जिसे योगी भी कदाचित् नहीं कर पाते।

अभिनवीकरण का प्रश्न भी कुछ जटिल तथा वह केवल कानपुर तक ही सीमित नहीं अपितु अखिल भारतीय है एवं सभी उद्योगों से संबंध रखता है। वास्तव में तो बड़े उद्योगों की स्थापना एवं पूँजीवादी अर्थ-व्यवस्था का आधार ही सतत अभिनवीकरण है। आज का विज्ञान निरंतर प्रयास कर रहा है ऐसे यंत्रों का निर्माण करने का, जिनके द्वारा मनुष्य का कम-से-कम उपयोग हो। जहाँ जनसंख्या कम है तथा उत्पादन के लिए पर्याप्त बाज़ार है, वहाँ ये नए यंत्र वरदान सिद्ध होते हैं, किंतु जहाँ हमें करोड़ों मानवों को काम देना है तथा हमारी अर्थव्यवस्था पिछड़ी हुई है, वहाँ ये यंत्र हमारे लिए अभिशाप सिद्ध होते हैं। हरेक नया तंत्र नई बेकारी लेकर आता है। 'बिना-अश्रु' के अभिनवीकरण केवल शब्दजाल मात्र है, क्योंकि कोई उद्योग ऐसे मज़दूरों को नहीं रख सकता, जिनकी उसे आवश्यकता नहीं। मज़दूरों की छँटनी अवश्यंभावी है, उसमें देर-सबेर भले ही हो। छँटनी एक ही हालत में रुक सकती है कि नए स्वचालित यंत्र इतनी संख्या में लगाए जाएँ कि सब मज़दूर खप जाएँ तथा उनसे उत्पादित वस्तुओं के लिए उपयुक्त बाज़ार मिल जाए। यह भी सरल नहीं। हरेक कारख़ाना इस आधार पर काम नहीं कर सकेगा। इतना ही नहीं अभिनवीकरण के परिणामस्वरूप वे छोटे-छोटे कारख़ाने, जो आगे अभिनवीकरण के साधन नहीं जुटा सकते, भविष्य में प्रतियोगिता में नहीं टिक पाएँगे तो उन्हें बंद करना होगा। उद्योग कुछ बड़े-बड़े हाथों में केंद्रित हो जाएगा। यही पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का नियम है।

आज कानपुर के मिल मालिकों का कहना है कि अहमदाबाद और बंबई में अभिनवीकरण होने के पश्चात् यदि वे उनके साथ प्रतियोगिता में टिकना चाहते हैं तो उन्हें भी अभिनवीकरण करना होगा। तर्क में कुछ बल अवश्य है किंतु अहमदाबाद और बंबई में अभिनवीकरण हुआ कैसे? वहाँ के मज़दूर संगठन उस समय क्यों चुप रहे? अहमदाबाद में मज़दूर संगठन कांग्रेस के हाथ में हैं। उसने मज़दूरों के हितों की व्यापक रूप में रक्षा नहीं कि बल्कि उन्हें धोखा दिया। बंबई में कांग्रेस का प्रभाव नहीं, किंतु लगता है कि पिछली लंबी हड़ताल के बाद वहाँ के मज़दूर नेताओं की इतनी कमर टूट गई है कि वे कोई संघर्ष करने को तैयार नहीं। फलतः उन्होंने इस बार कानपुर को चुना।

वहाँ भी वही हाल हो रहा है।

वास्तव में तो इस दृष्टि से एक अखिल भारतीय नीति बनानी चाहिए थी। यह मामला उत्तर प्रदेश का नहीं बल्कि संपूर्ण देश का है। श्री खंडू भाई देसाई[2] को इसमें हस्तक्षेप करना चाहिए। मज़दूर संगठनों को भी अखिल भारतीय स्तर पर इसका विचार करना चाहिए। आज तो ऐसा लगता है कि शासन ने उन्हें बाँटकर अपना प्रयोजन सिद्ध किया है। यह भी स्पष्ट है कि मज़दूरों को यदि अपना वास्तविक हित करना है तो उन्हें राजनीतिक नेताओं के चंगुल से मुक्त होकर ऊँचा उठना होगा।

गोवा सत्याग्रह और कांग्रेस

गोवा में मुक्ति आंदोलन गति पकड़ता जा रहा है। भारत के सभी दल अहं-अहमिकावृत्ति से सत्याग्रही जत्थे भेज रहे हैं। किंतु ऐसे समय कांग्रेस की नीति कुछ समझ नहीं आती। कांग्रेस ने अभी तक यही निश्चय किया है कि वह इस आंदोलन से अलग रहे। इतना ही नहीं, कांग्रेसजनों के व्यक्तिगत रूप से सत्याग्रह में भाग लेने पर भी पाबंदी लगा दी गई है। अपनी इस नीति के समर्थन में जो-जो भी तर्क दिए गए हैं, वे सबके सब खोखले हैं और उन सबका आधार है गोवावासियों को भारतवासियों से अलग मानना। जब तक हम यह मानते रहेंगे कि गोवा आंदोलन गोवा का आंदोलन है तब तक हमारी नीति अशुद्ध ही रहेगी। यह आंदोलन भारत का है। यह सही है कि गोवा में रहने वाले बंधु भी राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए सब प्रकार का आंदोलन करते रहे हैं और उसके लिए उन्होंने बलिदान भी दिया है, किंतु हम उन्हें इस महान् संघर्ष में अकेला नहीं छोड़ सकते। कांग्रेस की दृष्टि से गोवा मुक्ति आंदोलन को वह केवल नैतिक सहानुभूति मात्र देकर चुप बैठ जाती है। वास्तविकता तो यह है कि गोवा की मुक्ति भारत की आज़ादी को पूरा करने के लिए आवश्यक है।

संपूर्ण राष्ट्र जब एक स्वर में गोवा की मुक्ति के लिए प्रयत्न कर रहा हो, तब कांग्रेस का अलग रहना इस बात का द्योतक है कि अब वह राष्ट्रीय भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। शायद अब उसमें कोई भी क्रांतिकारी पग उठाने की शक्ति बची नहीं। जिन लोगों ने राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का नेतृत्व किया हो, आज वह पीछे हट जाएँ, यह तो बड़े दुःख का विषय है। क्या हम यह समझें कि आज कांग्रेस में सब दूध के मजनू रह गए और ख़ून के चले गए। 23 जुलाई को कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक होने वाली है। क्या कांग्रेस निर्णय लेगी कि वह गोवा मुक्ति की बड़ी-बड़ी घोषणाओं के पीछे अपनी क्रियाशक्ति भी खड़ी करेगी। कांग्रेस के लोग भी यदि कुछ पुर्तगाली बर्बरता का स्वाद चखा लें तो उनकी नीति में यथार्थवाद आ जाएगा।

---

2. खंडू भाई कासन्जी देसाई (1898-1975), भारत के श्रम मंत्री (1954-57) थे।

गोवा सत्याग्रह और सरकारी उदासीनता

गोवा सत्याग्रह के संबंध में सरकारी उदासीनता भी खलने वाली है। आज भारत के नागरिकों पर गोवा में तरह-तरह के अत्याचार होते हैं, किंतु भारतीय शासन उस संबंध में कोई सक्रिय संवेदना प्रगट नहीं करता। इतना ही नहीं, गोवा में बंदी बनाए गए नेताओं के संबंध में आवश्यक जानकारी प्राप्त करना, उनकी चिकित्सा का प्रबंध करना तथा भारत की जनता को उनकी स्थिति की जानकारी देते रहने का प्राथमिक कर्तव्य भी हमारा गोवा स्थित दूतावास नहीं निभा रहा है। श्री जगन्नाथ राव जोशी,[3] भारतीय जनसंघ के मंत्री तथा श्री अण्णा साहेब कवड़ी,[4] महाराष्ट्र प्रदेश जनसंघ के उपप्रधान दिनांक 25 जून को सत्याग्रह के निमित्त गोवा में प्रविष्ट हुए। समाचार मिला था कि उनके साथ बहुत मारपीट हुई तथा उन्हें मूर्च्छित अवस्था में किसी अज्ञात स्थान को ले जाया गया। भारत की जनता के लिए यह समाचार चिंताजनक था। भारतीय जनसंघ के प्रधान पं. प्रेमनाथ डोगरा ने तुरंत तार देकर केंद्रीय गृहमंत्री पं. गोविंद वल्लभ पंत से आग्रह किया कि वे दोनों नेताओं का पता लगाकर सूचित करें। पूना, बेलगाँव आदि स्थानों से गोवा विमोचन सहायक समिति, गोवा नेशनल कांग्रेस, भारतीय जनसंघ आदि के नेताओं के भी तार गए, पत्र गए और अंत में दिनांक 29 जून को गृहमंत्री पंडित पंत से संसद् सदस्य श्री उमाशंकर त्रिवेदी, श्री दीनदयाल उपाध्याय, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, मंत्री भारतीय जनसंघ ने प्रत्यक्ष भेंट कर उक्त दोनों नेताओं का हाल पता लगाने की प्रार्थना की। दोनों ही व्यक्तियों के संबंधियों ने भी तार दिए। यह सब होते हुए भी आज तक केंद्रीय सरकार की ओर से किसी को भी कोई सूचना नहीं मिली है। इसे क्या समझा जाए! क्या हमारा गोवा स्थित दूतावास इतना निष्क्रिय और अयोग्य है कि वह एक पखवाड़े में भी देश के दो प्रमुख नेताओं की स्थिति का पता नहीं लगा सकता? या हम यह समझें कि कांग्रेस के शासक दलगत राजनीति में इतने फँस गए हैं कि कांग्रेस के अतिरिक्त दलों के नेताओं के जीवन के साथ खिलवाड़ होने पर उनके हृदय को चोट नहीं पहुँचती। डॉ. मुखर्जी के जीवन के साथ खिलवाड़ करने वाले क्या नहीं कर

---

3. गोवा में सशस्त्र हस्तक्षेप करने से नेहरू के इनकार पर जगन्नाथ राव जोशी 'कर्नाटक केसरी' (1920-1991) के नेतृत्व में आर.एस.एस. व जनसंघ के हज़ारों कार्यकर्ता सत्याग्रह के निमित्त 25 जून, 1955 को गोवा में प्रविष्ट हुए थे। जोशीजी ने नारा दिया 'नेहरूजी अब क्या करें, पुलिस लेकर गोवा चलें, पुलिस लेकर गोवा चलें।' गोवा में बिना परमिट प्रवेश करने के आरोप में गिरफ़्तार कर अगुआडा क़िले की जेल में इन पर भीषण अत्याचार किया गया, तत्पश्चात् इन्हें 10 वर्ष की कारावास की सज़ा सुनाई गई।
4. अण्णा साहेब कवड़ो को गोवा प्रवेश के लगभग ढाई घंटे बाद पेडने (अंग्रेज़ी का पेर्नेम) के पास पुलिस ने अटकाया और पूछताछ कर प्रश्न किया कि वकील होकर तुमने अंतरराष्ट्रीय क़ानून का उल्लंघन क्यों किया? उन्होंने सम्मानपूर्वक उत्तर दिया 'क्योंकि गोवा भारत का अविभाज्य अंग है और उसे भारत में मिला देना चाहिए'। इसके साथ ही फिरंगी हथौड़े लेकर उन पर टूट पड़े।

सकते? आज जब देश की तरुणाई गोवा में तिल-तिल करके अपने जीवन का बलिदान दे रही हो, तब पंडित पंत श्रीनगर में ठंडी हवा खाएँ, यह बड़े दु:ख का विषय है। नीरो भी शायद इतना निष्करुण नहीं रहा होगा?

—पाञ्चजन्य, जुलाई 11, 1955

□

46

पटरियों पर बैठने वाले विक्रेताओं की समस्याएँ

दिल्ली में पटरी पर बैठने वाले विक्रेताओं की समस्या विषम रूप धारण करती जा रही है। शायद जितने दुकानदार हैं, उनसे ज़्यादा संख्या ऐसे लोगों की है, जो बिना किसी दुकान के खोमचों, ठेलों और रेहड़ियों के सहारे अपनी जीविका चलाते हैं। दिल्ली नगरपालिका के उपनियमों के अनुसार इन लोगों को पटरियों पर बैठकर बेचने की इज़ाज़त नहीं है। दिल्ली के अधिकारियों के सामने ट्रैफ़िक की भी समस्या है, क्योंकि इन पटरी वालों और खोमचों वालों के कारण सड़क पर इतनी भीड़ हो जाती है कि मोटर आदि का तो निकलना ही दुष्कर हो जाता है। फिर दुकानदारों की भी शिकायत है। सामने पटरी पर बैठे हुए व्यापारियों के कारण दुकानदारी में भी बाधा पहुँचती है। नगर के सौंदर्य का भी प्रश्न है। टूटे-फूटे ठेलों और गंदे खोमचों से राजधानी की सड़कों का सौंदर्य मारा जाता है। फलतः दिल्ली सरकार ने पटरी वालों के ख़िलाफ़ ज़ोरदार मुहिम छेड़ दी है। नगर पालिका के उपनियमों के अतिरिक्त धारा 144 लगाकर चाँदनी चौक में पटरी वालों का बैठना रोक दिया है। अन्य क्षेत्रों में भी धारा लागू करने की योजना है।

फलतः दिल्ली के लगभग 21 हज़ार परिवार आज जीवन और मृत्यु के बीच की घड़ियाँ गिन रहे हैं। उनकी आजीविका का साधन जाता रहा है। अगर चोरी-छिपे कहीं पटरी पर बैठे कि पुलिस आ धमकती है। दो-चार आने देकर क़ानून के शिकंजे से बचा जाता है। अगर कोई टेढ़ा सा सिपाही आ गया तो वह गाली-गुफ्ता तथा मार-पीट के साथ उसके खोमचे को भी फेंक देता है। शाहदरा अड्डे पर कुछ आम बेचने वालों से पुलिस के सिपाही ने दो-दो आने के आम लिए। थोड़ी देर में सादा लिबास में एक

इंस्पेक्टर साहब आए, भ्रष्टाचार निरोधक विभाग के। उन्होंने आँखों से देखा था पुलिस के सिपाही को घूस लेते। फल वालों से मारपीट कर क़बूल कराया कि उन्होंने सिपाही को दो-दो आने दिए। किंतु अंत में कुछ ले-देकर मामला रफ़ा-दफ़ा हो गया। बेचारे फल वालों की आत्मा इतनी दब गई कि उनसे पूछने पर वे सत्य बताने को भी तैयार नहीं और न कहीं इस घटना की शिकायत करने को राजी हैं।

पहाड़गंज में एक पुलिस सिपाही ने एक घास बेचने वाली बुढ़िया की घास थोड़ी-थोड़ी करके संपूर्ण सड़क पर बिखेर दी। एक चाट वाले के खोमचे में फुटबॉल की तरह वह ठोकर मारी कि खोमचा दूर सड़क पर गिर पड़ा तथा चाट सड़क को चाटने लगी। इन घटनाओं के पीछे अधिकारियों की वह मनोवृत्ति है, जो नीरो की थी। डिग्री का अंतर हो सकता है, दृष्टिकोण का नहीं।

पटरी वालों का क्या किया जाए? क्या हम मानवता के दृष्टिकोण से इसका विचार कर सकते हैं? आज अधिकारी इस नाते विचार करने को तैयार नहीं कि लोगों की जीविका का प्रबंध करना भी उनकी ज़िम्मेदारी है। वे दिल्ली के सौंदर्य का विचार कर सकते हैं, मोटर के रास्ते की चिंता कर सकते हैं और दुकानदारों और पटरी वालों में संघर्ष पैदा करके अपना मतलब भी पूरा कर सकते हैं। किंतु इन पटरी वालों को कहीं दूसरी जगह बैठने का प्रबंध करने के लिए तैयार नहीं। आज भी क़ानून के विरुद्ध होते हुए चाँदनी चौक में सड़क के दोनों ओर मोटरों की कतार-की-कतार खड़ी रहती है। उसे अधिकारी नहीं रोकते। इस क्षेत्र में मोटरों का आना भी रोका जा सकता है। अगर किसी को ख़रीद-फ़रोख़्त के लिए आना है तो वह मोटर चाँदनी चौक के बाहर छोड़कर पैदल आए।

दिल्ली का प्रश्न तो केवल उदाहरणस्वरूप है। आज देश में जिस प्रकार भूमिहीन किसानों की समस्या है, वैसे ही दुकानहीन व्यापारियों की भी बहुत बड़ी समस्या है। हमें उसका कोई हल ढूँढ़ना होगा। हमारे अधिकारियों को भी नगर का सुधार करने की धुन में केवल पश्चिम के नगरों का नहीं अपितु भारत की आज की समस्या का भी विचार करना होगा। आज तो ऐसा लगता है कि अधिकारियों को लोगों के जीवन के साथ खिलवाड़ करने का तो आधार दे दिया गया है, किंतु उनके ऊपर ज़िम्मेदारी कोई नहीं है। फिर बड़े-बड़े बँगलों में रहने वाले, मोटर में चलने वाले सभी प्रश्नों की ओर अपने ही चश्मे से देखते हैं। ग़रीबों की समस्या ही उनकी समझ में नहीं आती।

नेहरूजी की रूस यात्रा और गोवा मुक्ति का प्रश्न

नेहरूजी विदेश यात्रा के पश्चात् भारत आ गए हैं। देश के जन-जन ने उनका स्वागत किया है। उन्होंने भारत का संदेश रूस और पूर्वी यूरोप के उन क्षेत्रों तक

पहुँचाया, जहाँ पिछले 35 वर्षों में दूसरे देश का आदमी तो क्या, परिंदा भी पर नहीं मार सकता था। उनकी यश पताका दिग्दिगंत में फहराई, यह सब हमारे लिए गर्व की बात है। किंतु जब नेहरूजी वापस लौटकर आ गए हैं, हम पूछेंगे, 'आप हमारे लिए क्या लाए?' चीन और फारमोसा, जिनेवा और बड़ी शक्तियों की बातचीत इन सबकी तो चर्चा हुई, किंतु हमारे सामने तो प्रश्न है गोवा का। उसका क्या हुआ?

हम नेहरूजी को बताना चाहेंगे कि उनकी अनुपस्थिति में गोवा के प्रश्न को लेकर भारत में बहुत बड़ा आंदोलन हुआ है। हमें नहीं मालूम कि विदेश में रहते हुए उन्हें देश की ख़बरें मिलती रहीं या नहीं। पर हम यह जानते हैं कि उन्होंने अपनी विदेश यात्रा में कहीं भी गोवा का ज़िक्र नहीं किया। पोप के साथ भी शायद इतनी ही वार्त्ता हुई है कि गोवा का प्रश्न राजनीतिक है। किंतु यह राजनीतिक प्रश्न हल कैसे होगा? इसका कोई विचार नहीं हुआ। हमें यह भी दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि नेहरूजी ने गोवा में हुए शहीद वीर अमीरचंद्र गुप्त के संबंध में दो शब्द भी नहीं कहे। स्पष्ट है कि विदेशों में नेहरूजी देश को भूल गए। अत: देश में आकर वे घर की सुध लें। ऐसा न हो कि यहाँ भी वे विदेशों की रट लगाते रहें और उनके ही गुण गाते रहें।

क्या अनुसरण किया जाएगा?

गुड़गाँव ज़िले का समाचार है कि वहाँ के ज़िला मजिस्ट्रेट ने अपने चौदह वर्षीय पुत्र के ऊपर अभियोग चलाने की आज्ञा दे दी है। पुत्र का अपराध है, प्रतिबंध होते हुए भी हवाई बंदूक़ से एक खरगोश की हत्या। मजिस्ट्रेट ने जिस न्याय-बुद्धि का परिचय दिया है, वह स्तुत्य है। क्या ही अच्छा हो, यदि हमारे सभी अधिकारी इस मनोवृत्ति का परिचय दें। इसके प्रतिकूल हमें ज्ञात है कि लाखों का घोटाला करने वाले व्यक्तियों की कांग्रेस शासन ने पुन: बढ़ोतरी की है। इंग्लैंड में जीप का सुविख्यात घोटला होने के पश्चात् भी श्री कृष्ण मेनन[1] आज नेहरूजी के कृपापात्र होने के कारण सब प्रकार की जाँच और अदालती कार्रवाई से बचाकर अधिकाधिक ज़िम्मेदारी के पदों पर लाए जा रहे हैं। ऐसा लगता है कि ऊपर के लोगों को ठीक करने के लिए नीचे से ही आदर्श उपस्थित करना पड़ेगा। यह जनतंत्र जो है।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 18, 1955

□

1. वेंगालिल कृष्णन कृष्ण मेनन (1896-1974) घोटाले के समय ब्रिटेन में भारतीय उच्चायुक्त (1947-1952) थे, जो बाद में भारत के रक्षा मंत्री (1957-62) बने।

47

गोवा को सुधार नहीं, मुक्ति चाहिए*

पुर्तगाल सरकार ने उपनिवेशों में सुधार करने की घोषणा की थी। इसी संबंध में दीनदयालजी का वक्तव्य।

पुर्तगाल सरकार ने कुछ सुधारों की घोषणा की है, जिसके अनुसार गोवा, दमन तथा दीव के शासन के निमित्त एक प्रतिनिधि सभा के संगठन का आश्वासन प्रदान किया गया है। मुक्ति आंदोलन के प्रति संसार के लोगों की बढ़ती हुई सद्‌भावना को दबाने के लिए तथा समस्त समस्या को ओझल करने के लिए चली गई चाल के अतिरिक्त यह कुछ नहीं है। गोवा तथा भारतवासियों के समक्ष समस्या किसी प्रकार के शासन विशेष को विकसित करना नहीं है वरन् राष्ट्रीय एकता तथा अखंड भारत के निर्माण का प्रश्न है। गोवा तथा अन्य पुर्तगाल उपनिवेशों की जनता अपनी मातृभूमि से मिलने के लिए निरंतर संघर्ष कर रही है। अतः किसी भी प्रकार का ऐसा प्रतिनिधि शासन, जिसका संगठन विदेशी गवर्नर जनरल के अधीन किया गया हो, कभी भी उक्त आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर सकता।

कुछ भी हो किंतु इस घोषणा ने मुक्ति आंदोलन की सफलता प्रमाणित कर दी है, क्योंकि स्वेच्छाचारी पुर्तगाली शासन को बाध्य होकर आश्वासनीय उपायों को स्वीकार करना पड़ा है। साम्राज्यवादी शक्तियों का यह एक पुराना एवं भ्रष्ट हथकंडा है, जो राष्ट्रीयता के उठते हुए तूफ़ान के सम्मुख अधिक दिन तक नहीं टिक सकता। पुर्तगालियों को पूर्णतः भारत छोड़ना होगा। उनका हित इसी में है कि वे इतिहास के पृष्ठों पर अंकित घटना-चक्र को देखें और इससे पूर्व कि उन्हें देश छोड़ने के लिए बाध्य होना

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

पड़े, वे स्वयं ब्रिटेन तथा फ्रांस का अनुसरण करके देश से बाहर चले जाएँ।

अतः सुधारों का विवेचन करना अनावश्यक प्रतीत होता है। स्वतंत्रता के सेनानी तब तक संघर्ष करते रहेंगे, जब तक कि ये बस्तियाँ भारत के साथ पूर्णतः सम्मिलित नहीं हो जातीं।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 18, 1955

□

48

पंजाब सरकार और अकाली

पंजाब में श्री भीमसेन सच्चर[1] की कांग्रेसी सरकार ने नारों के ऊपर से प्रतिबंध हटाकर अकाली दल के सिर पर विजय का सेहरा बाँध दिया है और वह भी उस समय, जबकि अकाली आंदोलन ठंडा पड़ता जा रहा था। आंदोलनकारियों के पैर लड़खड़ा रहे थे तथा जेल में बंद अकालियों में माफ़ी माँगने वालों की संख्या बढ़ती जा रही थी। सिद्धांत की दृष्टि से तो एक घोर सांप्रदायिक तत्त्व के समक्ष इस प्रकार का आत्मसमर्पण भारत के लिए हानिकारक है ही किंतु प्रशासन की दृष्टि से भी पंजाब सरकार का निर्णय उसकी प्रतिष्ठा के लिए घातक है। साधारणत: प्रश्न उठते हैं कि नारों पर प्रतिबंध लगाया ही क्यों गया था? क्या इस प्रकार अनावश्यक रूप से अकालियों को एक आंदोलन का मौक़ा नहीं दिया गया? यह हो सकता है कि शांति एवं सुरक्षा के लिए प्रतिबंध आवश्यक समझा गया हो, किंतु उसको हटाते समय शांति और सुरक्षा की चर्चा क्यों नहीं की गई। वास्तव में तो दिनांक 15 जुलाई को ज़िला मजिस्ट्रेट के प्रतिबंधात्मक आदेश की अवधि समाप्त हो जाती थी, फिर 13 तारीख़ को ही आदेश को वापस लेने की जल्दबाज़ी क्यों की गई?

श्री सच्चर ने पंडित नेहरू के आगमन का उल्लेख किया है और कहा है कि उनके द्वारा दुनिया को शांति का संदेश देकर आने के बाद घर में तो अवश्य ही शांति होनी चाहिए। विश्व की शांति एवं उसके लिए नेहरूजी के शांति के प्रयत्नों के साथ पंजाब के अकाली आंदोलन का संबंध जोड़ना हास्यास्पद ही नहीं अपितु श्री सच्चर का नेहरूजी के संबंध में अज्ञान का भी द्योतक है। क्या हम यह मानें कि अकाली आंदोलन को श्री नेहरू का समर्थन प्राप्त है। हम यह भी पूछना चाहेंगे कि नेहरूजी के आगमन की खुशी

1. भीमसेन सच्चर (1894–1978) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्य थे। सच्चर पंजाब प्रांत के दो बार (अप्रैल, 1949–अक्तूबर 1949; अप्रैल 1952–जनवरी 1956) मुख्यमंत्री रहे।

में श्री सच्चर और क्या-क्या करना चाहते हैं। सच तो यह है कि श्री सच्चर के कार्य से पंजाब में शांति पैदा नहीं हुई अपितु घोर अशांति की ही स्थिति पैदा हुई है। यदि तुष्टीकरण से असामाजिक तत्त्व सही रास्ते पर आ जाते तो हमें भारत का विभाजन नहीं देखना पड़ता।

श्री सच्चर के कार्य से पंजाब के राष्ट्रवादी तत्त्वों को घोर निराशा हुई है तथा उनमें विक्षोभ की लहर दौड़ गई है। ऐसा मालूम देता है कि अकाली आंदोलन के जमाने में उन्होंने जो शांति बनाकर रखी, उसका कांग्रेस सरकार ने ग़लत अर्थ लगाया है। वास्तव में तो पंजाब का कांग्रेसी शासन चाहता था कि पंजाबी और महापंजाबी की माँग पर पंजाब के विभिन्न वर्गों को लड़ाकर स्वयं पंच बनकर अपना उल्लू सीधा किया जाए, किंतु यह राष्ट्रवादी तत्त्वों की बुद्धिमत्ता एवं राष्ट्रीयता के कारण संभव नहीं हुआ। किंतु अपनी असफलता का परिचय कांग्रेस शासन इस भोंड़े ढंग से देगा, इसकी कल्पना नहीं थी। पंजाब के कांग्रेस शासन के इस कृत्य पर दुःख हो सकता है किंतु इसमें कोई अनहोनी वाली बात नहीं। वास्तव में तो यह कांग्रेस की पुरानी परंपरा है, जिसका उसने पालन किया है। वह सदा ही सांप्रदायिक एवं असामाजिक तत्त्वों के सामने झुकती आई है। लोगों में यह धारणा पैदा करने की कोशिश की जा रही है कि यह श्री सच्चर का व्यक्तिगत निर्णय रहा है। इस संबंध में मंत्रिमंडल में कोई निश्चय नहीं हुआ और न अन्य मंत्रियों से इसकी कोई चर्चा की गई है। हम समझते हैं कि यह सत्य नहीं है। सत्य तो यह है कि अकाली आंदोलन के संबंध में संपूर्ण नीति का विचार समय-समय पर मंत्रिमंडल की बैठकों में होता रहा है। जानकार सूत्रों का तो कहना है कि मंत्रिमंडल के कुछ बेअसर सदस्य काफ़ी दिनों से अकाली बंदियों को छोड़ने की माँग कर रहे थे तथा अकाली दल की ओर से भी एक प्रस्ताव आया था कि यदि बंदियों को मुक्त कर दिया जाए तो मोरचा वापस लिया जा सकता है। कारण फ़सल बोने का समय नज़दीक आते ही ग्रामीण बंदियों में व्याकुलता उत्पन्न हो गई तथा वे माफ़ी माँगकर बाहर जाने लगे। नए सत्याग्रहियों की भरती पर भी असर पड़ने लगा था। मंत्रिमंडल के कतिपय सदस्य यह नहीं चाहते थे कि अकाली आंदोलन इस प्रकार ठंडा पड़ जाए। ये वे ही सदस्य हैं, जिन्होंने आंदोलन के प्रारंभ में यह आग्रह किया था कि प्रत्येक सत्याग्रही को इधर-उधर ले जाकर छोड़ आने के बजाय बंदी बनाकर जेल में रखा जाए। स्वाभाविक है कि जेल में रहकर लौटने वाला व्यक्ति अपने गाँव में वीर के समान पूजा जाएगा। हमें यह भी मालूम है कि श्री सच्चर ने इस संबंध में केंद्रीय गृहमंत्री श्री गोविंद बल्लभ पंत से भी सलाह की थी। हम यह कैसे मान सकते हैं कि प्रतिबंध हटाते समय उन्होंने पंतजी से विचार-विमर्श नहीं किया होगा। वास्तविकता तो यह है कि यह श्री सच्चर का अविवेकपूर्ण काम नहीं बल्कि कांग्रेस शासन का सुनिश्चित नीति के अनुसार उठाया गया समर्पण पूर्ण

पग है। श्री सच्चर के मत्थे संपूर्ण कलंक का टीका मढ़कर कांग्रेस राष्ट्रवादी तत्त्वों को भुलावे में रखकर उनका विश्वास यथा पूर्ववत् रखना चाहती है।

आज पंजाब के राष्ट्रवादी तत्त्वों के लिए गंभीर विचार का अवसर उपस्थित है। क्या वे कांग्रेस पर भरोसा करके अपना भविष्य सुरक्षित रख सकते हैं। भारत में हिंदुओं ने अपनी प्रगाढ़ राष्ट्रीयता के कारण कांग्रेस का सदैव समर्थन किया। अंग्रेज़ी शासनकाल में प्रत्येक हिंदू ने आत्मविस्मृति के गर्त में डुबकी लगाकर भी कांग्रेस का साथ इसलिए दिया कि वह उनकी मुसलिम लीग एवं अकालियों से रक्षा कर सकेगी, किंतु कांग्रेस ने उसी थाली में छेद किया, जिसमें खा रही थी। पिछले आम चुनावों में भी कहीं अकाली जीत जाए, इस भय से प्रत्येक राष्ट्रवादी हिंदू ने, जिनमें सिख भी शामिल हैं, जनसंघ का समर्थन न करके कांग्रेस को वोट दिया। किंतु परिणाम क्या हुआ। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि पंजाब का भाग्य कांग्रेस के हाथों सुरक्षित नहीं रह सकता। यदि किसी कारण से अकाली पंजाब में बहुमत में भी आ जाते जो असंभव था तो भी इतनी हानि नहीं होती, कम-से-कम राष्ट्रवादी तत्त्वों को सही स्थिति का तो पता होता। धोखे में तो नहीं रहते। आज तो शासन उन लोगों के हाथ में है, जो मुँह से पंजाबी सूबे के ख़िलाफ़ हैं और अकाली सांप्रदायिकता को गाली देते हैं तथा अपनी नीति से उसे सुदृढ करते जाते हैं। यदि यही स्थिति रही तो पंजाब के गैर-अकाली तत्त्वों को पलायन के लिए तैयार हो जाना चाहिए। अन्यथा निश्चय करना चाहिए कि हम अपना सुदृढ मोरचा संगठित करेंगे तथा कांग्रेस को, जिसका इतिहास ही विश्वासघात का है, आगे कोई मौक़ा नहीं देंगे। फिर वह मायावी किसी भी रूप में हमारे सामने क्यों न आएँ। आज केवल श्री सच्चर को हटाने से काम नहीं चलेगा। हमें तो कांग्रेस को हटाकर ही दम लेना होगा।

—पाञ्चजन्य, जुलाई 25, 1955

□

49

कलकत्ता में दीनदयालजी

दीनदयालजी 13 जुलाई को दो दिवसीय यात्रा पर दिल्ली से कलकत्ता गए थे। वहाँ उन्होंने बंगाल प्रांतीय जनसंघ के अध्यक्ष श्री डी.पी. घोष से भेंट की। उनके आगमन पर प्रांतीय जनसंघ कार्यालय (6, मुरलीधर सेन लेन) पर कार्यकारिणी परिषद् की बैठक सुबह 6 बजे आयोजित की गई थी, जिसमें उन्होंने पूर्वी क्षेत्र–बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा–के विशेष संदर्भ में वर्तमान राजनीतिक स्थिति और संगठ्नात्मक मामलों तथा भारतीय जनसंघ के कलकत्ता में 27 और 28 अगस्त को आयोजित होने वाले सम्मेलन एवं बैठक पर चर्चा की। उसके बाद पंडितजी से तीन पार्टियों के विलय के बारे में स्थिति स्पष्ट करने का अनुरोध किया गया। इस पर दीनदयालजी का वक्तव्य।

जनसंघ विलय को लेकर आशावान है। मैं हिंदू महासभा और रामराज्य परिषद् के प्रमुख सदस्यों के साथ पहले ही संपर्क कर चुका हूँ। उन्होंने अखंड भारत, भारतीय संस्कृति और परंपराओं और प्रस्तावित एकीकृत निकाय में सभी भारतीय नागरिकों, चाहे उनकी जाति और धर्म कुछ भी हो, के प्रवेश के सिद्धांतों को आमतौर पर स्वीकार किया है। मुझे आशा है कि इन तीन संगठनों के नेता अवसर के अनुरूप खरे उतरेंगे और एकजुट होकर कार्य करेंगे, जैसा कि उन्होंने कश्मीर के भारत के साथ एकीकरण के लिए संघर्ष में जनसंघ के संस्थापक-अध्यक्ष डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के जीवनकाल में, उनके नेतृत्व में किया था।

जनसंघ अगले आम चुनाव के लिए तैयारी कर रहा है और यदि तीन संगठन एक

साथ काम करते हैं, तो उनसे एक अखिल भारतीय और विशेष रूप से मध्य भारत, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, विंध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और दिल्ली जैसे राज्यों में विपक्षी दल का नेतृत्व करने की भी अपेक्षा की जा सकती है।

—ऑर्गनाइज़र, जुलाई 25, 1955

□

50

लोकमान्य तिलक

23 जुलाई को लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की जन्मतिथि तथा 1 अगस्त को उनकी पुण्यतिथि देश में मनाई जा रही है।

अगले वर्ष उनकी शत सांवत्सरिक जयंती मनाने की भी योजना है। वे इस शताब्दी के उन महापुरुषों में से हैं, जनजीवन पर जिनकी अमिट छाप है। भारत के सामाजिक जीवन में गांधीजी के अवतरित होने के पूर्व एवं अपनी मृत्यु तक लोकमान्य तिलक ही उसके सूत्रधार रहे। वे प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन को वार्षिक अधिवेशनों एवं अंग्रेज़ी निहित जनों के बैठकख़ाने की चर्चा से खींचकर जनसाधारण के सक्रिय उपयोग की चीज़ बनाया। वे जानते थे कि आंदोलनों को शक्ति आम जनता से ही प्राप्त होती है। जनजीवन में गहरी जड़ बनाए बिना आंदोलन परिपुष्ट एवं प्रभावी नहीं हो सकता। उनकी निगाहें राजा की ओर नहीं बल्कि जनता की ओर थीं। उनके नाम के साथ जोड़ा गया लोकमान्य शब्द इसी प्रवृत्ति का प्रमाण है। उनके निधन के पश्चात् शव-यात्रा का वर्णन करते समय बंबई के पत्र *Social Reformer* ने लिखा था—

जीवित स्मृति में दादाभाई नौरोज़ी[1] की शवयात्रा सबसे बड़ी थी। सहस्राधिक लोग अपने नेता के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने शवभूमि तक गए, किंतु लोकमान्य तिलक की शवयात्रा उससे कई गुना आगे बढ़ गई। जुत्थ के जुत्थ लोग चौपाटी की ओर, जहाँ लोकमान्य का दाह संस्कार हुआ, बढ़ते जाते थे। इस बार की एक और विशेषता थी कि दादाभाई नौरोज़ी की शवयात्रा में केवल शिक्षित समुदाय एकत्र हुआ था तो इस बार शिक्षितों के साथ-साथ अशिक्षित नागरिक भी महान् नेता के प्रति श्रद्धा अर्पण करने की होड़ लगा रहे थे। अंग्रेज़ नौकरशाही और नागरिक अपनी अनुपस्थिति में ही प्रमुख थे। उन्होंने एक और अवसर हाथ से खो दिया।

---

1 दादाभाई नौरोज़ी (1825-1917) भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के संस्थापक सदस्यों में से एक थे।

स्वतंत्रता जन्मसिद्ध अधिकार है

भारत के स्वातंत्र्य आंदोलन को लोकमान्य तिलक ने न केवल जन-आंदोलन अपितु सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय भी बनाया। उनकी स्वतंत्रता की माँग का आधार न तो महारानी विक्टोरिया का घोषणा-पत्र था न अंग्रेज़ों के समय-समय पर दिए हुए वादे थे और न अंग्रेज़ी राज्य की बुराइयों के कारण ही वे स्वतंत्रता के पुजारी बने थे। उनका तो कहना था कि 'स्वतंत्रता मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।' महान् अंतर है उनके और उन उदार दलीय नेताओं के दृष्टिकोण में, जो स्वतंत्रता (औपनिवेशिक स्वराज्य) अंग्रेज़ों से वरदान के रूप में माँगते थे। लोकमान्य का ज़ोर 'मैं लेकर रहूँगा' पर भी है, जिसके अनुसार स्वतंत्रता के प्रेमियों की दृष्टि शासक की कृपाकटाक्ष की ओर नहीं अपितु अपनी शक्ति और योग्यता की ओर जाती है।

रचनात्मक वृत्ति

यह सत्य है कि लोकमान्य का संपूर्ण जीवन स्वतंत्रता सेनानी के रूप में लड़ते ही बीता। उन्हें जीवन भर राजनीति में ही कार्य करना पड़ा तथा कांग्रेस के अंदर नरम-दलीय नेताओं से और बाहर सरकार से बराबर जूझना पड़ा। किंतु लोकमान्य की प्रवृत्ति राजनीतिक नहीं थी। वास्तव में तो वे रचनात्मक कार्य के क्षेत्र में ही अधिक आनंद का अनुभव करते थे और यदि विवश होकर उन्हें राजनीति में न आना पड़ता तो वे राष्ट्र-निर्माण की अनेक भावात्मक योजनाओं को पूरा कर जाते। उन्होंने अपनी इस प्रवृत्ति का स्वत: वर्णन किया है। इंग्लैंड के समाचार-पत्र *'Britain and India'* में उनकी एक मुलाक़ात छपी थी। उसका अविकल अनुवाद नीचे दिया जाता है।

वास्तव में श्री तिलक ने कहा, "मेरा लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में काम करना था। मैं नए और महान् आदर्शों के लिए एक शिक्षक होना चाहता था, न कि एक राजनीतिक, क्योंकि मैं एक सच्ची भारतीय शिक्षा पद्धति की आवश्यकता का अनुभव करता था। ये आदर्श मैंने सन् 1882 के शिक्षा आयोग[2] के सम्मुख रखे हैं। किंतु इसके बाद मुझे जेल जाना पड़ा।"

"यह किस कारण से"? पत्र प्रतिनिधियों ने पूछा।

श्री तिलक ने स्पष्ट रूप से कहा, "मैंने दो समाचार-पत्र प्रारंभ किए,[3] जिनके द्वारा महाराजा कोल्हापुर के ऊपर दुर्व्यवहार के आरोप लगाए। फलत: मुसीबत में फँस

---

2. चार्ल्स वुड के घोषणा-पत्र द्वारा प्राथमिक व मध्य शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति की समीक्षा के लिए 1882 में विलियम विलसन हंटर की अध्यक्षता में शिक्षा आयोग की स्थापना हुई थी।
3. बाल गंगाधर तिलक 'लोकमान्य' (1856-1920) ने 1881 में मराठी पत्र 'केसरी' व अंग्रेज़ी पत्र 'मराठा' का संपादन किया था।

गया, किंतु उसके समाप्त होते ही मैंने अपना कार्य प्रारंभ कर दिया। मैंने कुछ लोगों के साथ एक स्कूल सन् 1890 में प्रारंभ किया था। उसमें गणित, संस्कृत तथा विज्ञान पढ़ाता था। सरकार ने चाहा कि स्कूल को अनुदान देकर उसके ऊपर नियंत्रण कर लिया जाए। मेरा मत था कि सरकार सहायता दे सकती है, किंतु उसके ऊपर उसे नियंत्रण नहीं करना चाहिए।''

जब उनसे पूछा गया कि ''राजनीति में इतनी अधिक रुचि लेने का क्या कारण है?'' तो श्री तिलक ने उत्तर दिया, ''वास्तव में मेरी प्रवृत्तियाँ साहित्यिक हैं, आंदोलन का कार्य तो मुझे कर्तव्य-भाव से करना पड़ा जो कि मेरे ऊपर आ पड़ा।''

साहित्यिक क्षेत्र में

लोकमान्य ने चाहे एक आंदोलनकारी के रूप में ही अपना जीवन क्यों न बिताया हो, किंतु अपनी मूल प्रतिभा को पूरी तरह दबा नहीं सके। जब भी मौक़ा मिला, उन्होंने रचनात्मक एवं साहित्यिक दृष्टि से काम किया। राष्ट्रीय आंदोलन को भी उन्होंने रचनात्मक आधार पर खड़ा करने का प्रयास किया। गणेशोत्सव[4] एवं छत्रपति शिवाजी जयंती[5] व्यापक एवं सार्वजनिक रूप से मनाने की उन्होंने जो योजना बनाई, वह अभी तक चली आ रही है। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने अध्यापक का जो महान् आदर्श उपस्थित किया, वह आज भी अनेक लोगों के लिए प्रेरणा का स्रोत है। डेक्कन एजुकेशन सोसाइटी महाराष्ट्र के फार्ग्यूसन कॉलेज ने शिक्षा के क्षेत्र में बहुत काम किया है। साहित्य गवेषणा के क्षेत्र में भी उन्होंने भारत को अमूल्य कृतियाँ प्रदान की हैं। 'कर्मयोग शास्त्र' या 'गीता रहस्य'[6] लोकमान्य तिलक की विश्व को एक अमूल्य देन है। राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिए लड़ने वाले के रूप में चाहे लोग उन्हें भूल जाएँ और कहना भी होगा कि उनके अनुयायियों ने उनके निधन के उपरांत स्वराज्य की लड़ाई की लोकमान्य की रीति और नीति का पालन नहीं किया किंतु भावी पीढ़ियाँ 'कर्मयोग शास्त्र' के रचयिता को नहीं भूल सकतीं। आज जबकि भारत में अंग्रेज़ी राज्य नहीं है तथा हमारे सम्मुख राष्ट्र निर्माण की रचनात्मक कल्पनाएँ और योजनाएँ हैं, अच्छा हो कि हम लोकमान्य की जयंती मनाते समय उनकी इस प्रवृत्ति और कार्य को सामने रखें। उनके व्यक्तित्व का यही पहलू है, जो आज हमारे लिए भावात्मक प्रेरणा का स्रोत बनकर उपादेय सिद्ध हो सकता है।

---

4. 1893 में तिलक ने मराठा पत्र 'केसरी' में सार्वजनिक गणेश उत्सव की प्रशंसा व अगले वर्ष केसरी कार्यालय में गणेश प्रतिमा स्थापित करते हुए गणेशोत्सव को सार्वजनिक समारोह और वार्षिक घरेलू त्योहार में बदल दिया।
5. राष्ट्रीय जागृति के लिए तिलक ने 1894 में रायगढ़ क़िले में 'शिवाजी उत्सव' की शुरुआत की, जिसमें बिना किसी भेदभाव के समाज के सभी वर्गों के लोग सम्मिलित होते थे।
6. 'लोकमान्य' ने 'गीता-रहस्य' या 'कर्मयोग शास्त्र' की रचना मांडले जेल (म्याँमार) के दौरान की। यहाँ उन्होंने 1908-14 कारावास की यातना भोगी।

जयंती मनाने के लिए एक आध प्रस्तर प्रतिमा खड़ी कर देना, समाचार-पत्रों के विशेष अंक निकाल देना, जीवन-चरित्र का लेखन, भाषण उत्सव आदि की साधारण परंपरा है। लोकमान्य की जयंती के समय भी यह सबकुछ होगा। इस प्रकार जयंती मना कर लोकमान्य को भूल जाएँगे। उससे शायद ही किसी के मन में कार्य की प्रेरणा मिले और फिर राष्ट्र उनके बताए हुए मार्ग पर चल सके, जिसकी स्थायी व्यवस्था तो उसमें है ही नहीं। हमें तो उसका विचार करना होगा। इस दृष्टि से हमारे कुछ विनम्र सुझाव हैं—

गीता रहस्य

गीता रहस्य भारतीय वाङ्मय को लोकमान्य की अनुपम देन ही नहीं अपितु उसमें जिस तत्त्व का प्रतिपादन किया गया है, वह आचरणीय भी है। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में यह तत्त्वदर्शन उसके आचरण का आधार बन सका तो हमारे राष्ट्र जीवन की अनेक समस्याएँ सहज रूप से हल हो सकेंगी। आज के जीवन में बहुत से पारस्परिक टकराव समाप्त हो जाएँगे। हम उस प्रकार का आचरण करें, इसके लिए उनका ज्ञान तो अनिवार्य है ही। अत: 'कर्मयोग शास्त्र' के व्यापक प्रचार की व्यवस्था की जाए। इस दृष्टि से विश्वविद्यालयों के सभी स्नातकों के लिए 'कर्मयोग शास्त्र' का पठन अनिवार्य कर दिया जाए तथा उसमें परीक्षा पास किए बिना उन्हें उपाधि न दी जाए। संस्कृत और दर्शनशास्त्र के विद्यार्थियों को तो इस महान् कृति का सम्यक् ज्ञान चाहिए ही। गीता की जितनी भी परीक्षाएँ होती हैं, उनमें भी एक प्रश्नपत्र इसी विषय पर हो।

ज्ञान की अगाधता

'कर्मयोग शास्त्र' नीति शास्त्र का ग्रंथ है। लोकमान्य ने इस विषय के प्राच्य, पाश्चात्य सभी विचारों को भलीभाँति तुलनात्मक विवेचन करके भारतीय दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध की है। इस प्रयत्न में न तो पाश्चात्यों को ही सर्वेश्वर मानकर हीनवृत्ति से उनका अनुकरण है न बिना जगत् का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर 'हस्तामलकवत् स्थिति' प्राप्त किए अपनी डींग मारने का थोथा प्रयास है। अपितु यह ऐसे विद्वान् का आत्मविश्वासपूर्ण सद्प्रयत्न है, जिसने ज्ञान के अगाध सागर में डुबकी लगाकर सत्य की खोज की है और उसमें भारतीय दर्शन की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। ज्ञान के और भी दूसरे क्षेत्र हैं, जिनमें इस प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता है। राजनीति, वार्त्ता, कला, काव्य, स्थापत्य, आयुर्वेद आदि सभी क्षेत्रों में आज हमें अनुकरण की हीन प्रवृत्ति दिखाई देती है। पाश्चात्य का आँख बंद कर तिरस्कार करने से भी काम नहीं चलेगा। आवश्यकता है कि हम तुलनात्मक विवेचन कर भारतीय ज्ञान की श्रेष्ठता सिद्ध करें। अत: 'कर्मयोग शास्त्र' के समान ही अन्य विषयों पर लेख लिखे जाने की आवश्यकता है। यदि विद्वान्गण इस

ओर प्रयत्न करें तथा शासन एवं अन्य संस्थाएँ उनके प्रकाशन आदि की व्यवस्था करें तो लोकमान्य की जयंती हमने सच्चे कर्मयोगी की भाँति मनाई, यह हम कह सकेंगे।

शिक्षा पद्धति के राष्ट्रीयकरण का प्रश्न भी देश के समक्ष बहुत दिनों से उपस्थित है। पारतंत्र्य काल में भी इस संबंध में अनेक जाँच कमीशन बैठाए गए थे। स्वतंत्रता के पश्चात् भी इस विषय में विभिन्न प्रकार के मत व्यक्त किए गए हैं। इस संबंध में राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद से लेकर साधारण शिक्षक तक आज की शिक्षा की अराष्ट्रीयता, अनुपादेयता एवं आदर्शहीनता के संबंध में एक मत हैं। फिर भी शिक्षा पद्धति को बदलने और उसे सही दिशा पर ले चलने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। अच्छा हो कि लोकमान्य की शतसांवत्सरिक जयंती मनाते समय हम राष्ट्रीय शिक्षा योजना का भी सूत्रपात्र करें।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 1, 1955

□

51

गोवा मुक्ति आंदोलन*

गोवा मुक्ति आंदोलन का केंद्र इस सप्ताह पूना, बेलगाँव या पणजी न रहकर भारत की राजधानी दिल्ली रहा। ऐसा कोई दिन नहीं बीता, जबकि इस विषय को लेकर कुछ-न-कुछ सार्वजनिक कार्यक्रम न किया गया हो। पिछले कई मास से भारत के विभिन्न दल गोवा सत्याग्रह में भाग ले रहे हैं, किंतु कांग्रेस प्रधान के आदेशानुसार कांग्रेसजन इस आंदोलन से उसी प्रकार दूर रहे जैसे पतिव्रता स्त्री किसी लंपट से दूर रहती है। जनता के सभी वर्गों ने कांग्रेस की इस नीति की भर्त्सना की, फलतः पंडित नेहरू के आगमन के पश्चात् 23 जुलाई को कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक इस प्रश्न पर विचार करने के लिए बुलाई गई। समाचार-पत्रों एवं अनेक व्यक्तियों ने यह आशा प्रगट की थी कि देश के शासन की बागडोर सँभालने के कारण, सबसे बड़ी एवं महत्त्व की संस्था होने के कारण कांग्रेस इस आंदोलन का भी नेतृत्व करने का निश्चय करेगी, किंतु कांग्रेस ने जो प्रस्ताव स्वीकृत किया, उससे भारत की राष्ट्रवादी जनता की आशाओं पर तुषारापात हो गया। कांग्रेस ने 2,500 शब्दों का प्रस्ताव स्वीकृत किया। जब करना कुछ नहीं होता, तब बातें बहुत बनानी पड़ती हैं। तदनुसार कांग्रेस के प्रस्ताव में भी बाबा आदम के ज़माने से ऐतिहासिक सिंहावलोकन करते हुए आज की समस्या से भागने का प्रयत्न किया गया है।

कांग्रेस के प्रस्ताव की मुख्य बातें हैं—

1. गोवा का आंदोलन प्रधानतः गोवावासियों को चलाना चाहिए।
2. भारत से बड़ी संख्या में सत्याग्रही न जाएँ।
3. गोवा की समस्या शांतिपूर्ण ढंग से ही सुलझानी चाहिए।
4. गोवा भारत का होकर रहेगा।

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

उपर्युक्त बातें एक-दूसरे की विरोधी ही नहीं अपितु तत्त्वत: निराधार एवं व्यवहारत: ग़लत हैं। गोवा का आंदोलन प्रधानत: गोवावासियों द्वारा चलाए जाने की माँग करने का अर्थ है कि प्रथमत: हम गोवावासियों को भारतीयों से अलग समझते हैं तथा दूसरे हमारी ऐसी धारणा है कि गोवावासियों ने इस आंदोलन में बहुत कुछ नहीं किया है। ये दोनों की बातें ग़लत हैं। गोवा भारत का अंग होने के कारण गोवा की आज़ादी भारत की आज़ादी का ही भाग है, इसलिए यह प्रधानत: भारतवासियों का, जो आज़ाद हो चुके हैं, कर्तव्य है कि वे अपने उन भाइयों की आज़ादी के लिए प्रयत्न करें, जो अभी भी पराधीनता के पाश में बँधे हैं। फिर गोवा के 6 लाख लोगों ने भी स्वतंत्रता आंदोलन में कम बलिदान नहीं किए। अभी तक यहाँ 3,000 से अधिक व्यक्ति गिरफ़्तार किए जा चुके हैं। इस अनुपात से भारत की आज़ादी के लिए 19 लाख लोगों को जेल की यात्रा करनी चाहिए थी। गोवा के बंधुओं ने बहुत मूल्य दिया है और अभी भी दे रहे हैं। बार-बार उनसे इस आंदोलन को प्रमुखतया चलाने की माँग करना उनके प्रति सरासर अन्याय है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गोवा के लोग और भी बलिदान दे सकते हैं, यदि उन्हें विश्वास हो जाए कि सरकार और जनता उनकी मदद पर रहेंगे। किंतु अभी तक का इतिहास तो उलटा ही रहा है। भारत सरकार ने उन्हें सदा धोखा दिया है।

गोवा की समस्या को शांति से सुलझाने का आग्रह और बड़ी संख्या में सत्याग्रह पर रोक, ये दोनों कैसे चल सकते हैं। सत्य तो यह है कि पुर्तगाल शांति की भाषा नहीं समझता। वह एक अधिनायकवादी हुकूमत है, जो गोवा ही नहीं, पुर्तगाल में भी आतंककारी उपायों से काम ले रही है। सत्याग्रह भी जैसा चल रहा है, वहाँ इकतरफ़ा शांति है। पुर्तगाली तो जघन्य अत्याचार करके अशांति उत्पन्न कर ही रहे हैं। यदि भारत सरकार पुलिस कार्रवाई नहीं करना चाहती तो जन-सत्याग्रह पर क्यों रोक लगाई जाती है। कांग्रेस इसका उत्तर नहीं दे सकती।

कांग्रेस का दावा कि गोवा भारत का अंग होकर रहेगा, एक सत्य का ही निरूपण है। आज इसकी घोषणा की आवश्यकता नहीं, आवश्यकता तो उस नीति निर्धारण की है, जिसके अनुसार गोवा भारत का अंग हो जाए। कांग्रेस ने इस दृष्टि से देश को इस समय बड़ा धोखा दिया है तथा गोवा आंदोलन के एक नेता के शब्दों में आंदोलन की पीठ में छुरा भोंकने का प्रयत्न किया है।

कांग्रेस के प्रस्ताव के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि आंदोलन की मुख्य ज़िम्मेदारी विरोधी दलों के ऊपर आ जाती है। यह तो ठीक है कि वे इस ज़िम्मेदारी का किसी-न-किसी प्रकार पिछले कुछ महीनों से निर्वाह करते आ रहे हैं, किंतु अब उसकी समुचित व्यवस्था करने की आवश्यकता है। दु:ख है कि विरोधी दलों की आज की आंतरिक अवस्था उन्हें ऐसा नहीं करने देती। दिल्ली में हाल ही में हुए सर्वदलीय

संसदीय सम्मेलन में इसका कुछ आभास मिला। यद्यपि कम्युनिस्ट पार्टी गोवा मुक्ति के लिए पुलिस कार्रवाई की माँग कर चुकी है, फिर श्री गोपालन[1] ने सार्वजनिक सभा में कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव का स्वागत किया। श्री अशोक मेहता और श्रीमती सुचेता कृपलानी भी कांग्रेस की प्रशंसा करने से नहीं चूकीं। स्पष्ट ही यह दोनों दलों की आंतरिक स्थिति का परिचायक है। कांग्रेस के सदस्य भी जनता के मन में यह भ्रम पैदा करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि सरकार की नीति ठीक है और कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव पास करने के बाद कुछ बचा नहीं।

कांग्रेस सदस्यों के यह कहने के बाद भी लोकसभा के अधिवेशन के प्रारंभ होने पर सभी दलों ने एक प्रदर्शन का आयोजन किया। कांग्रेस भी इसमें सम्मिलित हुई थी। कांग्रेस के अनेक संसद् सदस्यों ने बाहर आकर प्रदर्शनकारियों के समक्ष भाषण भी दिए। स्वभावत: प्रश्न उठता है कि यदि सरकार की नीति जनता की भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है तो फिर भी प्रदर्शन की आवश्यकता क्यों पड़ी? स्पष्ट ही शासन की नीति से विभिन्न दलों का संतोष नहीं हुआ है।

प्रदर्शनकारियों की भावनाओं का आदर करते हुए प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने अपनी गोवा-संबंधी नीति में कुछ परिवर्तन भी किया। उन्होंने घोषणा की है कि 8 अगस्त से भारत में पुर्तगाली दूतावास बंद कर दिया जाएगा। नेहरूजी ने यह भी स्वीकार किया है कि पुर्तगाल बातचीत करने के लिए तैयार नहीं। समझौते का मार्ग बंद होने पर भारत सरकार ने दूतावास बंद करने का निर्णय किया है। नेहरूजी के इस निर्णय पर पहुँचने के पश्चात् पुलिस कार्रवाई या शांतिपूर्ण जन-सत्याग्रह दो ही मार्ग रह जाते हैं। आश्चर्य का विषय है कि नेहरूजी इन दोनों के ही लिए तैयार नहीं। ऐसी स्थिति में गतिरोध उपस्थित हो जाता है। यदि भारत की जनता नेहरू सरकार पर और दबाव डाले तो उसे कोई सक्रिय क़दम उठाने पर मजबूर किया जा सकता है।

पुर्तगाली दूतावास बंद करने के उपरांत यह स्वाभाविक है कि भारत के गोवा स्थित दूत को भी वापस आना पड़े। उस समय गोवा में प्रवेश करने वाले भारतीय सत्याग्रहियों की देखभाल कैसे होगी, इस संबंध में भारत सरकार को कुछ-न-कुछ निर्णय कर लेना चाहिए।

गोवा आंदोलन को प्रधानत: जनता को ही चलाना पड़ेगा, वह भी विशेषकर विरोधी दलों को। इसके लिए यह आवश्यक है कि संपूर्ण आंदोलन का संचालन करने एवं उसमें सामंजस्य स्थापित करने के लिए अखिल भारतीय स्तर पर एक सर्वदलीय समिति का निर्माण किया जाए। खेद का विषय है कि अभी तक इस ओर कोई सक्रिय पग नहीं उठाया गया है। भारतीय जनसंघ के प्रधान पं. प्रेमनाथ डोगरा ने जो पत्र सभी

1. ए.के.गोपालन (1904-77) कम्युनिस्ट नेता, जो केरल के कासरगोड लोक सभा निर्वाचन क्षेत्र से सांसद थे।

दलों के नेताओं को लिखे, वे भी कुछ फलदायी नहीं हुए प्रतीत होते हैं।

वैसे स्थान-स्थान पर सर्वदलीय समितियाँ बन रही हैं। किंतु इनका निर्माण बिना किसी योजना के बेढंगे तौर पर हो रहा है। कहीं-कहीं तो अवांछित लोग भी जनता की भावना का लाभ उठाकर अपनी रोटी सेंकने के लिए आगे आ रहे हैं। फिर इन सर्वदलीय सम्मेलनों की नीति भी स्थान-स्थान पर अपनी ही है। कहीं वे 'पुलिस कार्रवाई' का प्रस्ताव स्वीकार कर लेती है तो कहीं पुलिस कार्रवाई का नाम भी लिया गया तो समिति के भंग होने की धमकी दी जा सकती है।

राजधानी में भी इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गई। यहाँ भी एक सर्वदलीय समिति कुछ लोगों ने बना ली। भारतीय जनसंघ को उसमें से जानबूझकर अलग रखा गया। किंतु जब जनसंघ ने स्वत: अपने बलबूते पर ही गोवा आंदोलन का ज़ोर-शोर से संचालन किया तो समिति के लोगों को अनुभव हुआ कि बिना जनसंघ की सहायता के राजधानी में कोई भी काम सफलतापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से नहीं किया जा सकता। समिति में सम्मिलित करने का तो नहीं, हाँ, कार्यक्रमों में जनसंघ का सहयोग लेने का अवश्य प्रयास किया गया। राष्ट्रीय आंदोलन होने के कारण जनसंघ की प्रादेशिक कार्यसमिति ने सभी कार्यक्रमों में सहयोग दिया।

किंतु संसद् के समक्ष प्रदर्शन के प्रश्न पर फिर अड़चन आ गई। जनसंघ की माँग थी पुलिस कार्रवाई, जिसके बिना प्रदर्शन बेमानी था। किंतु कांग्रेस और उससे प्रभावित अन्य दल इस माँग के लिए तैयार नहीं थे। फलत: जनसंघ ने अलग प्रदर्शन आयोजित करने का किंतु संसद् के द्वार पर सभी के साथ मिल जाने का निर्णय लिया।

इस प्रदर्शन के द्वारा जनसंघ ने यह सिद्ध कर दिया कि दिल्ली का बहुमत पुलिस कार्रवाई के पक्ष में है। तुलना अनावश्यक है, फिर भी कहना होगा कि जनसंघ के प्रदर्शनकारियों की संख्या बाक़ी सभी दलों के सम्मिलित प्रदर्शनकारियों से लगभग चौगुनी थी। जिस उत्साह के साथ जनसंघ ने यह प्रदर्शन आयोजित किया, वह साधारणत: चुनावों को छोड़कर और कभी देखने को नहीं मिलता।

प्रदर्शन से जनसंघ की दृष्टि से एक भ्रम दूर हो गया। दिल्ली नागरिक गोवा विमोचन समिति की बागडोर जनसंघ के भूतपूर्व सदस्य श्री बसंतराव[2] एवं कुँवरलाल गुप्त[3] के हाथों में थी। पिछले एक वर्ष में यह भ्रम पैदा करने का प्रयत्न किया गया है कि उसके पीछे जनसंघ का बहुत बड़ा वर्ग है तथा वे बाहर निकलकर जनसंघ को बड़ा धक्का लगा सकते हैं। किंतु जनसंघ के सदस्य तत्त्वनिष्ठ हैं, व्यक्तिनिष्ठ नहीं—यह अनेक बार सिद्ध हो चुका है। जब पं. मौलिचंद्र शर्मा[4] ने त्यागपत्र दिया, तब भी उनके साथ जनसंघ का

2. वसंतराव ओक, भारतीय जनसंघ के संस्थापक सदस्यों में एक।
3. कुँवरलाल गुप्त, दिल्ली विधानसभा के सदस्य (1953-57) थे ।
4. मौलिचंद्र शर्मा, भारतीय जनसंघ के कार्यवाहक अध्यक्ष (1954) थे।

कोई सदस्य नहीं गया और आज जबकि श्री बसंतराव ओक ने जनसंघ से बाहर निकलकर एक पृथक् संगठन गोवा जैसे प्रश्न पर खड़ा करने का प्रयत्न किया, तब भी जनसंघ के किसी भी सदस्य को वे अपने साथ नहीं ले जा सके। दिल्ली जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने जिस एकता और अनुशासनप्रियता का परिचय दिया है, वह सराहनीय है।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 1, 1955

□

52

गोवा, भारत और ब्रिटेन*

गोवा मुक्ति आंदोलन के कुछ ऐसे पक्ष इस बीच में सामने आए हैं, जिन पर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है।

पहला प्रश्न तो यह है कि जब भारत सरकार यह कहती है कि गोवा की समस्या अंतरराष्ट्रीय दबाव से हल होगी तो देशवासी यह जानना चाहेंगे कि इस समय अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में कितने और कौन से देश हैं, जो भारत के पक्ष में पुर्तगाल पर दबाव डालने के लिए तैयार प्रतीत होते हैं। हमें पता है कि गोवा में अहिंसक तथा निःशस्त्र भारतीय सत्याग्रहियों का दिनदहाड़े कत्ले-आम होने पर भी दुनिया के बड़े कहलाने वाले किसी भी राष्ट्र ने उसके विरुद्ध एक शब्द तक नहीं कहा। इतने दिन से गोवा आंदोलन चल रहा है, किंतु 'चार बड़ों' में से भला कोई भी भारत के पक्ष में कुछ बोला है? बर्मा, हिंदेशिया, पेकिंग में ही थोड़ी बहुत भारत के पक्ष में प्रतिक्रिया हुई है, किंतु पुर्तगाल पर उसका कोई प्रभाव पड़ने की संभावना नहीं।

इससे संबंधित दूसरा प्रश्न यह है कि भारत राष्ट्रमंडल का 'सम्मानित' सदस्य कहलाता है, परंतु दूसरी ओर हम देखते हैं कि गोवा के प्रश्न पर ब्रिटिश प्रतिक्रिया भारत के पक्ष में होने के बजाय उल्टा भारत के विरुद्ध ही प्रगट हुई है। ब्रिटेन के कुछ पत्रों ने तो गोवा के प्रश्न पर भारत के साथ न्याय करने के बजाय उल्टा पीठ में छुरा भोंका है और इतना ही नहीं तो ऐसा लगता है कि इन भारत-विरोधी पत्रों की प्रतिक्रिया बहुत कुछ ब्रिटिश सरकार की अप्रगट प्रतिक्रिया की झलक है।

कहने का तात्पर्य यह कि ब्रिटिश प्रेस ने तो अमरीका से भी अधिक गोवा के प्रश्न पर भारत के विरुद्ध विष-वमन किया है और मज़ा यह है कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में रहने

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

का पुरस्कार उसे क्या मिल रहा है? यही न कि गोवा में उसके न्यायोचित अधिकारों का अपहरण होने पर भी ब्रिटिश सरकार शरारतपूर्ण चुप्पी साधे बैठी रहती है और उसके समाचार-पत्र भारत के विरुद्ध विष-वमन करते रहते हैं तथा भारत के दुश्मनों की ग़लत बात की वकालत करते हैं।

क्या इस स्थिति से हमें कुछ शिक्षा नहीं लेनी चाहिए? क्या ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से संबंध रखने न रखने के प्रश्न पर भारत को गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार करने की आवश्यकता नहीं है?

गोवा समस्या का एक और पक्ष है, जिस पर भी विचार करने की आवश्यकता है। वह यह कि भारत के पक्ष में शीघ्र और सही रूप में विश्व का जनमत तैयार करने के लिए जिस व्यापक तथा तूफ़ानी प्रचार की अनिवार्य आवश्यकता है, उसके लिए भारत सरकार क्या कर रही है? हमें तो लगता है कि हमारा प्रचार-तंत्र इस दृष्टि से बड़ा शिथिल, अव्यवस्थित तथा असंगठित है।

हम समझते हैं कि यदि गोवा जैसी कोई समस्या चीन या रूस जैसे कम्युनिस्ट देश के सामने होती तो उसने केवल धुआँधार प्रचार के बल पर पुर्तगाली साम्राज्यवादियों के नाक में दम कर दिया होता। कोरिया में अमरीकी लोगों द्वारा कीटाणु युद्ध के विरुद्ध लाल चीन द्वारा धुआँधार प्रचार की कहानी अधिक पुरानी नहीं हुई है। कम्युनिस्ट राष्ट्रों से सीखने की बात यह है कि वे एक ग़लत बात के पक्ष में भी धुआँधार प्रचार करके उसे प्रबल सत्य के रूप में चित्रित कर देते हैं, जबकि दूसरी ओर हम लोग एक सही बात को भी प्रबल तथा प्रभावी रूप में दुनिया के सामने नहीं रख पाते। यह प्रचार की दुर्बलता भारत के लिए हमेशा महँगी पड़ती है। हम जानते हैं कि पाकिस्तान और उसके कश्मीर आक्रमण के मामले में भी हमारी यही दुर्बलता प्रगट हुई थी। राष्ट्र संघ में पाक प्रतिनिधि मोहम्मद जफरुल्ला अपने देश के ग़लत पक्ष में जितने प्रबल तथा प्रभावी तर्क दे सका, उतने प्रबल तर्क भारतीय प्रतिनिधि अपने देश के सर्वथा न्यायसंगत पक्ष में भी प्रस्तुत नहीं कर पाया। कहने का तात्पर्य यह कि प्रचार की हमारी यह दुर्बलता प्रायः प्रगट होती है। आज गोवा के प्रश्न पर भी हमें उसका कटु अनुभव हो रहा है।

अब एक अंतिम बात। गोवा मुक्ति आंदोलन में भाग लेने वाले निहत्थे तथा शांत सत्याग्रहियों पर पुर्तगालियों द्वारा मनमानी गोली वर्षा और अन्य अनेक अत्याचार[1] किए जाने के बाद भी भारत सरकार का शांति और अहिंसा की बराबर रट लगाना किस मनोवृत्ति का द्योतक है, पाठक स्वयं विचार करें। या तो यह कहना पड़ेगा कि नेहरू सरकार राष्ट्रीय अपमान नहीं समझती और इसलिए उसके प्रतिशोध के लिए कोई

1. अगस्त 1955 में गोवा विमोचन समिति की अपील पर गोवा मुक्ति के लिए पूरे देश से जुटे हज़ारों सत्याग्रहियों पर पुर्तगाली पुलिस ने तत्कालीन गवर्नर जनरल पाउलो बनार्ड गुएडेस के आदेश से गोली चलाई थी।

कार्रवाई नहीं करती या फिर कहना चाहिए कि उसे अपने कर्तव्य तथा दायित्व का रत्ती भर भी भान नहीं है।

दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि भारतीय जनता की उदारता तथा सहिष्णुता का सरकार अनुचित लाभ उठा रही है। हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यदि आज गोवा जैसी समस्या ब्रिटिश राष्ट्र के सामने होती और वहाँ की सरकार का नेहरू सरकार जैसा ढुलमुल यक़ीन तथा दुर्बल रवैया होता, तो वह सरकार वहाँ दो दिन भी टिक नहीं सकती थी। उसका अवश्यमेव पतन होता, किंतु यह भारतीय जनता की उदारता या राजनीतिक चेतना की कमी का ही परिणाम है कि नेहरू सरकार गोवा संबंधी अपनी दुर्बल नीति के बावजूद सुस्थिर है।

गोवा के प्रश्न पर पाकिस्तान के राजनीतिज्ञों तथा पत्रों की प्रतिक्रिया भारत-विरोधी है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। एकाध पत्र को छोड़कर अधिकांश पत्रों ने नेहरू सरकार की ही आलोचना की है और गोवा के साथ कश्मीर का प्रश्न जोड़कर भारत की निंदा की है। पाकिस्तान रेडियो ने भी इधर गोवा-सत्याग्रह के संबंध में जो समाचार दिए हैं, वे भारतीय समाचारों पर आधारित न होकर पुर्तगाल सरकार की झूठी तथा विषाक्त रिपोर्टों पर आधारित हैं। इसे पाकिस्तान की भारत विरोधी भावना का प्रमाण नहीं तो और क्या समझा जाए?

दूसरी ओर पाकिस्तान के एक प्रमुख राजनीतिज्ञ श्री सुहरावर्दी[2] ने नेहरूजी को गोवा सत्याग्रह बंद कर देने का परामर्श दिया है, क्योंकि उनका तर्क यह है कि उपनिवेशवाद ''बाहरी आक्रमण से समाप्त नहीं किया जा सकता।'' इतना ही नहीं तो आपने यह भी कहने की हिम्मत की है, ''यदि नेहरू सरकार गोवा मुक्ति के लिए भारतीय सत्याग्रहियों का गोवा प्रवेश उचित समझती है तो क्या वह पाकिस्तानियों को कश्मीर मुक्ति के लिए कश्मीर में प्रवेश करने की अनुमति देगी।''

यहाँ हम यह मानते हुए भी कि श्री सुहरावर्दी का उपर्युक्त सुझाव सर्वथा निराधार तथा अनर्गल है, यह कहना चाहते हैं कि नेहरू सरकार को पाक प्रेस तथा राजनीतिज्ञों की शरारतों और भारत विरोधी बातों की ओर दुर्लक्ष्य नहीं करना चाहिए और उनका उपयुक्त उत्तर देना चाहिए।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 29, 1955

□

2. हुसैन शाहिद सुहरावर्दी (1892-1963) ब्रिटिश भारत में बंगाल प्रांत के मुख्यमंत्री थे और पाकिस्तान के पाँचवें प्रधानमंत्री चुने गए।

53

आर्थिक नाकेबंदी गोवा समस्या का हल नहीं*

दीनदयालजी ने अखिल भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा की बैठक तथा पूर्वांचल अधिवेशन से पूर्व कलकत्ता के ब्रॉडवे होटल में आयोजित पत्रकार सम्मेलन में यह वक्तव्य दिया।

जहाँ तक गोवा सत्याग्रह का संबंध है, जनसंघ सर्वदलीय गोवा विमोचन समिति[1] की योजना के साथ सहयोग कर रहा है। 15 अगस्त की घटनाओं के पश्चात् यह अनुभव किया जाने लगा कि भारतीय शासन पर प्रबल भारतीय जनमत का दबाव डाला जाए, जिससे उसे अपने राष्ट्रीय कर्तव्य की ओर पग बढ़ाने के लिए बाध्य होना पड़े। हम अनुभव करते हैं कि अब तक इस संबंध में शासन का रुख़ अत्यंत ही निराशाजनक रहा है। इसके कारण गोवा-संघर्ष अनाथ रह गया है। आर्थिक नाकेबंदी तथा लगाए गए कुछ प्रतिबंधों के कारण गोवा की जनता की कठिनाइयाँ तो बुरी तरह बढ़ेंगी, किंतु पुर्तगाल सरकार किंचित भी प्रभावित नहीं होगी। यदि आर्थिक नाकेबंदी के साथ-साथ 'पुलिस कार्रवाई' नहीं की जाती तो इस बात की भी आशंका है कि कहीं गोवा और पाकिस्तान में विभिन्न प्रकार के संबंध सूत्र स्थापित न हो जाएँ। इस प्रकार स्थिति और भी बिगड़ जाएगी। पंडित नेहरू की इस घोषणा से कि वे गोवा में शक्ति का प्रयोग नहीं करेंगे, पुर्तगाल को हिंसक उपायों के द्वारा सत्याग्रह आंदोलन को कुचलने की तथा बर्बरता प्रदर्शित करने की खुली छूट मिली है। भारत का कोई भी व्यक्ति समस्याओं को सुलझाने के लिए

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं देखें परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

1. गोवा विमोचन समिति की स्थापना गोवा को पुर्तगालियों से मुक्त कराने के लिए चलाए जा रहे सत्याग्रह अभियान को जारी रखने और सत्याग्रहियों को सहायता उपलब्ध कराने के लिए जून 1954 में महाराष्ट्र में हुई थी। यह एक सर्वदलीय समिति थी।

शांति का मार्ग त्यागना नहीं चाहता, किंतु कोई भी अनुशासन अधिक समय तक निरंतर हिंसक कार्य सहन नहीं कर सकता। वास्तव में पुलिस कार्रवाई के द्वारा अधिक शांति की स्थापना हो सकेगी, क्योंकि उसके कारण जीवन तथा जन-कल्याण की इतनी क्षति नहीं होगी, जितनी पुर्तगाली बर्बर अत्याचारों के कारण हो रही है।

विश्वशांति और गोवा

सबसे चिंताजनक स्थिति यह है कि गोवा विश्व शांति के लिए ख़तरा बनता जा रहा है। उसे तुरंत तटस्थ रूप प्राप्त होना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह अत्यंत दुःखद बात है कि पश्चिमी शक्तियों ने एक ऐसा रुख़ अंगीकर कर रखा है, जिसके कारण भारतीयों की सद्भावना प्रजातांत्रिक देशों की ओर से कम होती जा रही है। परोक्ष के समर्थकों को प्रोत्साहन प्राप्त हो रहा है।

उद्देश्य प्राप्ति के निमित्त स्वजीवन की आहुति चढ़ाने वाले वीरों के प्रति हम अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं और निश्चय करते हैं कि जब तक लक्ष्य प्राप्त नहीं होता, निरंतर अग्रसर होते रहेंगे। मैं जनता से अपील करता हूँ कि वह मुक्त हस्त से शहीदों के परिवारों की सहायता करे। सरकार का भी कर्तव्य है कि वह शहीदों के परिवारों को उसी प्रकार पर्याप्त सहायता प्रदान करे, जिस प्रकार राजनीतिक पीड़ितों को करती आई है।

यह अत्यंत खेद का विषय है कि जबकि समस्त राष्ट्र देश की अखंडता तथा एकता के लिए जूझ रहा है, उस समय कुछ लोग दक्षिण में तथा उत्तर में भी देश को छिन्न-भिन्न करने का प्रयास कर रहे हैं। अकाली पंजाबी सूबे के आवरण में सिख राज्य की माँग कर रहे हैं। वे विभाजन के पूर्व के दिनों की भाँति मुसलिम लीग के पद-चिह्नों का अनुसरण कर रहे हैं। द्रविड़ कषगम द्वारा चलाया गया ध्वज जलाने का आंदोलन तथा नेफा में नागाओं के उपद्रव[2] इसी प्रकार के घातक आंदोलन हैं। भारत के राष्ट्रीय तत्त्व इन अराष्ट्रीय मनोवृत्तियों को वहन नहीं कर सकते। पंजाब में कांग्रेस सरकार जनता का विश्वास खो चुकी है।

गोली चलाना अनुचित

अभी हाल में पटना तथा नवादा में छात्रों पर तथा बंबई में पुर्तगाली दूतावास के समक्ष प्रदर्शनकारियों पर पुलिस द्वारा की गई गोलीवर्षा अत्यंत निंदनीय है। प्रबल जनमत के कारण दिनांक 11, 12 तथा 13 अगस्त को हुई कांडों की न्यायालीय जाँच के निमित्त

2. भारत की आज़ादी के बाद से ही नागा क्षेत्र आसाम और नॉर्थ-ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी (NEFA) के बीच विभाजित रही। अलग नागा राज्य की माँग को लेकर नागा नेता फिजो के नेतृत्व में उत्तर-पूर्व में व्यापक हिंसा हुई, तत्पश्चात् 1963 में अलग नागालैंड राज्य का जन्म हुआ। इसे अब नगालैंड कहा जाता है।

आयोग नियुक्त करने के लिए बिहार सरकार को बाध्य होना पड़ा है। नवादा-कांड की जाँच होना आवश्यक है।

पुलिस के द्वारा आजकल गोली कांड कोई अनहोनी बात नहीं है। यद्यपि उत्तेजित भीड़ को अनुशासित रखने के लिए अन्य अनेक उपाय अपनाए जा सकते हैं, तथापि पुलिस गोली चलाने की अभ्यस्त हो गई है और इसके कारण अनेक दुर्घटनाएँ होती हैं। इस प्रकार की दुर्घटनाओं की पुनरावृत्ति इस ओर संकेत करती है कि पुलिस विभाग की भी सूक्ष्म जाँच होने की आवश्यकता है। हमें अनुभव करना चाहिए कि स्वतंत्र भारत में जनजीवन के साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। इंदौर अधिवेशन में जनसंघ ने न्यायिक कमीशन की नियुक्ति की माँग की थी। उपर्युक्त तथा अन्य घटनाएँ इस प्रकार के कमीशन की माँग के औचित्य को और भी प्रमाणित करती हैं।

बाढ़ पीड़ितों की सहायता

पूर्वी क्षेत्रों में बाढ़ों के कारण जनधन की भयंकर क्षति हुई है। जनसंघ ने पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार में अपने सहायता केंद्र प्रारंभ किए हैं।

—पाञ्चजन्य, अगस्त 29, 1955

□

54

पुलिस कार्रवाई वर्तमान ज़्यादतियों से तो अधिक शांतिपूर्ण होगी*

कलकत्ता में 22 अगस्त को पत्रकारों से दीनदयालजी की बातचीत।

गोवा के विरुद्ध प्रस्तावित आर्थिक प्रतिबंध केवल गोवा के लोगों को प्रतिकूल ढंग से प्रभावित करते हैं और पुर्तगाल सरकार को नहीं।

यदि इसके साथ-साथ पुलिस कार्रवाई नहीं होती है, तो आर्थिक प्रतिबंधों का परिणाम भी गोवा और पाकिस्तान के बीच विभिन्न संबंधों की स्थापना के रूप में सामने आ सकता है। हमारी सरकार की नीति ने केवल गोवा संघर्ष को अलग-थलग करने में मदद दी है। हमारी ओर से चलाए जा रहे वर्तमान सत्याग्रह और पुर्तगालियों की ओर से की जा रही वर्तमान क्रूरता की तुलना में पुलिस कार्रवाई अधिक शांतिपूर्ण और जीवन का कम विनाश करने वाली होगी।

जहाँ तक पुर्तगाल का सवाल है, भारत के लोग इसके साथ एक हमलावर के सिवाय किसी भी अन्य संबंध के लिए तैयार नहीं हैं, जिसे खदेड़ दिया जाना चाहिए।

गोवा के संबंध में भारत सरकार की नीति कतई संतोषजनक नहीं रही है। हालाँकि इस देश में किसी को भी इस मुद्दे को सुलझाने के लिए शांतिपूर्ण तरीक़ों पर आपत्ति नहीं है, फिर भी हम महसूस करते हैं कि सरकार कार्रवाई का तरीक़ा प्रस्तुत कर सकती है। वास्तव में पुर्तगालियों द्वारा इस तरह बड़े पैमाने पर हत्याओं के लिए पं. नेहरू द्वारा

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

बल प्रयोग नहीं करने के उनके दृढ़ संकल्प की अवांछित पुनरावृत्ति ही ज़िम्मेदार है। पं. नेहरू ने जिन सत्याग्रहियों को गोवा सीमा पार करने की अनुमति दी, उनके प्राणों की क्षति की ज़िम्मेदारी उन्हें वहन करनी होगी।

समय आ गया है, जब भारत सरकार अपनी नीति में परिवर्तन करे। हम लंबे समय से पुलिस कार्रवाई की माँग कर रहे हैं, और वर्तमान में कांग्रेस को छोड़कर सभी दल इस माँग के पक्ष में एकजुट हैं। एक लोकतांत्रिक देश में उचित ढंग से कार्य न करना सरकार को भारी पड़ेगा।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 29, 1955
(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

55

कांग्रेस का गोवा संबंधी प्रस्ताव गोवा मुक्ति आंदोलन पर भीषण आघात*

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति द्वारा पारित गोवा संबंधी प्रस्ताव की आलोचना करते हुए नागपुर से दीनदयालजी का वक्तव्य।

राष्ट्र विरोधी नीति

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने दिल्ली के अपने अनौपचारिक अधिवेशन में जो प्रस्ताव स्वीकृत किया है, वह भारत स्थित पुर्तगाली बस्तियों के मुक्ति आंदोलन पर न केवल एक महान् प्रहार है वरन् उसे विध्वंस करने का प्रयत्न भी है। कांग्रेस ने इस विषय में नेतृत्व करना तो दूर, यह भी अनुभव नहीं किया कि सत्याग्रह एक सामूहिक आंदोलन का स्वरूप धारण कर चुका है, जिसे सफलता प्राप्त होने तक चालू रखना होगा।

परंतु अपनी वर्तमान नीति से कांग्रेस राष्ट्र का महान् अहित कर रही है। निष्क्रियता की नीति अपनी भूमि पर जमे विदेशी साम्राज्यवाद के समक्ष राष्ट्रविरोधी नीति भी हो सकती है।

महामिथ्या को जीवनदान

कांग्रेस नेता बहुत पहले से एक असत्य, मिथ्या को पुनः जीवित करना चाहते हैं। वह मिथ्या है कि गोवा की जनता भारत से अलग है। कांग्रेस नेता क्या इसी तरह दमन व दीव की जनता के अस्तित्व पर भी विश्वास करते हैं और क्या वे विश्वास करते हैं

---

* देखें परिशिष्ट IX, पृष्ठ संख्या 365 एवं परिशिष्ट X, पृष्ठ संख्या 368।

कि स्वतंत्रता का संग्राम इनमें से प्रत्येक जनता पृथक्-पृथक् करे। वास्तव में गोवा, दमन व दीव में रहने वाली जनता हमारे देश का अक्षुण्ण भाग है। सब भारतीय हैं और वर्तमान संग्राम हमारे स्वाधीनता संग्राम का भाग है।

राष्ट्रीय कांग्रेस में राष्ट्र की समुचित अनुभूति का जो अभाव है, उसी ने गोवा की समस्या को जटिल बनाया है और कांग्रेस तथा सरकार द्वारा उसके प्रति प्रदर्शित अधमनेपन के लिए वही उत्तरदायी है।

प्रधानमंत्री की कर्तव्य-अवहेलना

अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने बांडुंग[1] राष्ट्रों से मुक्ति आंदोलन का समर्थन करने का अनुरोध किया है। प्रधानमंत्री जब बांडुंग के लिए प्रस्थान कर रहे थे, जनसंघ ने उनसे अनुरोध किया था कि बांडुंग परिषद् में गोवा का प्रश्न उपस्थित करें। प्रधानमंत्री ने उस समय हमारे परामर्श की उपेक्षा की। अखिल भारतीय कांग्रेस में इतना साहस होना चाहिए था कि वह प्रधानमंत्री को उनकी इस अवहेलना के लिए फटकारती।

भारतीय जनसंघ की माँग

भारतीय जनसंघ का सुनिश्चित मत है कि गोवा की समस्या पुलिस कार्रवाई से ही हल हो सकती है और यह करनी चाहिए। सत्याग्रह का अवलंबन केवल लोकमत जाग्रत् करने तथा सरकार पर अपने उत्तरदायित्व का दबाव डालने के लिए किया गया था।

नई स्थिति, नया कौशल

गोवा सीमांत भारत सरकार द्वारा बंद कर दिए जाने के उपरांत अनिवार्य हो गया है कि वर्तमान सत्याग्रह का स्थान व उसकी शैली परिवर्तित की जाए। वर्तमान संग्राम चालू रखने वाले समस्त दलों से मेरा अनुरोध है कि इस बारे में एक राष्ट्रीय नीति निर्धारित करें।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 12, 1955

□

1. 18-24 अप्रैल, 1955 को बांडुंग (इंडोनेशिया) में एशियाई-अफ्रीकी देशों का शिखर सम्मलेन हुआ था, जिसमें शामिल कुल 29 राष्ट्रों ने गुट-निरपेक्ष आंदोलन की ओर महत्त्वपूर्ण क़दम उठाए थे।

56

राज्य पुनर्गठन आयोग का प्रतिवेदन

राज्य पुनर्गठन आयोग[1] का प्रतिवेदन केंद्रीय सरकार को दे दिया गया है। विभिन्न राज्यों के संबंध में इसके क्या प्रस्ताव हैं, उस संबंध में अटकलें तो पहले से भी बहुत लगाई गई हैं, किंतु अब जो समाचार प्रकाशित हुए हैं, उनमें बहुत कुछ एकरूपता है। अत: यह माना जा सकता है कि वे विश्वसनीय हैं। उनके पूर्णत: अथवा अंशत: सत्य होने का ठीक-ठीक पता तो प्रतिवेदन के आधिकारिक प्रकाशन के उपरांत ही लगेगा, किंतु मंत्रिमंडल में विचार होने के उपरांत ही अत्यंत गोपनीय समझे जाने वाले लेख के संबंध में भी जो बातें बाहर आई हैं, यदि वे योजनानुसार नहीं हैं तो इस बात का बुरा सबूत है कि हमारे बड़े-बड़े शासनारूढ़ व्यक्ति भी पेट में बात रखने की क्षमता नहीं रखते।

यह तो सत्य है कि विभिन्न प्रांतों की, जिन्हें ग़लती से राज्य कहा जाता है, सीमाओं में फेरफार करने से भारत की राष्ट्रीय विरासत और उसकी समस्याओं में कोई फेरफार नहीं पड़ता। जो भी वर्गीकरण होगा, वह प्रशासनिक दृष्टि से ही होगा, भारत की एकता पर वह प्रभाव नहीं डाल सकेगा। फिर भी आज के संवैधानिक ढाँचे में भारतीय राजनीति पर होने वाले परिणामों को आँख से ओझल नहीं किया जा सकता। विशेषकर इसलिए कि जितनी भी माँगें आयोग के समक्ष रखी गईं और जो-जो आंदोलन किए गए, उनमें से अधिकांश के मूल में किसी-न-किसी गुट के राजनीतिक स्वार्थ निहित रहे हैं। तटस्थ होकर विचार करने वालों का प्राय: अभाव ही रहा है। जिस प्रकार के व्यक्तियों द्वारा आयोग का गठन हुआ उनसे हम यह अपेक्षा कर सकते हैं कि उन्होंने

---

1. 22 दिसंबर, 1953 को न्यायाधीश फ़जल अली की अध्यक्षता में पहले राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन हुआ। आयोग ने 30 सितंबर, 1955 को अपनी रिपोर्ट सौंपी, इस आयोग के तीन सदस्य-जस्टिस फ़जल अली, हृदयनाथ कुंजरू और के.एम. पाणिक्कर थे। आयोग ने अपनी अनुशंसा में नए राज्य गठन में भाषा को भी एक आधार माना।

प्रचलित आंदोलनों को ध्यान में न रखकर संपूर्ण देश की समस्याओं का आकलन करते हुए निष्पक्ष रूप से विचार किया होगा। हमारी अपेक्षा कहाँ तक पूर्ण हुई है, यह तो रिपोर्ट के प्रकाशन पर ही पता चलेगा।

आयोग के अभिस्ताव कहाँ तक और कितने व्यवहार में लाए जाएँ, यह दूसरा प्रश्न है। इस संबंध में भी अभी कुछ कहना कठिन है। भारत शासन ने भी अपनी नीति के संबंध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा अपितु जो कुछ समय-समय पर कहा जा रहा है, वह मन की एक डावाँडोल स्थिति ही बताता है। प्रारंभ में केंद्रीय गृहमंत्री, पं. गोविंद बल्लभ पंत ने यह संकेत दिया था कि एक अति उच्च शक्तिसंपन्न आयोग होने के कारण उसकी सिफ़ारिशें पूरी-की-पूरी मान ली जाएँगी। कांग्रेस जनों को भी यह आदेश दिया गया था कि वे इस प्रकार का वातावरण देश में बनाएँ। यह भी बताया जाता था कि रिपोर्ट के प्रकाशित होने के साथ ही सरकार उसमें से कितना मान्य करेगी, यह भी बता दिया जाएगा तथा अपने निर्णयों को जल्दी से जल्दी क्रियान्वित भी कर दिया जाएगा। थोड़े दिनों बाद प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने रीवा में यह कहा कि रिपोर्ट पर राज्य विधानसभाओं का भी मत लिया जाएगा। इसको अब फिर दुहरा दिया गया है। कुछ समय के पश्चात् नेहरूजी ने यह भी कहा कि आयोग के जो अभिस्ताव सर्वसम्मत होंगे, उन्हें सरकार तुरंत मान लेगी। अब नेहरूजी का कहना है कि रिपोर्ट पर राज्य सरकारों और विधान मंडलों की राय ली जाएगी। उनका विचार कर केंद्रीय मंत्रिमंडल अपना निर्णय लेगा। उसे अंतिम फैसले के लिए संसद् के समक्ष उपस्थित किया जाएगा। जहाँ तक संसद् का प्रश्न है, वह तो सर्वप्रभुतासंपन्न संस्था है तथा देश की राजनीति के नक्शे की पुनर्रचना बिना उसकी स्वीकृति के हो ही नहीं सकती। किंतु राज्य सरकारों और विधानमंडलों को अब चित्र में लाना हितावह नहीं है। हमें विदित है कि अनेक राज्य सरकारों ने आयोग के समक्ष साक्षी दी है तथा कई विधानमंडलों ने इस संबंध में प्रस्ताव भी स्वीकार किए हैं। यह भी स्पष्ट है कि विभिन्न प्रांतों की पुनर्रचना का परिणाम वहाँ की तथा पड़ोस के प्रांतों की सरकारों और विधानमंडलों पर कुछ-न-कुछ पड़ेगा ही। ऐसी परिस्थिति में उसने किसी भी प्रकार के मत की माँग करना उचित नहीं। हाँ, केंद्र में संसद् ने न तो अभी तक कोई मत दिया है और न कभी राज्यों को लेकर विचार ही किया है, वहाँ अवश्य ही सार्वदेशिक दृष्टि से विचार की अपेक्षा की जा सकती है।

पंडित नेहरू ने हाल ही में अपने मद्रास के भाषण में यह भी कहा है कि लोग रिपोर्टों पर अपने विचार एवं अपनी प्रतिक्रिया अवश्य व्यक्त करें, किंतु विचार ठंडे दिमाग़ से हो। नेहरूजी के कथन से किसी का मतभेद नहीं हो सकता। यह सारा प्रजातांत्रिक अधिकार भी है कि हम किसी भी प्रस्ताव पर विचार करें और वह होगा भी। किंतु क्या नेहरूजी ने केवल इस लोकतंत्रीय अधिकार के समर्थन में यह मत व्यक्त किया है अथवा

उनका कोई दूसरा हेतु है। ऐसा ज्ञात होता है कि नेहरूजी आयोग के अभिस्तावों को फेरफार के साथ मानना चाहते हैं। फेरफार होना चाहिए या नहीं, इस संबंध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। किंतु जो कुछ पिछले वर्षों में घटा है, आंध्र के निर्माण के लिए जो विध्वंस की लीला हुई तथा जो धमकियाँ आज भी दी जा रही हैं, उनको देखते हुए यह प्रशासनिक कार्यकुशलता का परिचायक नहीं कि विभिन्न क्षेत्रों के भविष्य के संबंध में अनिश्चितता की स्थिति ज़्यादा रखी जाए। जैसा कि नेहरू ने स्वयं कहा है कि कोई भी निर्णय ऐसा नहीं हो सकता, जो सबको खुश कर सके, विशेषकर जबकि कुछ निहित स्वार्थ हों ऐसी दशा में प्रतिक्रियात्मक तत्त्वों को छूट देना तथा उन्हें खुलकर खेलने देने की अवस्था उत्पन्न होने देना उचित नहीं। आवश्यकता तो यह है कि अभिस्तावों के संबंध में जल्दी-से-जल्दी निर्णय करके उनको कार्यान्वित किया जाए।

गो-हत्या निषेध आंदोलन और बिहार सरकार

गो-हत्या बंदी के प्रश्न पर बिहार में जो सत्याग्रह प्रारंभ हुआ था, वह पाँच दिन बाद ही बिहार के पशुपालन मंत्री श्री दीपनारायण सिंह के आश्वासन पर वापस ले लिया गया। अपने वचन के अनुसार गो-हत्या निषेध का विधेयक तो विधानसभा में प्रस्तुत हो गया है, यद्यपि एक दिन चर्चा करने के आगे उसकी प्रगति नहीं हो पाई। वचन यह भी दिया गया था कि आंदोलन के सिलसिले में गिरफ़्तार सभी सत्याग्रही छोड़ दिए जाएँगे। यद्यपि संत प्रभुदत्त ब्रह्मचारी[2] और लाला हरदेव सहाय जी[3] के विरुद्ध जो निष्कासन आदेश था, उसे शासन ने वापस लेकर उन्हें मुक्त कर दिया है, किंतु शेष सत्याग्रही अभी भी जेल के सींखचों में बंद हैं। गो-हत्या बंदी का नाम लेते हुए भी उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए आंदोलन करने वालों के साथ जेल में वह दुर्व्यवहार हो, यह बड़ा ही लज्जास्पद है। बिहार सरकार यदि चाहती है कि प्रांत में असंतोष न बढ़े तो सत्याग्रहियों को अविलंब मुक्त करे तथा उपस्थित विधेयक को तुरंत ही पारित करे।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 10, 1955

□

---

2. प्रभुदत्त ब्रह्मचारी (1885-1990) ने गो-वध निषेध को लेकर 1966 में 'सर्वदलीय गोरक्षा महाअभियान समिति' की स्थापना की। इनके नेतृत्व में 7 नवंबर, 1966 को संसद् पर लाखों लोगों ने ऐतिहासिक प्रदर्शन किया था। 1967 में गोहत्या के प्रश्न पर 80 दिन अनशन किया था।
3. लाला हरदेव सहाय (1892-1962) स्वदेशी तथा गोरक्षा के लिए समर्पित स्वाधीनता सेनानी, गोहत्या पर प्रतिबंध न लगाए जाने से असंतुष्ट लालाजी ने गोरक्षा आंदोलन का सूत्रपात करते हुए 1953 में प्रयाग के कुंभ में 'भारत गो सेवक समाज' की स्थापना की व 'गोधन' पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया।

57

ईसाई मिशनरी और शिक्षा संस्थाएँ

भारत में बहुत सी शिक्षा संस्थाएँ ईसाई मिशनों के द्वारा चलाई जा रही हैं। जो लोग ईसाई धर्म से किसी भी प्रकार का प्रेम नहीं रखते अथवा ईसाई धर्म प्रचारकों की गतिविधि को राष्ट्र के लिए हानिकारक मानते हैं, वे भी बहुधा ईसाई धर्म प्रचारकों द्वारा चलाई गई शिक्षा संस्थाओं एवं उनके शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयत्नों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हैं। इतना ही नहीं तो आज के अनेक पढ़े-लिखे व्यक्ति तथा देशभक्त कहे जाने वाले एवं भारतीय संस्कृति के प्रेमी भी अपने बच्चों को शिक्षा के लिए इन ईसाई स्कूलों में भेजते हैं। उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री डॉ. संपूर्णानंद भी ऐसे ही व्यक्तियों में से हैं। उन्होंने हाल ही में कानपुर में फातिया कॉन्वेंट के फातिया हॉल का उद्घाटन करते हुए ईसाई मिशनों की शिक्षा के क्षेत्र में की गई सेवाओं की प्रशंसा की और अपेक्षा व्यक्त की कि वे विद्यार्थियों की तैयारी करवाते समय देश की विशेष परिस्थितियों को ध्यान में रखेंगे।

विदेशी मिशनरियों द्वारा शिक्षा संस्थाओं की स्थापना धर्म प्रचार एवं धर्म परिवर्तन के उद्देश्य से की जाती है या नहीं, हम इस विवाद में न पड़ते हुए मूलतः इस प्रश्न का विचार करें। किसी भी बाहरी शक्ति का हस्तक्षेप देश की आंतरिक स्थिति एवं उसकी आधारभूत संस्थाओं में अनुचित माना जाता है। हम अपनी राजनीति पर किसी का हस्तक्षेप एवं प्रभाव नहीं सहन कर सकते, क्योंकि वह ग़ुलामी होगी। आर्थिक क्षेत्र में भी हम बाहरी सहायता एवं पूँजी तभी तक स्वीकार करते हैं, जब तक कि उसके साथ किसी प्रकार के राजनीतिक सूत्र न हों। बिना शर्त के भी आने वाली पूँजी भविष्य के लिए भय का कारण बन जाती है। हाल ही में भारत सरकार ने न्यूयॉर्क टाइम्स को भारत में अपना संस्करण प्रकाशित करने की अनुमति देने से इनकार कर दिया। यह सब इसलिए किया जाता है कि हम अपने जनमत को बाहर से प्रभावित नहीं होने देना चाहते। उपर्युक्त अनेक प्रकार की सावधानी बरतते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में विदेशियों को अधिकार देना कहाँ तक ठीक कहा जा सकता है? वास्तव में तो शिक्षा के द्वारा ही संपूर्ण समाज के ढाँचे और उसकी गतिविधियों का नियंत्रण होता है। मैकाले ने हमारी

शिक्षा पद्धति में परिवर्तन करके ही समाजजीवन में परिवर्तन कर दिया। फिर अपरिपक्व मस्तिष्क पर विदेशी शक्तियों को प्रभाव डालने को अनुमति देना जड़ को काटने की स्वतंत्रता देना ही है।

संभावित संकट के साथ ही यह किसी भी देश के लिए सबसे लज्जा की बात है कि वह अपने बच्चों की उचित शिक्षा का प्रबंध न कर सके और उसके लिए दूसरों का मुँह ताके। बच्चा भूखा होने पर भी यदि पड़ोसी के घर खाना खा ले तो माँ-बाप बुरा मानते हैं। फिर हम बच्चों के ज्ञान की भूख वे चाहे जैसे जाकर एवं उच्छिष्ट खाकर मिटावें, इसके लिए आज उन्हें खुली छूट दे रहे हैं। सच तो यह है कि हम अपने बच्चों को खोते जा रहे हैं।

शासन की नीति इस संबंध में अत्यंत विघातक है। उत्तर प्रदेश शासन ने वृंदावन म्युनिसिपल इंटर कॉलेज की बाँट इसलिए बंद कर दी कि वहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक वर्ग लगा था। आज विद्यार्थियों को रोका जाता है कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शाखाओं में न जाएँ। किंतु वह ईसाई मिशनरियों को स्कूलों में काम करने की छूट ही नहीं देती, बल्कि उन्हें सब प्रकार का बढ़ावा देती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ इसी देश की संस्था है तथा वह अपने स्वयंसेवकों में देशभक्ति का निर्माण करती है। अधिक-से-अधिक उसके विरुद्ध यही कहा जा सकता है कि सरकार को शंका है, जो कि निर्मूल है, कि वह कांग्रेस के विरुद्ध है। यदि शंका सही भी हो तो हमें समझना होगा कि एक वह संस्था है, जो लोगों को कांग्रेस के विरुद्ध करती है तथा दूसरी देश के विरुद्ध। यदि आज कांग्रेस शासन देश की चिंता न करके दल ही की चिंता करता है तो कहना होगा कि वह देश के लिए काँटे बो रहा है। आवश्यकता है कि सरकार शिक्षा में इन मिशनरियों को हस्तक्षेप न करने दे। राज्य पुनर्गठन आयोग के संबंध में अनेक प्रतिक्रियाएँ आ रही हैं। बिहार के संसद् सदस्य श्री जफर इमाम ने भी अपना वक्तव्य दिया है, जो विचारणीय है। उनका कहना है कि पूर्णिया ज़िले के किशनगंज सब डिवीजन को बंगाल में मिलाने के प्रस्ताव से बिहार के मुसलमानों को बहुत धक्का पहुँचा है। यदि यह क्षेत्र बंगाल में गया तो पूर्वी बंगाल के शरणार्थी वहाँ आकर उनका रहना मुश्किल कर देंगे।

प्रांतों की रचना में यदि हिंदू और मुसलमान का विचार करना पाकिस्तान निर्माण के लिए ज़िम्मेदार मनोवृत्ति का ही परिचायक है तो यही कहा जा सकता है कि जफर मियाँ अभी भी मुसलिम लीग के प्रभाव में हैं। यह संकेत है कि मुसलमान किस ओर देखता है और ऐसी बातों को तनिक भी बढ़ावा दिया तो भविष्य के लिए हम नया संकट मोल ले लेंगे।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 24, 1955

□

58

पाकिस्तान से वार्त्तालाप करना व्यर्थ

दीनदयालजी द्वारा जवाहरलाल नेहरू को लिखा गया स्मरण-पत्र।

पाकिस्तान के प्रधानमंत्री श्री मुहम्मद अली के साथ वार्त्ता नेकोवाल की घटना के पश्चात् उत्पन्न दु:खांत वातावरण में हो रही है। भारत के अप्राकृतिक विभाजन से उत्पन्न समस्याओं के विषय में समझौता-वार्त्ता का यह पहला अवसर नहीं है। कश्मीर, निष्कांत संपत्ति तथा पूर्वी बंगाल आदि के विषय में पहले भी समझौते हुए हैं। परंतु पाकिस्तान ने उनका उपयोग केवल अधिक माँग करने के ही लिए किया है। पूर्वी बंगाल के हिंदुओं के संबंध में स्वर्गीय पाक-प्रधानमंत्री श्री लियाक़त अली के साथ जो समझौता हुआ था और जिसके विरोधस्वरूप स्वर्गीय डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने मंत्रिमंडल से त्यागपत्र[1] दिया था, उसका पालन पाकिस्तान ने जिस भाँति किया है, उसका उदाहरण पूर्वी-बंगाल के हिंदुओं के सतत विशाल परिभाग में निष्कासन है। अल्पसंख्यकों की पूर्ण सुरक्षा के अपने वादे का पाकिस्तान ने पालन नहीं किया। इसके विपरीत, पूर्वी

1. 8 अप्रैल, 1950 को नई दिल्ली में भारत के प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू और पाकिस्तान के प्रधानमंत्री लियाक़त अली ख़ान के बीच दोनों देशों में अल्पसंख्यकों के अधिकारों की सुरक्षा, लूटी गई संपत्ति की वापसी और जबरन धर्म-परिवर्तन पर रोक के उद्‌देश्य से समझौता हुआ। इसे 'नेहरू-लियाक़त पैक्ट' या 'दिल्ली समझौता' नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही क़रीब दस लाख से ज़्यादा हिंदू शरणार्थी पूर्वी पाकिस्तान (अब बांग्लादेश) से पश्चिम बंगाल आए। पूर्वी पाकिस्तान में हिंदुओं पर हो रहे दमन और उनके निष्कासन के लिए पाकिस्तान को ज़िम्मेदार मानते हुए तथा पैक्ट में पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों पर हो रहे अत्याचारों पर कोई चर्चा न होने के विरोध में केंद्रीय उद्योग एवं आपूर्ति मंत्री डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी तथा वित्त मंत्री के.सी. नियोगी ने इस्तीफ़ा दे दिया था।

बंगाल की समस्त विदेशी कंपनियों को यह सरकारी आदेश दिया गया है कि वे ग़ैर मुसलमानों को निकालकर मुसलमानों को रखें। पूर्वी बंगाल में अत्याचारों के उदाहरण में फेनी सब-डिवीज़न की कांग्रेस की अध्यक्षा तथा ऑल इंडिया कांग्रेस कमेटी की भूतपूर्व सदस्या श्रीमती शांतिमती दत्त के उस वक्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है, जिसमें उन्होंने कहा है कि केवल नेआखाली ज़िले में हिंदुओं पर हुई डकैती, बलात्कार आदि की 24 घटनाएँ हुई हैं। स्मरण-पत्र में आगे कहा गया है कि गत कुछ मास में एक लाख पचास हज़ार लोग भारत आ चुके हैं तथा 3,60,000 ने आज्ञा माँगी है। दिल्ली समझौते के बाद ही श्री लियाक़त अली ने मुक्का तानकर भारत को भयभीत करना चाहा था।

सन् 1953 में भी श्री मुहम्मद अली से ही समझौता हुआ था। परंतु उसकी अवहेलना करते हुए पाकिस्तान ने अमरीका से सैनिक संधि की है तथा वहाँ के नेताओं ने स्वयं कहा था, इसका उद्देश्य कश्मीर के प्रश्न पर भारत के साथ शक्तिसंपन्नता की स्थिति में वार्त्ता करना था। प्रधानमंत्री पं. नेहरू ने भी स्वयं इस सैनिक संधि को विश्व शांति के लिए घातक बताया था। लोकसभा में भी घोषणा की थी कि इससे कश्मीर समस्या का रूप ही बदल गया है। दो वर्ष पूर्व भी पं. नेहरू ने कश्मीर के विषय पर वार्त्ता करना अस्वीकार कर दिया था। उस समय की स्थिति में कोई अंतर नहीं पड़ा और यदि पड़ा है तो वह वार्त्ता को जारी रखने के लिए नहीं अपितु समाप्त करने के पक्ष में। 'सीटो' की सदस्यता स्वीकार करके पाकिस्तान विश्व के शीत युद्ध में कूद पड़ा है। जहाँ अमरीकी सैनिक संधि से कश्मीर की समस्या का संदर्भ बदल गया है। वहाँ इस आक्रामक गुट की सदस्यता के कारण तो समस्या का सारा रूप ही बदल गया है। अतः ऐसी स्थिति में कश्मीर समस्या पर वार्त्ता करने का औचित्य क्या है, समझ में नहीं आता।

आगे कश्मीर की वैधानिक स्थिति के ऊपर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है कि भारत का संविधान जम्मू-कश्मीर राज्य को अभिन्न अंग मानता है तथा उसके अनुसार किसी भाग को सम्मिलित करने अथवा संबंध-विच्छेद करने के लिए जनमत लेने का अधिकार प्राप्त नहीं है। अतः कोई भी ऐसी वार्त्ता, जिसमें जनमत लेने अथवा समूचे कश्मीर राज्य को अथवा उसके किसी भाग को भारत से अलग करने का प्रश्न हो, भारतीय संविधान के प्रतिकूल है। आज भी कश्मीर में पाकिस्तान की स्थिति आक्रामक की है।

अंत में यह माँग की है कि पाकिस्तान के साथ वार्त्ता में पूर्वी बंगाल के हिंदुओं के निष्क्रमण के प्रश्न को उठाया जाए तथा पिछले समझौतों को क्रियान्वित करने पर

बल दिया जाए। सरकारी स्तर पर निष्क्रांत संपत्ति के आदान-प्रदान की माँग की जाए। यह भी आवश्यक है कि पाकिस्तान के प्रधानमंत्री को यह अनुभव कराया जाए कि यदि वह यह समझता हो कि कश्मीर के एक-तिहाई भाग पर बलात् क़ब्ज़ा जमा कर, हिंदुओं को बेघर-बार बनाकर, उनकी संपत्ति दबाकर तथा नेकोवाल में निर्दोष भारतीयों का रक्त बहाकर यह शेष कश्मीर भी लेने में सफल हो सकेगा तो उसकी भूल होगी।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 24, 1955

□

59

राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट की प्रतिक्रिया

राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन पर विचार करने के लिए एकत्र मुख्यमंत्रियों की बैठक में ज्ञात हुआ है कि अधिकांश ने अपनी-अपनी कुरसी को ध्यान में रखकर आयोग की सिफ़ारिशों में फेरफार करने की माँग की। मध्य प्रदेश ही के श्री रविशंकर शुक्ल, जिन्होंने प्रतिवेदन से सहमति प्रगट की, सभी के उपहास पात्र बने। वैसे उन्होंने बाक़ी मुख्यमंत्रियों से कोई अलग मार्ग नहीं अपनाया किंतु उनका लाभ रिपोर्ट को जैसी की तैसी मान लेने में ही है, इसी कारण उन्होंने उसे ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया। विभिन्न प्रादेशिक कांग्रेस समितियाँ भी इस संबंध में प्रस्ताव पारित कर रही हैं। प्रत्येक समिति ने अपने प्रादेशिक हितों का ही ध्यान रखकर प्रस्ताव पास किया होता तो भी ख़ैर थी। उन्होंने तो क्षुद्र एवं संकुचित भावनाएँ उभारने की कोशिश की हैं तथा अन्य प्रदेशों के विरुद्ध विद्वेषकारी भावों को भी व्यक्त किया है। यह बड़े ही दुर्भाग्य का विषय है।

प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने आयोग के अभिस्तावों के प्रकाशित होने पर कहा था कि उस पर पूर्णता एवं अखिल भारतीय दृष्टिकोण से विचार करें। साफ़ है कि जो मत विभिन्न प्रादेशिक सरकारी एवं कांग्रेस समितियों में इस दृष्टिकोण का पूर्णत: अभाव है। आज देश में जो राजनीति चल रही है और जिसका निर्माण करने में कांग्रेस का बहुत बड़ा हाथ रहा है, जिसमें यह संभव नहीं कि प्रदेश में मंत्री अथवा अन्य पदाधिकारी सार्वदेशिक दृष्टि से विचार कर सकें। उन्हें तो यही हितावह दिखता है कि प्रादेशिक भावनाओं को उभारा जाए। ऐसी स्थिति में यही योग्य है कि प्रांतों की रूपरेखा के संबंध में प्रदेशों को अब किसी भी प्रकार के मत प्रकाशन का अवसर न दिया जाए। अखिल भारतीय संगठन ही इस पर गंभीरतापूर्वक विचार करें। जहाँ तक प्रदेशों के मत का प्रश्न

था, वह अपने-अपने संगठनों का अंदरूनी मामला समझा जाए और उसको अनावश्यक रूप से प्रकाशित न किया जाए। भारतीय जनसंघ को छोड़कर अन्य किसी संस्था ने इस विधि निषेध का पालन नहीं किया। शासन को भी चाहिए कि वह अब केवल सार्वदेशिक संगठनों के मतों का ही विचार करें। किंतु दिखता तो यह है कि कांग्रेस सरकार इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर केवल राजनीतिक लाभ की दृष्टि से विचार कर रही है और इसीलिए विभिन्न प्रदेशों के मंत्रियों तथा कांग्रेस कमेटियों की वार्त्ता प्रधानमंत्री, गृहमंत्री एवं कांग्रेस हाईकमान के बीच चल रही है। लेन-देन, मोल-भाव और समझौते की भाषा का प्रयोग किया जा रहा है। भारत की भावी राजनीतिक स्थिति का निर्णय एक ऐसे निकाय से, जो न्यायालय समकक्ष समझा जा सकता था, राजनीतिज्ञ के हाथ में सौंपना देश का दुर्भाग्य है।

अकाली दल की सांप्रदायिकता को बढ़ावा

जहाँ भारत के सभी प्रांतों के स्वरूप निर्णय के लिए कांग्रेस के विभिन्न गुटों के बीच संघर्ष चल रहे हैं, वहाँ पंजाब में अकाली दल को भी एक पार्टी बनाया गया है। मुसलिम लीग के समान आज उसको भी यह सम्मान और सौभाग्य प्राप्त हुआ है और बातचीत भी अक्षरशः उसी विधि से चल रही है, जिस प्रकार सन् 1947 के पूर्व मुसलिम लीग के साथ हुई। अंतिम परिणाम का निष्कर्ष भी निकाला जा सकता है।

गांधी-जिन्ना भेंटों के समान नेहरू-मास्टर तारासिंह[1] भेंट भी 'अत्यंत मैत्रीपूर्ण' वातावरण में हुई है। पाकिस्तान की माँग के ऊपर अटल रहते हुए भी जैसे जिन्ना ने मोलभाव किया, वैसे ही मास्टर तारासिंह कर रहे हैं। एक ओर तो पंजाबी सूबे के लिए सब प्रकार के आंदोलनों की धमकी दी जा रही है और दूसरी ओर संधिवार्त्ता भी हो रही है। इसका क्या अर्थ है?

अकाली दल ने प्रस्ताव किया है कि पंजाब की राजनीति में सिखों को शक्ति महत्त्व और प्रभाव की दृष्टि से बराबर-बराबर पद मिलें। मंत्रिमंडल में सिखों और ग़ैर-सिखों की संख्या बराबर हो। यदि बाक़ी बातों के लिए सभी योग्यताओं को हटाकर केवल सिख होना ही योग्यता मान ली जाए तो भी प्रभाव तो अपनी-अपनी व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करेगा। आज भी श्री प्रतापसिंह कैरो[2] सिख होने के कारण नहीं बल्कि अपनी योग्यता से पंजाब के सर्वेसर्वा बने हुए हैं।

---

1. मास्टर तारा सिंह (1885-1967) अकाली नेता, जिन्होंने पंजाब क्षेत्र में स्वायत्त पंजाबी भाषी राज्य गठन को लेकर अराजक हिंसक आंदोलन किया था।
2. प्रतापसिंह कैरो (1901-1965) ने संयुक्त पंजाब के पुनर्वास मंत्री (1947-49) रहते हुए पश्चिमी पंजाब से पलायित हुए लाखों शरणार्थियों को अल्प अवधि में विस्थापित कर अभूतपूर्व कार्य किया। बाद में मुख्यमंत्री (1956-64) रहे।

उपर्युक्त माँग का चाहे जो भी स्वरूप हो, किंतु उसके पीछे का सिद्धांत ग़लत एवं अत्यंत देश विघातक है। यह हमारे संविधान के मौलिक सिद्धांत के प्रतिकूल है तो वह सिखों में सांप्रदायिकता की वृद्धि भी करेगा। यदि सिख होना ही एकमेव योग्यता रह जाए तो फिर राष्ट्रीय दृष्टि से कोई क्यों सोचेगा? यदि कांग्रेस ने इस प्रकार का कोई सिद्धांत माना तो वह अपनी पुरानी भूलों को फिर दोहराएगी, वास्तव में तो अकाली दल से बातचीत भी करना एक सांप्रदायिक शक्ति को राजनीति में स्वीकार करना है तथा उन सभी सिख नेताओं के प्रति विश्वासघात है, जिन्होंने क्षुद्र सांप्रदायिक भाव से ऊपर उठकर सदैव राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार किया।

कांग्रेस अपने स्वार्थों में अंधी होकर तथा दुर्नीति का शिकार होकर चाहे एक बार अपनी ग़लती दुहराने की कोशिश करे, किंतु पंजाब की राष्ट्रीय शक्तियाँ, जिनमें सिख भी शामिल हैं, यह कभी स्वीकार नहीं करेंगी।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 31, 1955

□

60

एक करोड़ रोज़गारों से पाँच लाख रोज़गारों पर

कर्वे समिति की रिपोर्ट पर कुछ विचार।

नई दिल्ली में उद्योग मेले का उद्‌घाटन करते हुए प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लघु उद्योगों और बड़े उद्योगों के तुलनात्मक महत्त्व पर विचार व्यक्त किए और श्रोताओं को याद दिलाया कि मशीन को औद्योगिक क्षेत्र से आदमी को बेदख़ल करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जहाँ तक इस बिंदु का संबंध है, वह चिर-परिचित गांधीवादी शैली में बोले। प्रो. पी. महालनोबिस[1] द्वारा दूसरी पंचवर्षीय योजना के मसौदे के प्रकाशन के बाद से हर जगह कांग्रेस नेता लघु उद्योगों और ग्रामोद्योग के विकास से बेरोज़गारी को जड़ से उखाड़ फेंकने की अपनी मंशा की घोषणा कर रहे हैं। योजना अवधि के दौरान 1 करोड़ से 1 करोड़ 20 लाख तक रोज़गार उपलब्ध कराने का प्रस्ताव है। इस तथ्य के बावजूद कि यह लक्ष्य भी पूर्ण रोज़गार से कम पड़ता है, ऐसा प्रतीत होता है कि यह तुच्छ लक्ष्य भी प्राप्त होने की संभावना नहीं है।

दूसरी पंचवर्षीय योजना की मसौदा सिफ़ारिशों के अनुसार, जिन्हें राष्ट्रीय विकास परिषद् द्वारा स्वीकार कर लिया गया है, उपभोक्ता वस्तुओं के क्षेत्र को लघु उद्योगों और ग्रामोद्योगों के लिए आरक्षित किया जा रहा है। ये उद्योग मुख्य रूप से श्रम प्रधान होने के नाते पर्याप्त रोज़गार के अवसरों का सृजन करते हैं। 260 करोड़ रुपए की राशि इस तरह

---

1. प्रशांत चंद्र महालनोबिस (1893-1972) सांख्यिकीविद् थे, जिन्होंने दूसरी पंचवर्षीय योजना (1956-61) में औद्योगीकरण के लिए भारत की रणनीति तैयार की थी।

के उद्योगों के विकास के लिए ख़र्च किया जाना प्रस्तावित है।

ग्रामोद्योग और लघु उद्योग (दूसरी पंचवर्षीय योजना) समिति को आम तौर पर कर्वे समिति[2] के रूप में जाना जाता है। इसे मसौदा योजना के प्रावधानों के आलोक में, दूसरी पंचवर्षीय योजना के अभिन्न अंग के रूप में इन उद्योगों के विकास के उद्देश्य से, संसाधनों के उद्योगवार और राज्यवार उपयोग हेतु एक मसौदा योजना ढाँचा तैयार करने के लिए नियुक्त किया गया था। समिति से निम्नलिखित उद्देश्यों को ध्यान में रखने की अपेक्षा की गई थी—

(क) यह कि योजना अवधि के दौरान आम खपत वाली उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि का अधिकांश हिस्सा ग्रामीण और लघु उद्योगों द्वारा प्रदान किया जाए।

(ख) यह कि इन उद्योगों द्वारा प्रदान किए गए रोज़गार में उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिए, और

(ग) इन उद्योगों में उत्पादन मुख्य रूप से सहकारी पद्धति से किया जाता हो।

समिति के प्रस्तावों को नवंबर में प्रकाशित किया गया था। जहाँ तक व्यय का प्रश्न है, समिति ने मसौदे में उपलब्ध कराई गई 200 करोड़ रुपए की तुलना में 259.6 करोड़ रुपए की राशि की सिफ़ारिश की है। लेकिन यह (समिति) लघु उद्योग क्षेत्र के लिए एक व्यापक योजना तैयार करने में असफल रही है। समिति की कार्य शर्तों के अनुसार, समिति से सभी प्रकार की उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन पर विचार करने की अपेक्षा थी, लेकिन इसने अपना अध्ययन केवल चौदह उद्योगों तक ही सीमित कर दिया है। समिति के सदस्य या तो केवल पारंपरिक खाँचे में ही सोचते और विचरण करते हैं या वे उन्हें प्रदान किए गए सीमित संसाधनों से लाचार हैं।

प्रधानमंत्री या नियोजक चाहे जो भी कह चुके हों, यह स्पष्ट है कि इन लघु उद्योगों के प्रति उनका दृष्टिकोण भारतीय जनसंघ के दृष्टिकोण या सर्वोदयवादियों के दृष्टिकोण से मूलत: भिन्न है। चिंतन की इस भारतीय धारा के अनुसार ये ग्रामीण और लघु उद्योग न केवल आर्थिक बल्कि राजनीतिक शक्ति के भी विकेंद्रीकरण के आधार का निर्माण करते हैं। वे देश की पूरी आर्थिक संरचना में एक प्राथमिक महत्त्व रखते हैं, और बड़े पैमाने के उद्योग इन उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के लिए केवल पूँजीगत माल उपलब्ध कराने वाले द्वितीयक स्थान पर ही हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना बाज़ार को उपभोक्ता वस्तुओं से भरने के लिए लघु उत्पादकों को वंचित रखते हुए, जब तक बड़े पैमाने के उद्योगों को सक्षम बनाएगी, तब तक सरकार लघु उत्पादकों को जो भी सहायता देना

2. कर्वे कमेटी का गठन योजना आयोग द्वारा जून 1955 में दत्तात्रेय गोपाल कर्वे (1898-1967) की अध्यक्षता में ग्रामीण व लघु उद्योगों के विकास तथा उन्हें सुरक्षात्मक वातावरण प्रदान करने के उद्देश्य से हुआ था।

चाहती है, वह केवल अस्थायी प्रकृति की और तात्कालिक स्वभाव की होगी।

समिति का कहना है, ''एकदम आधारभूत स्तर से आधुनिक अर्थव्यवस्था की जटिल संरचना का व्यवस्थित निर्माण करने में आधुनिक प्रक्रिया के ज़रिए उत्पादित उपभोक्ता वस्तुओं की उपलब्धता को कुछ समय के लिए स्थगित करना शामिल है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जब परिकल्पित औद्योगिक उत्पादन का एक आधुनिक ढाँचा बनाया जा रहा है, तो उसका एकमात्र लक्ष्य उपभोक्ता वस्तुओं की आपूर्ति का एक वैकल्पिक स्रोत विकसित करना है। एक बार जब यह ढाँचा बन जाएगा, इन (लघु) उद्योगों को मुरझाने और अपनी मौत मरने के लिए छोड़ दिया जाएगा, क्योंकि वे बड़े उद्योगों के साथ प्रतिस्पर्धा के योग्य नहीं होंगे। जब तक एक ऐसी योजना, जिसमें इन उद्योगों के लिए टिकाऊ स्थान की परिकल्पना की गई हो, तैयार नहीं की जाती है, तब तक हम शोषणकारी बेरोज़गारी, मलिन बस्तियों और आधुनिक औद्योगीकरण के हानिकारक प्रभावों से नहीं बच सकते।''

इन प्रस्तावों को यदि पूरी तरह से लागू किया जाए तो भी वे बेरोज़गारी की समस्या को दूर से ही स्पर्श करते हैं। विकास कार्यक्रम की रोज़गार संभाव्यता के संबंध में समिति का अनुमान तीस लाख से अधिक व्यक्तियों के लिए अपेक्षाकृत अधिक रोज़गार और दस लाख लोगों के लिए मौसमी रोज़गार का है। लगभग पाँच लाख लोगों के लिए पूर्णकालिक रोज़गार। पहली श्रेणी में कमतर रोज़गार प्राप्त लोग आते हैं, जबकि दूसरी में भी ऐसे ही रोज़गार सृजित होते हैं। विकास कार्यक्रम के तहत मात्र लगभग पाँच लाख लोगों को ही पूर्णकालिक रोज़गार उपलब्ध होने की उम्मीद है। इसलिए द्वितीय पंचवर्षीय योजना के दौरान 1.20 करोड़ लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने का दावा कभी भी पूरा नहीं किया जा सकेगा।

समिति ने निश्चित रूप से एक अतिरिक्त मंत्रालय स्थापित करने की सिफ़ारिश की है, जो बेरोज़गारी के समाधान हेतु वास्तव में बड़ा क़दम है।

समिति ने उद्योगों के यंत्रीकरण और उन्हें तर्कसंगत बनाने की दिशा में मध्य मार्ग का सुझाव दिया है और फोर्ड फाउंडेशन के उस सुझाव से असहमति व्यक्त की है, जिसमें उन्हें पूर्ण रूप से तर्कसंगत बनाए जाने की वकालत की गई है। यद्यपि उद्योगों को तर्कसंगत बनाए जाने की प्रक्रिया के ज़रिए उन्हें बड़े उद्योगों से प्रतिस्पर्धा में लाभ होगा, लेकिन हमें ऐसा कोई भी क़दम नहीं उठाना चाहिए, जिससे पहले से ही गंभीर बेरोज़गारी की समस्या और भी विकराल रूप धारण कर ले। समिति ने सिफ़ारिश की है कि सहकारिता में किसी भी कामगार के दिन भर के उत्पादन को तर्कसम्मत न्यूनतम मूल्य पर क्रय करने की गारंटी दें। यह हमारी प्राचीन परंपरा के अनुरूप है और इसे लागू किया जाना चाहिए, लेकिन मैं यह गारंटी सरकार की ओर से दिए जाने के पक्ष में हूँ। जहाँ तक

विभिन्न उद्योग क्षेत्रों के लिए आरक्षण का मामला है, समिति ने उसका विरोध किया है लेकिन साथ ही सुझाव दिया है कि बड़े उद्योगों के विस्तार को रोका जाए। हम महसूस करते हैं कि न केवल नए बड़े उद्योगों को रोका जाए बल्कि मौजूदा आरक्षण को लागू रखा जाए। इसके साथ ही समिति ने अन्य सामान्य प्रकार की भी कई सिफ़ारिशें की हैं, जिनसे असहमति की गुंजाइश बहुत कम है।

बेहिचक ही यह कहा जा सकता है कि समिति ने हमारी आकांक्षाओं को झुठला दिया है और अगर सरकार लघु उद्योगों को उतना ही महत्त्व देती है, जितना समिति ने दिया है तो द्वितीय पंचवर्षीय योजना देश की जनता को रोज़गार देने और उसके जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में पूर्ववर्ती योजना की भाँति ही असफल साबित होगी।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 7, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

61

देवबंद में दीनदयाल जी

उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जनपद अंतर्गत देवबंद में दिए गए अपने एक भाषण में दीनदयालजी ने ये विचार व्यक्त किए।

कांग्रेस सरकार की भव्य पंचवर्षीय योजनाएँ, जिनका इरादा लोगों को भोजन, कपड़ा और मकान प्रदान करने का था, इस कारण असफल साबित हो रही हैं, क्योंकि उनमें राष्ट्रीय प्रज्ञा का उपयोग नहीं किया गया है, बल्कि दर्शन में आँख बंद करके विदेशी विचारधाराओं का अंधानुकरण किया है। सरकार ज़ोर देकर कह रही है कि इन योजनाओं के क्रियान्वयन पर करोड़ों-करोड़ रुपए ख़र्च किए जाएँगे, लेकिन उसने यह खुलासा नहीं किया है कि इतनी बड़ी राशि कहाँ से आएगी। सरकार के पास इसका एकमात्र साधन अधिक-से-अधिक करेंसी नोटों का मुद्रण करना ही दिखाई देता है। ऐसा पिछले विश्वयुद्ध के दौरान किया गया था और उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई मुद्रास्फीति अभी भी सभी उपभोक्ता वस्तुओं की बेतहाशा बढ़ती क़ीमतों के रूप में हमारे सामने बनी हुई है। सरकार ने राष्ट्रीय आय में वृद्धि की बात की थी, लेकिन तथ्य यह है कि युद्ध पूर्व आय से चार गुना अधिक आय में भी लोगों के लिए दोनों समय भोजन कर पाना मुश्किल हो रहा है।

समस्या की जड़ यह है कि देश के प्रधान योजनाकार, प्रधानमंत्री नेहरू, विदेशों में जो भी कुछ देखते हैं, उससे वह बहुत आसानी से प्रभावित हो जाते हैं। वह कम्युनिस्ट चीन से लौटे और उन्होंने समाज की समाजवादी शैली प्रतिपादित कर दी, वह सोवियत रूस से लौटे और उन्होंने 30 जनवरी मार्ग और 15 अगस्त मैदान जैसे नाम सोच लिए।

जहाँ तक सरकार द्वारा नेशनल बुक ट्रस्ट[1] स्थापित करने का सवाल है, यह प्रकाशकों

---

1. राष्ट्रीय पुस्तक न्यास (एन.बी.टी.) की स्थापना 1957 में भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त निकाय के रूप में की गई थी।

के स्वतंत्र कामकाज पर एक अतिक्रमण होगा। इससे भी बढ़कर यह कि सरकारी पाठ्य पुस्तकें ग़लतियों से भरी पड़ी हैं; उदाहरण के लिए, उनमें से कुछ में कहा गया है कि दिवाली सावन माह में पड़ती है और स्वामी दयानंद विवाह पंडाल से भाग खड़े हुए थे। इन पुस्तकों में हमारी राष्ट्रीय संस्कृति के विशेष पक्षों की तुलना में महारानी विक्टोरिया और लॉर्ड कर्जन के बारे में अधिक जानकारी होती है।

हिंदू कोड बिल

सत्तारूढ़ दल ने वादा किया था कि विधेयक पारित नहीं किया जाएगा और फिर भी यह टुकड़ों-टुकड़ों में लाया जा रहा है और इसके दो भागों को पहले ही क़ानून बनाया जा चुका है। विवाह-संस्कार के सांस्कारिक चरित्र को एक धर्मनिरपेक्ष अनुबंध से प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया, अंतरजातीय विवाह संबंधों की अनुमति दी जा रही है और सरकार द्वारा तलाक को बढ़ावा देने के लिए महिलाओं को गाँवों में भेजा जा रहा है।

पुराने क़ानून में हमारी महिलाओं के अधिकार यद्यपि सीमित, लेकिन वास्तविक थे, और स्त्रीधन किसी महिला की ऐसी संपत्ति थी, जिस पर उसका एकाधिकार होता था। जिस परिवार में उसका विवाह होता था, उस (परिवार) की चल और अचल संपत्ति में भी उसका कुछ अधिकार था। लेकिन अब वह रहेगी एक स्थान पर, लेकिन उसके अधिकार किसी अन्य स्थान पर होंगे, और उसके निवास-स्थान पर उसके अधिकार उसकी ननदों द्वारा हड़प लिए जाएँगे। इसके अलावा नए विधेयक में संपत्ति पर नाजायज़ संतान के अधिकार की मंजूरी नैतिक पतन को सीधे प्रोत्साहन जैसा है।

राज्य पुनर्गठन आयोग का प्रतिवेदन

मुझे प्रसन्नता हुई कि महापंजाब के लिए जनसंघ की माँग स्वीकार कर ली गई। लेकिन तथ्य यह है कि लोग छोटे ज़िलों के हस्तांतरण पर इतने उत्तेजित हैं, जबकि वे गोवा की समस्या के प्रति उदासीन थे। जहाँ गोवा के साथ भारतीय मुद्रा और व्यापार बंद कर दिया गया है, वहीं पाकिस्तानी मुद्रा और व्यापार जारी है और यहाँ तक कि सुहरावर्दी ने पाकिस्तान और गोवा के बीच आर्थिक संबंधों को मज़बूत करने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल का नेतृत्व भी किया।

पं. नेहरू सोचते हैं कि दुनिया का नेतृत्व उनके हाथों में है, लेकिन इस बात की आशंका बढ़ रही है कि देश का नेतृत्व उनके हाथ से बाहर हो सकता है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 7, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

62

बंबई में दीनदयालजी का प्रेस वक्तव्य

जनसंघ बंबई को अलग नगर-राज्य बनाने के विरुद्ध

राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद कुछ स्थानों में घटी घटनाओं को भारतीय जनसंघ गंभीर चिंता से लेता है। हम रिपोर्ट पर टिप्पणी के लोकतांत्रिक अधिकार को मान्यता देते हैं, लेकिन तुमकुर, अमरावती और नागपुर में घटी घटनाओं को कभी उचित नहीं ठहराया जा सकता। कांग्रेस आलाकमान का अनिर्णय का रवैया और प्रधानमंत्री का भाषण सभी विवादास्पद मुद्दों को फिर से खोलने के लिए ज़िम्मेदार हैं। रिपोर्ट के प्रकाशन और क्रियान्वयन के बीच, नई दिल्ली में कांग्रेस नेताओं की बैठकों ने स्वतंत्र भारत के गणराज्य की राजनीति को मध्ययुगीन 'दरबारी राजनीति' की स्थिति में पहुँचा दिया है।

भारतीय जनसंघ सत्ता के सबसे निचले स्तरों तक विकेंद्रीकरण के साथ सरकार के एकात्मक स्वरूप के पक्ष में है। जब तक उसे प्राप्त नहीं कर लिया जाता, हम राज्यों के पुनर्गठन के लिए आयोग द्वारा निर्धारित सिद्धांतों से सहमत हैं।

तथापि जनसंघ विदर्भ के एक अलग छोटे राज्य के प्रस्ताव में कोई तुक नहीं देखता है। यदि मराठी और गुजराती भाषी क्षेत्रों में से दो राज्यों का गठन किया जाना है, तो महागुजरात और संयुक्त महाराष्ट्र के गठन की सिफ़ारिश की जानी चाहिए थी या आयोग को सारे गुजराती और मराठी भाषी क्षेत्रों को मिलाकर एक पश्चिम प्रदेश के गठन की जनसंघ की माँग को स्वीकार कर लेना चाहिए था।

इस संदर्भ में महाराष्ट्र प्रदेश कांग्रेस कमेटी का इस तरह का एक द्विभाषी राज्य बनाने का प्रस्ताव और गुजरात प्रदेश कांग्रेस कमेटी द्वारा तीन राज्यों का प्रस्ताव सिर्फ़ यह दरशाता है कि 'केवल संख्या की राजनीति' सभी माँगों की जड़ में है और कोई भी

व्यक्ति अन्य कारणों पर ज़रा भी गंभीर विचार करने के लिए तैयार नहीं है। अगर कांग्रेस की नीतियाँ लोगों के मन को ज़रा भी प्रतिबिंबित करती हों, तो दो राज्यों का गठन अपरिहार्य लगता है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बंबई का महान् औद्योगिक शहर दो समूहों के बीच विवाद की जड़ बना दिया जाए। असहमति की स्थिति में विभाजन एक ब्रिटिश नीति है। बंबई का पृथक् नगर राज्य किसी के भी हित में नहीं है। इससे स्थिति और ख़राब होने की आशंका है। इस संदर्भ में उसे समीपता या निकटता के सिद्धांतों के आधार पर महाराष्ट्र के दो राज्यों में से किसी एक का हिस्सा होना चाहिए।

मैं भारत सरकार से रिपोर्ट की सिफ़ारिशों के संबंध में शीघ्र निर्णय लेने के लिए आग्रह करता हूँ। अब सभी को पुनर्गठन के नए कार्य पर अपना ध्यान केंद्रित करना होगा, क्योंकि दूसरी पंचवर्षीय योजना, निर्वाचन आदि हमारे भविष्य के सभी कार्यक्रम इसी पर निर्भर करते हैं।

हिंदू उत्तराधिकार विधेयक में ख़तरनाक ख़ामियाँ

हिंदू उत्तराधिकार विधेयक की जैसी परिकल्पना संयुक्त समिति द्वारा प्रस्तुत की गई है, समिति हिंदुओं के उत्तराधिकार क़ानून में उत्तराधिकार व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन की परिकल्पना करती है। किसी ऐसे मामले पर कांग्रेस सरकार की ओर से क़ानून बनाना अनुचित है, जिसके लिए उसे जनता से कोई जनादेश नहीं मिला है। इसके विपरीत यह प्रावधान, जो हिंदू कोड का हिस्सा बन रहा है, उसका कांग्रेसियों ने व्यापक रूप से विरोध किया और चुनाव लड़ते समय मतदाताओं को वचन दिया था कि इस प्रकार का कोई विधेयक पेश नहीं किया जाएगा।

विधेयक के कुछ दोष इस प्रकार हैं—(1) यह भारतीय राज्यों के पूर्व शासकों की संपत्ति के उत्तराधिकार के संबंध में ज्येष्ठाधिकार के नियम को जारी रखने की अनुमति देता है। (2) यह नाजायज़ संतानों को उत्तराधिकार का पूरा अधिकार देता है। (3) हिंदू सहदायिकी में महिला उत्तराधिकारियों को शामिल करके इसने स्थितियों को जटिल बना दिया है। उत्तरजीविता और उत्तराधिकार के दो सिद्धांतों को ग़लत तरीक़े से एक साथ मिला दिया गया है। (4) बेटी और माँ को वर्ग के उत्तराधिकारी के रूप में मान्यता दे दी गई है। (5) वर्ग में एक साथ उत्तराधिकारी होने वालों की संख्या इतनी बड़ी है कि इसका परिणाम निरर्थक रूप से विखंडन और मुक़दमेबाज़ी में निकलेगा।

जनसंघ महिलाओं के संपत्ति के अधिकार को मान्यता देता है, लेकिन महसूस करता है कि एक महिला को उसके अपने माता-पिता की सहदायिकी होने के बजाय ससुर के परिवार में सहदायिकी का सदस्य बनाया जाना चाहिए।

कर्वे समिति की निराशाजनक रिपोर्ट

ग्रामीण और लघु उद्योगों पर कर्वे समिति की रिपोर्ट ने लोगों की उम्मीदों को झूठा साबित कर दिया है। यद्यपि इसे सभी उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों के विकास के लिए प्रस्ताव तैयार करने के लिए नियुक्त किया गया था, लेकिन इसने स्वयं को ऐसे मात्र 14 उद्योगों तक ही सीमित रखा है और शेष अनन्वेषित क्षेत्र को अधिकांशत: अछूता छोड़ दिया है। बेरोज़गारी की स्थिति में भी राहत नहीं मिलने वाली है, क्योंकि रिपोर्ट के अनुसार इस तरह के उद्योगों के केवल 5 लाख नए रोज़गार अवसर प्रदान करने की संभावना है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के तहत 12 लाख लोगों को रोज़गार उपलब्ध कराने के दावे की भी पुष्टि नहीं हो रही है। जनसंघ मानता है कि लघु उद्योगों को सारे आर्थिक विकास के आधार के रूप में मान्यता दी जानी चाहिए। समिति इन उद्योगों को यह महत्त्व नहीं देती और इस कारण संतोषजनक प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकने में विफल रही है।

अमरीकी पूँजी के प्रति देशमुख का पक्षपात

केंद्रीय वित्त मंत्री श्री सी.डी. देशमुख ने संकेत दिया है कि भारत-अमरीका की एक निवेश गारंटी संधि भारत सरकार के विचाराधीन है। इस प्रकार की संधि की शर्तें भारतीय और अमरीकी निवेशकों के बीच भेदभाव करती हैं, जो भारतीयों के प्रति अलाभकारी होती हैं। राष्ट्रीयकरण की स्थिति में मुआवजे का निर्णय भी भारत सरकार और अमरीका सरकार के बीच किया जाएगा। इन विदेशी निवेशकों को मुद्रा परिवर्तनीयता भी मुक्त रूप से उपलब्ध हो जाएगी। मेरा मानना है कि औद्योगीकरण की हमारी चाहे कितनी भी महती आवश्यकता हो, इस प्रकार का क़दम भारत और भारतीय निवेशकों के हितों के लिए हानिकारक रहेगा। अमरीकी पूँजीपतियों को देश में उपभोक्ता वस्तु उद्योग जमाने की अनुमति देना, और वह भी इस तरह की गारंटी के साथ, ग्रामीण और लघु उद्योग क्षेत्र को पूरी तरह नष्ट कर देगा।

दूसरी पंचवर्षीय योजना के लिए लक्ष्य भी बढ़ाकर 4,800 करोड़ रुपए करने का प्रस्ताव है। जब हम 4,300 करोड़ रुपए की योजना के लिए (धन) जुटाने में सफल नहीं हो सके हैं, तो मुझे लक्ष्यों को बढ़ाने का कोई औचित्य नहीं दिखता। नए कराधानों का बोझ बहुत भारी साबित हो सकता है और उपभोक्ता वस्तुओं की कमी के साथ घाटे की वित्त व्यवस्था का परिणाम मुद्रास्फीतिकारी प्रवृत्तियों और उसके फलस्वरूप लोगों के लिए कठिनाइयों में निकलेगा। अति महत्त्वाकांक्षी होना उचित नहीं है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी आंदोलन शुरू करने से लोगों को रोककर भारत सरकार ने गोवा मुद्दा ठंडे बस्ते में डाल दिया है। इस मुद्दे को सही भावना के साथ

आगे बढ़ाया जाना चाहिए था। श्री सुहरावर्दी[1] की हाल की गोवा यात्रा और पाकिस्तान द्वारा ज़मीन की ख़रीद के समाचार ऐसे घटनाक्रम हैं, जिन्हें भारत की जनता और सरकार आसानी से स्वीकार नहीं कर सकती हैं। अपनी सफ़ाई देने का कोई भी अवसर दिए बिना श्री जगन्नाथ राव जोशी,[2] श्री गोरे[3] और श्री लिमये[4] को 10 वर्ष के साश्रम कारावास और जुरमाने की सज़ा सुनाना दरशाता है कि पुर्तगाल सरकार के रवैये में कोई बदलाव नहीं आया है। भारत सरकार को इन देशभक्तों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए और उन्हें जेल में डाले जाने की अनुमति नहीं देना चाहिए। जनसंघ ने इस महत्त्वपूर्ण सवाल पर लोगों का ध्यान केंद्रित करने के लिए 6 नवंबर को श्री जगन्नाथ राव जोशी और अन्य गोवा कैदियों के दिवस के रूप में मनाया है।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 21, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

---

1. हुसैन शहीद सुहरावर्दी (1892–1963) बंगाल के मुख्यमंत्री (1946–47), इन्हीं के शासनकाल में कोलकाता में हिंदुओं के विरुद्ध नरसंहार हुआ था। बाद में ये पाकिस्तान के पाँचवें प्रधानमंत्री (1956–57) बने।
2. गोवा में सशस्त्र हस्तक्षेप करने से नेहरू के इनकार पर जगन्नाथ राव जोशी 'कर्नाटक केसरी' (1920–1991) के नेतृत्व में आर.एस.एस. व जनसंघ के हजारों कार्यकर्ता सत्याग्रह के निमित्त 25 जून, 1955 को गोवा में प्रविष्ट हुए थे। जोशीजी ने नारा दिया 'नेहरूजी अब क्या करें, पुलिस लेकर गोवा चलें, पुलिस लेकर गोवा चलें।' गोवा में बिना परमिट प्रवेश करने के आरोप में इन्हें गिरफ़्तार कर लिया गया और अगुआडा क़िले की जेल में इन पर भीषण अत्याचार किया गया, तत्पश्चात् इन्हें 10 वर्ष की कारावास की सज़ा सुनाई गई।
3. 18 मई,1955 को 'गोवा विमोचन समिति' के सचिव एन.जी. गोरे ने सत्याग्रहियों के एक दल का नेतृत्व करते हुए गोवा में जबरन प्रवेश किया, जिसके बाद पुर्तगाली पुलिस ने आंदोलनकारियों पर गोली चलाते हुए इन्हें तत्काल गिरफ़्तार कर लिया था।
4. मधु लिमये (1922–1995) ने गोवा मुक्ति संग्राम में हुए सत्याग्रह में बड़े पैमाने हिस्सा लिया। दिसंबर 1955 में इन्हें गिरफ़्तार कर पुर्तगाली सैन्य न्यायाधिकरण द्वारा 12 वर्ष कारावास की सज़ा सुनाई। इन्होंने पुर्तगाली क़ैद में 19 महीने से ज़्यादा समय बिताया। इनके अलावा शिरुभाऊ लिमये भी गोवा आंदोलन में एक सत्याग्रही थे, जिन्हें पुलिस द्वारा हिरासत में ले सैन्य अदालत द्वारा सज़ा सुनाई गई थी।

63

क्या आचार्य विनोबा साम्यवादी नेताओं को भारत के साम्ययोग की शिक्षा देंगे?

प्रधानमंत्री पंडित नेहरू द्वारा अभी हाल में ही अलीगढ़ में कम्युनिज्म की जो कड़ी आलोचना की गई है, वह उन लोगों के लिए सामयिक चेतावनी है, जो श्री बुल्गानिन की भारत-यात्रा का अर्थ शायद यह समझते हैं कि इस देश ने रूस की राजनीतिक विचारधारा को अंगीकार कर लिया है। कम्युनिज्म की पहले कभी चाहे जो भी उपयोगिता रही हो, परंतु वर्तमान विश्व की समस्याओं को हल करने में वह असमर्थ है और इस प्रकार आज उसकी कोई उपयोगिता नहीं रह गई है। हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि बुल्गानिन तथा ख्रुश्चेव की भारत-यात्रा कम्युनिज्म के मसीहा के रूप में नहीं बल्कि उस देश के नेताओं के रूप में है, जो भारत की शांति नीति को पसंद करते हैं—वह शांति नीति हमारे प्रधानमंत्री के माध्यम से उनके समक्ष प्रगट हुई है। किंतु समस्त विश्व की शांतिप्रिय जनता सोवियत रूस की सरकार से अपेक्षा करती है कि वह स्थायी शांति की अपनी इच्छा का ठोस प्रमाण उपस्थित करे। कॉमिनफॉर्म को अभी तक भंग नहीं किया गया है और जिनेवा सम्मेलन की विफलता इस बात का लक्षण है कि सोवियत रूस शीत युद्ध के मामले में अस्थायी समझौते से आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं है।

रूसी नेता अपने भारत प्रवास में अनेक ऐसे स्थानों पर गए, जहाँ हमारे संघ निर्मित विकास उद्योग स्थित हैं। उससे उन्हें गत कुछ वर्षों की हमारी प्रगति को देखने तथा आगामी प्रगति की तीव्र इच्छा का पता चलेगा, किंतु उससे उन्हें भारत की वास्तविकता का ज्ञान नहीं होगा। भले ही यह कठिन हो किंतु है अत्यंत वांछनीय कि उन्हें हमारी संस्कृति के आध्यात्मिक अधिष्ठान की झलक दिखाई जाए। इससे उन्हें विचार सामग्री

मिलेगी और ऐसी विचार सामग्री, जो उनकी वर्तमान घिसी-घिसाई तथा अनुपयोगी विचारधारा के परित्याग के समय उनके सम्मुख नया आलोक तथा नया मार्ग प्रशस्त कर सकती है। यदि पूँजीवाद की प्रतिक्रियास्वरूप कम्युनिज्म का जन्म हुआ है, तो विश्व केवल इसी घातक भँवर जाल में भ्रमित होता रहेगा। क्या आचार्य विनोबा भावे या अन्य कोई साम्यवाद के इन नेताओं को साम्ययोग का दर्शन बताएगा?

पंडित नेहरू 46 की भूलें न दोहराएँ

कांग्रेस हाईकमान के पास अभी भी विभिन्न राज्यों का दावा करने वाले विभिन्न गुटों के स्मरणपत्रों तथा प्रतिनिधि मंडलों का ताँता जारी है। न केवल कांग्रेसजन ही बल्कि गैर कांग्रेसजन भी, अकाली तथा अन्य लोग, जिसमें हिंदू महासभा के प्रधान श्री निर्मलचंद्र चटर्जी भी सम्मिलित हैं, प्रधानमंत्री तथा कांग्रेस अध्यक्ष श्री यू.एन. ढेबर से इस संबंध में मिल रहे हैं। इतिहास दोहराया जा रहा है। राज्य पुनर्गठन आयोग की सारी कार्रवाई की एक बार फिर परीक्षा की जा रही है। आयोग के किए-कराए पर कांग्रेस कार्यसमिति के महाआयोग ने न केवल पानी ही फेर दिया बल्कि उसने अनेक नई उलझनें भी पैदा कर दी हैं। विशेष रूप से बंबई के संबंध में उसका निर्णय पूर्णतया राजनीतिज्ञता से शून्य है। इससे अधिक भयंकर भूल अन्य नहीं हो सकती थी। वर्तमान समृद्धिशाली बंबई का सत्यानाश करने के अतिरिक्त कांग्रेस कार्यसमिति के निर्णय ने गुजरातियों तथा महाराष्ट्रियों में पहले से ही मौजूद कटुता को नया जीवन प्रदान किया है।

इसी प्रकार पंजाब में भी कांग्रेस हाईकमान अकालियों को तुष्ट करने की धुन में राष्ट्रीय हितों तथा सीमा प्रदेश की शांति का बलिदान कर रहा है। मास्टर तारासिंह द्वारा की गई पंडित नेहरू की प्रशंसा का उद्‌देश्य अकालियों की अधिक-से-अधिक माँगें मनवाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। दूसरे ही दिन मास्टरजी ये संकेत देने से नहीं चूके कि यदि पं. नेहरू उनकी इच्छा-आकांक्षाएँ पूर्ण करने में असमर्थ रहे तो वे 'अन्य उपाय' अपनाए बिना नहीं रहेंगे। इससे स्पष्ट है कि पंडित नेहरू के नेतृत्व पर मास्टर तारासिंह का विश्वास सशर्त है। सरकार को मालूम होना चाहिए कि पंजाब तथा संपूर्ण देश में राष्ट्रीयतावादियों का ऐसा प्रबल जनमत आज विद्यमान है, जो पंडित नेहरू को सन् 1947 की दुःखदायी घटनाओं के लिए उत्तरदायी 1945-46 की भूलों को दुहराने नहीं देगा।

—पाञ्चजन्य, नवंबर 28, 1955

□

64

पंजाब में संघर्ष

गुरुनानक जयंती के पुण्य पर्व पर 'पंजाबी सूबे' के प्रश्न को लेकर पंजाब में कई स्थानों पर संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो गई। हम यहाँ उसके लिए किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग को उत्तरदायी नहीं ठहराते, किंतु यह अवश्य कहना चाहते हैं कि इससे अधिक लज्जा और दुःख का विषय और कोई नहीं हो सकता कि हम एक ऐसे महापुरुष के जन्मदिवस की पवित्रता को भी सांप्रदायिक भावना से दूर न रख सके, जिसने इस राष्ट्र के विभिन्न अंगों को एकसूत्रता प्रदान कर अक्षुण्णता की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया था।

मा. तारासिंह का नया प्रलाप

बंबई और विंध्य प्रदेश में जो घटनाएँ घटित हुईं, उनका प्रभाव उन तक ही सीमित न रहकर देश के सभी भागों पर पड़ता हुआ दिखता है। कहा नहीं जा सकता कि पंजाब की हाल की दुर्घटनाओं में इस प्रभाव ने किस हद तक काम किया है, किंतु यह मानना ही पड़ेगा कि उसका कुछ अंशों तक प्रभाव पड़ा अवश्य है।

सरकार ने मास्टर तारासिंह से वार्त्ता करके भी कोई समझदारी का कार्य नहीं किया। इससे अकालियों को बल प्राप्त हुआ है और वे समझने लगे हैं कि सरकार को झुकाने की उनमें सामर्थ्य है।

अभी हाल में अपने पत्र 'प्रभात' में मास्टर तारासिंह ने एक लेख लिखा है, जिसमें आबादी की अदला-बदली का सुझाव दिया गया है। मास्टर तारासिंह ने स्वीकार किया है कि हिंदू व सिखों में इतना तनाव नहीं है कि इसकी नौबत आए। फिर भी यदि सिखों की समस्या और किसी प्रकार हल न हो तो आबादी और संपत्ति की अदला-बदली कर लेनी चाहिए।

मास्टर तारासिंह के विचारों पर यदि गंभीरतापूर्वक विचार किया जाए तो अनुभव

होगा कि उनके विचारों के पीछे 'सिख राज्य' की भावना काम कर रही है। सिखों की हिंदुओं से अदला-बदली हो जाएगी तो पंजाब में सिखों का बहुमत हो जाने से सिख-राज्य का निर्माण सरल हो जाएगा।

सिख हिंदू है और यदि उनका राज्य भी हो जाता है तो वह भी हिंदू राज्य ही होगा। किंतु प्रश्न है कि क्या किसी भी वर्ग विशेष द्वारा स्वयं के वर्ग को राष्ट्रीयता से ऊपर महत्त्व प्रदान किया जाना उपयुक्त है? यदि नहीं तो मास्टर तारासिंह के सुझाव को किसी भी स्थिति में मानना उचित नहीं। यदि यह सुझाव किसी भी स्थिति में माना गया तो विभाजन के दिनों की पुनरावृत्ति की संभावना की जा सकती है।

राजाजी का सुझाव

भारत के भूतपूर्व गवर्नर जनरल तथा महान् मनीषी श्री राजगोपालाचारी ने अभी हाल में दिल्ली में कहा कि यदि राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को 15 वर्षों के लिए टाला नहीं जा सकता तो देश में एकात्मक शासन लागू करना ही भारत सरकार के सामने एक विकल्प है।

राजाजी को देश की राजनीति का अच्छा-ख़ासा परिचय है तथा समय-समय पर उच्च पदों पर रहकर उन्होंने प्रशासन संबंधी समस्याओं को काफ़ी गहराई से समझा है। यदि भारत सरकार उनके सद्परामर्श को मानकर देश में एकात्मक शासन स्थापित कर दे तो देश में सुदृढता, एकात्मता एवं सुसूत्रता का संचार हो सकेगा।

बख़्शी साहब की घोषणा

कश्मीर के मुख्यमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मोहम्मद ने कराची में हुई सर्वदलीय परिषद् के संबंध में कहा कि जम्मू-कश्मीर की जनता उससे किंचित् भी चिंतित नहीं हुई है। आपने यह भी घोषणा की है कि राज्य की जनता असंदिग्ध शब्दों में भारत से अपना अविच्छेद्य संबंध जोड़ चुकी है।

श्री बख़्शी की घोषणा का सर्वत्र स्वागत हुआ है। उन्होंने यह घोषणा पहली बार नहीं की है किंतु ऐसे समय अवश्य की है, जबकि पाकिस्तान सरकार कराची में सर्वदलीय परिषद् का अधिवेशन कर विश्व का ध्यान कश्मीर को ओर खींचना चाहती है।

कश्मीर और कम्युनिस्ट

कश्मीर में काफ़ी समय से कम्युनिस्ट कार्रवाइयाँ बढ़ने लगी हैं और वहाँ की सरकार उनकी उपेक्षा करती प्रतीत हो रही है। शेख़ अबदुल्ला के साथी श्री अफ़ज़ल बेग[1] के 'जनमत संग्रह मोर्चा' के साथ भी कम्युनिस्टों ने गठबंधन करने का प्रयास

---

1. मिर्ज़ा मुहम्मद अफ़ज़ल बेग, 'जनमत-संग्रह मोर्चा' के अध्यक्ष थे, जिन्हें कश्मीर षड्यंत्र केस में आरोपी के तौर पर गिरफ्तार किया गया था।

किया, जिसमें काफ़ी अंशों में वे सफल भी हुए। सरकार के कुछ उच्च पदाधिकारियों तथा मंत्रियों से भी उनको सहायता प्राप्त होती है। इस प्रकार स्थिति इतनी बिगड़ने लगी कि घोर वामपक्षी अंग्रेज़ी पत्र 'Blitz' को भी उस ओर संकेत करना पड़ा। श्री अफज़ल बेग की गिरफ़्तारी ने कम्युनिस्टों के मनसूबों पर कहाँ तक पानी फेरा है, कहा नहीं जा सकता, परंतु 'जनमत संग्रह मोर्चे' को काफ़ी ठेस लगेगी, इसमें संदेह नहीं।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 5, 1955

□

65

शेखावाटी जनसंघ सम्मेलन

राजस्थान के शेखावाटी जनपद, जिसमें चुरू, सीकर व झुंझनू ज़िलों का क्षेत्र आता है, का द्वि-वर्षीय सम्मेलन पिलानी में हुआ। अध्यक्षता राजस्थान विधानसभा सदस्य श्री भैरोंसिंह शेखावत ने की। इस अवसर पर दीनदयालजी का भाषण।

राष्ट्र संरक्षणार्थ एकात्मक शासन आवश्यक

शायद कुछ लोग कहें कि मैं संकट को अनावश्यक रूप से बढ़ा रहा हूँ, किंतु मुझे विश्वास है कि मेरे इन शब्दों में सभी राष्ट्र हितैषियों की भावनाएँ व्यक्त हो रही हैं। राज्य पुनर्गठन आयोग की जो प्रतिक्रिया आज देश भर में प्रगट हुई है, उसमें भारत के पूर्ण विघटन के, खंड-खंड होने के विष-बीज विद्यमान हैं, जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

ढाई वर्ष पूर्व श्रीनगर में एक आवाज़ उठी, 'कश्मीर कश्मीरियों के लिए' सारे देश ने उस राष्ट्रविरोधी नारे का विरोध किया और उस नारे को बुलंद करने वाला शेख़ अब्दुल्ला सींखचों के पीछे बंद कर दिया गया। आज जनता के तथाकथित नेता ही, बंगाल बंगालियों का है, बिहार बिहारियों का है, उड़ीसा में उड़िया के लोग ही रहें आदि नारे लगाते दिखाई दे रहे हैं। राज्य पुनर्गठन आयोग की रिपोर्ट[1] क्या आई, उसने देश के अनेकानेक जन-नेताओं को चौराहे पर लाकर नंगा खड़ा कर दिया है और प्रगट कर दिया है कि राष्ट्रीयता के बाह्य आवरण में अधिकांश स्थानों पर घोर संकुचित प्रांतीयता और क्षेत्रीयता ही वास कर रही है। राजाओं-महाराजाओं को प्रतिक्रियावादी कहा जाता था। किंतु एक ओर तो इन राजाओं ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी से प्राप्त अपने शासनाधिकार को युग की आवश्यकताओं को समझकर

1. 22 दिसंबर, 1953 को न्यायाधीश फ़ज़ल अली की अध्यक्षता में राज्य पुनर्गठन आयोग का गठन हुआ। आयोग ने भाषाई आधार पर नए राज्यों के निर्माण की अनुशंसा करते हुए 30 सितंबर, 1955 को अपनी रिपोर्ट सौंपी।

त्याग दिया और दूसरी ओर 7-8 वर्षों के रसास्वादन से ही आज के नेताओं में इतना मोह पैदा हो गया है कि वे अपनी कुरसी छोड़ने को तैयार नहीं। दिल्ली व हिमाचल प्रदेश में आह्वान हो रहा है कि अपने राज्यों की रक्षा के लिए खड़े हो जाओ। कैसी विडंबना है? एक अजीब जोश व खरोश चारों ओर दिखाई दे रहा है। बंबई व रीवा की शर्मनाक घटनाओं की ओर कोई भी विचारशील व्यक्ति दुर्लक्ष्य नहीं कर सकता। भारतीय जनसंघ का यह निश्चित मत है कि भारत की आंतरिक एकता की अभिव्यक्ति राजनीतिक क्षेत्र में भी होनी आवश्यक है और देश में वर्तमान संघात्मक राज्य पद्धति के स्थान पर एकात्मक शासन व्यवस्था होनी चाहिए। प्रांतों की विधानसभाएँ भंग की जाएँ और जन-जन को लोकतंत्र का अनुभव करवाने के लिए लोकतंत्र जनपदों के स्तर पर लाया जाए। हमारा यह विश्वास है कि इस प्रकार की विकेंद्रित राज्य-व्यवस्था ही आज की विघटनकारी प्रवृत्तियों का सफलतापूर्वक सामना कर सकती है।

सोवियत नेताओं का आगमन

अतिथि का सत्कार करने में तो किसी को भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती, किंतु जिस प्रकार से श्री बुल्गानिन व श्री खुश्चेव का सरकार द्वारा स्वागत किया गया है, वह प्रधानमंत्री पंडित नेहरू द्वारा उद्घोषित तटस्थता की नीति के प्रतिकूल है। हम विश्व के दोनों गुटों के बीच खड़े हैं, राष्ट्रहित इसी में है कि हम दोनों गुटों से बराबर की दूरी रखें। विशेष आपत्ति की बात यह है कि अतिथि के रूप में आए हुए इन महानुभावों ने इस स्वागत का उपयोग भी साम्यवाद के प्रचार के हेतु किया है।

दोषपूर्ण अर्थनीति

आज यह कहने का फैशन सा बन गया है कि जनसंघ के लोग तो संस्कृति व धर्म आदि की ही बात करते हैं, इनका कोई आर्थिक कार्यक्रम नहीं। जैसे मानो संस्कृति व धर्म का आर्थिक कार्यक्रमों से कोई संबंध ही न हो। हमारे रामराज्य की कल्पना तो एक सुख-वैभव संपन्न राज्य व्यवस्था का चित्र है। भारतीय संस्कृति संपन्नता की प्रतीक है। हमारी संस्कृति अभाव की संस्कृति नहीं। छोटी-छोटी बातों में भी यह भाव प्रगट हुआ है। फूटे काँच में मुँह नहीं देखना चाहिए, या थोड़ा सा भी कपड़ा जल जाए तो उसे नहीं पहनना चाहिए आदि। इस प्रकार की धारणाएँ इसी संपन्नता अभिमुख भावना की ही द्योतक हैं।

देश का दारिद्र्य दूर होना चाहिए, इसमें दो मत नहीं, किंतु प्रश्न यह है कि यह ग़रीबी कैसे दूर हो। हम अमरीका के मार्ग पर चलें या रूस के मार्ग को अपनाएँ या यूरोपीय देशों का अनुकरण करें। हमें इस बात को समझना होगा कि इन देशों की अर्थव्यवस्था में अन्य कितने भी भेद क्यों न हों, इनमें एक मौलिक साम्य है। सभी ने मशीनों को ही आर्थिक प्रगति का साधन माना है। मशीन का सर्वप्रधान गुण है, कम मनुष्यों द्वारा अधिकतम उत्पादन

करवाना। परिणामतः इन देशों को स्वदेश में बढ़ते हुए उत्पादन के लिए बाज़ार विदेशों में ढूँढ़ने पड़े। साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद इसका स्वाभाविक परिणाम बना। इस राज्य विस्तार का स्वरूप चाहे भिन्न-भिन्न हो, किंतु क्या अमरीका को, क्या रूस को, क्या इंग्लैंड को सभी को इस मार्ग का अवलंबन करना पड़ा। क्या हम भी इस पथ पर चलना चाहते हैं। हमें इस बात को स्वीकार करना होगा कि भारत की आर्थिक प्रगति का रास्ता मशीन का रास्ता नहीं। भारत सरकार की वर्तमान अर्थ नीति इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। इसका नतीजा यह है कि आज देश में 34 करोड़ स्त्री-पुरुषों में से केवल 12-13 करोड़ लोगों के पास काम है। लगभग तीन, साढ़े तीन करोड़ के पास काम है, किंतु अपर्याप्त। शेष बेकार हैं। नएपन का ग़ुलाम बनकर हम प्रत्येक वस्तु का निर्माण मशीन द्वारा करना चाहते हैं। हमारे पुरखों ने कहा है, ''तेते पाँव पसारिए जेती लांबी सौर।'' किंतु मशीन का मार्ग अपनाने के कारण इस तथ्य के विरुद्ध ही जाना पड़ता है। हमारे सामने दो विकल्प खड़े हो जाते हैं। दोनों ही ख़तरनाक। एक विदेशी सहायता का और दूसरा नोट बनाने का।

भारतीय जनसंघ इन दोनों विकल्पों को अशुद्ध मानता है और विश्वास करता है कि कुटीर उद्योगों को भारतीय अर्थनीति का आधार मानकर विकेंद्रित अर्थव्यवस्था का विकास करने से ही देश की आर्थिक प्रगति संभव है। पिछले तीन वर्षों में पैदावार ख़ूब बढ़ी है, किंतु कच्चे व पक्के माल का आज पारस्परिक संबंध न होने के कारण एक विडंबनापूर्ण स्थिति खड़ी हो गई है। जहाँ कच्चे माल का मूल्य घटता जा रहा है, पक्के माल का मूल्य बढ़ रहा है। कच्चे व पक्के माल को एक स्थान पर लाने से ही यह समस्या हल हो सकती है।

उत्तराधिकार विधेयक

इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि कोई पुरानी वस्तु निरुपयोगी हो जाए तो उसे त्यागना ही बुद्धिमानी है। किंतु हम किसी चीज़ को केवल इसलिए छोड़ने को क़दापि तैयार नहीं कि वह पुरानी हो गई है। पश्चिमी चश्मों से देखने वाले कुछ नेताओं को हिंदू कौटुंबिक व्यवस्था में दकियानूसीपना भले ही दृष्टिगोचर होता है, किंतु हिंदू समाज में बेकारी के विरुद्ध यदि आज तक कोई सबसे बड़ी गारंटी है तो यही व्यवस्था। सरकार नई व्यवस्थाएँ बनाए बिना पुरानी व्यवस्थाओं को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुली हुई है। यह सर्व प्रकारेण आपत्तिजनक है।

कार्यसमिति के एक अन्य निर्णय द्वारा यह निश्चय किया गया कि केंद्रीय जनसंघ के निर्देशानुसार दिनांक 26 जनवरी, 1956 को गोवा सत्याग्रह में भाग लेने के लिए राजस्थान की ओर से भी एक जत्था जाए।

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 12, 1955

□

66

क्या कांग्रेसजन नेहरूजी के आदेश का पालन करेंगे

संसद् में राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफ़ारिशों पर विवाद के समय संयम बरतने की पं. नेहरू ने कांग्रेसजनों से पुन: अपील की है।

अब यह देखना है कि कांग्रेसजन इस मामले में अपने नेता के परामर्श पर कहाँ तक ध्यान देते हैं। अभी तक तो कांग्रेस हाईकमान अक्षम ही सिद्ध हुआ है और इस बात के स्पष्ट निर्देश के बावजूद कि कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्तावों की आलोचना न की जाए, कांग्रेसजनों ने उसका पालन प्राय: उल्लंघन करके ही किया है। यहाँ तक कि दिल्ली तथा अन्यत्र मंत्री तक न केवल राज्य पुनर्गठन आयोग की सिफ़ारिशों के विरुद्ध बल्कि स्वयं अपने नेताओं के निर्णयों के विरुद्ध जनमत संगठित करने में लगे हैं। सार्वजनिक व्यवहार तथा दलीय अनुशासन की सामान्य परंपराओं का यह उल्लंघन केवल व्यक्तियों तक ही सीमित नहीं है बल्कि महाराष्ट्र प्रादेशिक कांग्रेस ने हाईकमान के निर्णय पर असंतोष प्रगट करने वाला एक प्रस्ताव भी पारित किया है।

श्री गाडगिल तथा महाराष्ट्र कांग्रेस द्वारा कांग्रेस हाईकमान के विरुद्ध विद्रोह

श्री एन.वी. गाडगिल[1] ने, जो हाईकमान के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा करने वालों के नेता समझे जा सकते हैं, अपने सहयोगियों को स्मरण दिलाया है कि वे न केवल कांग्रेस के प्रतिनिधि हैं, बल्कि जनता के भी प्रतिनिधि हैं, यह उन्हें नहीं भूलना

1. नरहर विष्णु गाडगिल (1896-1966), स्वतंत्रता पश्चात् केंद्रीय लोक निर्माण, वाणिज्य व खनन मंत्री (1947-52) और कांग्रेस कार्यसमिति के सदस्य (1952-55) थे।

चाहिए। यह तो अच्छा है कि श्री गाडगिल जनता को नहीं भूले हैं और उसकी भावनाओं को बुलंद करना चाहते हैं, फिर भले ही वे कांग्रेस हाईकमान के विचारों से भिन्न हों। किंतु श्री गाडगिल से हम यह पूछ सकते हैं कि क्या पहले भी कभी उन्होंने इस बात की ओर ध्यान दिया था?

हम जानते हैं कि कश्मीर के प्रश्न पर उन्होंने जनता का प्रतिनिधित्व नहीं किया। उन्होंने गो-हत्या निरोध विधेयक का समर्थन क्यों नहीं किया? क्या जनता की इच्छा के विरुद्ध उन्होंने इस विधेयक का समर्थन किया था? उन्होंने मतदाताओं द्वारा हिंदू उत्तराधिकार विधेयक के लाभों, यदि कोई हों, को जानने के लिए आयोजित सार्वजनिक सभा में भाग क्यों नहीं लिया? क्या वे इस संबंध में उनके आदेश का पालन और विधेयक का प्रबल विरोध करेंगे? जनता की बात करना तो बड़ा आसान है किंतु कांग्रेसजनों ने उसकी इच्छा जानने और तदनुसार चलने का कभी प्रयत्न नहीं किया। वास्तव में जन-भावनाएँ नहीं, बल्कि इन नेताओं के अपने स्वार्थ संसद् में तथा उसके बाहर उनको चलाते हैं।

यदि श्री गाडगिल जनहित की क़समें खाते हैं तो उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि भारत की जनता, जिसके हृदय में राष्ट्रीय एकता का भाव अधिक दृढ है, अपने नाम पर चलने वाले इस सत्ता-प्राप्ति के संघर्ष को नहीं पसंद करती। जनता तो केवल दोषरहित तथा योग्य प्रशासन चाहती है, फिर वह मंत्रियों के द्वारा हो या बिना मंत्रियों के द्वारा यदि जनहितों तथा जनभावनाओं का ही विचार करना है तो फिर हमें अपने संविधान को 'राजनीतिज्ञ केंद्रित के स्थान पर नागरिक केंद्रित' बनाना होगा।

कांग्रेसजन और रचनात्मक कार्य की 'बोगस' रिपोर्ट

जन-प्रतिनिधियों का अपने मतदाताओं से संपर्क होना चाहिए, किंतु कांग्रेस विधानसभाई कदाचित् ही कभी अपने निर्वाचन क्षेत्र में जाते हैं। अन्यथा उत्तर प्रदेश कांग्रेस द्वारा इस संबंध में प्रेषित प्रश्नावली अब तक बिना जवाब के कैसे पड़ी रहती! बात यह है कि वे यह जानते हैं कि विधानमंडल में उनका स्थान उनकी योग्यता या जनसेवा के कारण नहीं है बल्कि उसका कारण कांग्रेस टिकट और श्री नेहरू हैं। इन दोनों का निर्वाचन क्षेत्रों से क्या संबंध है। टिकट प्राप्ति के लिए उन्हें कांग्रेस-तंत्र पर नियंत्रण करना चाहिए और अपने आकाओं को खुश। यही कारण है कि जनहितकारी रचनात्मक कार्य करने की परवाह नहीं करते। पंजाब प्रदेश कांग्रेस के मंत्री ने शिकायत की है कि अनेक कांग्रेसजनों ने रचनात्मक कार्यों की झूठी रिपोर्ट दे दी है, जिस प्रकार से कि वे झूठी सदस्य सूची प्रस्तुत करते हैं। यदि कांग्रेस टिकट प्राप्ति के लिए रचनात्मक कार्य की शर्त है तो पदलोलुप कांग्रेसजन इसके अलावा और क्या कर सकते हैं! इसलिए कांग्रेस हाईकमान को इस प्रकार की दिखावटी शर्तें रखकर स्वयं को तथा अन्यों

को धोखा क्यों देना चाहिए? जो वास्तव में रचनात्मक कार्यों में लगे हैं, वे राजनीति से दूर ही रहना चाहेंगे। संसद् में विनोबाओं की ज़रूरत नहीं है और न वे वहाँ जाना ही पसंद करेंगे।

नेहरूजी उर्दू को सुरक्षित रखने की अपेक्षा उसे राष्ट्रीय बनने दें

उर्दू को क्षेत्रीय भाषा स्वीकार करते हुए प्रधानमंत्री पंडित नेहरू ने जो वक्तव्य दिया है, उसके विश्लेषण की आवश्यकता है। पंडितजी ने कहा है कि उर्दू की उत्पत्ति संस्कृत से हुई है और वह केवल मुसलमानों की भाषा नहीं है। जहाँ तक पंडितजी के कथन के उत्तरार्ध का संबंध है, उसे स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि भाषा किसी धर्म विशेष की भाषा नहीं होती। समस्त मुसलमानों के लिए भी यह संभव नहीं है कि वे एक ही भाषा बोल सकें। यहाँ तक कि पूर्वी पाकिस्तान के मुसलमान भी बँगला को राष्ट्रभाषा बनाने के लिए आंदोलन कर रहे हैं। स्वयं को अलग राष्ट्र के अंतर्गत संगठित करने के लिए मुसलिम लीग की छत्रछाया में मुसलमानों ने उर्दू को केवल मुसलमानों की भाषा बनाने का आंदोलनात्मक प्रयास किया। यही कारण था कि हैदराबाद की राज्यभाषा उर्दू थी तथा उस्मानिया विश्वविद्यालय में शिक्षा का माध्यम भी उर्दू ही था। अन्यथा वहाँ उसे कोई बोलता भी नहीं। अत: उर्दू, उसके सर्मथकों और पक्षपातियों की धारणा के विरुद्ध, हिंदू-मुसलमानों के बीच मैत्री उत्पन्न करने का साधन न बनकर विद्वेष और फूट उत्पन्न करने का कारण बनी। आज भी या तो मुसलमान या वे कांग्रेसी, जो उर्दू का समर्थन कर मुसलमानों के मत प्राप्त करना चाहते हैं, उर्दू के हमदर्द बने हुए हैं। सच कुछ भी हो किंतु यह स्पष्टतः समझ लेना चाहिए कि जब तक इस देश में उर्दू वास करती है, मुसलमानों की सांप्रदायिक और विभाजनात्मक मनोवृत्ति समाप्त नहीं हो सकती।

भाषाविज्ञान की दृष्टि से उर्दू कोई भाषा नहीं है। यह केवल हिंदी का एक रूप है और यदि उर्दू का उद्गम संस्कृत को बताने में नेहरूजी का यही अभिप्राय है तो वे ठीक हैं। आज़ उर्दू का अभिप्राय एक ऐसी भाषा से है, जिसमें अरबी-फारसी के शब्दों तथा विचारों का आधिक्य है और जो फारसी लिपि में लिखी जाती है। इसीलिए देशवासियों पर वह राष्ट्र विघटनात्मक प्रभाव डालती है। उर्दू कवि ने कहा है—

"होती कशिश ज़रा भी फ़ारस के शाह की,
सिज्दह न करता हिंद की नापाक ज़मीं पर।"

उपर्युक्त पंक्तियों का अर्थ है कि यदि फ़ारस के शाह की तनिक भी कृपादृष्टि मुझ पर होती तो मैं हिंद की नापाक ज़मीन को मस्तक न झुकाता। जिस क्षण उर्दू विदेशों से

प्रेरणा प्राप्त करना छोड़ देती है, विदेशी प्रभाव से मुक्त हो जाती है, उसी क्षण वह हिंदी के अतिरिक्त कुछ नहीं रहेगी। यही कारण है कि अमीर खुसरो तथा मुंशी प्रेमचंद जैसे कुछ लेखक हिंदी तथा उर्दू साहित्य में समान रूप से स्थान पाते हैं। अत: नेहरूजी उर्दू को सुरक्षित रखने की अपेक्षा राष्ट्रीय बनने दें।

सैनिक संचलन के हिंदी शब्द

सैनिक-संचलन (कवायद) के लिए सरकार ने जो नए शब्द रूपांतरित किए हैं, वे पूर्वशब्दों की अपेक्षा काफ़ी ठीक हैं। ठीक इस रूप में कि उनमें व्याकरण संबंधी नियमों का समान रूप से पालन किया गया है। किंतु फिर भी अभी उनमें सुधार की काफ़ी आवश्यकता है। यदि हम हिंदुस्थानी को छोड़कर संस्कृत से शब्द ग्रहण करने का निश्चय कर लें तो समस्या सफलतापूर्वक हल हो सकती है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ पहले से ही अधिक प्रभावी तथा उपयुक्त आज्ञाओं के प्रयोग कर रहा है और देश की भावी पीढ़ी उनसे अच्छी प्रकार परिचित है। यदि सरकार को कोई संकोच न हो तो वह संघ की आज्ञाओं का प्रयोग कर सकती है। यदि सरकार को यह सुझाव अच्छा न लगे तो वह ऐसी संस्थाओं की, जो शारीरिक शिक्षण तथा स्वयंसेवा वृत्ति उत्पन्न करने का कार्य करती हैं, एक समिति इस कार्य के लिए नियुक्त कर सकती है। किंतु ध्यान रहे, इस प्रकार की समिति भाषा के आधार पर संगठित न की जाए।

हम यहाँ कुछ अंग्रेज़ी सरकार द्वारा स्वीकृत तथा संघ द्वारा अंगीकृत शब्द तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं, जो पाठकों के समक्ष संघ द्वारा अंगीकृत शब्दों की श्रेष्ठता सिद्ध कर सकेंगे—

अंग्रेज़ी शब्द	सरकार द्वारा स्वीकृत शब्द	संघ द्वारा अंगीकृत शब्द
अटेनशन	सावधान	दक्ष
स्टैंड-ऐट-ईज	विश्राम	आराम
स्टैंड-इजी	आराम से	स्वस्थ
नंबर	गिनती से	संख्या
आइज फ्रंट	सामने देख	पुरो दृक्
आइज राइट या लेफ्ट	दाहिने या बाएँ देख	दक्षिण या वामदृक्
एबाउट टर्न	पीछे मुड़	अर्धवृत
फाल इन	लाइन बना	एकश: संपत्
ब्रेक ऑफ	स्वस्थान	विकिर
फाल आउट	लाइन तोड़	विश्रम्

एज-यू-वेयर	जैसे थे	पूर्ववत्
मार्क टाइम	क़दम ताल	मित काल
स्लो मार्च	धीरे चल	प्रचल्
डबल मार्च	दौड़ के चल	क्षिप्रचल्

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 19, 1955

☐

67

योजना आयोग के सुझाव अनुपयुक्त

योजना आयोग एवं उसकी परामर्शदात्री समिति को छोड़कर देश के सभी वर्गों ने द्वितीय पंचवार्षिक योजना की अवधि में सार्वजनिक क्षेत्र में प्रस्तावित 4,300 करोड़ रुपए के व्यय को अत्यधिक एवं बूते के बाहर का बताया था, किंतु उनकी आलोचनाओं से लाभ उठाने तथा योजना को अधिक व्यावहारिक बनाने के स्थान पर आयोग ने उसमें वृद्धि करके 8,400 करोड़ रुपया कर दिया है। अर्थशास्त्री समिति ने आयोग के सुझाव को मान्यता दे दी है। ऐसा प्रतीत होता है कि या तो समिति के सभी अर्थशास्त्री आयोग की हाँ-में-हाँ मिलाना ही अपना कर्तव्य समझते हैं अथवा वे व्यावहारिक जगत् से दूर हो रही सिद्धांतों की दुनिया में और वह भी साम्यवादी सिद्धांतों में विचरते हैं।

ऊँची आकांक्षाएँ लेकर चलना अच्छा हो सकता है, किंतु उनकी पूर्ति का साधन भी चाहिए, जो साधन अर्थमंत्री ने सुझाए हैं, वे न तो सभी उपलब्ध हो सकेंगे और न वे ख़तरों से खाली हैं। गत मार्च में जो योजना की रूपरेखा दी गई थी, उसमें यद्यपि आधारभूत परिवर्तन नहीं किए गए हैं तथापि वित्तमंत्री ने आय के सभी साधनों के अनुमान बढ़ा दिए हैं, जो कि संभव नहीं। निम्न आँकड़े तुलनात्मक दृष्टि से उपयोगी होंगे।

अर्थ मंत्री की भ्रांति

रेल तथा अन्य निधि के जहाँ केवल 200 करोड़ की प्राप्ति का अनुमान था, अब उसे बढ़ाकर 400 करोड़ कर दिया गया है विदेशी सहायता भी 400 करोड़ के स्थान पर 800 करोड़ मिलेगी, यह बताया जाता है। आज की करों की दर से राजस्व में से 350 करोड़ की बचत के अतिरिक्त 450 करोड़ के नए कर लगाने का आयोजन है तथा 1,200 करोड़ की कमी की अर्थव्यवस्था करने को भी कहा जाता है।

अर्थमंत्री ने सभी साधनों से अधिक आय का प्रस्ताव किया है, किंतु उनके पास

इसके पक्ष में कौन से प्रमाण हैं, यह प्रस्तुत नहीं किए। बदले हुए अमरीकी रुख़ के कारण हमें विदेशी सहायता नहीं मिल पाएगी, ऐसा प्रधानमंत्री के कहने के उपरांत भी एकदम दुगनी विदेशी सहायता का क्या आधार है? क्या रूस ने कुछ सहायता का वचन दिया है? यदि यह सत्य है तो देश को उससे अवगत करना चाहिए।

रेल तथा अन्य निधियों से भी दुगनी आय का अर्थ यही होगा कि रेल के किरायों को बढ़ा देने की योजना है। क्या बढ़े हुए किरायों के पश्चात् भी रेल इसी प्रकार मुनाफ़ा देती रहेगी। 450 करोड़ के नए कर तो लगाए जा सकते हैं, किंतु आज की अर्थव्यवस्था में इन्हें उगाहना सरल नहीं। यदि धनिकों पर वह भार अधिकता से डाला गया तो 2,200 करोड़ की पूँजी जो योजना के अंतर्गत निजी क्षेत्र में लगनी चाहिए, नहीं आ पाएगी। यदि सामान्य जनों पर इसका बोझा पड़ा तो प्रथम तो उनके गिरे हुए जीवन स्तर को यह और भी नीचे गिराएगी तथा दूसरे योजना की सफलता के लिए जो मनोवैज्ञानिक भूमिका चाहिए, वह जनसाधारण की नहीं बन पाएगी। पिछले अनुभव के अनुसार राज्य नए कर लगाकर अलोकप्रिय बनना नहीं चाहेगा तथा केंद्र अपने करों में इतनी वृद्धि कर सकेगा, यह संभव नहीं। अर्थशास्त्रियों के मत के अनुसार यदि आय का उच्चतर स्तर निश्चित कर दिया गया तो आयकर में जो कि राजस्व का सबसे बड़ा साधन है, भारी कमी हो जाएगी। 350 करोड़ की बचत भी बनाए रखना सरल नहीं। नए करों से आय तो और भी कठिन है। इसी प्रकार मुद्रास्फीति का भय भी बना रहेगा, क्योंकि आज के 2,000 करोड़ की मुद्रा के आधार पर 1,200 की नई मुद्रा का प्रचलन बहुत अधिक होगा।

बेकारी का कोई हल नहीं

योजना में छोटे उद्योगों को जो मदद दी गई थी, उसमें कर्वे कमेटी की सिफ़ारिशों के बाद भी कोई वृद्धि नहीं की गई। हाँ, कारख़ानों द्वारा निर्मित उपभोग्य वस्तुओं के लिए दुगनी राशि की व्यवस्था अवश्य कर दी है। अर्थात् छोटे-छोटे उद्योग जो कुछ आशा लगा कर बैठे थे, वह भी समाप्त हो गई। बेकारी का प्रश्न भी वैसा ही बना रहेगा।

छोटे उद्योगों को यथेष्ट सहायता नहीं, योजना साधनों के अनुरूप बनाई जाए

अर्थशास्त्रियों ने नियंत्रण को पुनः लागू करने का भी सुझाव दिया है। कंट्रोलों के कारण जनता को कितनी परेशानी होती है, यह अभी कोई भूला नहीं है। यदि ऐसा किया गया तो जनता का सहयोग योजना के निमित्त बिल्कुल नहीं मिलेगा। किंतु मुद्रास्फीति को रोकने के लिए और रास्ता भी नहीं। चक्की के दो पाटों के बीच जनता को पीसने तथा एक अधिनायकवादी योजना को बनाने की अपेक्षा हम अपनी योजना को छोटा

करें तथा 'तेते पाँव पसारिए जेती लाँबी सौर' की उक्ति को व्यवहार में अपनाएँ। क्योंकि सबकुछ करने के बाद भी 800 करोड़ की कमी रह जाती है, जिसको पूरा करने का अभी कोई मार्ग नहीं सूझा। ऐसा प्रतीत होता है कि इस योजना के चक्कर में हम अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता तथा लोकतंत्रीय अधिकारों से भी हाथ धो बैठेंगे तथा नए करों की छूट तथा साधनों की अपर्याप्तता के कारण योजना के असफल होने पर भौतिक अभ्युदय भी प्राप्त नहीं कर सकेंगे, हमें यह भी कहना पड़ेगा।

न खुदा ही मिला न बिसाले सनम।
न इधर के रहे न उधर के रहे॥

—पाञ्चजन्य, दिसंबर 26, 1955

□

परिशिष्ट

परिशिष्ट-I

आगे बढ़ता पंजाब जनसंघ

पानीपत में 25-27 दिसंबर को आयोजित पंजाब राज्य जनसंघ के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में 500 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। 15,000 से अधिक लोग विचार-विमर्श की कार्रवाई के साक्षी रहे। संसद् सदस्य बाबू राम नारायण सिंह ने उद्घाटन समारोह में जनसंघ का ध्वज फहराया और कहा, 'जनसंघ ने अपने ध्वज के लिए एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण रंग का चयन किया है। एक समय में भगवा त्याग और कर्म का एक प्रतीक था। यह अपने अनुयायियों को निस्स्वार्थ काम करने के लिए प्रेरित करता था।' इसके पूर्व बाबू राम नारायण सिंह, श्री दीनदयाल उपाध्याय, पंडित प्रेमनाथ डोगरा, प्रो. महावीर और आचार्य रामदेव को एक बड़े जुलूस के साथ ले जाया गया। मार्ग पर पैंतीस सजे-धजे तोरणद्वारों की स्थापना की गई थी।

आचार्य राम देव और श्री कृष्ण लाल को फिर से दूसरे कार्यकाल के लिए क्रमश: अध्यक्ष और सचिव निर्वाचित किया गया। वर्ष के दौरान जनसंघ के विकास की जानकारी देते हुए आचार्य राम देव ने जम्मू में अधिमिलन समर्थक आंदोलन को मज़बूत करने में पंजाब द्वारा निभाई गई भूमिका का उल्लेख किया। उन्होंने कहा, 'इस सीमावर्ती राज्य को भविष्य में और कमज़ोर होने से रोकने के लिए जनसंघ ने महा पंजाब की भी माँग प्रस्तुत की है।'

'जनसंघ रचनात्मक कार्य में भी लगा हुआ है। इनमें से कुछ के परिणाम सामने हैं। यथा—नरोट जयमल सिंह (शहर), जिला गुरदासपुर में कार्यकर्ताओं ने बाढ़ के पानी को रोकने के लिए एक बाँध का निर्माण किया; गोहाना, ज़िला रोहतक में उन्होंने शहर के ठीक बाहर एक गंदे नाले पर एक पुल का निर्माण किया। स्थानीय अधिकारी इस सार्वजनिक शिकायत को दूर करने में कई वर्ष से विफल रहे थे। राज्य भर में बड़ी संख्या में पुस्तकालय और मुक्त औषधालय खोले गए हैं। पठानकोट में जनसंघ ने एक अभिनव प्रयोग सफलतापूर्वक किया। आम तौर पर रिक्शाचालक अपने वाहनों के स्वामी नहीं होते। वे मालिकों को किराये के रूप में दो रुपए का भुगतान करते हैं और

इस रकम से ऊपर जो कमा पाते हैं, केवल वही रख पाते हैं। रिक्शा मालिकों की संपत्ति ही बने रहते हैं। जनसंघ ने 4,000 रुपए की राशि की व्यवस्था की और दस रिक्शे ख़रीदे। इन्हें युवा बेरोज़गार लोगों को दिया गया। उन्हें प्रतिदिन एक रुपए का ही भुगतान करना था। और 400 दिन बाद रिक्शा उनका हो जाएगा। यह मूलत: क़िस्तों में ख़रीदारी थी।'

जम्मू प्रजा परिषद् के अध्यक्ष पंडित प्रेमनाथ ने अधिवेशन में विशेष रूप से भाग लिया। उन्होंने जम्मू के लोगों के अधिमिलन समर्थक आंदोलन में पंजाब द्वारा निभाई गई, बड़ी भूमिका पर पंजाब को बधाई दी। कश्मीर की स्थितियों पर उन्होंने कहा, 'कुछ ही दिनों में अब्दुल्ला राज्य को पूरी तरह बरबाद कर देंगे। बख्शी साहिब अपने दृष्टिकोण में ईमानदार थे। उनके ध्यान में लाई गई हर छोटी शिकायत उन्होंने सुनी। पाकिस्तान को अमरीकी हथियारों की वार्त्ता सबूत थी कि कोई शरारत चल रही है। इस संदर्भ में जनमत संग्रह की बात करना ग़लत था। लोगों को यह तय करने का अधिकार है कि वे जनमत संग्रह चाहते हैं या नहीं।'

सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव में अमरीका-पाकिस्तान हथियार वार्त्ता को गंभीरता से लिया गया और इस चाल को मात देने के लिए शीघ्र और प्रभावी उपाय करने का सुझाव दिया गया। प्रो. महावीर ने कहा, 'यह नेहरू के मुँह पर एक तमाचा था। देश न तो कोई बड़ा युद्ध लड़ने के लिहाज़ से पर्याप्त मज़बूत था, न किसी बड़े युद्ध को रोकने के लिहाज़ से। बच्चा-बच्चा जानता था कि पाकिस्तान हमारे प्रति शत्रुतापूर्ण है, लेकिन प्रधानमंत्री इससे पूरी तरह लापरवाह नज़र आ रहे थे।'

पुनर्वास पर प्रस्ताव में कहा गया, 'सारा काम बहुत ही धीमी गति से आगे बढ़ रहा है। यहाँ तक कि उच्च प्राथमिकता श्रेणियों के तहत आने वाले 55,000 व्यक्तियों में से केवल 22 को अब तक मुआवज़ा प्राप्त हुआ है, और वह भी केवल एक अंश! प्रस्ताव में कहा गया कि भारत सरकार को इस काम में इंडिया रिफ्यूजी एसोसिएशन को अवश्य शामिल करना चाहिए और इसे युद्ध आधार पर तेज़ी से पूरा करना चाहिए।'

अधिवेशन ने निवारक नज़रबंदी और प्रेस से संबंधित दो काले अधिनियमों का विस्तार किए जाने की निंदा की। अधिवेशन ने कहा कि इन दोनों अधिनियमों का निहायत दुरुपयोग किया गया है। निवारक नज़रबंदी के तहत नज़रबंद किए गए 1,100 व्यक्तियों में से केवल पच्चीस मुनाफ़ाखोर थे। कोई भी न तो डकैत था, न कोई और असामाजिक तत्त्व था। बाक़ी सभी राजनीतिक बंदी थे।

अधिवेशन ने शिक्षा के क्षेत्र में ठहराव का क्षोभ के साथ उल्लेख किया। अधिवेशन ने कहा कि शिक्षा को अधिक तकनीकी और आर्थिक रूप से अधिक उपयोगी होने की ज़रूरत है। भारतीय संस्कृति और सैन्य प्रशिक्षण को अनिवार्य विषय बनाने का सुझाव

दिया गया। शिक्षकों के लिए बेहतर परिलब्धियों का सुझाव दिया गया।

अधिवेशन ने मंत्रियों और सरकारी कर्मचारियों की मानहानि को एक संज्ञेय अपराध बनाने और केवल सत्र न्यायाधीश के समक्ष विचारणीय बनाने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता में संशोधन करने के प्रयास को अस्वीकृत कर दिया। अधिवेशन ने कहा कि यह इन लोगों का बचाव करने का एक फूहड़ तरीक़ा है और क़ानून के समक्ष सभी की समानता के नियम का उल्लंघन करता है।

अधिवेशन ने क़ानून बनाकर गोहत्या पर प्रतिबंध लगाने का आग्रह किया और डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मौत की रहस्यमय परिस्थितियों की जाँच की माँग की।

—ऑर्गनाइज़र, जनवरी 4, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

कश्मीर के मोर्चे पर

(सत्याग्रह, उसके पूर्व व पश्चात्)

रामशंकर अग्निहोत्री
संपादक, आकाशवाणी, दिल्ली (अप्रैल 53-जनवरी 54)

भारतीय जनसंघ
अजमेरी गेट, दिल्ली

प्रस्तावना

कश्मीर का मोरचा भारत का राष्ट्रीय मोरचा है। 1947 में भारतीय सेना के जवानों ने वहाँ दुश्मन के हौसले पस्त किए। कश्मीर को अपनी जेब में समझकर चलने वाले स्व. मुहम्मद अली जिन्ना का ख़्वाब पूरा न हो सका। उसी मोरचे पर फिर से एक बार 1953 में भारत के लाड़लों को अपना बलिदान देना पड़ा। इस बार विपक्षी बाहर का नहीं बल्कि अपने ही वे बंधु थे, जो दुर्नीत के शिकार होकर शेख़ अब्दुल्ला के भारत-विरोधी षड्यंत्र को पूरा करने में सहायक हो रहे थे। भारत सरकार चाहे आँख बंद कर वास्तविकता से मुँह मोड़ ले, किंतु भारत के राष्ट्रीय तत्त्व सतत जागरूक हैं। सतत जागरूकता ही स्वतंत्रता का मूल्य है।

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में कश्मीर का शांतिपूर्ण सत्याग्रह, उनका बलिदान और उसके परिणामस्वरूप भारत-कश्मीर एकता हाल के इतिहास की घटनाएँ हैं। मोरचे पर अभी तक हमने अनेक लड़ाइयाँ जीती हैं, किंतु युद्ध अभी शेष है। एक तिहाई कश्मीर अभी शत्रु के अधिकार में है। भारत से अलग रह कर अपने मंसूबे पूरे करने की योजना बनाने वाले कम्युनिस्ट कश्मीर में सक्रिय हैं तथा वहाँ के शासन की छत्रच्छाया में पनप रहे हैं; जम्मू में वहाँ के राष्ट्रीय तत्त्वों की अवहेलना ही नहीं अपितु उन्हें दबाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। अतः हमारी लड़ाई पूरी नहीं हुई।

'कश्मीर के मोर्चे पर' (सत्याग्रह, उसके पूर्व ही पश्चात्) पुस्तिका गतवर्ष की घटनाओं का छोटा सा सिंहावलोकन है। इसे हम सत्याग्रह का इतिहास नहीं कहेंगे; अनेक तथ्य छोड़ दिए गए हैं। वे तो जब हमारी अंतिम नीति होगी तभी प्रकाश में आएँगे; आज तो अगले क़दम के लिए हमें विगत घटनाओं से प्रकाश और प्रेरणा मिले, इसी उद्देश्य से प्रकाशन प्रस्तुत है।

डॉ. मुखर्जी बलिदान दिवस

लखनऊ

—दीनदयाल उपाध्याय

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी
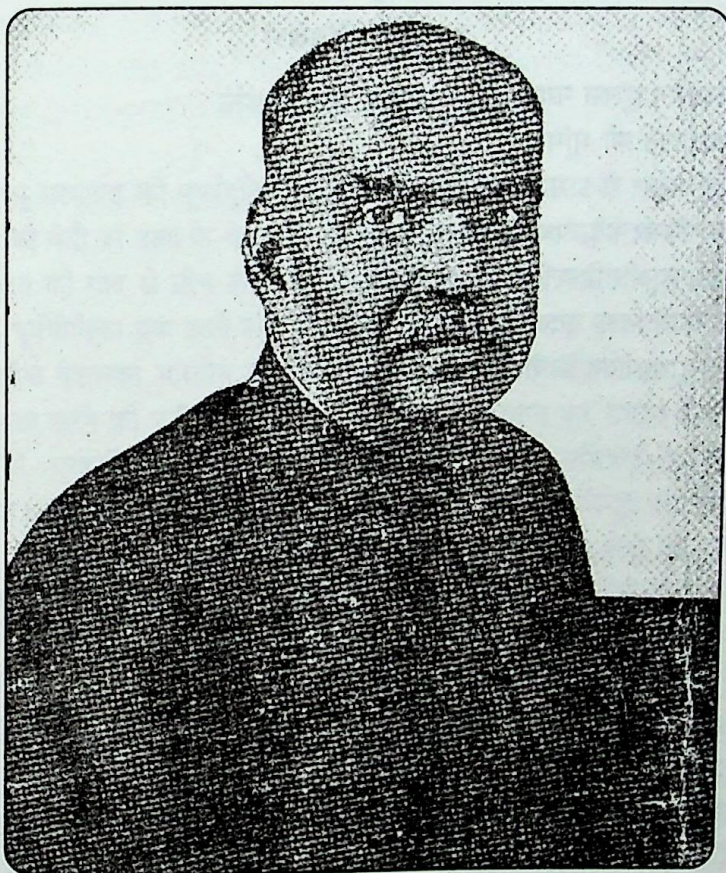
जिसे पाकर भारत की जनता फूली न समाई और जिसे खोकर भी गर्व से मस्तक ऊँचा किए है।

अनुक्रमणिका

1

नंदनवन झुलस गया

जम्मू सत्याग्रह की पूर्णाहुति के रूप में 23 जून सन् 1953 को भारत की अखंडता की वेदी पर माता के श्रेष्ठ पुत्र डॉ. मुखर्जी के बलिदान के परिणामस्वरूप कश्मीर को भारत की गोद से छीन लेने के जो कुत्सित कूटनीतिक षड्यंत्र धूल में मिल गए, उनकी पूर्वपीठिका एक इतने लंबे कालखंड की ऐसी क्रमबद्ध घटनाओं से संबंधित है कि प्रत्येक देशभक्त भारतीय उसका योग्य आकलन कर विदेशियों द्वारा भारतीय भूमि पर क़ब्ज़ा करने की कुटिल रीति-नीति का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

डॉ. मुखर्जी का बलिदान हुआ। शहीद के ख़ून की पवित्रता ने अपना प्रभाव दिखाया। महाविनाश के गड्ढे को प्रगति की सीढ़ी मानकर ज़िद्द की मदिरा पीकर कगार पर खड़ी नेहरू सरकार चौंकी और कल तक के मित्र शेख़ को गद्दारी का ख़िताब देकर गिरफ़्तार भी किया गया। इस प्रकार यह सत्य है कि जम्मू सत्याग्रह में भारत के सत्पुत्रों ने जो अभियान किया, जम्मू, दिल्ली व पठानकोट के मोरचों पर जो लड़ाई लड़ी, तथा जम्मू के 16 वीरों के बलिदान, देश के कोने-कोने से 'कश्मीर हमारा है' की घोषणा करते हुए विभिन्न सत्याग्रही जत्थों के रूप में उठी जन-हिलोर ने जो महान् ऐतिहासिक कार्यसिद्धि पाई, उसकी सफलता शेख़ अब्दुल्ला के पदच्युत होने और प्रधानमंत्री श्री नेहरू की ग़लत नीतियों के परदाफ़ाश होने में आँकी जा सकती है।

यह संघर्ष भारत सरकार की उस कमज़ोर तथा आत्मघात की नीति के विरुद्ध था जिसके अनुसार कश्मीर को एक पृथक् इकाई मानकर उसके आत्मनिर्णय के अधिकार को स्वीकार किया गया था। ''कश्मीर के आत्मनिर्णय का सिद्धांत उतना ही ग़लत एवं घातक है, जितना मुसलिम लीग का आत्मनिर्णय का सिद्धांत था।'' यह घोषणा कर आंदोलन के नेताओं ने स्पष्ट कर दिया था कि भारत सरकार पुनः द्विराष्ट्रवाद के क़दमों पर चल रही है।

भारत सरकार की इस कमज़ोर नीति के कारण शेख़ को स्वतंत्र कश्मीर का लालच बँधा और उसने स्वतंत्र सत्ता संपन्न तानाशाह बनने के सपने को सत्य सृष्टि में लाने के लिए रूस, अमरीका या पाकिस्तान की विदेशी शक्तियों से गठजोड़ किया इसमें तनिक भी आश्चर्य की बात नहीं। कारण—कश्मीर की अपनी ऐसी अंतरराष्ट्रीय महत्ता है कि विश्व की हर ताक़त की आँखें वहाँ लगी रहती हैं।

पूर्व में तिब्बत, उत्तर में चीन व रूस तथा उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान से घिरे सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण इस कश्मीर राज्य पर अपना प्रभाव स्थापित कर संपूर्ण एशिया का नियंत्रण किया जा सकता है, इस बात को दुनिया की हर ताक़त महसूस करती है। रूस की शक्ति को बढ़ने से रोकने के लिए इच्छुक पश्चिमी शक्तियाँ तो गत सौ वर्षों से इस भूखंड पर आँखें गड़ाए बैठी हैं और उन्होंने कश्मीर को हड़पने के लगातार प्रयत्न भी किए।

अंग्रेज़ों के साथ सन् 1846 की अमृतसर संधि के अनुसार जम्मू और लद्दाख के शासक महाराजा गुलाब सिंह ने कश्मीर घाटी को भी अपने राज्य में मिला लिया था और इस प्रकार कश्मीर राज्य की वे सीमाएँ प्राप्त हुईं, जो (पाकिस्तान अधिकृत आज़ाद कश्मीर क्षेत्र को मिलाकर) आज भी विद्यमान हैं। उस समय अंग्रेज़ों ने शासन की असुविधा का अनुभव कर तथा डोगरा जाति की सद्भावना प्राप्त करने के उद्देश्य से ही ऐसा किया था। किंतु जब सन् 1849 में पंजाब में अंग्रेज़ों के पैर जम गए तो अंग्रेज़ों को अपनी भूल पर पश्चात्ताप हुआ और उन्होंने महाराजा गुलाब सिंह के कार्यों में हस्तक्षेप करना प्रारंभ किया।

सन् 1853 में जब जान.वी. आयरलैंड नामक एक अमरीकी यात्री कश्मीर आया, तब उसने लिखा कि ''कश्मीर को महाराजा गुलाब सिंह के हाथों में सौंपकर अंग्रेज़ों ने महान् भूल की है।''

संपूर्ण एशिया पर साम्राज्य फैलाने तथा रूस की शक्ति को रोकने के लिए उत्सुक अंग्रेज़ी सत्ता को अपनी इस भूल का अनुभव हुआ था और इसीलिए उन्होंने अपना जाल फैलाना प्रारंभ भी किया। सन् 1851 में उन अंग्रेज़ यात्रियों की देख-रेख के लिए जो कश्मीर पर्यटन के लिए आएँगे एक अंग्रेज़ अधिकारी कश्मीर में रखने की अनुमति महाराजा गुलाब सिंह से प्राप्त कर ली। कश्मीर में एक अंग्रेज़ अधिकारी बनाए रखने की बात कश्मीर पर डोरे डालने की शुरुआत थी।

महाराजा गुलाब सिंह की मृत्यु के बाद सन् 1853 में अंग्रेज़ों ने नियमित रूप से एक अंग्रेज़ रेसीडेंट रखने का सुझाव रखा, किंतु महाराजा गुलाब सिंह के पुत्र महाराजा रनवीर सिंह ने उसका कड़ा विरोध किया। 12 वर्ष बाद महाराजा रनवीर सिंह की मृत्यु हुई और उसके पश्चात् सन् 1885 में अंग्रेज़ों का यह प्रयत्न भी सफल हुआ। एक

अंग्रेज़ रेसीडेंट वहाँ रहने लगा।

इतने मात्र से तो अंग्रेज़ संतुष्ट नहीं थे। वे तो अंतरराष्ट्रीय दृष्टि से इस सामरिक क्षेत्र को अपने पूर्ण नियंत्रण में लेना चाहते थे, इसलिए सन् 1889 में एक गुप्त षड्यंत्र किया गया।

इस षड्यंत्र का भंडाफोड़ उसके कार्यान्वित होने के पहले ही हो गया। भारतीय समाचार-पत्रों ने, जिनमें 'अमृत बाज़ार पत्रिका' का नाम प्रमुख है, इस षड्यंत्र का पता भारतीय जनता को दिया। फलस्वरूप अंग्रेज़ों का यह क़दम भी असफल रहा।

इसके बाद अंग्रेज़ मौक़ा ढूँढ़ते रहे। उन्होंने भारत के अन्य प्रदेशों की तरह कश्मीर में भी मुसलिम सांप्रदायिकता को उभारा। जब महाराजा हरि सिंह ने गोलमेज़ परिषद् में अपने भाषण में यह घोषणा की कि वे भारतीय जनता की स्वाधीनता प्राप्ति की आकांक्षाओं का समर्थन करते हैं तो अंग्रेज़ सल्तनत चिढ़ गई और मुसलिम कॉन्फ्रेंस के नाम पर सन् 1930 में मुसलिम सांप्रदायिकता का भूत तैयार किया गया। शेख़ अब्दुल्ला को अपने हाथों में लेकर महाराज हरि सिंह के विरुद्ध खुली बग़ावत कराई गई। श्रीनगर, मीरपुर, कोटली आदि स्थानों पर भयंकर दंगे हुए और सैकड़ों हिंदुओं की जानें गईं। इसके बाद ग्लेंसी कमीशन के द्वारा अंग्रेज़ों ने मुसलमानों को राज्य में कई प्रकार की सुविधाएँ प्रदान कराईं और शेख़ अब्दुल्ला को अपने एजेंट के रूप में कश्मीर में खड़ा कर दिया। जिस प्रकार भारत में मुसलिम हितों के संरक्षण का नाम लेकर अंग्रेज़ों की कूटनीति ने पाकिस्तान को जन्म दिया, ठीक उसी प्रकार शेख़ अब्दुल्ला को सामने रखकर स्वतंत्र कश्मीर का रास्ता भी बनाया गया।

और फिर जब देश स्वतंत्र हुआ

इसके बाद जब जागतिक परिस्थितियों के कारण अंग्रेज़ों को भारत छोड़कर जाना पड़ा, तो भारत के जिन अदूरदर्शी, घुटने टेकू मनोवृत्ति के शिकार और अंतरराष्ट्रीय राजनीति में सतत अपमानित होने के बाद भी विश्वशांति का दम भरने वाले नेताओं ने स्वर्गीय महात्मा गांधी की इच्छाओं को अपने महत्त्वाकांक्षी पैरों से रौंदते हुए 3 जून को भारत का विभाजन स्वीकार किया, उन्हीं नेताओं ने अपनी अकारण, असामाजिक उदारता दिखाते हुए एक-तिहाई कश्मीर को पाकिस्तानी लुटेरों के हाथों सौंप दिया, कपटी मित्र शेख़ अब्दुल्ला पर विश्वास कर शेष कश्मीर को भारत से अलग रखकर भयंकर ऐतिहासिक भूल की। कश्मीर राज्य के राजा हरि सिंह को पदच्युत कर सांप्रदायिकता के तुष्टीकरण का यत्न किया और अंत में भिखमंगों की झोली हाथ में लेकर विश्व के बाज़ार यू.एन.ओ. में रोते-चिल्लाते, अजा पुत्र के समान मिमियाते हुए न्याय की भीख माँगते बैठे। छह वर्ष के इस लंबे कालखंड में इन नेताओं के हाथ विश्व का उपहास मिला, पाकिस्तान के

द्वारा धमकियाँ मिलीं, हज़ारों माँ-बहनों का अपहरण होने पर, करोड़ों की संपत्ति नष्ट होने पर, आँसू पोंछने के लिए यू.एन.ओ. के समय-समय पर प्रतिनिधिमंडल मिले, शेख़ अब्दुल्ला की गद्दारी मिली, जम्मू के 16 वीरों की लाशें; हज़ारों सत्याग्रहियों की जेल यातनाएँ और डॉ. मुखर्जी के साथ किए गए मृत्यु षड्यंत्र में कालिख मिली।

हरि सिंह के उद्गार

शेख़ अब्दुल्ला के विश्वासघाती रुख़ के परिणामों को देख कर हमें कश्मीर के भूतपूर्व महाराजा हरि सिंह के उद्गार याद आ रहे हैं। कितना अच्छा होता, यदि उस समय भारत के नेताओं ने हरि सिंह के वाक्यों की क़ीमत समझी होती। पाँच साल पहले के इतिहास के पृष्ठ पलटने से विदित होगा कि 3 जून, 1947 को जब भारत विभाजन का सिद्धांत मान्य हो गया तब भारतवर्ष के सभी रियासती राज्यों को स्वेच्छा से निर्णय करने का अधिकार प्राप्त हुआ था। उस समय कश्मीर के संबंध में यद्यपि महाराज हरि सिंह भारत के समर्थन में थे, किंतु वे कश्मीर की सत्ता शेख़ अब्दुल्ला के हाथ में सौंप देने को बिल्कुल भी तैयार नहीं थे। भारत सरकार और कश्मीर के भूतपूर्व महाराज़ा हरि सिंह दोनों के बीच यही मूलभूत मतभिन्नता थी। एक ओर पंडित नेहरू भारत के साथ कश्मीर के विलयन के पक्षपाती, हिंदुओं और कश्मीर को पाकिस्तान में विलीन करने के इच्छुक, कॉन्फ्रेंसी मुसलमानों के बीच में संतुलन निर्माण करने के लिए अपने मित्र शेख़ अब्दुल्ला पर विश्वास कर उनके हाथों में शासन सूत्र सौंपने के लिए इच्छुक थे तो दूसरी ओर महाराजा हरि सिंह, जो शेख़ अब्दुल्ला की असलियत और मुसलिम कॉन्फ्रेंस की मुसलिमपरस्त हरकतों और षड्यंत्रों को जानते थे, शेख़ अब्दुल्ला के हाथ शासन सौंपने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। उस समय महाराजा हरि सिंह ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—

''मैं भी एक कश्मीरी हूँ और शेख़ अब्दुल्ला को अच्छी तरह जानता हूँ। उनके विगत जीवन और आधुनिक हलचलों के सूक्ष्म अध्ययन से मेरी धारणा की सार्थकता अवश्य ही प्रकट होगी।''

महाराजा की प्रार्थना

और सचमुच 5 साल पहले कहा गया यह वाक्य आज कितना खरा उतरा। मुसलिम तुष्टीकरण की नीति के शिकार कांग्रेसी प्रधानमंत्री श्री नेहरूजी यदि महाराजा के उन शब्दों की सार्थकता को पाँच साल पहले समझ लेते तो आज का यह दुर्भाग्यपूर्ण दिवस न देखना पड़ता।

उस समय की गंभीरता को अनुभव कर महाराजा हरि सिंह ने भारत सरकार से

प्रार्थना की कि वह कश्मीर राज्य का डाक-तार विभाग अपने क़ब्ज़े में कर ले। इस प्रार्थना के द्वारा महाराजा ने भारत सरकार को संकेत किया था कि वे 'कश्मीर का भारत में विलयन हो' इस विचार के पूर्ण समर्थक हैं। केवल शेख़ अब्दुल्ला सरीखे विश्वासघाती के हाथ कश्मीर को सौंपकर कश्मीरी जनता को अपने हाथों अंधकार के कुएँ में पटकना नहीं चाहते।

'जेब में'-मि. जिन्ना की योजना

दूसरी ओर पाकिस्तान के क़ायदे आज़म जिन्ना से कश्मीर मुसलिम कॉन्फ्रेंस ने जब कश्मीर के बारे में पूछा तो क़ायदे आज़म जिन्ना ने कहा था—''कश्मीर तो मेरी जेब में पड़ा है।'' उसके अनुसार पाकिस्तान ने अक्तूबर 1947 में कश्मीर पर हमला करने की पूर्व तैयारी कर ली थी। आर्थिक नाकाबंदी, कश्मीर के अंदर रहने वाले मुसलिमों द्वारा आंतरिक उपद्रव, कश्मीर राज्य में सेना में नौकरी पाने वाले मुसलमान सिपाहियों द्वारा सेना में विद्रोह तथा पश्चिमी ज़िलों में प्रत्यक्ष कश्मीर पर आक्रमण करने की व्यूह-रचना पाकिस्तान ने बनाई थी।

सहायता की याचना

उस समय पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में डेरा इस्माइलखाँ के भू.पू. डिप्टी कमिश्नर श्री आर.एम. शिवशरण लाल ने भारत सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि पाकिस्तान ने कबायलियों की बड़ी भारी फ़ौज कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए एकत्र कर रखी है। उसी समय कश्मीर राज्य के प्रधानमंत्री लाला मेहरचंद महाजन (आजकल भारत के सर्वोच्च न्यायाधीश) ने महाराजा से विचार विमर्श कर कश्मीर के विलीनीकरण की ज़ोरदार माँग करते हुए शीघ्र ही सैनिक सहायता की याचना की थी।

पाकिस्तानी आक्रमण

दिनांक 23 अक्तूबर, 1947 को श्रीनगर में सनसनी मच गई, जब राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का एक उत्साही तरुण कार्यकर्ता हरीश मित्र भनौट एक गैलन पेट्रोल में ही दोमेल नामक स्थल तक जाकर वापस लौटा और उसने कहा कि चौथी जम्मू और कश्मीर सेना लेफ्टीनेंट कय्यूम के साथ पाकिस्तानी आक्रमणकारियों से मिल गई है।

पाकिस्तानी फ़ौजें 20 अक्तूबर से लेकर 23 अक्तूबर तक चढ़ती गईं। राज्य के मुसलमान सिपाही अपने हिंदू सिपाहियों एवं सेनापतियों को मारकर पाकिस्तानी सेना में मिलते जाते थे। दोमेल नामक स्थान पर अधिकार कर शीघ्र ही रावलपिंडी और अबोटाबाद से श्रीनगर जाने की सड़कों पर पाकिस्तानी क़ब्ज़ा हो गया।

दिनांक 24 अक्तूबर को आक्रमणकारियों ने उरी की ओर कूच किया। स्टाफ़

ब्रिगेडियर श्री राजेंद्र सिंह ने स्वयं सेना का संचालन कर उरी के पास की खाड़ी में पाकिस्तानी फ़ौजों को दो दिन तक आगे नहीं बढ़ने दिया। किंतु कुछ विश्वासघाती मुसलिम सैनिक, जो पाकिस्तानी फ़ौजों से मिल गए थे, धोखे से बिजलीघर बिगाड़ने में सफल हुए। ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह अंत तक शेर सैनिक की भाँति लड़ते रहे। दिनांक 29 को समरांगण में लड़ते-लड़ते ही उनकी मृत्यु हो गई। पाकिस्तानी आक्रमणकारी बारामुला में घुस गए। लूट का बाज़ार गरम हो गया। नारियों का अपहरण हुआ। बारामुला का ज़िलाधिकारी चौधरी फजुलुल्लाह पहले पाकिस्तान की फ़ौजों से मिल गया था। देशभक्त मक़बूल शेरवानी को खुलेआम बाज़ार में गोलियों से उड़ा दिया गया।

आशा की लहर—दिनांक 26 अक्तूबर के दिन श्रीनगर के चारों ओर हमले प्रारंभ हो गए थे। श्रीनगर के तरुण वीरों ने अपने असीम त्याग से उन्हें रोकने का भरसक प्रयत्न किया और दिनांक 27 अक्तूबर को भारतीय सेना का प्रथम हवाई जहाज़ श्रीनगर हवाई अड्डे पर उतरा। जनता में आशा की लहर दौड़ गई और श्रीनगर दुश्मनों के हाथों में जाने से बच गया। बाद में लगातार भारतीय फ़ौजें इन पाकिस्तानी आक्रमणकारियों को खदेड़ती रहीं। इस युद्ध में कर्नल राय और मेजर शर्मा नाम के सेनापतियों ने वीरगति पाई। कई भारतीय वीर सैनिकों ने अपने प्राणों की आत्माहुति चढ़ाकर कश्मीर को शत्रु के पंजों में पड़ने से बचाया।

भिंबर—भिंबर नामक नगर को जब पाकिस्तानी फ़ौज ने घेरा, तब भारतीय सेना आने के पूर्व वहाँ के लोगों ने मृत्युपर्यंत शत्रु का मुक़ाबला किया, किंतु पाकिस्तानी नगर में घुसने लगे। तब सहस्रों माताओं ने ज़हर खाकर जीवन का अंत कर डाला।

राजौरी— यह स्थल मुघल सड़क पर स्थित है। वीर तरुणों ने इस स्थान पर भी डटकर मुक़ाबला किया। किंतु जब भारतीय सेना के आने की कोई आशा नहीं दिखाई दी तो यहाँ भी असंख्य माताओं ने जौहर की पवित्र प्रथा के अनुसार विष खाकर सतीत्व की रक्षा के निमित्त प्राण दे दिए।

कोटली—मीरपुर ज़िले के इस स्थान पर तो तरुण टुकड़ियों ने ग़ज़ब की आत्मरक्षा की। तरुण टोलियों के अग्रसर नेता श्री वेदप्रकाश और सूरजप्रकाश स्फोटवर्ग की डेढ़ पेटियाँ, जो भारतीय सेना के वायुयान ने सहायता के निमित्त एक खंदक में गिराई थीं, अपनी जान पर खेलकर उठा लाए और डट कर शत्रु का मुक़ाबला किया। पेटियाँ उठाकर लाने के कार्य में श्री वेदप्रकाश व सूरजप्रकाश, जो रा. स्व. संघ की स्थानीय शाखा के क्रमशः प्रचारक तथा कार्यवाहक थे, समाप्त हो गए, किंतु एक माह के सतत संघर्ष के बाद जब शत्रु घुस आए तो भयंकर स्त्री अपहरण और लूटपाट का दृश्य उपस्थित हो गया।

किंतु दुर्भाग्य

किंतु दुर्भाग्य हमारे देश का। इतने बलिदान, परिश्रम और डटकर मुक़ाबला करने का उत्तर अंत में भारत सरकार ने घुटने टेककर दिया। भारतीय सेना के वीर सिपाहियों ने जो बलिदान किया, माताओं ने जो जौहर किए, ध्येयनिष्ठ, देशभक्त तरुणों ने जनता को संगठित कर जो अथक परिश्रम किए, हज़ारों के बलिदान, करोड़ों की संपत्ति का व्यय और वीर डोगरा सिपाहियों ने जो शत्रु के दाँत खट्टे किए, उन पर पानी फेरकर 30 दिसंबर, 1947 को भारतीय मंत्रिमंडल ने यह मामला यू.एन.ओ. के पास ले जाने का निश्चय किया। जब शत्रु के हौसले टूट चुके थे, उस समय यदि नेहरूजी पलायनवाद का आसरा छोड़कर भारतीय सैनिकों के द्वारा संपूर्ण कश्मीर पाकिस्तानी लुटेरों से ख़ाली करवा लेते और कश्मीर को भारत की अन्य रियासतों के समान विलीन कर डालते तो आज कितना सौभाग्य का दिन होता।

नेहरूजी के शब्द

किंतु अंतरराष्ट्रीय प्रयोगशाला में नित नए प्रयोग कर अंतरराष्ट्रीय ख्याति पाने के इच्छुक श्री नेहरूजी की इस बुद्धिमानी को आज भी साधारण सा नागरिक समझ नहीं पा रहा है। क्या सचमुच श्री नेहरूजी को राष्ट्र संघ में इतना विश्वास था? या वे कोरे आदर्शवाद के पीछे अपना भयंकर अहित कर बैठे? 15 फरवरी को स्वयं श्री नेहरूजी ने जम्मू के भाषण में संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति निराशा प्रकट की और कहा, ''सीधी और न्यायसंगत दृष्टि से इस समस्या का मनन करने तथा उस पर एक निर्भीक निर्णय देने के बदले आज विश्व के मदांध सबल संयुक्त राष्ट्र संघ की ओट में बैठकर सत्ता-राजनीति की चालें चल रहे हैं।''

धोखा-'युद्ध विराम'

इस प्रकार की परस्पर बेढंगी नीति का परिणाम निकला आज़ाद कश्मीर का जन्म कश्मीर का एक-तिहाई हिस्सा आज भी शत्रुओं के हाथ में पड़ा है। 31 दिसंबर को भारत सरकार ने भारतीय वीरों के बलिदान और करोड़ों की संपत्ति का व्यय कराकर युद्ध विराम का क़दम उठाया और समर्पण की भाषा का व्यवहार खुलकर किया। इस युद्ध विराम से फ़ायदा पाकिस्तान को ही हुआ। भिन्न-भिन्न मोरचों पर भारतीय फ़ौजों ने पाकिस्तानी फ़ौजों को जो शिकस्त दी थी, उसके कारण उन्हें दम लेने की ज़रूरत महसूस हो रही थी और भारत सरकार ने युद्ध विराम के द्वारा पाकिस्तान को वह मौक़ा ज़रूर दे दिया। साथ ही कश्मीर का एक-तिहाई हिस्सा भी आज़ाद कश्मीर के नाम से शत्रुओं को सौंप दिया।

वे आत्माएँ सिहर उठती होंगी

आज भी वे वीर आत्माएँ, जिन्होंने कश्मीर की रक्षा आख़िरी दम तक की, कश्मीर के एक-तिहाई भाग को बर्बर आक्रमणकारियों के क़ब्ज़े में देखती होंगी तो अपार मानसिक कष्ट से सिहर उठती होंगी। उस स्टाफ ब्रिगेडियर राजेंद्र सिंह के साथ, जिसने उरी की लड़ाई में दो दिनों तक अपने इने-गिने साथियों सहित दुश्मनों से मोरचा लिया और अंत में दुश्मनों की गोलियाँ खाता हुआ तब तक डटा रहा जब तक प्राण नहीं निकल गए। भारत सरकार का युद्धविराम विश्वासघात नहीं तो और क्या है? भारतीय सेनापति कर्नल राय और मेजर शर्मा, जिन्होंने शत्रुओं को श्रीनगर से बाहर खदेड़ा और अंत में वीरगति पा गए, क्या उन्होंने अपने नेताओं से यही आशा की थी कि जब दुश्मन कमज़ोर हो जाएगा तो भारतीय नेता कोरे आदर्शवाद के शिकार बन एक-तिहाई कश्मीर को क़ब्ज़े में सौंपकर युद्ध बंद कर देंगे? क्या उन वीर आत्माओं के साथ यह विश्वासघात नहीं हुआ? भिंबर, राजौरी आदि स्थानों में जिन वीर ललनाओं ने राजपूती शान का उदाहरण संपूर्ण विश्व के सामने रखते हुए जीवन का अंत स्वयं अपने हाथों कर डाला, किंतु पाकिस्तानी लुटेरों की छाया भारतीय नारी के शरीर पर न पड़ने दी, वे हज़ारों माताएँ व बहनें क्या यह सोचती थीं कि पाकिस्तानी लुटेरे जब भारतीय नारी का अपहरण कर ले जाएँगे और उन्हें पेशावर के बाज़ार में बचेंगे, तब भारतीय नेता युद्ध बंद कर उन भारतीय नारियों की रक्षा के लिए रोता हुआ काग़ज़ी प्रोटेस्ट भर पाकिस्तान को भेजेंगे? एक सीता अपहरण की कहानी उन्हें याद थी, जब तक लंका भस्म न हो गई, भारतीय वीरों ने युद्ध विराम नहीं किया, यह आशा उनके सामने चमक रही थी। तब सैकड़ों भारतीय ललनाओं को पाकिस्तानी लुटेरों के क़ब्ज़े में ही छोड़कर युद्ध विराम का क़दम लेना क्या इन वीर प्रसूता माताओं के साथ विश्वासघात नहीं हुआ? दुर्भाग्य! यह सब हुआ!! और उदारता, क्षमाशीलता, विश्वशांति के नाम पर हुआ!!! भारतीय नेताओं ने एक-तिहाई कश्मीर को आक्रमणकारियों के हाथों में रहते हुए भी युद्ध विराम का क़दम उठाकर एक ऐसी भूल की है कि जिस पर भारत की आगामी पीढ़ियाँ उन्हें हमेशा कोसेंगी।

शेष भाग में

शेष बचे कश्मीर के शासन सूत्र धर्मनिरपेक्षता के नाम पर मुसलिम संप्रदायवादी मनोवृत्तियों के तुष्टीकरण के शिकार श्री नेहरूजी की छत्रछाया में उनके मित्र शेख़ अब्दुल्ला के हाथों में सौंपे गए। कुछ दिन तक शेख़ अब्दुल्ला ने कश्मीर और भारत के अविच्छेद सांस्कृतिक संबंधों की दुहाई देकर भारतीय जनता की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न किया। अपने तानाशाही मनोगत विचारों को छिपाए नेहरूजी के नाम पर भारत के धन-जन से अपनी कुरसी को मज़बूत कर लेने के बाद शेख़ अब्दुल्ला भी अपने

असली रूप में प्रकट हो गए और रणवीर सिंह पुरा के भाषण में शेख़ अब्दुल्ला ने स्पष्ट शब्दों में कह डाला कि कश्मीर को भारत के साथ मिलाने का विचार 'निरा पागलपन, बचपना और अवास्तविक है।'

राष्ट्रविरोधी तत्त्वों के खेल

साथ ही कश्मीर राज्य के उन देशभक्त तत्त्वों को, जिनमें जम्मू कश्मीर प्रजा परिषद् सरीखा विशाल संगठन आता है, कुचलने का कड़ा क़दम उठाया। अपने भाई नेहरू की आड़ में सांप्रदायिकता के बुरके के अंदर भारत में कश्मीर को मिलाने की माँग करने वाले देशभक्तों का मंसूबा नष्ट करने का राक्षसी प्रयत्न शेख़ साहब ने किया। प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता और उसके सभापति श्री प्रेमनाथ डोगरा को बार-बार जेल की यातनाएँ देकर विद्यार्थियों, माताओं-बहनों आदि निरीहों पर बर्बरता से लाठी चार्ज कर अपनी कुत्सित इच्छाओं की पूर्ति के पुलाव पकाए। सन् 1937 में मुसलिम कॉन्फ्रेंस के नाम से स्थापित हुई संस्था को, जो मुसलिम लीग का ही भाग थी, सन् 1947 में शेख़ साहब ने नेशनल कॉन्फ्रेंस में परिणत कर दिया था। इसी मुसलिम कॉन्फ्रेंस बनाम नेशनल कॉन्फ्रेंस ने राजनीतिक क्रूरता से प्रजा का सच्चा प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था प्रजा परिषद् के अधिकांश उम्मीदवारों के चुनाव पत्र खारिज करवाकर तथाकथित प्रजातांत्रिक संविधान सभा का नाम ले लिया। इतनी तैयारी करने के बाद शेख़ साहब ने अपने पासे खुलकर फेंके। कश्मीर संविधान परिषद् ने कश्मीर के लिए अलग प्रधान चुनने; अलग ध्वज रखने तथा कश्मीर को भारतीय गणराज्य के भीतर ही दूसरा स्वतंत्र गणराज्य बनाने का निर्णय किया। कश्मीर संविधान सभा का यह क़दम भारतीय संविधान के विरुद्ध होते हुए भी भारत के प्रधानमंत्री नेहरू के मुँह से एक वाक्य भी नहीं निकला।

इस क़दम के सफल होने के बाद भारत का काम कश्मीर के लिए नौकर सरीखा शेष रह गया। अर्थात् प्रतिरक्षा, संचार साधन और विदेश नीति की ज़िम्मेदारी कश्मीर के संबंध में भारत की रही।

पुनः विभाजन की नींव

भारत और कश्मीर का अटूट संबंध है। जिस कश्मीर की घाटियों में भारतीय महर्षियों ने जीवन तत्त्वों के अन्वेषण में तपस्या करते-करते अपना जीवन अर्पित किया, जहाँ कालिदास की कविता ने स्फूर्ति पाई, जहाँ शंकराचार्य की सफलता ने अपने चिह्न अंकित किए, वह भारत का मुकुटमणि कश्मीर, महाराजा रणजीत सिंह और सरदार हरि सिंह नलुवा की पराक्रम भूमि कश्मीर, भारत का नंदनवन भारत से अलग नहीं हो सकता। कुछ वर्ष पहले इस जम्मू और कश्मीर राज्य के राजा गुलाब सिंह ने अपना राज्य

तिब्बत और रूस के इलाकों तक फैलाया था। कांग्रेसी नेताओं की कमज़ोरी से उसी कश्मीर को भारत से अलग करने की नींव पाकिस्तान निर्माण के साथ डाली गई और शेख़ अब्दुल्ला उस पर ईंटें रखकर दीवार मज़बूत करना चाहते थे।

कश्मीर को भारत से अलग करने की शेख़ अब्दुल्ला को चुनौती भारत की कोटि-कोटि संतानों को चुनौती थी। कश्मीर की रक्षा के लिए भारत ने स्वयं भूखे और नंगे रहकर भी धन-जन अर्पण किया है। दिनांक 15 जून, सन् 1952 को दिल्ली में अखिल भारतीय जनसंघ ने शेख़ अब्दुल्ला की इस चुनौती को स्वीकार किया और इसीलिए समस्त भारत में दिनांक 29 जून को कश्मीर दिवस का आयोजन किया गया। दिनांक 29 जून को समस्त भारत में कश्मीर दिवस मनाते समय देश की तरुणाई ने उन सभी वीरों को, जिन्होंने कश्मीर की रक्षा में अपने जीवन की बलि चढ़ाई, याद कर गंभीर स्वर में घोषित किया कि कश्मीर भारत का अविभाज्य अंग है, और इस पवित्र संबंध को किसी भी प्रकार धक्का पहुँचाने वाला भारत का शत्रु होगा।

2

आंदोलन की भूमिका

भारत के दुर्भाग्य का इतिहास यही है कि देश की एकात्मकता को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए प्रयत्नशील दुश्मनों ने भारत की देशभक्त जनता के प्रचंड कोपानल से अपने आपको बचाने के लिए हमेशा हमारे ही अपने स्वकीयों को ढाल के रूप में प्रस्तुत किया। ठीक इसी प्रकार शेख़ अब्दुल्ला ने नेहरूजी का उपयोग किया। रणवीर सिंह पुरा के जिस भाषण में शेख़ अब्दुल्ला ने यह कहा कि भारतीय गणराज्य के अंदर ही स्वतंत्र कश्मीर गणराज्य बनाएँगे, उसी सभा के अंत में उसने स्वयं तीन बार पं. नेहरू की जय घोष कराई। महात्मा गांधी के सिद्धांतों की दुहाई देने में तो शेख़ ने नेहरूजी से भी बाज़ी मार ली। इधर प्रधानमंत्री श्री नेहरू भारतीय जनता के बीच ऐसे वाक् प्रयोग कर रहे थे, जिनसे प्रकट होता था कि शेख़ अब्दुल्ला बहुत भला आदमी है। 4 जून, 1951 को श्रीनगर की जनसभा में श्री नेहरू ने कहा कि कश्मीर संविधान सभा का निर्माण पूर्णरूपेण भारत की अनुमति से हो रहा है। 9 अगस्त, 1951 को दिल्ली की विशाल आमसभा में श्री नेहरूजी ने नेशनल कॉन्फ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी मौलाना मसूदी का परिचय 'दी आथिंटिक व्हाइस ऑफ कश्मीर' (कश्मीर की अधिकृत आवाज़) के नाम से दिया। इसी मौलाना मसूदी ने, जो शेख़ अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी के बाद भी शेख़ का पक्ष लेने के लिए बदनाम है, उस दिन जनसभा में भाषण देते हुए कहा था कि "कश्मीर के एक भाग पर पाकिस्तानी क़ब्ज़े का अर्थ भारत के एक हिस्से पर पाकिस्तानी क़ब्ज़ा ही है।"

इस प्रकार के वाक् प्रयोगों से भारतीय जनता को जान-बूझ कर धोखा दिया जा रहा था और उधर लौहावरण के अंदर कश्मीर में एक भयंकर दमनचक्र चल रहा था। एक प्रधान, एक निशान और एक विधान की देशभक्तिपूर्ण माँगों को सांप्रदायिक कहकर शेख़ अब्दुल्ला की तानाशाही सरकार ने देशभक्त जनता का गला घोंटना चालू कर दिया था।

सभी प्रकार के वैधानिक उपायों को बेकार देखकर प्रजा परिषद् के नेतृत्व में 23

नवंबर, 1952 को जनता ने शेख़ अब्दुल्ला की तानाशाही के विरुद्ध और कश्मीर को भारत में पूर्णरूपेण विलीन कर लेने की माँग करते हुए अहिंसात्मक आंदोलन का बिगुल बजा दिया।

आंदोलन की प्रचंड शक्ति का मूल स्रोत

23 नवंबर को प्रजा परिषद् के प्रधान पं. प्रेमनाथ डोगरा द्वारा आरंभ किए गए इस आंदोलन की पृष्ठभूमि कुछ दिन, सप्ताहों या मासों की नहीं। गत 5 वर्षों से लगातार प्रजा परिषद् के नेतागण इस बात के लिए प्रयत्नशील रहे कि पारस्परिक हेलमेल से इस संकट का निवारण किया जाए। शेख़ अब्दुल्ला को प्रत्यक्ष मिलकर तथा स्मृतिपत्र देकर यह प्रयत्न किया कि वे अपने ग़लत रास्ते को छोड़ें। पं. प्रेमनाथ डोगरा ने अपने हृदय की संपूर्ण सद्भावना को उड़ेलते हुए शेख़ से यहाँ तक कहा कि यदि कश्मीर को भारत में विलीन करने की घोषणा शेख़ अब्दुल्ला करते हैं तो वे प्रजा परिषद् को भंग कर देंगे।

वैधानिक ढंग से समस्या सुलझाने की उत्सुक प्रजा परिषद् के नेताओं ने ऐसे कितने ही प्रयत्न किए। मार्च सन् 1948 में प्रजा परिषद् के नेतागण दिल्ली आए और सरदार वल्लभ भाई पटेल से उनके निवास स्थान पर मिले। मार्च सन् 1949 में शेख़ अब्दुल्ला को एक स्मृतिपत्र पेश किया गया। इसी समय प्रजा परिषद् के नेताओं का एक प्रतिनिधिमंडल दिल्ली आया और उसने प्रधानमंत्री श्री नेहरू से भेंट की। जनवरी 1953 में पुनः एक बार पं. प्रेमनाथ डोगरा श्री नेहरू से मिले और स्थिति से उन्हें परिचित कराया।

किंतु शेख़ अब्दुल्ला का दिल काला था, श्री नेहरूजी उसके दामन में बँध चुके थे और लौह पुरुष सरदार पटेल व श्री गोपाल स्वामी आयंगर अकाल मृत्यु के हाथों में पहुँच चुके थे, इसलिए इन प्रयत्नों का कोई सद्परिणाम नहीं निकला। हाँ, इन सब प्रयत्नों से घबराकर शेख़ ने पं. प्रेमनाथ डोगराजी को अवश्य दो बार जेल के सींखचों में डाल दिया।

जेलमुक्त होने के बाद दिनांक 19 अप्रैल, 1952 को जो अंतिम स्मृतिपत्र भारत के राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद के समक्ष पं. प्रेमनाथ डोगरा ने प्रस्तुत किया, वह इतिहास के पृष्ठों में अमूल्य विधि के रूप में सदैव संगृहीत रहेगा। इस स्मृतिपत्र में प्रकट किए गए विचारों से आंदोलन की प्रचंड शक्ति का आभास मिलता है। राष्ट्रपति को दिए गए स्मृतिपत्र की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार थीं—

"अंत में हम इस बात की प्रार्थना करने की अनुमति चाहते हैं कि आप इन माँगों को उन लोगों के पास से आई हुई जानें जो सदैव ही भारतीय हैं। यह हमारा अतीव स्वाभिमान है। कुछ क्षणों के लिए आप विचार कीजिए कि हमारी जैसी स्थिति में यदि भारत का पूर्व,

पश्चिम, दक्षिण या अन्य कोई क्षेत्र होता तो उसकी क्या हालत होती? ऐसा सोचने पर हम समझते हैं कि आप अवश्य ही हमसे एकमत होंगे कि उनकी भी माँगें हमारी जैसी ही होतीं। भारत की संतान होने के नाते यह स्वाभाविक ही है कि हम उन सभी कार्रवाइयों का विरोध करें, जो हमें हमारी मातृभूमि से दूर करने के लिए हों और चूँकि हमें भारत से विलग करने का प्रयत्न किया जा रहा है, हम घोषित करते हैं कि ऐसी कोई भी स्थिति, चाहे वह छोटी या बड़ी, कैसी भी हो, हम स्वीकार नहीं करेंगे। हम चाहते हैं कि भारत का संपूर्ण संविधान जम्मू में लागू किया जाए, हम चाहते हैं कि हम सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) द्वारा सुरक्षित हों, हम चाहते हैं कि हमें प्रत्येक भारतीय की तरह मूलभूत अधिकार प्राप्त हों, हम चाहते हैं कि भारत के प्रत्येक 'ख' राज्य में जिस प्रकार भारत का राष्ट्रध्वज मान्य है, वही यहाँ भी मान्य हो, शेख़ अब्दुल्ला का तैयार किया हुआ लाल झंडा हमें नहीं चाहिए और हम चाहते हैं कि हम उन्हीं क़ानूनों के द्वारा शासित हों, जो कि भारतीय संसद् में बनाए जाएँ। यह रास्ता है हमारे भविष्य का। यह हम अपना देशभक्तिपूर्ण कर्तव्य समझते हैं कि अपनी संपूर्ण शक्ति से उन सभी कार्रवाइयों का मुक़ाबला करें, फिर वे चाहे किसी भी सूत्र से आती हों जो कि जम्मू और कश्मीर को भारत में पूर्णरूपेण विलीन करने के मार्ग में बाधक है।''

पं. प्रेमनाथ डोगरा ने भारत की विभिन्न संस्थाओं के नेताओं से बातचीत की। कांग्रेस और कम्युनिस्टों को छोड़कर देश की सभी संस्थाओं ने पं. प्रेमनाथ डोगरा का समर्थन किया। किंतु इन सब प्रयत्नों का कोई आशादायी परिणाम नहीं निकला। प्रजा परिषद् के नेतृत्व में खड़ी हुई जाग्रत् जनता का उपहास करने के लिए शेख़ अब्दुल्ला ने भारतीय संविधान सभा में जम्मू प्रांत का प्रतिनिधित्व करने के लिए श्री मोतीराम बैगरा नामक एक ऐसे अपढ़ व्यक्ति को मनोनीत कर दिया, जो इस कार्य के लिए सर्वथा अयोग्य था। साथ ही इस कार्य के लिए प्रजा परिषद् द्वारा प्रस्तुत की गई नामावली को अस्वीकार कर दिया गया।

इस प्रकार प्रजा परिषद् द्वारा किए गए शांतिपूर्ण वैधानिक तरीक़ों का कोई हल नहीं निकला। इतना ही नहीं तो सत्य का सामना करने से घबराई हुई नेहरू समर्थित शेख़ सरकार ने अपने समूल नाश के बीज प्रजा परिषद् के रूप में अंकुरित होते हुए देखकर संपूर्ण जम्मू प्रांत की जनता को एकबारगी तबाह करने की ठान ली। कोई उत्पात, कोई अशांति, कोई कारण न होते हुए भी प्रांतव्यापी प्रजा परिषद् के कार्यकर्ताओं की गिरफ़्तारियाँ की गईं। केवल एक तहसील रणवीर सिंह पुरा में ही 30 गिरफ़्तारी वारंट जारी किए गए थे। इन गिरफ़्तारियों में भी किस प्रकार की ज़्यादतियाँ बरती जाती थीं, इसका एक उदाहरण अम्ब धोरोटा स्थान का है। स्थानीय प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता श्री सूबेदार बसंतसिंह को जम्मू के डिप्टी कमिश्नर कामरेड त्रिलोचन दत्त ने अपने कोर्ट में बुलाया

और उसे कोर्ट में ही आज्ञा दी गई कि वह नेशनल कॉन्फ्रेंस की सदस्यता स्वीकार कर ले। किंतु जब सूबेदार बसंतसिंह ने सदस्यता पत्र भरने से इनकार कर दिया तो उसे जेलख़ाना भिजवाया गया।

ऐसी ही एक-एक दिन की एक-एक स्थान की अनेकों घटनाएँ हैं, जो यह बताती हैं कि अंधकार में प्रकाश को घसीटकर उसका गला घोंटने का कैसा हास्यास्पद किंतु क्रूर कर्म करने की योजना कार्यान्वित की जा रही थी। दमनचक्र के परिणामस्वरूप जनता में ठीक उसी प्रकार की बेचैनी फैल गई, जैसी कभी पाकिस्तान निर्मिति के समय मुसलमानों के अत्याचारों के कारण फैली थी। केवल दमन ही नहीं तो सरकारी नीति भी हिंदुओं को ज़बरदस्ती खदेड़ने वाली बन गई थी। पाकिस्तान से हज़ारों मुसलमान कश्मीर में घुस रहे थे। युद्ध विराम सीमा के निकट उन्होंने अपने अड्डे भी बना लिए थे। मुसलिम कॉन्फ्रेंस के प्रधान और मंत्री चौ. ग़ुलाम अब्बास तथा अल्लारक्खा सगर को शेख़ ने शासन सूत्र सँभालते ही मुक्त कर दिया था और वे आज़ाद कश्मीर के साथ सूत्र सँभाले भारत विरोधी मोरचा कस रहे थे, कश्मीर संविधान सभा के निर्वाचन के समय राज्य की एकमेव विरोधी संस्था प्रजा परिषद् के 59 उम्मीदवारों में से 44 के नामांकन पत्र मनमाने कारणों से ख़ारिज कर दिए गए थे। व्यापार, यातायात के साधन हिंदुओं के हाथ से छीनकर मुसलमानों के हाथों में सौंपे जा रहे थे। हिंदू बहुसंख्यक ज़िले ऊधमपुर के दो टुकड़े कर डोडा को नया मुसलिम बहुल ज़िला बनाया गया था, हिंदी को हटाकर राज्य में उर्दू को राज्यभाषा घोषित किया जा चुका था। ये और ऐसे ही अनेकों कारणों से जम्मू प्रांत की जनता सिहर उठी थी। इस समय प्रजा परिषद् के नवयुवक वहाँ आत्मविश्वास के साथ लोहा लेने के लिए खड़े न हुए होते तो भारत को पुनः एक बार अपने ही देश में अपने पुत्रों को निर्वासित, शरणार्थी या पीड़ित नाम से पुकारना पड़ता। इस कठिन प्रसंग में भय, चिंता व भविष्य की अनिश्चितता से घबराए हुए लोगों को ढाढ़स बँधाने के लिए जिस प्रकार जम्मू की तरुणाई आगे आई, उसी प्रकार जनसंघ के प्रधान डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने समस्त भारत की तरुणाई का प्रतिनिधित्व करते हुए उन्हें आश्वासन का हाथ देकर उनके आत्मविश्वास के पौधे को लहलहा दिया।

अगस्त माह में भारतीय जनसंघ के प्रधान डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने संसद् के अन्य तीन सदस्य श्री ह्वी.जी. देशपांडे, बाबू रामनारायण सिंह व बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी के साथ जम्मू जाने का निश्चय किया।

डॉ. मुखर्जी के जम्मू जाने के निर्णय के समाचार से जिस प्रकार जम्मू में आनंद की लहर दौड़ गई, उसी प्रकार शेख़ तथा उसके समर्थकों के बीच इस समाचार ने गहरी बेचैनी उत्पन्न कर दी। फलतः उन्होंने डॉ. मुखर्जी को रोकने का भरसक यत्न किया।

कई कांग्रेसी और यहाँ तक कि स्वयं शेख़ अब्दुल्ला ने दिल्ली में उनसे आकर कहा ''आप नाहक जम्मू क्यों जा रहे हैं। प्रजा परिषद् के साथ तो वहाँ के चार आदमी भी नहीं हैं।'' डॉ. मुखर्जी ने यह सब सुना और एक चतुर राजनीतिज्ञ की भाँति उसका ठीक-ठीक अर्थ भी समझा। वे जम्मू गए और जहाँ शेख़ ने 4 आदमी भी मिलना कठिन बताया था, वहाँ लाखों ने उनका स्वागत किया। हज़ारों ने जान की बाज़ी लगा देने का निश्चय प्रकट किया। इसी अवसर पर प्रजा परिषद् के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन जम्मू में आयोजित किया गया था, जिसमें 570 प्रतिनिधि उपस्थित थे।

इस समय डॉ. मुखर्जी का आगमन जम्मू की जनता के लिए किसी देवदूत का आगमन बन गया था। शब्दों में वर्णन करना असंभव है, ऐसा दृश्य उपस्थित हो गया था। पठानकोट से जम्मू तक 67 मील के लंबे रास्ते में दोनों ओर स्थान-स्थान पर ग्रामीण जनता की क़तारें खड़ी थीं। रास्ते में कई स्थानों पर डॉ. मुखर्जी को भाषण देना पड़ा। इन्हीं भाषणों में उनका डेढ़ मिनट का कठुआ का भाषण है, जिसमें उन्होंने कहा कि मैं विधान लेने आया हूँ या तो विधान लूँगा या बलिदान दूँगा।

शेख़ अब्दुल्ला के अत्याचारों से घबराई जनता को डॉ. मुखर्जी के मुँह से आशा का संदेश सुनकर ढाढ़स बँधा। बालक, जवान, वृद्ध, स्त्री, पुरुष, अमीर, ग़रीब सब एक पंक्ति में खड़े होकर 'भारतमाता की जय' का घोष करते हुए और डॉ. मुखर्जी उनके हृदयों में अत्याचारों से जूझने की शक्ति भरते हुए आगे बढ़ जाते। हज़ारों ने उनको पुष्प-मालाएँ चढ़ाईं और लाखों ने उनके दर्शन किए।

रास्ते में खड़ी जनता के इस महासागर को पार कर जाने में डॉ. मुखर्जी को जम्मू पहुँचने में विलंब हो गया, किंतु जम्मू की पचास हज़ार जनता अपने स्थान से हिली भी नहीं। देरी का कारण ज्ञात न होने के कारण जनसमुदाय तरह-तरह की कल्पना करने लगा। तब प्रजा परिषद् के महामंत्री श्री दुर्गादास वर्मा बिना प्रकाश की मोटर साइकिल पर पठानकोट की ओर दौड़े। निश्चित समय के चार घंटे बाद डॉ. मुखर्जी जम्मू पहुँचे। शूर सिपाहियों को जैसे सेनापति व सेनापति को जैसे अपनी सेना मिली, ऐसा उत्साह छा गया। जिसकी ओर डॉ. मुखर्जी ने देखा, उसने कर्तव्यपूर्ति की गाँठ लगा ली। पुष्प व पुष्पमालाओं का ढेर देखकर एकाएक ऐसा लगता था कि कहीं जम्मू के सभी बागवानों ने पुष्प चयन का समारोह मनाया है।

पच्चीस हज़ार जनता की एक विशाल सभा में दूसरे दिन बोलते हुए डॉ. मुखर्जी ने कहा, ''जैसा पं. नेहरू कहते हैं कि जम्मू और कश्मीर भारत का हिस्सा है तो क्या यह शर्म की बात नहीं है कि इसी कश्मीर का एक हिस्सा पाकिस्तान के हाथ में है और हम उसके उद्धार के लिए कुछ भी कर सकने में असमर्थ हैं। जब तक यह हिस्सा वापस नहीं लिया जाता, तब तक कश्मीर का युद्ध हमारे लिए विजयपूर्वक समाप्त नहीं हुआ।''

भाषण समाप्त करने के बाद डॉ. मुखर्जी दिल्ली वापस आ गए और इधर संपूर्ण जम्मू प्रांत में शेख़ अब्दुल्ला के स्वतंत्र कश्मीर के सपनों को विफल करने की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

23 नवंबर को जम्मू में पं. प्रेमनाथजी डोगरा को एक जनसभा में भाषण करते हुए गिरफ़्तार कर लिया। शेख़ के अत्याचारों से लोहा लेने के लिए इसी दिन संपूर्ण जम्मू प्रांत में प्रत्यक्ष आंदोलन का बिगुल बज गया।

3

23 नवंबर से 5 मार्च–लाठी गोली की बौछार

इन 103 दिनों में जम्मू प्रांत की जनता ने अब्दुल्लाशाही से डटकर मोरचा लिया। जम्मू-कश्मीर सहित संपूर्ण भारतवर्ष में श्रद्धा केंद्र के नाते 'एक राज्यध्वज हो, एक संविधान हो, एक राष्ट्रपति हो' इस उद्‌देश्य से हाथों में संविधान की प्रतियाँ लिए और हृदय पर राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद का चित्र लटकाए शांतिपूर्ण आंदोलनकारी मस्ती में डोल उठे। रावी नदी के पास काठू नामक स्थान से लेकर 200 मील दूर सुदूर पर्वतराज की गोद में बसे बर्फ़ीले नगर किश्तवार तक स्थान-स्थान पर चक्रांकित तिरंगा ध्वज लहराने की प्रतिज्ञा किए टोलियाँ निकलने लगीं। 71 वर्ष के वयोवृद्ध नेता पं. प्रेमनाथ डोगरा, भद्रवाह के 60 वर्षीय नेता ख़्वाजा अब्दुल रहमान, 70 वर्ष के बूढ़े रिटायर्ड इंस्पेक्टर ऑफ पुलिस मौलवी मीरन बख़्श आदि बूढ़े लोगों से लेकर गुर्रा सल्थियाँ के दस वर्षीय बालक तिलकराज तक ने भारत की अखंडता की रक्षा के लिए क़दम बढ़ाया।

देशभक्ति से मस्त इन दीवानों का मुक़ाबला शेख़ अब्दुल्ला ने लाठी, गोलियों, अश्रुगैस और जेल यातनाओं की प्रताड़ना से किया। कई सत्याग्रहियों को पीर पंचाल की बर्फ़ीली चोटियों वाले ठंडे प्रदेश में बिना पर्याप्त वस्त्र के छोड़ा गया। जिन्हें गिरफ़्तार किया उन्हें रणवीर नहर के ठंडे पानी में ज़बरदस्ती ढकेला गया, ताकि वे क्षमा-याचना करें। कड़ी सज़ा और सत्याग्रहियों के रिश्तेदारों पर जुरमाना तो मामूली बात थी। लोगों की संपत्ति जब्त कर ली गई। आंदोलन से सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों की भी पेंशन, परमिट और लाइसेंस रद्‌द कर दिए गए।

किंतु आंदोलन प्रतिदिन उग्र होता गया। जनता ने भी चुनौती स्वीकार कर ली थी, फिर क्या था, गोलियों से भी डराने का प्रयत्न शेख़ अब्दुल्ला द्वारा किया गया। 14 दिसंबर को छंब नामक स्थान पर 36 वर्षीय युवक मेलाराम को पुलिस ने मार डाला।

मेलाराम मारा तो गया किंतु जनता ने छंब की कचहरी पर झंडा फहराकर ही दम लिया। यहाँ तक कि पुलिस को श्री मेलाराम की लाश भी हाथ न लगने पाई और जनता अपने शहीद की लाश अपने कंधे पर लेकर श्मशान को लौटी। इस प्रथम शहीद के बलिदान से जनता में तूफ़ान आ गया। जगह-जगह मेलाराम प्रकट हुए और इन देशभक्तों की छातियों में दनादन गोलियाँ दागी गईं। नेहरू द्वारा समर्थित शेख़ सरकार की मिलीशिया ने 15 व्यक्तियों को गोलियों से भून डाला। जहाँ गोलीबारी की यह रफ़्तार थी, वहाँ लाठीमारी और अश्रुगैस की क्या गिनती? केवल इतने से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि भद्रवाह नामक स्थान पर केवल एक दिन में 250 निरीह स्त्री-पुरुष पुलिस की लाठियों से घायल हुए।

शेख़ के अत्याचारों के समाचार दिल्ली पहुँचने लगे। देश के कुछ निर्भीक समाचार-पत्रों ने इन्हें देश के कोने-कोने तक पहुँचा दिया। जनता को आश्चर्य हो रहा था कि आख़िर प्रधानमंत्री श्री नेहरू इस प्रकार शांत क्यों हैं? प्रजा परिषद् की देशभक्तिपूर्ण माँगों के प्रति जनता में साहसिक श्रद्धा उत्पन्न हो गई। दिसंबर के प्रथम सप्ताह में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने एक वक्तव्य दिया, जिसमें उन्होंने प्रजा परिषद् के आंदोलन और उसके उद्देश्यों का समर्थन किया। आपने अपने वक्तव्य में कहा था कि "यह आंदोलन किसी व्यक्ति या पार्टी के विरुद्ध नहीं, वरन् इसका उद्देश्य एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत का प्रतिपादन करना है। जम्मू और लद्दाख की जनता की यह इच्छा है कि जम्मू-कश्मीर राज्य भारत में पूर्ण विलीन हो जाए तथा भारतीय संविधान की आधारभूत मान्यताएँ यहाँ भी लागू हों। जम्मू और कश्मीर राज्य की वर्तमान सरकार इस सिद्धांत को मानने को तैयार नहीं है और उसकी इस व्यवस्था में भारत सरकार ने भी अपनी मौन सम्मति दी दिखाई देती है।"

जो बात प्रधानमंत्री नेहरू को डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद समझ में आई और 15 अगस्त, 1953 को लाल क़िले से उन्हें यह घोषणा करनी पड़ी कि शेख़ अब्दुल्ला ने धोखा दिया, उसी बात को दिसंबर 1952 में डॉ. मुखर्जी ने जनता और सरकार के समक्ष रख दिया था। उन्होंने कहा था, "जम्मू और कश्मीर राज्य के लिए एक निर्वाचित प्रमुख की व्यवस्था करना तथा एक स्वतंत्र ध्वज का निर्माण करना ऐसे विषय नहीं हैं, जिनका विचार गुपचुप कर लिया जाए। यह निश्चित ही है कि भारतीय गणराज्य के अंदर जिस प्रकार अन्य प्रदेशों का स्थान है, उससे भिन्न स्वरूप जम्मू-कश्मीर राज्य को प्राप्त कराने की दुराभिलाषा के घातक चिह्नों के रूप में ये बातें प्रकट हुई हैं।"

इसी वक्तव्य में डॉ. मुखर्जी ने जुलाई समझौते की ओर बरती जा रही शेख़ अब्दुल्ला की चालाकी का भी भंडाफोड़ किया था और कहा था कि "यह आश्चर्य है कि जुलाई समझौते की ख़ासकर वे धाराएँ, जिनमें नागरिकता के मूलाधिकार, सर्वोच्च

न्यायालय की सीमा, आर्थिक विलयन और राष्ट्रपति के विशेषाधिकार का उल्लेख है, अभी तक लागू नहीं की गईं। इन दुर्नीतियों के शिकार जम्मू-कश्मीर के निवासियों के अतिरिक्त भारत में भी ऐसे व्यक्ति हैं, जो शेख़ अब्दुल्ला की अलगाव नीति के आलोचक हैं। उन्हें डर है कि धीरे-धीरे भारतीय सहायता से ही कश्मीर में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की जा रही है।''

एक चतुर राजनीतिज्ञ की तरह डॉ. मुखर्जी ने ख़तरा आने के पूर्व ही उसकी सूचना सरकार को दे दी थी। शेख़ अब्दुल्ला की चालाकियों से देश को सावधान किया था। किंतु श्री नेहरू अपनी ज़िद पर डटे रहे और उन्होंने भारतीय जनसंघ के नेता की इस सद्भावनापूर्ण चेतावनी की न केवल अवहेलना की, वरन् भर्त्सना भी की।

शेख़ अब्दुल्ला की नादिरशाही के क़िस्से इन दिनों घर-घर में गूँज रहे थे। गोलीबारी और लाठीमारी की प्रतिदिन की घटनाओं से जम्मू सिहर उठा और नेहरू सरकार इस बर्बरता की सराहना कर रही थी। स्वयं भी नेहरू ने घोषणा की थी, ''यदि मैं शेख़ अब्दुल्ला के स्थान पर होता, इससे भी ज़ोर से दमनचक्र चलाता।''

इस स्थिति को देखकर भारतीय जनसंघ, हिंदू महासभा, रामराज्य परिषद् की ओर से 6 संसद् सदस्यों ने देश की जनता के नाम अपील निकालकर 14 दिसंबर को जम्मू दिवस मनाने की घोषणा की।

संपूर्ण भारतवर्ष में 14 दिसंबर को जनसभाएँ की गईं और जनता ने एक स्वर से जम्मू निवासियों की माँग का समर्थन किया तथा शेख़ अब्दुल्ला की तानाशाही की निंदा की। दिल्ली में स्वयं डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने एक विशाल जनसभा के समक्ष भाषण देते हुए इस बात की माँग की कि शेख़ अब्दुल्ला के अत्याचारों की जाँच करने के लिए भारतीय न्यायालय का एक न्यायाधीश भेजा जाए। आपने स्पष्ट शब्दों में शेख़ अब्दुल्ला द्वारा प्रजा परिषद् पर लगाए गए भीषण आरोपों का खंडन किया और घोषणा की कि ''यदि प्रधानमंत्री नेहरू शांतिपूर्ण समझौते के मार्ग को इसी प्रकार ठुकराते हैं और यदि वे इस दमनचक्र को इसी प्रकार चालू रखते हैं तो हम भी घोषित करते हैं कि हम इस प्रजा परिषद् के न्याययुद्ध में सहायता देने के अपने कर्तव्य को पूरा करने में किसी प्रकार भी पीछे नहीं हटेंगे। यदि ऐसा हुआ तो सत्याग्रह संपूर्ण भारत में फैल जाएगा और उसके लिए सर्वस्व की बाज़ी लगाने के लिए हमें तैयार होना पड़ेगा।''

इसी सभा में हिंदू महासभा के प्रधान बैरिस्टर चटर्जी व जनसंघ के महामंत्री पं. मौलिचंद्रजी शर्मा के अतिरिक्त प्रजा परिषद् के मंत्री श्री रामनाथ बलगोवा के भी भाषण हुए।

राष्ट्रव्यापी इस स्पष्ट घोषणा के बावजूद प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने समय की माँग को सुनकर भी अनसुना किया और वे इस आंदोलन को विच्छेदकारी, अराष्ट्रीय और हिंसात्मक

नामों से पुकारते रहे।

प्रधानमंत्री की इस जिद्द का फ़ायदा शेख़ अब्दुल्ला ने पूर्णरूपेण उठाया। दमनचक्र का ज़ोर बढ़ा दिया गया। गोलियों की धाँय-धाँय से संपूर्ण जम्मू प्रांत गूँज उठा। सुंदरवनी नामक एक छोटे से गाँव में शेख़ की मिलीशिया के 200 जवानों ने गोलीबारी की। 25 वर्षीय कृष्णलाल और 20 वर्षीय श्री रामजी दास नामक दो सत्याग्रही नवयुवक स्थान पर ही ढेर कर दिए गए। घायल होकर बेहोश अवस्था में पड़े हुए श्री बलीराम नामक एक युवक के सिर पर 40 पौंड का एक पत्थर पटककर पुलिस ने उसे स्थान पर ही मार डाला। इन शहीदों की लाशों को जब उनके माता-पिता ने माँगा तो अत्याचारियों ने लाशें भी देने से इनकार कर दिया और स्थान पर ही मिट्टी का तेल डालकर लाशों को जला डाला व राख नहर के पानी में डाल दी। 25 अन्य व्यक्ति, जिनमें 3 स्त्रियाँ भी थीं, घायल अवस्था में अस्पताल पहुँचाए गए।

दिल्ली की सहनशक्ति का बाँध टूट पड़ा

यह समाचार जब 31 दिसंबर को दिल्ली पहुँचा तो जनता में रोष की लहर दौड़ गई। जनसंघ के नेतागण इस समय दिल्ली में नहीं थे। वे अखिल भारतीय अधिवेशन कानपुर में सम्मिलित थे। नेताओं के अभाव में जनता ने स्वयं शेख़ अब्दुल्ला की इस बर्बरता का जो कड़ा विरोध किया, वह दिल्ली की जनता के लिए गौरव का विषय है।

समाचार फैलते देर न लगी। चाँदनी चौक व दिल्ली के अन्य सभी बाज़ारों में हड़ताल हो गई। विभिन्न क्षेत्रों में जनता ने जुलूस निकाले। इस निहत्थी जनता की आवाज़ से घबराकर दिल्ली पुलिस ने स्थान-स्थान पर घेरे डाले। प्रयत्न यह किया गया कि जुलूस आदि न निकल सकें किंतु झुंड के झुंड सड़कों पर निकलते थे और नारे शुरू होते थे—'कश्मीर हमारा है' 'अब्दुल्ला की तानाशाही बंद हो'।

इन शांतिपूर्ण प्रदर्शनों पर भी दिल्ली में भयंकर लाठीचार्ज व अश्रुगैस की वर्षा हुई। हौज काजी में पुलिस ने कुछ प्रदर्शनकारियों के एक झुंड को भंग करने का प्रयत्न किया, किंतु भंग होने के बजाय उसकी संख्या एक हज़ार हो गई। दिल्ली पुलिस ने कठोरतापूर्वक लाठियाँ बरसाईं और फलस्वरूप 60 व्यक्ति घायल हुए। लाठीमारी से लोगों के सिरों पर चोटें भले ही आईं, किंतु जनता डटी रही। आख़िर लाठी मारने के अपने हौसले पूरे करने पर पुलिस ने अश्रुगैस का भी प्रयोग किया। अश्रुगैस के 25 बम फोड़े गए। चारों ओर धुआँ ही धुआँ फैल गया।

पुलिस की इस ज़्यादती के समाचार से लोगों का रोष और कई गुना बढ़ गया। अजमेरी गेट, खारी बावली, चाँदनी चौक, नई सड़क हौज काजी तथा अन्य कई क्षेत्रों से जुलूस निकलना प्रारंभ हुए, जो मध्यरात्रि तक नारे लगाते घूमते रहे।

भारतीय जनसंघ का कानपुर अधिवेशन

दिनांक 29, 30 व 31 दिसंबर को कानपुर के वार्षिक अधिवेशन में डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अध्यक्षता में इस प्रश्न पर विचार हुआ। इस अधिवेशन में जम्मू आंदोलन के संबंध में जो निर्णय लिया गया, उसके साथ ही साथ उत्तर प्रदेश जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्यायजी को अखिल भारतीय महामंत्री के पद पर नियुक्त करने का निर्णय भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रहा।

एक ओर जब अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार हो रहा था, तब उसी समय ट्रंक द्वारा धड़ाधड़ समाचार आ रहे थे कि रामबन में गोली चली, इतने मरे, इतने घायल हुए। ऐसी विक्षोभक स्थिति में भी जनसंघ के नेताओं ने अपना संतुलन तनिक भी डिगने न दिया। इस अधिवेशन में यह घोषित किया, ''भारतीय जनसंघ का मत है कि यदि सरकार झूठे सम्मान एवं ग़लत नीतियों को छोड़कर वास्तविकता को समझे तो अभी भी समस्या का शांति एवं सम्मानपूर्ण हल निकाला जा सकता है।'' इसके लिए जनसंघ की ओर से निश्चित सुझाव भी रखे गए—

''परिषद् एवं अब्दुल्ला सरकार के प्रतिनिधियों की शीघ्र ही एक गोलमेज़ परिषद् बुलाई जाए तथा पारस्परिक विश्वास एवं सद्भावना का वातावरण पैदा करने का यत्न किया जाए।

'' शेख़ अब्दुल्ला को समझाया जाए कि जिस भारतीय विधान के बनाने में उनका हाथ रहा है, उसे वे स्वीकार करें, ताकि जम्मू व लद्दाख के निवासियों की भविष्य के संबंध में आशंका निर्मूल हो जाए तथा एक संयुक्त दल बनाकर पाकिस्तानी दुष्प्रयत्नों का मुक़ाबला एवं उसके द्वारा अधिकृत भूभाग को मुक्त करने का प्रयत्न किया जाए।

''यदि भारत सरकार शेख़ अब्दुल्ला को भारत का संविधान पूर्णतया स्वीकार करने के लिए राजी नहीं कर सकती तो जम्मू और लद्दाख के लोगों को भारतीय संविधान की सुविधाओं से वंचित न रखा जाए तथा तीन विषयों का सम्मेलन केवल कश्मीर घाटी तक ही सीमित रखा जाए। इसका अर्थ कश्मीर का विभाजन नहीं अपितु भारत के अधिकतम भूभाग पर एक संविधान को लागू करना है। वह अधिकतम संपूर्ण जम्मू और कश्मीर राज्य सहित हो, यह जनसंघ की इच्छा है।''

इन सुझावों को कार्यान्वित कराने के प्रयत्न भी निश्चित हुए, जिसके अनुसार समस्त देश में जन-जागरण करने के लिए सभाएँ की गईं। जम्मू से प्राप्त होने वाले अत्यंत रोमांचकारी समाचारों से वहाँ के अत्याचारों की भीषणता का पता चल रहा था। जनसंघ ने इन अत्याचारों की जाँच के लिए एक तथ्यखोजी शिष्टमंडल जम्मू भेजने का निश्चय किया। श्री हरदत्तजी एम.एल.ए. तथा मंत्री संयुक्त असेंबली, श्री लाल सिंहजी एम.एल.ए. डिप्टी स्पीकर राजस्थान असेंबली, श्री चिरंजीलाल मिश्रजी, एडवोकेट जयपुर, कर्नल भादुड़ी मंत्री बंगाल

जनसंघ, श्री उम्मेदसिंहजी एम.एल.ए. उत्तर प्रदेश, श्री महावीर जी, श्री प्रेमनाथ एडवोकेट अंबाला तथा वैद्य गुरुदत्त प्रधान दिल्ली राज्य जनसंघ को इस समिति में रखा गया, किंतु भारत सरकार ने समिति को कश्मीर जाने की अनुमति नहीं दी।

तीसरा और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयत्न डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वारा श्री नेहरूजी व शेख़ अब्दुल्ला से पत्र-व्यवहार करने का तय हुआ था।

अखिल भारत में स्थिति का स्पष्टीकरण

इसी समय प्रजा परिषद् के प्रधान पं. प्रेमनाथ डोगराजी और श्री दुर्गादास वर्माजी ने संपूर्ण भारतवर्ष का दौरा किया। स्थान-स्थान पर विशाल सभाएँ आयोजित हुईं। पं. प्रेमनाथजी ने जनता के बीच अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा, ''शेख़ की नीयत ख़राब है और नेहरूजी हमारी सुनने को तैयार नहीं। ऐसी अवस्था में देशभक्ति का तकाज़ा है कि जनमत जाग्रत् कर नेहरूजी को अपनी ग़लत नीति बदलने के लिए बाध्य किया जाए।'' छोटे किंतु अत्यंत ओजस्वी, सार भरे भाषण से जनता की भ्रांति का निराकरण हुआ। कलकत्ता, बंगलौर, मद्रास, बंबई, पूना, नागपुर आदि सभी स्थानों पर प्रचंड जनसमुदाय ने पं. प्रेमनाथ डोगराजी की जयकार से उनके प्रति अपना समर्थन व्यक्त किया। इन प्रसंगों पर स्थान-स्थान पर एक बात स्पष्ट रूप से देखने को आई कि कम्युनिस्टों ने देश भर में एक स्वर में पं. प्रेमनाथजी का विरोध किया। स्थान-स्थान पर उन्होंने शेख़ के समर्थन में आम सभाएँ करने का और इस आंदोलन को राजा व ज़ागीरदारों का आंदोलन या मुसलमानों के विरुद्ध हिंदुओं का आंदोलन कहकर लोगों को बहकाने का सिरतोड़ प्रयत्न किया। इतना ही नहीं तो उन्होंने अपनी झुँझलाहट में संतुलन खोकर कई स्थानों पर स्वतंत्र कश्मीर के नारे भी लगाए। दिल्ली में तो नया कश्मीर नाम से एक संस्था बनाकर, जिसमें मिस मृदुला साराभाई का नाम विशेष उल्लेखनीय है, अपना नियमित प्रचार भी प्रारंभ कर दिया। इनके पास प्रचार के लिए पैसा कहाँ से आता था, यह जानने को हमारी सरकार न तो तब तैयार थी और न ही अब है, किंतु दिल्ली की जनता इस बात को भलीभाँति जानती है कि हर दो-चार दिन में 'ज़िम्मेवारी' बुलेटिन अंग्रेज़ी, उर्दू तथा हिंदी तीनों भाषाओं में छापकर मुफ़्त बाँटा जाता था।

पं. प्रेमनाथ डोगराजी के अतिरिक्त प्रजा परिषद् के कार्यकर्ता श्री रामनाथ बलगोत्रा ने भी स्थान-स्थान पर दौरा किया। हैदराबाद कांग्रेस अधिवेशन के समय इस विचार से कि देश के कोने-कोने से आने वाले सभी कांग्रेसी नेताओं के समक्ष समस्या की गंभीरता को रखना अच्छा होगा, वे हैदराबाद भी पहुँचे। शेख़ अब्दुल्ला ने जो स्वयं हैदराबाद अधिवेशन में उपस्थित थे, अत्यंत चालाकी से इस स्थिति को सँभाला। उन्होंने वहाँ इतना बढ़िया भाषण श्री नेहरू की दुहाई दे-देकर दे मारा कि देश भर के सभी कांग्रेसी

उन पर लट्टू हो गए। समाचार-पत्रों में छपे समाचार के अनुसार उनका भाषण समाप्त होने के उपरांत कई कांग्रेसियों ने मंच पर पहुँचकर उनके उस भाषण पर उन्हें बधाइयाँ दीं। और इधर वास्तविक स्थिति का उल्लेख करने वाले श्री रामनाथ बलगोत्रा को परचे बाँटने के अपराध में गिरफ़्तार कर लिया गया। बाद में उन्हें मद्रास भेजा गया। जहाँ उच्च न्यायालय ने उन्हें निरपराध घोषित कर रिहा कर दिया।

जनता को इस बात की आशा थी कि कांग्रेस के हैदराबाद अधिवेशन में शेख़ अब्दुल्ला की असलियत अवश्य ही प्रकट होगी। कांग्रेस के भीतर ही भारतीयता का उपासक तथा भारतीय अखंडता का पोषक एक दल उभरता हुआ सा दिखाई पड़ा। उससे यह अपेक्षा थी कि यह देशहित में पार्टी के हित से ऊपर उठकर कार्य करेगा। किंतु शेख़ की चालाकी और नेहरूजी की ज़िद्द ने उसे भी आगे नहीं आने दिया। बात दब गई। ये कांग्रेसी भी नेहरूजी के एकाधिकारी निरंकुश व्यक्तित्व के नीचे मन की बात गले में दबाकर बैठे रहे।

शेख़ अब्दुल्ला एक विजयी कूटनीतिज्ञ की भाँति जम्मू की जनता पर मनचाहे जुल्म ढाने का अधिकार लेकर हैदराबाद अधिवेशन से वापस लौट गए, तब तो स्थिति अत्यंत भयंकर दिखाई पड़ने लगी।

पत्र व्यवहार की मोटी बातें

9 जनवरी, 1953 को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने प्रधानमंत्री नेहरू और कश्मीर के मुख्यमंत्री शेख़ अब्दुल्ला से पत्र व्यवहार प्रारंभ किया। 28 फरवरी तक यह पत्र व्यवहार चलता रहा। इस पत्र व्यवहार में डॉ. मुखर्जी ने कई बार इसी बात पर ज़ोर दिया कि प्रजा परिषद् की न्यायपूर्ण माँगों को ठुकराया न जाए। कई बार नेहरूजी व अब्दुल्ला को चेतावनी दी कि वे आंदोलन को शक्ति द्वारा दबाने का मार्ग छोड़ें और बातचीत करने के लिए तैयार हों। यह पत्र व्यवहार स्वयं ही एक ऐसा विषय है, जिसे जम्मू सत्याग्रह का अध्ययन करने वाले जिज्ञासु को अवश्य पढ़ना चाहिए।

9 जनवरी को लिखे गए उनके पहले पत्र का जवाब 20 जनवरी को जब श्री नेहरू द्वारा दिया हुआ उन्हें मिला तो वे उसी समय समझ गए थे कि श्री नेहरू किसी भी प्रकार अपना हठ छोड़ने को तैयार नहीं हैं। श्री नेहरू का प्रथम पत्रोत्तर पाकर डॉ. मुखर्जी ने जनंसघ के महामंत्री पं. दीनदयालजी को जो सूचना पत्र द्वारा भेजी थी, उसमें उन्होंने लिखा था—''आंदोलन अवश्य करना पड़ेगा। श्री नेहरू अपनी ग़लत हठ छोड़ेंगे ऐसी आशा दिखाई नहीं देती।'' इतना विदित होते हुए भी डॉ. मुखर्जी ने शांतिपूर्ण एवं पारस्परिक ऐक्य के आधार पर प्रयत्नों की पराकाष्ठा करने का मार्ग नहीं छोड़ा तथा नम्रतापूर्वक पत्र व्यवहार जारी रखा।

श्री जवाहरलाल नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला द्वारा लगाए गए ऊल-जलूल आरोपों का खंडन, तर्कशुद्ध ढंग से उन सभी बातों का उत्तर और हल, जिन्हें कश्मीर को पूर्ण विलीन कर लेने के मार्ग में बाधक बताया जाता था, शेख़ अब्दुल्ला के वास्तविक मंसूबों का परदाफ़ाश, नेहरूजी द्वारा उसे दी जा रही खुली छूट से भविष्य में निर्माण होने वाले भयंकर संकटों की चेतावनी प्रजा परिषद् व जनसंघ द्वारा इस अन्याय का परिमार्जन करने वाली चुनौती, श्री नेहरू की झुँझलाहट और सत्य का सामना करने से घबराहट, आदि-आदि कितनी ही बातें इस पत्र व्यवहार से जनता के समक्ष 3 मार्च को प्रकट की गईं, जब यह पत्र व्यवहार जनता की जानकारी के लिए समाचार-पत्रों में छापा गया।

नेहरूजी से हुए इस पत्र-व्यवहार में डॉ. मुखर्जी ने प्रत्येक पत्र में उनसे व्यक्तिगत रूप में मिलने के अवसर की माँग की। 9 जनवरी के अपने प्रथम पत्र में डॉ. मुखर्जी ने अंतिम वाक्य में लिखा—''यदि आप चाहते हैं कि मैं आपसे और शेख़ अब्दुल्ला से व्यक्तिगत रूप से मिलकर बातें करूँ, तो आप मुझे बताएँ, मैं प्रसन्नतापूर्वक आपकी इच्छानुसार वैसा करूँगा।'' इस पत्र का उत्तर श्री नेहरूजी ने दिनांक 20 जनवरी को भेजा, किंतु उन्होंने डॉ. मुखर्जी के इस सुझाव का कोई जवाब नहीं दिया। दूसरे पत्र में जिसे डॉ. मुखर्जी ने 3 फरवरी को नेहरूजी को लिखा और जिसमें अपनी ओर से जम्मू-कश्मीर की समस्या के हल के लिए 6 सुझाव दिए, पुन: एक बार अंतिम वाक्य में यही माँग की कि ''यदि आप समझते हैं कि मैं 6 तारीख़ को सबेरे आपके पास आकर बातचीत करूँ तो आप कृपा करके दिल्ली के पते पर, यानी 30 तुगलक क्रीसेंट, नई दिल्ली में संदेश भेज दें।''

किंतु श्री नेहरू ने अपने 5 फरवरी के पत्र में यह लिख कर कि ''लेकिन मुझे खेद है कि कल और अगले एक या दो दिन मैं पूर्ण रूप से व्यस्त हूँ।'' डॉ. मुखर्जी की भेंट को टाल दिया। तीसरे पत्र में 7 फरवरी को डॉ. मुखर्जी ने अपने सहयोग का आश्वासन देते हुए लिखा, ''यदि आप देश के सर्वोच्च हित में यह अनुभव करें कि आप प्रतिष्ठा और भागीदारी के सवालों को अलग रखकर शांतिपूर्ण समझौते के उपाय ढूँढ़ें, तो हमेशा हम पूरे दिल से आपको सहयोग देंगे। अब इतने विलंब के बाद भी मेरा पक्का विश्वास है कि यह संभव है, और इस दिशा में आप ही पहल कर सकते हैं।'' किंतु प्रधानमंत्री ने डॉ. मुखर्जी के सुझावों का कोई संतोषजनक उत्तर न देते हुए केवल इतना लिखा कि 'क्या मैं आपको यह सलाह देने का साहस करूँ कि आप जम्मू-आंदोलन को ख़त्म करने के लिए अपना प्रभाव डालेंगे।' डॉ. मुखर्जी ने अपने 10 फरवरी के पत्र में प्रधानमंत्री द्वारा जम्मू आंदोलन ख़त्म करने की बात का स्वागत किया और लिखा कि ''यह आपकी मेहरबानी है कि आपने आंदोलन को बंद करने के लिए मुझे अपना प्रभाव डालने के लिए लिखा है। मैं ऐसा करने को तैयार हूँ। लेकिन शर्त यह है कि आप

और शेख़ अब्दुल्ला इसको कार्यान्वित करने के लिए उचित वातावरण पैदा करें। यह एक तरीक़े से हो सकता है और वह यह है कि आंदोलन शुरू करने वालों को यह विश्वास दिलाया जाए कि आप और शेख़ अब्दुल्ला उनके साथ सभी मामलों पर खुले दिल से बातचीत करने को और ऐसे फ़ैसले करने को तैयार हैं, जिनसे उनकी उचित बातें पूरी हो जाएँगी। मेरा सुझाव है कि आप और शेख़ अब्दुल्ला कुछ नेताओं से भेंट करें। अच्छा होगा कि यह भेंट दिल्ली में हो। यदि यह बात उनके पास तक पहुँचा दी जाए तो मुझे आशा है कि वे आंदोलन को अस्थायी रूप से बंद कर देंगे।'' इसके अतिरिक्त डॉ. मुखर्जी ने समझौते की विचारणीय 9 बातों की एक लिस्ट भी इसी पत्र में भेजी और यह आश्वासन भी दिया कि ''यदि साधारण रूप से समझौता हो गया तो मैं पंडित प्रेमनाथ डोगरा को पत्र भेजकर अपनी सलाह दूँगा।''

प्रधानमंत्री ने अपने 12 फरवरी के उत्तर में न तो डॉ. मुखर्जी के सुझावों को माना और न ही उनसे मिलने की बात को माना। श्री नेहरू ने पुनः इसी बात को दोहराया कि जम्मू आंदोलन बंद कर दिया जाए। किंतु उन्होंने बंद करने के लिए आवश्यक प्रयत्नों की रूपरेखा न तो अपनी ओर से रखी और न ही डॉ. मुखर्जी के सुझावों को, जिनमें आंदोलन के नेताओं से खुले दिल से बात करने की साधारण सी माँग थी। डॉ. मुखर्जी ने 14 फरवरी को पुनः आंदोलन बंद करने की माँग का स्वागत किया और स्पष्ट शब्दों में जम्मू आंदोलन के नेताओं से बातचीत करने की प्रार्थना करते हुए लिखा—''आपको और शेख़ अब्दुल्ला को सबसे पहले यह निश्चय करना है कि क्या आप उनसे बातचीत करने को तैयार हैं? मेरा आपसे अनुरोध है कि आप ऐसा करें।'' डॉ. मुखर्जी ने इसी पत्र में आगे लिखा—''आपने कहा है कि सही रास्ता यह होगा कि आंदोलन बंद कर दिया जाए और सभी लोग यह कोशिश करें कि पहले जैसी हालत और सद्भाव पैदा हो जाए। प्रश्न यह है कि यह कैसे किया जाए? जब एक आंदोलन चल रहा होता है और आंदोलन चलाने वाले समझते हैं कि वे सही उद्देश्य के लिए संघर्ष कर रहे हैं, बलिदान कर रहे हैं तथा मुसीबतें झेल रहे हैं तो समझौते की कोई भी कार्रवाई सद्भाव के आधार पर मानवीय विचारों को ध्यान में रखकर ही की जानी चाहिए। इसलिए मेरा सुझाव है कि आप दोनों प्रजा परिषद् के चुने हुए प्रतिनिधियों से भेंट करने को राजी हो जाएँ।'' स्वयं श्री नेहरू से मिलकर इस समस्या का हल ढूँढ़ने के लिए आतुर अपने मानापमान की कोई परवाह न करते हुए डॉ. मुखर्जी ने पुनः इसी पत्र में लिखा—''मैं आज शाम को 6 और 7.30 के बीच के समय को छोड़कर और किसी भी समय, जो आपको सुविधाजनक हो, आपके पास आने को तैयार हूँ।'' प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने डॉ. मुखर्ज़ी की इस देशप्रेम भरी पुकार को पुनः इस बार भी निर्दयतापूर्वक ठुकरा दिया और डॉ. मुखर्जी के इस सुझाव का उत्तर कि जम्मू-कश्मीर की वर्तमान संविधान सभा एक

प्रस्ताव पारित कर राज्य का भारत में विलीनीकरण कर दे, श्री नेहरू ने इस प्रकार दिया—"मुझे प्रस्ताव पर कोई आपत्ति नहीं है। इस बात से कठिनाई पैदा नहीं होती बल्कि कठिनाई तो यह कहने से पैदा होती है कि इस प्रकार के प्रस्ताव से संयुक्त राष्ट्र संघ में इस मामले की चर्चा ही अंतिम रूप से सत्य हो जाती है।" जबकि डॉ. मुखर्जी अपने पिछले पत्रों में यह लिख चुके थे कि संयुक्त राष्ट्र संघ में कश्मीर का मामला पाकिस्तानी आक्रमण के प्रश्न पर ले जाया गया है, न कि कश्मीर के भारत में विलयन के प्रश्न पर, किंतु श्री नेहरू वस्तुस्थिति का उलटा चित्र डॉ. मुखर्जी के समक्ष रखकर अपनी ज़िद्द पर अड़े रहे। श्री नेहरू ने अपने पत्र में लिखा—"लेकिन हमने संयुक्त राष्ट्र संघ को जो आश्वासन दिए हैं, वे हमारी ज़िम्मेदारी हैं और उनका फ़ैसला इस तथ्य को सामने रखते हुए किया जाएगा।" डॉ. मुखर्जी ने श्री नेहरू की सभी शंकाओं का योग्य समाधान करते हुए पुन: एक पत्र तारीख़ 17 फरवरी को लिखा, जिसमें आंदोलन शीघ्र समाप्त करने के लिए 10 सुझाव नेहरूजी के समक्ष रखे और अंत में पुन: वही माँग की—"यदि आप यह अनुभव करते हैं कि इन सुझावों पर आप विचार कर सकते हैं और इन पर व्यक्तिगत रूप से बातचीत की जानी चाहिए तो मैं खुशी से अपनी सुविधा के अनुसार आपसे आकर मिल सकता हूँ।" इसी पत्र में अपनी अंतिम घोषणा भी डॉ. मुखर्ज़ी ने इन शब्दों में कर दी थी—"यदि आपने अंतिम रूप से यह फ़ैसला कर लिया है कि आंदोलन बिना शर्त वापस ले लिया जाए और किसी दूसरी बात पर समझौता नहीं हो सकता है, तो मुझे बड़े खेद के साथ यह निष्कर्ष निकालना होगा कि मेरी कोशिश बेकार रही।" डॉ. मुखर्जी के इस पत्र का कोई उत्तर श्री नेहरू ने नहीं दिया और इसलिए डॉ. मुखर्जी ने 11 दिन तक उत्तर की राह देखकर अपने 28 फरवरी के अंतिम पत्र में श्री नेहरू से इस बात की अनुमति माँगी कि जनता की जानकारी के लिए पत्र व्यवहार समाचार-पत्रों को भेजा जाए।

साथ-साथ इसी प्रकार का पत्र व्यवहार डॉ. मुखर्जी ने शेख़ अब्दुल्ला से भी किया। किंतु जिस प्रकार श्री नेहरू अपनी ज़िद्द पर अड़े रहे। उसी प्रकार शेख़ भी अपने दिल में बदल न ला सके।

दिसंबर, जनवरी और फरवरी के लगातार इन तीन महीनों में जम्मू की जनता पर होने वाले अत्याचार अंधकारपूर्ण असंस्कृत युग की बर्बरताओं की सीमाओं को भी पार कर चुके थे। 23 फरवरी को डॉ. मुखर्जी ने शेख़ अब्दुल्ला के नाम जो पत्र भेजा, उसमें 20 फरवरी तक हुए अत्याचारों की एक लंबी रिपोर्ट भी नत्थी कर भेजी थी।

इतिहास के मौन पृष्ठ

पत्र व्यवहार के द्वारा पारस्परिक मतैक्य निर्माण कर जम्मू की जनता के मन में

व्याप्त डर तथा अंधकारपूर्ण भविष्य की शंकाओं को दूर करने का यह आख़िरी प्रयत्न भी निष्फल रहा। अंतरराष्ट्रीय सुविधा का ध्यान कर नेहरूजी ने स्वयं अपने घर को उजाड़ने का ही निश्चय प्रकट किया। जैसा कि शेख़ के पदच्युत होने के बाद वर्तमान मुख्यमंत्री बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद की घोषणांओं से स्पष्ट है कि शेख़ अब्दुल्ला कश्मीर में स्वतंत्र सत्ता प्रस्थापित करने का जाल बिछा चुके थे। नेहरूजी क्या चाहते थे? इसकी असलियत तो आज तक भी प्रकट न हो पाई, शायद कभी शेख़ अब्दुल्ला पर मुक़दमा चले और मि. बख्शी द्वारा लगाए गए भीषण आरोपों की जाँच हो या डॉ. मुखर्जी के हत्यारों को खुली अदालत में उपस्थित किया जाए तो इन मामलों से उनकी भिज्ञता या अनभिज्ञता का पता चल सकेगा। जब तक यह नहीं होता तब तक तो सर्वसाधारण जनता को यह निर्णय लेने का अधिकार है कि देश के प्रधानमंत्री के नाते देश के कोने-कोने में, विशेषकर उस समय जम्मू आंदोलन के प्रबल जन-हिलोर की एक विशेष घटना के कारण वे शेख़ अब्दुल्ला व कश्मीर राज्य की प्रत्येक गतिविधि से परिचित थे। शेख़ अब्दुल्ला ने भी अनेक बार कहा था कि वे श्री नेहरू से बिना पूछे कोई कार्य नहीं करते और स्वयं प्रधानमंत्री ने भी डॉ. मुखर्जी को लिखे अपने पत्र में इस बात की घोषणा की थी कि वे जम्मू-कश्मीर राज्य की घटनाओं से पूर्ण परिचित हैं। यदि यह सत्य है कि प्रधानमंत्री की यह घोषणा निरा दंभ नहीं थी तो यही मानना पड़ेगा कि श्री नेहरूजी ने जान-बूझकर शेख़ के भीषण षड्यंत्रों को पलने दिया।

इतिहास आज यह बताने को तैयार नहीं है कि नेहरूजी ने यह जानते हुए भी कि जम्मू आंदोलन की माँगें न्यायपूर्ण हैं, यह जानते हुए कि शेख़ अब्दुल्ला की बर्बर तानाशाही का नंगा नाच जम्मू की जनता की छातियों पर हो रहा है, यह समझते हुए भी कि आंदोलन शक्ति से नहीं कुचले जा सकते, यह स्पष्ट संकेत पाते हुए भी कि केवल प्रजा परिषद् के नेताओं की बातें सुनने को तैयार होने पर आंदोलन बंद हो सकता है, शेख़ के पापी हाथों को हीं मज़बूत करने का प्रयत्न क्यों किया? किंतु यह सत्य है कि उन्होंने ऐसा किया। जनसभाओं में डॉ. मुखर्जी को देश का दुश्मन बताया और शेख़ अब्दुल्ला को अपना 20 सालाना पुराना दोस्त बताकर यह सिद्ध करने का असफल प्रयत्न किया कि उनके निजी दोस्त भारत के भी दोस्त हो सकते हैं। आगामी पीढ़ियाँ जब इतिहास के पन्ने उलटते हुए यह पढ़ेंगी कि कश्मीर को भारत में पूर्णरूपेण विलीन करने की माँग करते हुए देश की जनता को आंदोलन करना पड़ा और देश के प्रधानमंत्री ने एक ओर तो इन देशभक्तों पर लाठी, गोली और अश्रुगैस बरसाकर उन्हें दबाना चाहा और दूसरी ओर स्वतंत्र कश्मीर के सपने पालने वाले शेख़ अब्दुल्ला के दामन में आत्मसमर्पण किया तो उनके सिर लज्जा से झुक जाएँगे।

दुर्भाग्य देश का कि डॉ. मुखर्जी की देशभक्ति प्रधानमंत्री नेहरू से बातचीत भी न

कर सकी और शेख़ अब्दुल्ला की गद्दारी उन्हें चाहे जैसा नचाती रही। अपने प्रत्येक पत्र में 'स्वयं आकर एक बार आपसे भेंट करूँ' की लालसा डॉ. मुखर्जी ने दिखाई किंतु श्री नेहरूजी ने इस देशभक्तिपूर्ण प्रार्थना को आंदोलन मज़बूत करने का छलमात्र माना।

इस प्रकार बातचीत तक करने की साधारण पगडंडियाँ भी समाप्त हो चुकी थीं। समझौता या शांतिपूर्ण ढंग से समस्या का हल खोजने की तत्परता के विशाल मार्ग के द्वार तो महीनों पहले बंद हो चुके थे। लाठी, गोली की पुलिस और कांग्रेसी गुंडों के रक्षा-दीवालों से घिरे श्री नेहरूजी ने प्रतिद्वंद्वियों को कुचलने की धमकियाँ दे डाली थीं। लोकसभा में डॉ. मुखर्जी द्वारा प्रस्तुत इस सुझाव पर कि "प्रजा परिषद् के नेताओं से बातचीत कीजिए" नेहरूजी ने यह कहकर कि "मैं उनसे बातचीत नहीं करूँगा, नहीं करूँगा, नहीं करूँगा" शेख़ के भीषण अत्याचारों पर अपनी सील लगा दी थी। उन्होंने यह कहकर कि "यदि मैं शेख़ अब्दुल्ला के स्थान पर होता तो इससे भी अधिक दमनचक्र चलाता।" देश की तरुणाई को पुलिस की चुनौती दी और वह उसने स्वीकार की।

उस ओर जम्मू में शेख़ की नादिरशाही खुलकर खेल रही थी। 1 मार्च को जिस दिन नेहरू-मुखर्जी-अब्दुल्ला पत्र व्यवहार प्रकाशित हुआ था, अख़बारों में समाचार छपा कि रामबन में 2 हज़ार जनता पर पुलिस नेजी खोलकर लाठी और गोलियाँ चलाईं। इस गोलीबारी से एक सत्याग्रही की उसी स्थान पर मृत्यु हो गई व दो चिंताजनक अवस्था में अस्पताल भेजे गए। पत्र व्यवहार में प्रकट हुई नेहरू-अब्दुल्ला की दुर्नीति से जनता वैसे ही क्षुब्ध थी। इस पर रामबन की इस ताज़ा गोलीबारी ने जनता की क्रोधाग्नि पर घी का काम किया।

4

पग जिधर बढ़े, पथ स्वयं बना

पत्र व्यवहार के दौरान ही भारतीय जनसंघ कार्यकारिणी की एक आवश्यक बैठक 6 फरवरी को दिल्ली में रखी गई थी। पं. दीनदयाल उपाध्याय पंजाब, मध्य भारत, राजस्थान व उत्तर प्रदेश का दौरा कर दिल्ली पहुँच चुके थे। वे अपने इस लंबे प्रवास में जहाँ भी गए, लोगों में बेचैनी देखी। स्थान-स्थान पर तरुणों की टोलियों ने उनसे प्रश्न पूछे कि शेख़ की शेख़ी को जवाब कब दिया जाएगा। उनके दौरे के परिणामस्वरूप जनता जम्मू आंदोलन के उद्देश्यों से परिचित हो चुकी थी। जनता ने इतने दिन में इस बात का भी अनुभव कर लिया था कि यदि जनसंघ इस कार्य को हाथ में लेता है तो सफलता अवश्य मिलेगी। इसीलिए जनसंघ कार्यकारिणी की इस बैठक की ओर सबकी आँखें लगी थीं। केवल जनता ही नहीं तो सरकार भी कार्यकारिणी की इस बैठक की महत्ता को समझ चुकी थी। इसीलिए उसने संपूर्ण पंजाब में गिरफ़्तारियों का ताँता-सा लगा दिया था। प्रो. महावीर, प्रो. धर्मवीरजी, डॉ. मंगलसेन आदि को गिरफ़्तार कर लिया गया। पंजाब जनसंघ के प्रधान आचार्य रामदेव को तो कार्यकारिणी की बैठक में आते समय दिल्ली स्टेशन पर ही गिरफ़्तार किया गया।

संपूर्ण पंजाब और पश्चिम उत्तर प्रदेश में स्थान-स्थान पर स्वर्गीय श्री बिहारी लाल और श्री भीकम सिंह नामक उन दो शहीदों की अस्थियों का जुलूस निकाल रहे थे, जो गत 11 जनवरी को पठानकोट-जम्मू रोड पर हीरा नगर में हुए भीषण गोलीबारी के शिकार हुए थे तथा अत्याचारी, जिनकी लाशें अधजली स्थिति में भारतीय सीमा के पास एक नाले में छोड़ गए थे। जनता इन शहीदों की लाशों को दूसरे दिन प्रातःकाल उस नाले से अधजली अवस्था में ही उठा लाई थी। विधिवत् दाह संस्कार होने के बाद इनकी अस्थियों के जुलूस निकालकर शेख़ के लोहावरण में चलने वाली बर्बरता से जनता को परिचित कराया जा रहा था। हज़ारों की संख्या में जनता शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने एकत्र होती

थी। मेरठ में अस्थियों के इस जुलूस को निकालने की अनुमति न दी गई तब जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने एक रिक्शे में उन अस्थियों को रखा और चुपचाप रास्ते पर ले चले। आश्चर्य, जुलूस नहीं था किंतु श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए जनता अपार संख्या में मार्ग के दोनों ओर खड़ी थी। सहारनपुर में तो पुलिस ने उन अस्थियों को भरे जुलूस में ही अपने क़ब्ज़े में ले लिया। उस समय जनता का रोष उफान मार रहा था। जनसंघ के कार्यकर्ताओं की बुद्धिमानी से स्थिति नहीं बिगड़ी, यह दूसरी बात है।

जन प्रतिक्रिया व 5 मार्च का निश्चय

ऐसी स्थिति में डॉ. मुखर्जी के पास तरुणों के झुंड के झुंड पहुँचने लगे। जनता में बेचैनी फैल गई। शांति तथा वैधानिक ढंग से समस्या के पहल करने के सभी मार्ग सरकार ने बंद कर दिए। ऐसी अवस्था में अगला क़दम क्या होगा? क्या शेख़ की नादिरशाही ऐसी ही चलती रहेगी? क्या जम्मू-कश्मीर को भारत में मिलाने की माँग को शेख़ अब्दुल्ला व नेहरूजी गोलियों की धाँय-धाँय में दबा देंगे? ऐसे और इसी प्रकार के अन्य कई प्रश्नों से वायुमंडल आंदोलित हो चुका था। जनता माँग कर रही थी कि हमें अवसर दिया जाए, अन्याय का परिमार्जन करने के लिए देशभक्त तरुणों का रक्त हिलोरें ले रहा था। गाँवों, शहरों, सड़कों, ऑफिसों, ट्रेन-ट्राम, गली-कूचों में शाम-सबेरे टोलियाँ खड़ी रहतीं। कुछ कहते कि "आंदोलन शुरू कर देना चाहिए" तो कुछ समर्थन करते "सारे देश में एक साथ हो, अक्ल ठिकाने लग जाएगी शेख़ की"। कुछ बड़े-बूढ़े गंभीर स्वर में कहते—"लेकिन हो क्या गया है नेहरूजी को, अज़ीब हालत है, अज़ीब ज़िद्द है, बात नहीं करते और काम भी पूरा नहीं करते"। पत्र व्यवहार की प्रतियाँ लेकर लोग खड़े होते और कहते "अंग्रेज़ी सल्तनत के तौर तरीक़े हैं, इसका जवाब भी वैसा ही होना चाहिए।"

दो दिन के भीतर ही सारे देश में बात फैल गई कि "और कोई चारा नहीं।" दिनांक 5 मार्च को जनसंघ, महासभा व रामराज्य परिषद् के संयुक्त तत्त्वावधान में जम्मू दिवस की घोषणा की गई। उफनती जनता को जैसे आंदोलन की लहरों का गीत मिला। संपूर्ण देश में और उसी प्रकार दिल्ली में विशेष तौर से जनता इस सभा में एकत्र हुई।

पंजाब और उत्तर प्रदेश के बड़े-बड़े नगरों में 144 धारा घोषित हो चुकी थी, इसलिए दिल्ली में यही संभावना व्यक्त की जा रही थी कि 5 मार्च को सभा न हो सकेगी। लोग यह भी अनुमान लगा रहे थे कि सरकार के अन्याय से इस दिन ज़ोरदार सामना होगा किंतु 5 मार्च को यह जानकर जनता के आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि दिल्ली में 144 धारा उठा ली गई है। जबकि पंजाब व उत्तर प्रदेश के प्रमुख नगरों में सभी स्थानों में 144 धारा लगा रखी थी तब दिल्ली की सरकार ने छूट क्यों दी? इसका

कारण सरकार की उदारता नहीं, वरन् असमर्थता ही थी। डॉ. मुखर्जी भाषण देंगे—इस प्रकार का समाचार मिलते ही जनता किस आतुरता से एकत्र हो जाती है, इसे दिल्ली के शासक भलीभाँति जानते थे।

और हुआ भी वैसा ही। दिल्ली स्टेशन के सामने के दंगल मैदान में 5 मार्च को जनता का अपार सागर उमड़ पड़ा। दिल्ली पुलिस के बड़े-बड़े अफ़सर अपने सभी गुप्तचरों के साथ इस जनसभा में उपस्थित थे। ढूँढ़-ढूँढ़कर जनसंघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं की पहचान आपस में एक-दूसरे गुप्तचर कर ले रहे थे। इस कार्य में कांग्रेसी सज्जन काफ़ी दिलचस्पी से सहायता कर रहे थे। एकाएक मैदान 'भारत माता की जय' और 'जम्मू के शहीदों को भूलो मत, भूलो मत' के नारों से गूँज़ उठा। डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी मंच पर आ गए थे। रामराज्य परिषद् के प्रधान स्वामी करपात्री की अध्यक्षता में सभा प्रारंभ हुई। तालियों की गड़गड़ाहट और डॉ. मुखर्जी ज़िंदाबाद के बीच डॉ. मुखर्जी बोलने के लिए खड़े हुए। उस समय चारों और ऐसी निस्तब्धता छाई हुई थी जैसे किसी विकट परिस्थिति का सामना करने के लिए सेना अपने सेनानी से 'बढ़ चलो' की आज्ञा लेने को उत्सुक है। डॉ. मुखर्जी का दिल्ली की जनता के साथ यह भाषण अंतिम ही रहा। वे बोल रहे थे और बोलते ही जा रहे थे। जिसने भी उस दिन डॉ. मुखर्जी का वह स्वरूप देखा, वह अपने जीवन भर उसे भुला नहीं सकता। जनता का नेता जनता के समक्ष अपना हृदय उँडेलकर रखता जा रहा था। जनता भी एकटक उनकी ओर देख रही थी। डॉ. मुखर्जी के ललाट से पसीना टपक रहा था किंतु जैसे सेनानी को तन-बदन की सुधि न हो इस प्रकार वे बोले जा रहे थे। उन्होंने अपने उन सभी प्रयत्नों का विवरण जनता के समक्ष रखा, जिसके द्वारा सरकार को शांतिपूर्ण ढंग से न्यायपूर्ण माँगों पर विचार करने की प्रार्थना की गई थी, ''किंतु''—वे बोले, ''नेहरूजी कहता है, हम इस जनसंघ को कुचल डालेगा'' जनता ने चारों ओर से आवाज़ लगाई ''धिक्कार है'', ''धिक्कार है'' डॉ. मुखर्जी दो क्षण ठहरे और गरज उठे, ''यदि नेहरू कहता है कि वह जनसंघ को कुचलेगा तो हम भी बोलता है कि हम उसकी कुचलने वाली मनोवृत्ति को कुचलेगा।'' "I Will crush his crushing mentality" चारों और जनता ने जय-जयकार किया और डॉ. मुखर्जी के इन शब्दों के साथ अपना समर्थन व्यक्त किया।

अंतिम घोषणा-''हमने दूसरा मार्ग स्वीकार किया है''

डॉ. मुखर्जी ने शेख़ अब्दुल्ला की कुटिल योजनाओं का उल्लेख किया, उनको विफल करने के लिए प्रजा परिषद् द्वारा प्रारंभ किए गए 5 माह के सतत संघर्ष का रोमांचकारी दृश्य जनता के समक्ष उपस्थित किया तथा प्रधानमंत्री श्री नेहरू द्वारा अपनाई गई हठधर्मी को भी जनता के समक्ष रखा। इसके बाद वे बोले—''अब हमारे सामने दो

रास्ते शेष बचे हैं। पहला रास्ता इस अन्याय के समक्ष सिर झुकाकर बैठ जाने का रास्ता है, जिसका अर्थ है शेख़ अब्दुल्ला की दुर्नीति के विषफल प्रकट होने देना और दूसरा रास्ता है, इस अभ्यास का परिमार्जन करने के लिए शुद्ध देशभक्ति से प्रेरित होकर सर्वस्व त्याग करने की तैयारी करना। शांतिपूर्ण ढंग से पं. नेहरू व अब्दुल्ला की राष्ट्रघाती नीति का विरोध करते हुए ऐसा जनमत प्रकट करना कि आने वाले भयंकर संकट से देश को बचाने के लिए सरकार को बाध्य किया जा सके।'' अत्यंत गंभीर एवं दृढ़ स्वर में डॉ. मुखर्जी ने घोषणा की। ''हमने दूसरी माँग स्वीकार किया है।'' डॉ. मुखर्जी की इस घोषणा पर सभा में चारों ओर से ''भारत माता की जय'' तथा ''अब न चलेगी तानाशाही'' के नारे लगे। इसी सभा में यह भी घोषित किया गया कि आगामी शाम जम्मू से उन शहीदों की अस्थियाँ दिल्ली पहुँच रही हैं, जो शेख़ अब्दुल्ला की बर्बर तानाशाही के शिकार हुए हैं। इस अस्थियों का स्वागत रेलवे स्टेशन पर किया जाएगा तथा बाद में चाँदनी चौक में श्रद्धांजलि अर्पित की जाएँगी। जनता से प्रार्थना की गई कि वह अधिक-से-अधिक संख्या में एकत्र होकर भारत की अखंडता की बलिवेदी पर शहीद हुए उन वीरों के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करे।

नेताओं की गिरफ़्तारी

दूसरे दिन अर्थात् 6 मार्च को प्रातःकाल से ही दिल्ली में स्थान-स्थान पर पुलिस का पहरा लगा हुआ था। सारे शहर में शाम को निकलने वाले जुलूस की चर्चा थी। दोपहर से ही जनता रेलवे स्टेशन (जंक्शन) पर एकत्र होने लगी। शाम को 5 बजे तक दिल्ली सरीखे विशाल रेलवे स्टेशन के सभी प्लेटफार्म खचाखच भर चुके थे। स्टेशन के सामने व रास्ते पर दोनों ओर भी स्त्री-पुरुषों की अपार भीड़ थी। पुलिस का पहरा भी स्टेशन पर उसी परिमाण में अधिक कड़ा था। लाठीधारी सिपाहियों के जत्थे सड़क पर लांग-बूट की कर्कश ध्वनि करते हुए इधर-उधर घूम रहे थे। इसके अतिरिक्त पिस्तौलधारी असंख्य पुलिस अधिकारी, अश्रुगैस के बॉम्ब से युक्त बंदूकधारी पुलिस के जवान, सफ़ेद खादी में लिपटे हुए कांग्रेसियों की नियुक्त फ़ौज, लोहे की जालियों से सुसज्ज कई नीलवर्ण पुलिस लारियाँ, ट्रांसमीटर लगी हुई जीप कारें आदि सभी ने मिलकर चारों ओर एक भयावना दृश्य उपस्थित कर दिया था।

पुलिस की ये तैयारियाँ प्रातःकाल से ही इतने बड़े प्रमाण में व इतनी सतर्कता से की जा रही थीं कि आंदोलन के सूत्रधारों को इस बात का पता चल गया था कि शहीदों की अस्थियों को पुलिस स्टेशन पर ही ज़ब्त कर लेना चाहती है। पुलिस की इस इच्छा का पता पाकर कि स्टेशन पर ही अस्थियाँ छीन ली जाएँ, जिससे पहले ही मोरचे पर आंदोलन की आवाज़ को दबाया जा सके, जनसंघ के कार्यकर्ताओं ने सफलतापूर्वक

अस्थियों को दो स्टेशन पहले ही उतार लिया और एक मोटर के द्वारा उसे गुप्त रीति से दिल्ली ले आए। साढ़े पाँच बजे के क़रीब जब रेलगाड़ी दिल्ली स्टेशन पर आई तो पुलिस ने पूरी ट्रेन को घेर लिया। इसी समय प्लेटफार्म पर ख़बर फैल गई कि अस्थियाँ चाँदनी चौक पहुँच चुकी हैं। इस ख़बर के फैलते ही पुलिस के सिपाही एक-दूसरे को देखते ही रह गए। फिर भी उन्होंने सतर्कतापूर्वक प्लेटफार्म पर व डिब्बों में अपने समाधान के लिए खोजबीन भरपूर की। जनता तो यह समाचार पाते ही चाँदनी चौक की ओर दौड़ पड़ी, किंतु पुलिस वालों को यह ज़ादू बिल्कुल समझ में नहीं आया कि उनकी पूरी घेराबंदी के बाद भी अस्थियाँ किस प्रकार चाँदनी चौक निकल गईं। पुलिस के बड़े-बड़े अफ़सर भौंचक खड़े रह गए। उनकी सारी योजना ही धूल में मिल गई। चाँदनी चौक पर पुलिस की विशेष व्यवस्था इसलिए नहीं की गई थी, क्योंकि पुलिस को दिल्ली स्टेशन की अपनी घेराबंदी पर पूर्ण भरोसा था।

स्टेशन से अपार भीड़ का यह जनसमूह चाँदनी चौक की ओर द्रुत गति से लहरें लेने लगा। पुलिस की लारियों का मुँह भी चाँदनी चौक की ओर घूम गया। आंदोलन के संचालकों द्वारा योजना इस प्रकार बनाई गई थी कि स्टेशन की जनता जिस समय चाँदनी चौक पहुँचे, ठीक उसी समय डॉ. मुखर्जी, बैरिस्टर चटर्जी व श्री नंदलाल शर्मा भी वहाँ उपस्थित हो जाएँ। इस योजनानुसार उपरोक्त तीनों नेता एक कार में बैठकर चाँदनी चौक की ओर आ रहे थे। किंतु चाँदनी चौक से कुछ सौ गज़ की दूरी पर आवागमन की कठिनाई के कारण डॉ. मुखर्जी की कार को धीमा होना पड़ा। कुछ लोगों ने डॉ. मुखर्जी को मोटर में बैठे देखा तो वे अकस्मात् ही 'डॉ. मुखर्जी की जय' चिल्ला उठे। इन व्यक्तियों का नारा लगाना था कि कुछ और लोग भी एकत्र हो गए। अब तो कार का आगे बढ़ना ही कठिन हो गया। स्थान-स्थान पर तैनात खड़ी पुलिस के एक जत्थे ने आकर डॉ. मुखर्जी को घेर लिया। यद्यपि डॉ. मुखर्जी का यहाँ कार से बाहर आने का इरादा नहीं था, किंतु जोश में होश खोई जनता के कारण डॉ. मुखर्जी को कार से बाहर आने के लिए बाध्य होना पड़ा। डॉ. मुखर्जी अपने तीनों साथियों के साथ बाहर आए और पैदल ही चाँदनी चौक की ओर बढ़ने लगे। इतने में ही एक पुलिस इंस्पेक्टर ने उन्हें रोकने का प्रयत्न किया। डॉ. मुखर्जी ने उसे नम्रतापूर्वक कहा, "मुझे आगे बढ़ना है। मैं अपना कार्य करूँगा, तुम अपना कार्य करो।" डॉ. मुखर्जी कुछ क़दम आगे बढ़ भी न पाए थे कि एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि. एच.एस. ढिल्लन आ धमके और उन्होंने डॉ. मुखर्जी और उनके साथियों को इस बिना पर गिरफ़्तार कर लिया कि नगर में 144 धारा जारी की जा चुकी है और इस प्रकार जुलूस आदि निकालना ग़ैर.कानूनी है। डॉ. मुखर्जी तथा उनके साथियों ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि उनका विचार गिरफ़्तार होने का कतई नहीं था और न ही वे ग़ैर-क़ानूनी ढंग से जुलूस निकालना चाहते थे। चूँकि

अस्थियों को श्रद्धांजलि अर्पित करने का कार्यक्रम कल सायंकाल उस सभा में घोषित किया गया था, जबकि सरकार ने 144 धारा उठा ली तथा आज प्रातःकाल पुनः लगाई गई 144 धारा की सूचना उनके पास काफ़ी देर से पहुँची, इसलिए वे कार्यक्रम में कोई बदल करने में असमर्थ रहे। डॉ. मुखर्जी की स्पष्टोक्ति पर बिना कोई ध्यान दिए मजिस्ट्रेट ने उन्हें गिरफ़्तार कर कोतवाली भिजवा दिया।

अश्रुगैस की भीषण वर्षा

''डॉ. मुखर्जी चाँदनी चौक में पहुँच गए हैं'', यह समाचार बिजली की भाँति जनता में फैल गया। उस समय स्टेशन से चाँदनी चौक की ओर आने वाली जनता का एक अजीब सा ही दृश्य था। पुलिस ने स्थान-स्थान पर लाठियाँ अड़ाकर उन्हें रोकना चाहा किंतु जनता के प्रतिपल आगे बढ़ते हुए धक्कों से पुलिस भी चाँदनी चौक की ओर खिसकती आ रही थी। इस अवस्था को लेकर एडिशनल डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट मि. एच.एस. ढिल्लन ने अश्रुगैस छोड़ने की आज्ञा दे दी। धड़ाधड़ क़रीब 24 बम एक साथ जनता के ऊपर फेंके गए। सारा क्षेत्र दम घुटने वाली तथा आँखों से पानी गिराने वाली गैस से भर गया। लोग इस गैस से बचने के लिए आसपास की दुकानों व बरामदों में लपके। इस अवसर का लाभ उठाकर मास्क पहने हुए पुलिस ने जनता की पीठों पर डंडे बरसाए। पुलिस के इस आकस्मिक आक्रमण से जनता की गति में कुछ धीमापन आ गया। जनता के इस विशाल जनसमुदाय के चाँदनी चौक पहुँचने के कुछ मिनट पहले ही डॉ. मुखर्जी को पुलिस ने गिरफ़्तार कर लिया। आंदोलन के नियंत्रकों को आज भी यह बात मन में बुरी तरह खलती है कि उस दिन कुछ लोगों के अधिक जोश की छोटी सी भूल के कारण डॉ. मुखर्जी को निश्चित स्थान के पहले ही कार से बाहर आना पड़ा और वे अपने अनुयायियों को उस दिन भलीभाँति न देख सके।

इधर जनता भी अपने नेता के दर्शन न पाने के कारण बावली हो चुकी थी। जब यह समाचार लोगों को पता चला कि डॉ. मुखर्जी, बै.चटर्जी, श्री नंदलाल शर्मा व वैद्य गुरुदत्त गिरफ़्तार किए जा चुके हैं तो जनता क्षुब्ध हो उठी। टाउन हॉल के सामने हज़ारों की संख्या में प्रचंड प्रदर्शन किया गया। शेख़ तथा नेहरू सरकार की तानाशाही के विरुद्ध जनता का वह रोष शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता। केवल इसी एक घटना से उसका अनुमान लगाया जा सकता है कि मजिस्ट्रेट की आज्ञा से पुलिस ने जनता पर तीन बार भयंकर लाठीचार्ज व अश्रुगैस प्रयोग किया, किंतु जनता फिर भी वहाँ से नहीं हटी। अंत में पुलिस ने ही अपना घेरा उठा लिया। नेहरू व शेख़ की नीति के प्रतीक उन पुलिस वालों के हटने पर ही जनता वहाँ से हटी। इसके बाद मध्य रात्रि तक दिल्ली के विभिन्न क्षेत्रों में जनता के समूह नारे लगाते हुए निकलते रहे।

सुप्रीम कोर्ट की कड़ी फटकार

6 मार्च को गिरफ़्तार हुए इन सभी नेताओं को 12 मार्च को सुप्रीम कोर्ट ने रिहा कर दिया। इन 6 दिनों में जिस प्रकार की सरकारी अवैधानिकता और अन्याय हुआ, जिस प्रकार प्रजातांत्रिक स्वतंत्र भारत के नागरिक अधिकारों का गला घोंटा गया, जिस प्रकार झूठा मामला तैयार किया गया, वह कांग्रेसी सत्ताधारियों के माथे पर अमिट कलंक है।

नागरिकों के मौलिक अधिकारों की रक्षा करने वाली पुलिस तथा अन्याय की बागडोर सँभालने वाली अदालतों ने कांग्रेसी सत्ताधारियों की भ्रष्ट छाया के वशीभूत होकर स्वतंत्र भारत की लोकसभा के विरोधी दल के नेता तथा उनके तीन साथियों के साथ ऐसी घोर अनियमितताएँ बरतीं, जिनसे अंग्रेज़ी नौकरशाही की काली करतूतें भी फीकी पड़ गईं। सर्वोच्च न्यायालय ने 12 मार्च को यह घोषित कर कि डॉ. मुखर्जी तथा उनके तीन साथियों को ख़िलाफ़ क़ानून (विधि विरुद्ध) जेल में नज़रबंद रखा गया, शासन के मुँह पर करारा थप्पड़ जड़ दिया और पहली सीढ़ी पर शासन की अवैधानिकता को परास्त कर जनता के नेता जयघोष के साथ जेल के सींखचों के बाहर आ गए।

सर्वोच्च न्यायालय के सामने इस बात को स्वीकार किया गया कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी और उनके साथियों को चाँदनी चौक कोतवाली से जेल भेजा गया तथा तब जेल अधिकारियों के नाम, उन्हें जेल में रखने के लिए कोई आज्ञापत्र दूसरे दिन पहुँचा। इस बात से भी इनकार नहीं किया गया कि जिस पुलिस अफ़सर को इस मुक़दमे की जाँच के लिए नियत किया गया था, उसने स्वयं अपने हाथ से रिमांड की अरजी लिखी और उस पर अपने ही हाथ से रिमांड की आज्ञा भी लिख दी। इस पुलिस अधिकारी ने यह भी अपनी क़लम से लिख दिया कि अभियुक्त रिमांड की आज्ञा देने के समय मजिस्ट्रेट के सामने मौजूद थे। दिल्ली के अतिरिक्त डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट ने इस आज्ञापत्र पर अपने हस्ताक्षर मात्र कर दिए और जब उन्होंने ये हस्ताक्षर किए, तब अभियुक्त वहाँ पर उपस्थित नहीं थे।

सुप्रीम कोर्ट के पाँचों न्यायाधीश इस निर्णय पर भी पहुँच गए कि, यदि श्री ढिल्लन ने अभियुक्तों की गिरफ़्तारी उस अधिकार से की, जो उन्हें जाप्ता फ़ौजदारी की 64वीं धारा के अधीन प्राप्त था, तो वह इसी जाप्ता की 167वीं धारा के अनुसार अन्य अभियुक्तों का रिमांड देने के अधिकारी नहीं रहे थे। अतः उन्हें अभियुक्तों के रिमांड पर हस्ताक्षर नहीं करने चाहिए थे।

दिल्ली का न्याय

इसके पश्चात् अब ज़रा इस आज्ञा का भी हाल सुनिए, जिसके अनुसार अभियुक्तों

(डॉ. मुखर्जी तथा उनके साथी) को 9 से लेकर 11 मार्च तक जेल में रखा गया। सुप्रीम कोर्ट की एक आज्ञा के अनुसार डॉ. मुखर्जी और उनके साथियों के मुक़दमे से संबंधित तमाम अदालती काग़ज़ 10 मार्च को वहाँ भेज दिए गए थे। इन काग़जों में 9 मार्च की रिमांड का कहीं ज़िक्र नहीं था। जेल अधिकारी ने अपने हलफ़नामे में उस आज्ञा का ज़िक्र नहीं किया था। 11 मार्च को जब यह मामला सुप्रीम कोर्ट में बहस के लिए उठाया गया, तब भी सरकार की ओर से इस रिमांड आज्ञा के संबंध में कुछ नहीं कहा गया। किंतु 12 मार्च को अकस्मात् ही सुप्रीम कोर्ट में एक अरजी पेश कर दी गई, जिसकी पीठ पर मजिस्ट्रेट श्री सिंहल ने लिखा था कि अभियुक्त 11 मार्च तक जेल में रहें।

जिस समय यह परची पेश की गई, उस समय अदालत में सन्नाटा छा गया और भारत के सॉलिसिटर जनरल श्री. सी.के. दफ़्तरी पर, जो उस समय सरकार की ओर से बहस कर रहे थे, पाँचों न्यायाधीशों ने प्रश्नों की बौछार लगा दी।

उन्होंने पूछा कि जब हमने तमाम संबंधित काग़ज़ात यहाँ मँगाए, तब इस काग़ज़ को हमसे छिपाकर क्यों रखा गया? श्री जस्टिस दास ने तो यहाँ तक कहा कि कल तक इस काग़ज़ का कहीं निशान तक नहीं था और आज उसे काग़ज़ात में मिला दिया गया है।

श्री जस्टिस मुखर्जी ने कहा कि यह साधारण दस्तूर है कि अदालत के तमाम हुक़्म अदालत के रिकार्ड में रखे जाते हैं, फिर इस काग़ज़ को अलग क्यों रखा गया? जब श्री दफ़्तरी इनमें से किसी प्रश्न का संतोषजनक उत्तर न दे सके तब पाँचों न्यायाधीश एकमत से इस निर्णय पर पहुँचे कि श्री सिंहल ने 9 मार्च की रिमांड की कोई आज्ञा नहीं दी और इसलिए डॉ. मुखर्जी और उनके साथियों को 9 से 11 मार्च तक ख़िलाफ़ क़ानून जेल में रखा गया, और इसलिए अदालत ने अभियुक्तों को तुरंत रिहा करने की आज्ञा दी।

वास्तव में दिल्ली राज्य की सरकार का सौभाग्य ही समझिए कि सुप्रीम कोर्ट ने अपने फ़ैसले में उस त्रुटि के बारे में कुछ नहीं लिखा जो कि दिल्ली के अतिरिक्त मजिस्ट्रेट श्री हरिजिंद्र सिंह ढिल्लन ने 6 मार्च की शाम को डॉ. मुखर्जी आदि का रिमांड देते हुए की थी, किंतु जितना कुछ सुप्रीम कोर्ट ने फ़ैसला दिया, उतना ही शासन के पापी दिल के पाप जनता के समक्ष प्रकट करने के लिए बहुत पर्याप्त थे।

इस घटना से जहाँ जनसंघ के नेताओं की सफ़ाई प्रकट हुई, वहाँ कांग्रेसी शासन की इज़्ज़त धूल में मिल गई। लोग चौराहों पर खड़े होकर शासन की हरकतों को कोसने लगे। दिल्ली के सभी समाचार-पत्रों ने अपने अग्रलेखों में इस कार्रवाई पर सरकार को धिक्कारा।

सत्याग्रह की विधिवत् घोषणा होने के पूर्व ही शहीदों के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिए एकत्र जनता पर इस प्रकार अश्रुगैस व लाठी बरसाकर तथा नेताओं को

ग़ैर क़ानूनी ढंग से जेल में बंद कर सरकार ने स्वयं होकर सत्याग्रह आरंभ करवा दिया। स्थान-स्थान से जत्थे आना प्रारंभ हो गए। दिल्ली व पठानकोट दोनों मोरचों पर प्रतिदिन सत्याग्रह प्रारंभ हो गया। पठानकोट में डॉ. ओमप्रकाशजी भारद्वाज ने सत्याग्रह की योजना का समस्त भार सँभाला। पुलिस उन्हें गिरफ़्तार करने का भरसक यत्न करती रही, किंतु वे अंत तक पुलिस के चंगुल में नहीं आए। उसी प्रकार दिल्ली के मोरचे का भार श्री ओमप्रकाश तथा दिल्ली जनसंघ के संयुक्त मंत्री प्रो. विजय कुमार ने सँभाला था। प्रो. विजय कुमार तो एक दिन आकाशवाणी समाचार-पत्र के दफ़्तर से पुलिस द्वारा गिरफ़्तार कर लिए गए, किंतु श्री ओमप्रकाश अपने पठानकोट के नामधारी के समान ही अंत तक हाथ न आए।

देश भर में इस अन्यायपूर्ण पाबंदी के विरुद्ध हड़ताल हुई। दिल्ली तथा अन्य प्रादेशिक सरकारों ने सत्याग्रह को दबाने के लिए सभी उचित-अनुचित हथियारों का प्रयोग प्रारंभ किया। उत्तर प्रदेश में तो धारा 144 लगाकर सत्याग्रहियों को माला पहनाना तथा उन्हें अपने घर में ठहराना अथवा उनके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करना भी जुर्म करार दे दिया गया। दिल्ली में न केवल सत्याग्रहियों को पीटा जाता था अपितु रास्ता चलने वाली जनता पर लाठी प्रहार किया गया। जेल की यातनाएँ देकर सत्याग्रहियों के नैतिक बल को समाप्त करने का भी यत्न किया गया। एक ओर क़ानून के विरुद्ध शांतिपूर्ण तरीक़े से धारा 144 के उल्लंघन मात्र के लिए सश्रम कारावास और भारी जुरमाने की सज़ाएँ दी गईं तथा दूसरी ओर कार्यालय या निवास स्थानों पर रात्रि में छापा मार कर पकड़े हुए सत्याग्रहियों पर भी 144 धारा के उल्लंघन के मुक़दमे चलाए गए।

इन उपायों से सत्याग्रह तो दब नहीं सकता था और न दबा ही, किंतु आंदोलन के सूत्रधारों ने यह सोचकर कि यह लड़ाई क़ानून की लड़ाई है और इसलिए पुलिस या मजिस्ट्रेट के ग़ैर-क़ानूनी व्यवहार को सहन करना न्यायपूर्ण सत्याग्रह की भावना के विरुद्ध होगा, न्यायालयीन क्षेत्र में शासन के अन्यायों के विरुद्ध लड़ना भी तय किया। दिल्ली के श्री योगेंद्र पाल, श्री लालचंद वत्स, मथुरा के श्री मनमोहन, एटा के श्री रवींद्र कुमार, पन्ना के श्री संतकुमार, इंदौर के श्री उत्सवचंद जैन आदि वकीलों ने इस कार्य को सँभाला। इनके प्रयत्न से पुलिस तथा मजिस्ट्रेटों की ऐसी-ऐसी अनियमितताएँ प्रगट हुईं, जो हँसा-हँसा कर लोट-पोट कर देती थीं। उदाहरणार्थ, एक व्यक्ति पर जेल में नज़रबंद रहने की तारीख़ में यह अभियोग लगाया गया कि उसने सत्याग्रहियों के एक जत्थे का नेतृत्व किया। जब अदालत में यह बात उपस्थित हुई और अभियोगी ने बताया कि जिस तारीख़ को जुलूस निकालने का अभियोग है, उस तारीख़ को तो वह जेल ही में था, तो अदालत में हँसी के फुहारे छूट पड़े।

दिल्ली के केंद्रीय कार्यालय का कार्य तो विविध प्रकार से ऐसा बढ़ा था कि

उसका वर्णन ही एक स्वतंत्र पुस्तक लिखने लायक़ है। प्रतिदिन कार्यालय पर पुलिस छापे मारती थी, खोज-बीन करती थी। चाहे जब चाहे जितने व्यक्तियों को पकड़कर ले जाती थी किंतु फिर भी जेल के भीतर गए सत्याग्रहियों की व्यवस्था करना, उनके मुक़दमे तैयार करना, संपूर्ण देश में पत्र व्यवहार करना, हर दो मिनट पर खड़खड़ा उठने वाले टेलीफ़ोन की आवाज़ पहचानकर जवाब देना, प्रचार के साधन उपलब्ध करना, सत्याग्रह का समय, तिथि, जत्थे आदि की योजना बनाना आदि-आदि कितने ही प्रकार के कार्य थे। यह सब इतना बड़ा कार्य इतने सुसूत्र और व्यवस्थित ढंग से किस प्रकार हो सका, इसका पता तो जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयालजी ही बता सकते हैं। दिल्ली सरकार को तो इस प्रकार का भ्रम हो गया था कि यह सब व्यवस्था राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के कार्यकर्तागण को छोड़कर अन्य कोई नहीं कर सकता और इसीलिए दिल्ली के संघ के प्रमुख कार्यकर्ताओं को नज़रबंदी की ख़ुशी में गिरफ़्तार भी कर लिया था। रा. स्व. संघ दिल्ली शाखा के कार्यालय (झंडेवालान) पर तो 24 घंटे खुफ़िया पुलिस तैनात रहती थी। कौन कब स्नान करने आया, दिन में कितनी बार सब्ज़ी-भाजी लेने कोई वहाँ से निकला, कितने बालक निकट में आए और कितने सादी पोशाक में आदि-आदि सभी बातों की फ़ेहरिस्त बड़े चाव से बनाई जाती थी। हाँ, कार्यालय के भीतर आने का साहस कम ही होता था। लेकिन इसी उधेड़बुन में हुए उनके छापे अत्यंत मनोरंजक रहते थे। मा. माधवरावजी के जेल के भीतर बैठे होने पर भी उनका पता पूछना, वहाँ रहने वाले बीमारों को सत्याग्रही समझकर थाने ले जाना, इतना ही नहीं तो ज़ोन-टिकिट में दिल्ली घूमने लिए आए हुए मद्रास के विद्यार्थियों को भी गिरफ़्तार करना आदि कितने ही प्रकार से वे अपनी डायरी-भरू-कर्तव्यदक्षता का सर्वोच्च उदाहरण पेश किए बिना नहीं मानते थे। इतना सब होते हुए भी जनसंघ की आंदोलन संबंधी व्यवस्था में कोई कमी नहीं आई।

संध्या समय दिल्ली शहर में पुलिस की एक अज़ीब चहल-पहल दिखाई पड़ती थी। पहले-पहले तो सत्याग्रह पूर्व घोषित स्थानों पर ही होता था, किंतु जब सत्याग्रह की इस प्रामाणिक़ता का दुरुपयोग पुलिस के सिपाहियों ने उस स्थान के नागरिकों तक पर डंडे बरसाकर किया तो सत्याग्रह की पूर्व घोषणा का क्रम बदल दिया गया। अब प्रतिदिन विभिन्न स्थानों पर विभिन्न समय सत्याग्रही जत्थे प्रगट होने लगे। इसके कारण पुलिस को निरंतर घूमने-फिरने की व्यवस्था करनी पड़ी।

देश भर से जत्थों का आगमन

वैधानिकता के मोरचे पर यदि कांग्रेस सरकार ने मुँह की खाई तो इसी समय दिल्ली म्युनिसिपल उपचुनाव के मोरचे पर कांग्रेस ने शिकस्त खाई। जनसंघ के उम्मीदवार

श्री विश्वंभरदयाल ने कांग्रेसी उम्मीदवार श्री सूरज नारायण को श्रद्धानंद बाज़ार में बुरी तरह परास्त किया। दिल्ली में जनसंघ के हाथों कांग्रेस को यह छठवीं पराजय थी। इसके साथ ही देश भर से सत्याग्रहियों के जत्थे दिल्ली पहुँच रहे थे। दिल्ली की जनता ने गत 6 उपचुनावों में जनसंघ को विजयी बनाकर डंके की चोट पर यह घोषित कर दिया कि जनसंघ के साथ जनता का पूरा समर्थन है। कम्युनिस्टों को छोड़कर देश की सभी पार्टियाँ कश्मीर के मसले पर इस आंदोलन की सचाई का स्वागत कर रही थीं। कम्युनिस्टों की ही एक ऐसी जमात थी, जो इस समय भी शेख़ अब्दुल्ला का समर्थन कर रही थी। 25 मार्च को लोकसभा में कम्युनिस्ट नेता प्रो. हीरेन मुखर्जी ने 'जम्मू आंदोलन प्रतिक्रियावादी है तथा उसके समर्थक संप्रदायवादी हैं' कहकर कांग्रेसियों की तालियाँ प्राप्त की थीं। कम्युनिस्टों ने शेख़ के स्वतंत्र कश्मीर के सपनों का समर्थन करने के लिए कांग्रेसियों से गठजोड़ कर एक सांप्रदायिकता विरोधी संस्था बनाई थी और नया कश्मीर के नाम पर वे जी तोड़ प्रचार कर रहे थे। सुप्रीम कोर्ट द्वारा रिहा किए जाने पर डॉ. मुखर्जी व बै. चटर्जी पुन: लोकसभा में उपस्थित होने लगे। प्राय: प्रतिदिन ही नेहरूजी से डॉ. मुखर्जी की बात होती थी। अभी भी डॉ. मुखर्जी बार-बार सत्याग्रहियों पर होने वाले अत्याचारों का उल्लेख कर केवल यही प्रार्थना करते थे कि प्रधानमंत्री जम्मू के नेताओं की बातचीत सुनने के लिए राजी हो जाएँ, किंतु श्री नेहरूजी बार-बार उत्तेजना भरे शब्दों में 'नहीं, नहीं, नहीं' कहकर उलटे ही बरस पड़ते थे।

नेहरू सरकार की उस ज़िद्दी नीति का परिणाम दिल्ली की सड़कों पर सत्याग्रहियों के ऊपर होने वाले पुलिस के भीषण लाठीचार्ज में स्पष्ट प्रकट होने लगा। केवल मारपीट, गाली-गलौज ही नहीं तो सत्याग्रहियों के साथ असभ्य व्यवहार भी खुले आम होने लगे। उत्तर प्रदेश जनंसघ की उपाध्यक्ष माता हीराबाई अय्यर तथा उनके साथ अन्य महिला सत्याग्रहियों को रात्रि के भीषण अँधेरे में पुलिस दिल्ली से 13 मील दूर जंगली रास्ते पर छोड़ आई। सौभाग्य से इन माताओं के वीर पुत्र रा. स्व. संघ के स्वयंसेवकों के रूप में समीप के एक गाँव में वहाँ भी प्रकट हो गए और उन्हें सुरक्षित दिल्ली भिजवा दिया गया। किंतु यदि ईश्वर की यह कृपा न हुई होती तो इन माताओं को भारतमाता का गीत गाते-गाते ही सवेरा करना पड़ता। यह उदाहरण के रूप में एक घटना हुई, किंतु ऐसी कई घटनाएँ घटित हुईं। यहाँ तक कि स्त्रियों के लिए अपने जीवन में सबसे अधिक प्रिय सौभाग्य की आन चूड़ियाँ भी जेल अधिकारियों ने जेल में फोड़ डालीं और इस प्रकार उन्हें अपमानित किया।

किंतु जैसे-जैसे अत्याचारों का ज़ोर बढ़ा वैसे-वैसे सत्याग्रहियों के जत्थे भी बढ़ने लगे। दिल्ली के चौराहों पर 'कश्मीर हमारा है' की आवाज़ बुलंद होने लगी। दिल्ली विधानसभा में 19 मार्च को राजा जंग बहादुर, श्री दिलावर सिंह और श्यामाचरण

गुप्ताजी ने महिलाओं के साथ हुए उन अत्याचारों का उल्लेख किया तो मुख्यमंत्री श्री ब्रह्मप्रकाश ने सत्याग्रह को हत्याग्रह नाम से संबोधित कर दिल्ली की जनता को गहरी चोट पहुँचाई।

सरकारी दमनचक्र की गति बढ़ती गई। 20 मार्च को जनसंघ के महामंत्री (वर्तमान प्रधान) पं. मौलिचंद्र शर्माजी की अनुपस्थिति में पुलिस ने उनके घर पर छापा मारा। यह जानते हुए भी कि पं. मौलिचंद्रजी बंबई दौरे पर गए हैं, पुलिस ने उनकी संपत्ति पर ताला लगा दिया। उनकी पत्नी तथा बच्चों को कुछ पकाने-खाने के बरतनों के साथ एक कमरे में छोड़ दिया तथा पं. मौलिचंद्र शर्मा को फ़रार घोषित कर कहा गया कि यदि वे रविवार तक पुलिस के समक्ष उपस्थित न होंगे तो उनकी संपत्ति ज़ब्त कर ली जाएगी।

पं. मौलिंचद्र शर्मा किस प्रकार पुलिस के लिए दिल्ली से फ़रार हुए थे, यह उनके गिरफ़्तार होने से पूर्व दिनांक 26 मार्च को दिए गए वक्तव्य से स्पष्ट हो जाता है। आपने दिल्ली आने पर अपने वक्तव्य में कहा, "जिस परिस्थिति में मुझे फ़रार घोषित किया गया और मेरी तथा मेरे परिवार के अन्य सदस्यों की संपत्ति पर पुलिस द्वारा ताला लगा दिया गया, यह घटना कितने ही सार्वजनिक महत्त्व के प्रश्नों की ओर ध्यान आकर्षित करती है। मैं खुले तौर पर 7 मार्च को दिल्ली से रवाना हुआ था और कलकत्ता, बंबई और पूना गया था। वहाँ पर मैंने सार्वजनिक सभाओं में भाषण दिए।

"यह संभव नहीं कि दिल्ली के अधिकारियों को मेरी गतिविधि का पता न हो, मुझे किसी प्रकार का वारंट नहीं दिखाया ग या था। फ़ौजदारी क़ानून की व्यवस्था, जिसके अंतर्गत मेरे विरुद्ध कार्रवाई की गई थी, इस संबंध में लागू नहीं होती। जब मैं पहुँच के अंदर था और भारत के ऐसे भागों में था जहाँ एक मजिस्ट्रेट का आदेश मेरे पास पहुँच सकता था, मुझे फ़रार घोषित करने और मेरी संपत्ति कुर्क करने का कोई अर्थ नहीं होता। सिवाय इसके कि मुझे और मेरे परिवार को तंग किया जाए और मेरे सम्मान को धक्का पहुँचाया जाए।"

3 अप्रैल तक 1900 गिरफ़्तार व 16 मृत

डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने 3 अप्रैल को अपने एक वक्तव्य में घोषित किया कि "श्री नेहरू की संसद् में की गई यह घोषणा चौंका देने वाली है कि कश्मीर के भाग्य का निर्माण वहाँ की जनता करेगी। जम्मू और लद्दाख को भी उसी निर्णय के अनुसार भारत में विलय होना पड़ेगा या भारत से बाहर जाना पड़ेगा। इसके लिए उक्त प्रदेशों की जनता तैयार नहीं है और यह आंदोलन का एक मुख्य कारण है।"

आंदोलन की व्यापकता तथा जनसमर्थन का उल्लेख करते हुए आपने इसी वक्तव्य में कहा कि जम्मू में अंतिम अधिकृत सूचना के अनुसार अभी तक 1300 व्यक्ति जेल में

पं. प्रेमनाथ डोगरा जी
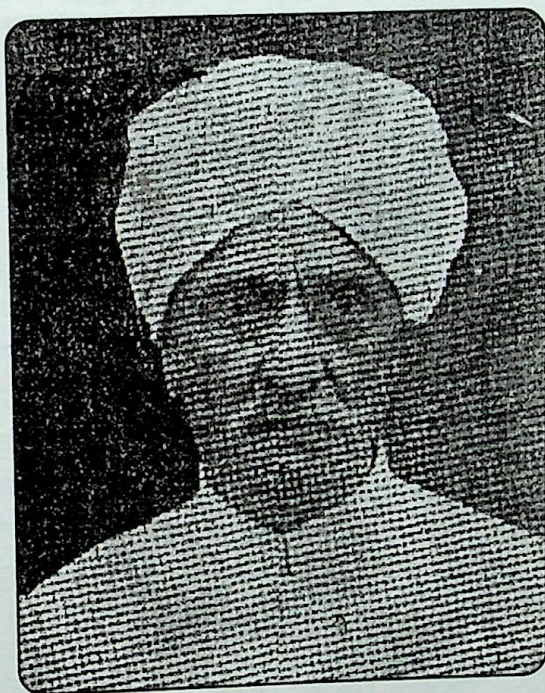
जिनके सफल नेतृत्व में जम्मू की जनता ने शेख़ की तानाशाही का मुक़ाबला किया।

प्रथम हुतात्मा!
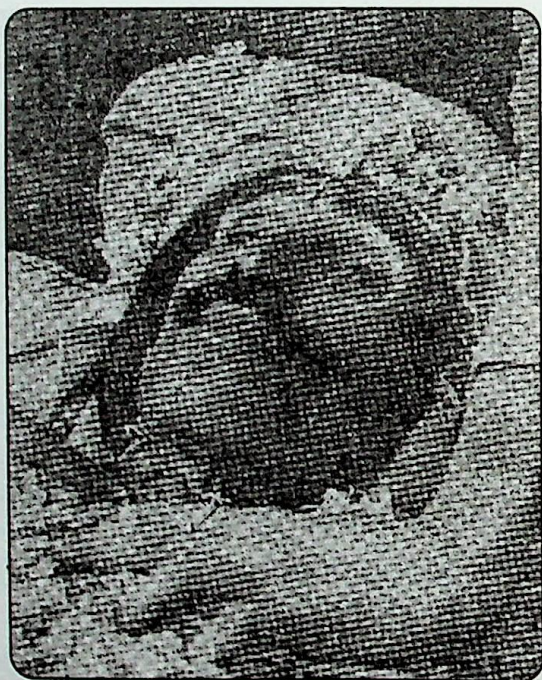
छंब की कचहरी पर चक्रांकित तिरंगा फहराते हुए वीर मेलाराम शहीद हो गए। 15 शहीद व्यक्तियों में आपकी प्रथम आहुति थी।

हैं और 16 सत्याग्रही मारे गए हैं। अनधिकृत सूत्रों से पता चलता कि मारे गए व्यक्तियों की संख्या इससे बहुत अधिक है। नेशनल मिलीशिया की चौंका देने वाली कार्रवाइयों का पता चला है। यह भी बताया जाता है कि जम्मू और कश्मीर के सैनिक दस्ते भारत भेजे जा रहे हैं और उनका स्थान शेख़ अब्दुल्ला की नेशनल मिलीशिया लेती जाएगी। इधर दिल्ली, पंजाब और अन्य स्थानों पर जो संघर्ष हमें अपना कर्तव्य समझकर छेड़ना पड़ा है, बराबर चल रहा है। हमारा सारा उद्‌देश्य कश्मीर समस्या पर जनता का ध्यान केंद्रित करना और उनकी सहानुभूति जाग्रत् करना है, जिससे हमारी सरकार अपनी ग़लती समझ सके और ज़रूरत से ज़्यादा देर होने के पहले ही उसे सुधार सके। 600 व्यक्तियों से अधिक अब तक बंदी हो चुके हैं। देश के विभिन्न भागों से जत्थे आ रहे हैं।''

श्री नेहरू मौन थे-एक उदाहरण

देश के सभी राष्ट्रभक्त विचारक इस बात की घोषणा कर रहे थे कि श्री नेहरू द्वारा शेख़ अब्दुल्ला को दी गई छूट घातक है। इतना ही नहीं, श्री नेहरू इनके समक्ष निरुत्तर भी हो जाते थे किंतु दुर्भाग्य यही रहा कि नेहरूजी ने समझते हुए भी न समझा, परखते हुए भी न परखा, मानते हुए भी न माना। 10 अप्रैल को राज्य परिषद् में डॉ. हृदयनाथ कुंजरू के साथ हुए उनके वाद-विवाद का केवल एक उदाहरण ही इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है—

श्री एस. महंती के एक प्रश्न पर प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने उत्तर दिया—''भारत सरकार का विचार है कि जम्मू और कश्मीर की जनता अपने भविष्य का निर्णय स्वयं करे और हम उसमें हस्तक्षेप न करें।''

इस पर पं. कुंजरू ने पूछा—क्या प्रधानमंत्री को मालूम है कि नेशनल कॉन्फ्रेंस ने जम्मू-कश्मीर की जनता को वही आधारभूत अधिकार सौंपने का निश्चय किया है, जिन्हें वह तैयार कर रही है।

श्री नेहरू—नहीं, मैं इस बात में कोई तर्क नहीं समझता।

पंडित कुंजरू—यदि यह बात ठीक है तो क्या स्पष्ट नहीं कि कश्मीर की जनता की आधारभूत अधिकारों की गारंटी वैसी प्राप्त नहीं होगी, जैसी कि अन्य राज्यों की जनता को प्राप्त है?

श्री नेहरू—यह बहुत संभव है।

प्रधानमंत्री श्री नेहरू इस प्रश्न पर कुछ न बोल सके। उनके तर्कों ने ही उनकी भूलों का परदाफ़ाश कर दिया था। दिल्ली के सभी वर्तमान पत्रों ने दूसरे दिन छापा कि ''पं. नेहरू निरुत्तर थे।''

17 अप्रैल को बै. त्रिवेदी व श्री देशपांडे गिरफ़्तार

डॉ. मुखर्जी और उनके साथियों पर 9 मार्च को जुलूस निकालने के आरोप में मुक़दमा चल रहा था। इस छोटे से मामले के निर्णय पर भी देरी की जा रही थी। पेशियों पर पेशियाँ आगे बढ़ाई जा रही थीं। स्वयं डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी अपना व्यक्तिगत मुचलका रद्द कराकर अपने उन साथियों के साथ, जिन्हें मुचलका नहीं दिया गया था, जेल के भीतर जाना चाहते थे। इसके लिए वे स्वयं कई बार अपना व्यक्तिगत मुचलका रद्द कराने गए भी थे, किंतु अधिकारियों ने उसे स्वीकार नहीं किया। इस प्रकार एक ओर उनका मुचलका भी रद्द नहीं किया जाता था, और दूसरी ओर उन्हें मुक़दमे का अंतिम निर्णय घोषित कर मुक्ति या जेलख़ाना भी नहीं दिया जाता था। सरकार डर रही थी कि यदि उन्हें जेल के सींकचों में रखा तो उत्तर से हिमालय की चट्टानों के समान और दक्षिण से हिंद महासागर की उत्ताल लहरों के समान उठने वाली भारतीय जनता इस प्रकार उमड़ेगी कि जेल के सींकचे स्वागतदारों की कमानियाँ बनकर अकड़े रह जाएँगे। इस स्थिति में जो अवकाश डॉ. मुखर्जी को मिला, उन्होंने उसे विभिन्न प्रांतों की जनता के बीच अपनी आवाज़ पहुँचाने में ख़र्च किया। वे मध्य भारत और भोपाल का दौरा करने निकल पड़े थे।

एक ओर डॉ. मुखर्जी "हमारा कश्मीर हमारा सबका है, भारत का हर लोग का है," इन अटपटे किंतु हृदयों में तूफ़ान उठाने वाले भाषणों से जनता को वस्तुस्थिति का परिचय दे रहे थे तो दूसरी ओर जनसंघ के कोषाध्यक्ष बैरिस्टर त्रिवेदी व महासभा के महामंत्री श्री देशपांडे ने कश्मीर जाने की घोषणा कर दी थी। वे पंजाब में दौरा करते हुए जालंधर तक पहुँच चुके थे। दूसरे ही दिन वे अमृतसर से होते हुए पठानकोट पहुँचने वाले थे और पठानकोट के मोरचे पर परमिट व्यवस्था की वैधानिकता को चुनौती देते हुए लोकसभा के ये दोनों सदस्य कश्मीर की सीमा में पैर रखने को उत्सुक थे कि 17 अप्रैल को जालंधर में उन्हें निवारक निरोध अधिनियम के अंतर्गत गिरफ़्तार कर लिया गया। घटनाओं की बारीक़ियों का उल्लेख करना इस छोटी सी पुस्तक में संभव नहीं। केवल उसका नमूना यहाँ अवश्य देखा जा सकता है कि लोकसभा के इन दोनों सदस्यों को पंजाब की होशियार सरकार की समझदार पुलिस ने उस समय पकड़ा जब वे एक पत्रकार सम्मेलन में उपस्थित थे। सरकार इतनी डरी हुई थी कि पत्रकारों के समक्ष ही उन्हें वारंट दिए गए।

20 अप्रैल–दमन विरोधी दिवस

सत्याग्रह का मोरचा यद्यपि दिल्ली और पठानकोट ही था, किंतु जनजागरण के लिए देश में सभी ओर सभाएँ होती थीं, जुलूस निकलते थे। सत्याग्रह के लिए विभिन्न

प्रांतों से आने वाले जत्थे पैदल गाँव-गाँव में घूम-घूमकर अलख जगा रहे थे। माताएँ प्यार-दुलार भरी रोली-अक्षत इन सत्याग्रहियों के मस्तक पर लगा देतीं और जनता मार्ग व्यय के लिए उनके गले में रुपयों (नोटों) के हार पहना देती। मातृभक्ति में मतवाले ये वीर 'भारत माता की जय' का घोष करते आगे चल पड़ते। इस स्थिति से घबराकर प्रांत में प्रतिबंध लगा दिए गए थे। दिल्ली में प्रतिदिन सायं-प्रात: जत्थे निकलते और आगे-पीछे निकल पड़ती डंडों और बेंतों से लैस पुलिस। सड़क पर खुलेआम सत्याग्रहियों पर लाठियाँ बरसाई जाती थीं। जत्थों के साथ-साथ रहने वाली जनता भी पुलिस के इन अत्याचारों का शिकार बनती। केवल पुलिस ही नहीं तो कांग्रेस की ओर से बुलाए गए सफ़ेद टोपीधारी गुंडे भी इस कुकृत्य में शरीक होते। अहिंसा तथा देशभक्ति की पुकार पर सत्याग्रही सब कुछ सह लेते। सत्याग्रहियों की इस सहिष्णुता का लाभ दमनचक्र ने अपनी बेशरमी में दिखाया। यहाँ तक कि महिलाओं के जत्थों के साथ भी अभद्र व्यवहार, गाली-गलौज, खींचतान होने लगी। इस असह स्थिति का मुक़ाबला करने के लिए दिनांक 20 अप्रैल को संपूर्ण देश में दमन विरोधी दिवस मनाया गया। संपूर्ण देश में एक दिन क़रीब 400 व्यक्ति गिरफ़्तार हुए।

इस 20 अप्रैल को दिल्ली में पुलिस किस तरह डंडे बरसाने में पागल थी, इसका अनुमान इस एक मज़ेदार घटना से लग सकेगा—

संपूर्ण दिल्ली शहर में पुलिस का जाल बिछा था और दिल्ली के हर कोने में इस दिन सत्याग्रही जत्थों का आयोजन था। सत्याग्रही कहीं भी, किसी भी क्षण किसी भी सड़क पर प्रकट हो रहे थे और पुलिस को इस समय क्या आज्ञा होगी, ज़रा इस घटना से अनुमान लगाइए।

हौज काजी और अजमेरी गेट के बीच वाली सड़क पर एक हलवाई की दुकान पर एकाएक नारे लगे 'भारत माता की जय', 'भारत माता की जय' आवाज़ सुनते ही पुलिस के आज्ञाकारी सिपाही उस ओर दौड़ पड़े। पुलिस को दौड़ते देख जनता भी एकत्र हो गई। जनता और 'भारत माता की जय' के नारों को पाकर पुलिस ने अपनी लाठियाँ बरसाना प्रारंभ कर दिया। बेचारा हलवाई चिल्लाता रहा, परंतु पुलिस उसकी बात सुनने को तैयार ही नहीं थी। लाठियाँ बरसाने की अपनी पहली कार्रवाई समाप्त कर पुलिस जब सत्याग्रहियों को ढूँढ़ने लगी तो उसे वहाँ कोई नज़र न आया। बाद में पता चला कि हलवाई के यहाँ लाउड स्पीकर पर रेडियो चालू था, जिसमें चलने वाले एक नाटक में 'भारत माता की जय' के नारे लगाए जा रहे थे। डंडे बरसाने की धुन में पुलिस यह न देख पाई कि वहाँ सत्याग्रह हो रहा है या रेडियो बज रहा है।

जिस प्रकार बाहर जनता में आतंक फैलाने के उद्देश्य से पुलिस की बर्बरता के रूप में तानाशाही का नाच हो रहा था, उसी प्रकार जेल के सींकचों के भीतर भी सत्य के

पुजारियों का साहस तोड़ डालने के कुटिल कुचक्र रचे जाते थे। सत्याग्रहियों को अवैधानिक ढंग से हथकड़ी-बेड़ी पहनाना, पुलिस की हिरासत में बिना टट्टी-पेशाब की इजाज़त के 20-20 घंटे बंद करना, कड़ी सज़ाएँ, जुरमाने आदि ठोकना, कांग्रेसी गुंडों के द्वारा पुलिस की हिरासत में सत्याग्रहियों को निर्ममता से पिटवाना आदि तो सर्वसाधारण दैनिक घटनाएँ थीं। इसके अतिरिक्त जेलों के भीतर भी अपमानजनक व्यवहार करना, पूरी खुराक नहीं देना, डॉक्टरी व्यवस्था न देना आदि हीन प्रकारों से उन्हें सताने का भरसक प्रयत्न किया जाता था।

गोल कैंप में सत्याग्रहियों को बुरी तरह पीटा गया। जब उसकी जाँच की माँग उठाई गई तो इंस्पेक्टर जनरल ने इस घटना को मानने से साफ़ इनकार कर दिया। घटना की भीषणता का अनुमान भारतीय जनसंघ के भूतपूर्व महामंत्री श्री महावीरजी के 1 मई के वक्तव्य से लगाया जा सकता है। आपने चुनौती देते हुए कहा, ''यदि पंजाब जेल के इंस्पेक्टर जनरल का यह कहना है कि गोल कैंप में सत्याग्रहियों पर लाठीचार्ज नहीं हुआ तो मैं चुनौती देकर कहता हूँ कि इस संबंध में न्यायालयीन जाँच क्यों नहीं की गई?''

श्री महावीरजी ने आगे कहा, ''जब गोल कैंप में सत्याग्रहियों को भेजा गया, तब उनके साथ बुरा व्यवहार होता रहा। उन्हें पीने के लिए पानी के घड़े भी न दिए गए। गरमी के दिनों में लोहे का एक घड़ा दिया गया। दवाइयों की सुविधाएँ भी न दी गईं। भोजन भी ख़राब व खुराक से कम दिया जाता था। सत्याग्रहियों को मनीऑर्डर व पार्सल प्राप्त करने की भी इजाज़त नहीं थी। इन परिस्थितियों में सत्याग्रहियों ने न्यायपूर्ण माँगें रखीं, जिनका जवाब पुलिस की लाठियों से दिया गया, जिसमें 14 व्यक्ति घायल हुए।''

इसी प्रकार के अत्याचार अन्य जेलों में भी हुए। गुरुदासपुर जेल में तो सत्याग्रहियों ने अनशन तक प्रारंभ कर दिया और दिल्ली जेल में वार्डरों द्वारा सत्याग्रहियों को बेल्ट से पीटने के सबूत बाहर टूटे हुए बेल्ट तक लाकर दिखाए गए।

उधर कश्मीर में शेख़ अब्दुल्ला ने भी अपना दमनचक्र पूरे जोश से चालू कर दिया था। नवभारत टाइम्स के जम्मू स्थित संवाददाता ने 3 मई को जो समाचार भेजे, वे दिल दहला देने वाले थे। संवाददाता का कहना था कि जेल में सत्याग्रही पर 5 आने प्रतिदिन ख़र्च किया जाता है, उनके कपड़े फट चुके हैं, किंतु न तो सरकार उन्हें कपड़े देती है और न उन्हें घर से ही कपड़े मँगाने की अनुमति है। समय-समय पर उन्हें नहर के पानी में ढकेला जाता है और अधमरा हो जाने पर बाहर निकाला जाता है। गत नवंबर मास से चल रहे जम्मू आंदोलन के सत्याग्रहियों को ठंड के दिनों में बर्फ़ पर लिटाया गया तथा उन्हें जब जम्मू जेल से श्रीनगर ले जाया जाता तो उनके पैर रस्सियों से बाँधे जाते। जेल से रिहा होने वालों को 200 और 300 मील का सफ़र पूरा कर घर पहुँचने के लिए एक रुपया विदाई दी जाती और भोजन में कंकड़, रेती इतनी अधिक रहती कि लोग पेचिश

की बीमारी के शिकार हो गए। इन सबके ऊपर प्रजा प्ररिषद् आंदोलन में जनता द्वारा दिए गए हार्दिक तथा क्रियाशील समर्थन को जब कश्मीर की सरकार लोगों की जानें लेकर, जेलों में ठूँसकर, सज़ाएँ देकर, पेंशनें समाप्त कर, जुलूसों पर लाठियाँ और अश्रुगैस बरसाकर भी दबा न पाई और इस दमन के बावजूद जम्मू की जनता ने अब्दुल्ला सरकार की चुनौती को स्वीकार किया तो अब्दुल्ला सरकार ने एक प्रेस विज्ञप्ति जारी कर जम्मू की जनता पर सामूहिक जुरमाने की धमकी की भी घोषणा कर दी।

डॉ. मुखर्जी का शहीदी निश्चय

इन अत्याचारों, बर्बरताओं और नेहरू-शेख़ झुँझलाहट ने सत्याग्रह के यज्ञ में आहुति का ही काम किया। यज्ञ की ज्वालाएँ भड़कीं, और भड़कीं। दीवाने जब सत्य-पथ पर चलते हैं तो उनका सहारा उन पर किए जाने वाले अत्याचार ही तो होते हैं। केवल एक उत्तर प्रदेश से ही 30 मार्च तक 189 जत्थे दिल्ली जाकर सत्याग्रह कर चुके थे। दिल्ली में एक दिन में नौ-नौ बार तक सत्याग्रही निकलने लगे थे। जन समर्थन का पता इन दिनों हुए महरौली व करनाल के चुनावों से ही लगता है कि वहाँ जनसंघ के उम्मीदवार ने कांग्रेसी को बुरी तरह परास्त किया। सरकारी अनियमितताओं का परदाफ़ाश करते हुए सुप्रीम कोर्ट तथा अन्य न्यायालयों द्वारा धड़ाधड़ निर्दोष व्यक्ति रिहा किए जा रहे थे। 8 मई को सुप्रीम कोर्ट ने श्री देशपांडे व बैरिस्टर त्रिवेदी को रिहा करते हुए सरकारी अनियमितता पर चोट करते हुए फ़ैसला दे दिया कि उनकी नज़रबंदी के कारण अस्पष्ट हैं व उन्हें अपना मामला पेश करने के वैधानिक अधिकार से वंचित रखा गया। इसी प्रकार प्रतिदिन दिल्ली की अदालतों से ही लोग मुक्त होते और सरकारी काली करतूतों एवं बेशरमी की एक काली लकीर और खिंच जाती।

इस प्रकार एक ओर जन-समर्थन के साथ संपूर्ण देश से सत्याग्रह की प्रचंड लहरें उठ रही थीं तो दूसरी ओर झुँझलाए तानाशाह लाठी-गोली की पुलिस के अत्याचारों के द्वारा उन्हें रोकने का असफल यत्न कर रहे थे। वैधानिकता व शांति उपायों को ताक पर रखकर सरकार अपनी ज़िद्द के नशे में डूब चुकी थी। एक ओर जब जम्मू आंदोलन की सार्थकता को पहचानकर उसका समर्थन कर रही थी तो साथ ही उसके मन में इस भारी चिंता का भी उदय हो चुका था कि इस ज़िद्दी सरकार को रास्ते पर लाना सर्वनाश के पहले किसी प्रकार संभव दिखाई नहीं देता। डॉ. मुखर्जी के सहयोग के हाथ को बार-बार झटककर आगे अपनी झूठी प्रतिष्ठा का भूत तैयार कर लिया था।

'ऐसी स्थिति में क्या होगा? क्या खाई बढ़ती ही जाएगी?' इस प्रकार के प्रश्न जनसाधारण के मन को बेचैन कर रहे थे। इस घबराई जनता, झूठी प्रतिष्ठा के भूत के वशीभूत सरकार, तानाशाहों की ज़िद्द से कुचली जा रही तरुणाई के रूप में भारत का

भविष्य, शेख़ के कुटिल कुचक्रों के परिणामस्वरूप प्रगट होने वाले विषफलों की कल्पना से सचिंतित-शंकित विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के नेतागण सबको विश्वास, आशा, निडरता, उत्साह देने वाली एक घोषणा दिनांक 7 मई को डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी ने की। आपने कहा, ''मैं कल जम्मू जाऊँगा।''

दिल्ली से अंतिम विदाई

किसे पता था कि 8 मई के प्रात:काल 6.30 बजे दिल्ली स्टेशन पर दिल्ली की जनता द्वारा दी गई यह विदाई कभी स्वागत में न बदलेगी। हाँ, जनता का नेता, कुटिल कुचक्री धूर्त शेख़ सरीखे दुश्मन से मिलने जाए, यह विचार अटपटा सा ज़रूर लग रहा था। इसीलिए डॉ. मुखर्जी के कितने ही अनुयायियों ने उनसे प्रार्थना की थी कि वे स्वयं न जाकर उस मोरचे पर देश की तरुणाई का आह्वान करें, मोरचे का मुँह जम्मू की ओर घुमा दिया जाए, किंतु उस समय जो भी वहाँ उपस्थित थे, उन्होंने डॉ. मुखर्जी के मुँह पर एक स्मित हास्य की रेखा देखी। उनका निश्चय अडिग था। उनके शब्द थे—''मेरा जाना ही आवश्यक है।'' अपने आसपास बैठे कार्यकर्ताओं के बीच आत्मविश्वास भरे शब्दों में उन्होंने कहा, ''हम देखेगा, शेख़ कैसा नहीं मानता।'' माता के वीर पुत्र का यह बलिदानी निश्चय था। वीर पुरुष अपने उद्देश्य की सफलता से जीवित रहते हैं, नश्वर शरीर का मोह करके नहीं, ऐसी ध्वनि उनकी उस हँसी में थी। उन्होंने कार्यकर्ताओं की पीठ थपथपाई और कहा, ''घबराने का बात नहीं है, जम्मू जावेगा।''

यात्रा प्रारंभ करने के पहले आपने अपनी यात्रा के उद्देश्य के संबंध में एक वक्तव्य भी दिया। दिल्ली की जनता तथा पत्रकारों के लिए उनका यह अंतिम वक्तव्य ही सिद्ध हुआ। आपने वक्तव्य में कहा, ''मैं पंजाब के दौरे के लिए जा रहा हूँ। यद्यपि जिन स्थानों पर 144 धारा लगी है, वहाँ जनसभाओं में भाषण देना संभव नहीं हो सकेगा किंतु फिर भी मैं वहाँ कार्यकर्ताओं और जनता के प्रमुख व्यक्तियों से मिलूँगा और वहाँ की स्थिति का अध्ययन करूँगा। दो दिन तक पंजाब में ठहरने के बाद मैं जम्मू के लिए प्रस्थान करना चाहूँगा। मुझे जम्मू से ऐसे समाचार मिल रहे हैं कि वहाँ दिल को दहला देने वाले भीषण दमनचक्र जारी हैं। गत तीन माह में हमने कई बार प्रयत्न किया कि निष्पक्ष जाँच के लिए लोग भेजे जाएँ, किंतु उन्हें वहाँ जाने के लिए अनुमति नहीं दी गई। श्री नेहरू बार-बार दोहराते हैं कि जम्मू और कश्मीर शत-प्रतिशत भारत में मिला लिया गया है। फिर भी यह आश्चर्य की बात है कि बिना परमिट के कोई उस राज्य में प्रवेश नहीं कर सकता। यह परमिट उन कम्युनिस्टों को दिया जाता है, जो वहाँ हमेशा से खेल खेल रहे हैं। किंतु जो भारत की राष्ट्रीयता और एकता के लिए प्रयत्नशील हैं, उन्हें वहाँ जाने की अनुमति नहीं मिलती। मैं नहीं समझता कि भारत सरकार को भारत के

किसी भी हिस्से में, जिसमें श्री नेहरू के अनुसार जम्मू व कश्मीर भी शामिल है, किसी के प्रवेश पर प्रतिबंध लगाने का अधिकार है। हाँ, किसी प्रदेश में प्रवेश करने के बाद यदि कोई वहाँ के किन्हीं क़ानून की अवहेलना करता है तो उसे उसके परिणामों का सामना करना होगा।

''मेरा जम्मू जाने का उद्देश्य यही है कि मैं वहाँ की स्थिति का सच्चा हाल जान सकूँ। मैं वहाँ प्रजा परिषद् के बाहर के लोगों से भी मिलूँगा। जम्मू की जनता की इच्छाओं को समझने का प्रयत्न करूँगा और यदि संभव हो सका तो आंदोलन को शांतिपूर्ण और आदरयुक्त ढंग से बंद करवाने का भी यत्न करूँगा, जो कि न केवल कश्मीर बल्कि संपूर्ण भारत के लिए न्यायपूर्ण व हित का होगा।

''यदि मुझे जम्मू जाने दिया गया तो मैं अपनी ओर से शेख़ अब्दुल्ला से व्यक्तिगत बातचीत करने का यत्न करूँगा।''

5

श्रीनगर और दिल्ली की मिली-जुली साजिश

गाड़ी ने प्रस्थान-धक्का लिया। ''घबराने की बात नहीं हैं, जीत हमारा होगा'' कहते हुए डॉ. मुखर्जी के नमस्कार भरे हाथ उठे—स्टेशन 'शेख़ की शेखी नहीं चलेगी' 'भारत माता की जय' 'डॉ. मुखर्जी की जय' के नारों से गूँज उठा। मुसकराते हुए नेता को दिल्ली प्रदेश जनसंघ के उपप्रधान श्री वीर प्रद्युम्न जोशी ने ''डॉ. साहब, आपकी आज्ञा पर हम भी आते हैं'' कहते हुए विदाई दी। किसे पता था कि यह विदाई जीत तो लाएगी किंतु सेनापति के शव के साथ, देश की अखंडता की रक्षा तो होगी किंतु इस महान् आहुति के बाद। दिल्ली प्रदेश जनसंघ के प्रधान वैद्य गुरुदत्त, निजी सचिव के रूप में श्री टेकचंद शर्मा, पंजाब जनसंघ के प्रधान डॉ. बर्मन, श्री अटलबिहारी वाजपेयी तथा दिल्ली के कुछ पत्रकार डॉ. मुखर्जी के साथ थे। विराम-स्थल से गाड़ी बाहर निकल जाने तक जनता नारे लगाती रही।

इसके बाद तो गाड़ी जिस स्टेशन पर ठहरती, हज़ारों की संख्या में जनता की भीड़ जय-जयकार कर उठती। बड़े-बड़े स्टेशन तो क्या शाहदरा, दौराला, सकोती, खतौली, मंसूरपुर आदि छोटे-छोटे स्टेशनों में भी कोई स्टेशन ऐसा नहीं था, जहाँ जनता की अपार भीड़ डॉ. मुखर्जी के दर्शन करने न आई हो। मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, गाजियाबाद, मेरठ सभी स्थानों पर डॉ. मुखर्जी का हाथ उठता, जनता शांत हो जाती, जैसे ज़ादू हो गया हो। लाउडस्पीकर नहीं, इसलिए सुनाई पड़ेगा नहीं, यह निश्चित था, फिर भी उस अपार भीड़ का प्रत्येक व्यक्ति अपनी आँखों के द्वारा डॉ. मुखर्जी का संदेश ग्रहण करने को आतुर हो जाता। डॉ. मुखर्जी कहते, ''हम जम्मू जा रहा है। हालत ख़राब है, खुद जाकर देखेगा। शेख़ अब्दुल्ला को मनाएगा।'' और स्टेशन 'हमारा नारा-जम्मू चलो' की गगनभेदी सहस्रावधि-कंठ-ध्वनि से गूँज उठता। मेरठ में तो विराम स्थल पर उपस्थित दस हज़ार जनता जब वापस लौटी तो रास्ते में नारे लगाते हुए आई और इस कारण वहाँ

144 धारा होते हुए भी एक विशाल जुलूस ही निकल गया।

रवाना होने के दिन ही वे अंबाला पहुँचे और उसी दिन आपने अपने जम्मू जाने की सूचना प्रधानमंत्री श्री नेहरू तथा शेख़ अब्दुल्ला को दी। प्रधानमंत्री को दिए गए तार में डॉ. मुखर्जी ने लिखा था, ''आपकी जानकारी के लिए मैं आपको बताना चाहता हूँ कि मैंने जानबूझकर परमिट प्राप्त करने के लिए आवेदन नहीं किया। चूँकि आपकी सरकार ने योजनापूर्वक ढंग से कई लोगों को, जो कि आपको कश्मीर नीति से मतभिन्नता रखते हैं, परमिट देने से इनकार कर दिया है।'' आपने आगे लिखा था, ''नैतिक, वैधानिक तथा राजनीतिक तीनों दृष्टियों से मेरा जम्मू जाना न्यायपूर्ण है।''

शेख़ अब्दुल्ला के संबंध में एक बार पुनः श्री नेहरूजी को स्पष्ट कल्पना देते हुए उस छोटे से तार में आपने यह भी लिख दिया था कि ''शेख़ अब्दुल्ला द्वारा हाल ही में ऐसा कहना कि भारत का संविधान हिंदू बहुसंख्यकों के द्वारा बनाया गया है और इसलिए वह कश्मीर पर लागू नहीं हो सकता, इस बात का द्योतक है कि शेख़ अब्दुल्ला के दिमाग़ में कौन सी बातें काम कर रही हैं। शेख़ अब्दुल्ला ठीक उसी प्रकार की बातें कर रहे हैं, जैसे कि मि. जिन्ना किया करते थे और इस प्रकार वे अपने आपको मि. जिन्ना का छोटा भाई साबित कर रहे हैं।'' अपनी यात्रा का उद्देश्य बताते हुए भी आपने श्री नेहरूजी को सूचित कर दिया था कि वे वहाँ आदरयुक्त ढंग से समझौते का रास्ता बनाने का यत्न करेंगे, इसके लिए संभव हो सका तो वे शेख़ अब्दुल्ला से भेंट भी करेंगे।

शेख़ अब्दुल्ला को दिए तार में आपने लिखा था कि आगामी 11 मई को वे जम्मू जाना चाहेंगे। आपने लिखा था कि ''मैं ऐसी स्थिति का निर्माण करने के लिए उत्सुक हूँ, जिसके द्वारा परस्पर सद्भावनाएँ और शांतिपूर्ण समझौते पर पहुँचा जा सके। जम्मू की स्थिति का अध्ययन करने के बाद मैं आपसे मिलने की संभावना का भी स्वागत करता हूँ। कृपया अपना जवाब जालंधर में 11 मई की दोपहर तक भेजें, जिसके बाद अमृतसर से रवाना हो जाऊँगा।''

पंजाब के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों पर जनसंघ व पत्रकार सभाओं में अपनी यात्रा का स्पष्टीकरण करते हुए डॉ. मुखर्जी 11 मई को अमृतसर से पठानकोट के लिए रवाना हो गए। बीच में उन्हें शेख़ अब्दुल्ला का एक तार मिला, जिसमें न आने के लिए कहा गया था।

पठानकोट में जनता ने अपार संख्या में डॉ. मुखर्जी का स्वागत किया। नगर का नगर उनके दर्शन के लिए उमड़ पड़ा था। डॉ. मुखर्जी पठानकोट पहुँच चुके हैं, यह समाचार पठानकोट से लेकर जम्मू तक बिजली के वेग की तरह फैल गया था। स्थान-स्थान पर स्वागत की तैयारियाँ की जा रही थीं। जम्मू के नागरिकों में छाया उत्साह और चैतन्य तो अवर्णनीय था। जैसे अत्याचारों से जूझते-जूझते संतप्त हुए भक्त को भगवान्

के आकस्मिक प्रगट होने की सूचना मिली हो, वैसा आनंद जम्मू में छा गया था।

नेहरू-अब्दुल्ला की साजिश में गिरफ़्तार

डॉ. मुखर्जी जब दिल्ली से रवाना हुए थे, सर्वसाधारण लोगों को यही आशंका थी कि उन्हें पंजाब के दौरे में ही सरकार गिरफ़्तार कर लेगी। जब वे अमृतसर से पठानकोट के लिए भी रवाना हो गए और सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया तो तरह-तरह के प्रश्न उठ खड़े हुए। क्या सरकार डॉ. मुखर्जी को जम्मू जाने देगी? क्या परमिट सिस्टम टूट जाएगा? क्या पठानकोट में उन्हें गिरफ़्तार किया जाएगा? आदि प्रश्न जनता के कौतूहल को जगाने लगे।

डॉ. मुखर्जी के जम्मू प्रस्थान के इस क़दम से शेख़ अब्दुल्ला की दुर्नीति और श्री नेहरू का उसके समक्ष किया गया आत्मसमर्पण प्रकट हो गया था। परमिट व्यवस्था वैधानिकता की कसौटी पर उतर आई थी। डॉ. मुखर्जी ने स्पष्ट शब्दों में चुनौती देते हुए घोषणा की थी— ''मैं उस भारतीय संसद् का सदस्य हूँ, जिसमें कश्मीर सम्मिलित है और संसद् के प्रत्येक सदस्य का यह कर्तव्य है कि देश के किसी भी भाग में किसी भी स्थिति का अध्ययन करने वह स्वयं जाए।'' बैरिस्टर त्रिवेदी और श्री देशपांडे को सर्वोच्च न्यायालय ने निर्दोष घोषित कर यह सूचित कर दिया था कि यदि डॉ. मुखर्जी को भारत सरकार ने गिरफ़्तार किया तो सुप्रीम कोर्ट उन्हें भी रिहा कर देगा। ऐसी स्थिति में डॉ. मुखर्जी को गिरफ़्तार करने का एक नया जाल भारत तथा कश्मीर सरकार ने मिलकर तैयार किया। एक ऐसा षड्यंत्र तैयार किया, जिससे डॉ. मुखर्जी को सर्वोच्च न्यायालय की सीमा के बाहर गिरफ़्तार किया गया, और फिर जहाँ से वे जीवित वापस भी न लौट सके।

भारत सरकार ने अनुमति दी और कश्मीर सरकार ने गिरफ़्तार कर लिया

पठानकोट में डॉ. मुखर्जी के निवास स्थान पर गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर श्री वशिष्ठ उनसे मिले आए। श्री वशिष्ठ ने डॉ. मुखर्जी से कहा, ''आप अपनी पार्टी के साथ बिना परमिट जम्मू जा सकते हैं। भारत सरकार मार्ग में कोई बाधा न डालेगी।'' श्री वशिष्ठ ने यह भी कहा, ''आप ठीक 4.30 बजे माधोपुरा चेक पोस्ट पर पहुँच जाएँ, मैं वहाँ मौजूद रहूँगा।'' श्री वशिष्ठ चूड़ीदार पाजामा, सफ़ेद शेरवानी तथा साफा पहने हुए थे। उनकी बातचीत से कहीं भी यह ध्वनि नहीं निकलती थी कि जम्मू में घुसने के बाद उन्हें गिरफ़्तार कर लिया जाएगा। इतना ही नहीं तो डिप्टी कमिश्नर महोदय ने डॉ. मुखर्जी को यह भी बताया कि कश्मीर के उप मुख्यमंत्री श्री बख्शी ग़ुलाम मोहम्मद उनसे जम्मू में

भेंट करेंगे। यह बातचीत गुप्त नहीं थी और डिप्टी कमिश्नर भलीभाँति जानते थे कि डॉ. मुखर्जी के साथ पठानकोट तक आए पत्रकार (जिनमें प्रेस ट्रस्ट, आकाशवाणी तथा उर्दू प्रताप के संवाददाता विशेष उल्लेखनीय हैं) इसे शीघ्र ही सारे देश में फैला देंगे। और हुआ भी यही। डिप्टी कमिश्नर के जाते ही संवाददाता इस समाचार को लेकर तारघर की ओर दौड़ पड़े। दूसरे दिन 12 मई को दिल्ली के समाचार-पत्रों में ''भारत सरकार ने जम्मू जाने की अनुमति दे दी थी।'' और ''डॉ. मुखर्जी जम्मू की सीमा में गिरफ़्तार,'' ये दोनों परस्पर विरोधी समाचार एक साथ ही प्रकाशित हुए भी।

गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर के द्वारा भारत सरकार ने डॉ. मुखर्जी को जम्मू जाने की अनुमति की सूचना दे दी है, यह समाचार 11 मई के सायंकाल ही राजधानी में पहुँच चुका था। दिल्ली के एकमात्र हिंदी सांध्य दैनिक आकाशवाणी ने ''सरकार ने घुटने टेक दिए, डॉ. मुखर्जी का बिना परमिट जम्मू में प्रवेश'' के शीर्षकों में उसी दिन यह समाचार छाप भी दिया था। सारी राजधानी जिस समय यह समाचार पढ़कर हर्ष व्यक्त कर रही थी, उसके थोड़ी देर बाद यह समाचार प्राप्त हुआ कि कश्मीर सरकार ने डॉ. मुखर्जी को गिरफ़्तार कर लिया।

भारत सरकार ने यदि अनुमति दे दी थी तो कश्मीर सरकार ने उन्हें गिरफ़्तार क्यों किया? इस प्रकार के प्रश्नों से राजधानी में आश्चर्य व्यक्त किया जा रहा था। दूसरे दिन लोकसभा बैरिस्टर चटर्जी ने डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी पर इस संबंध में एक काम रोको प्रस्ताव भी रखा। पहले तो उपाध्यक्ष महोदय ने उन्हें इस प्रस्ताव को रखने की अनुमति नहीं दी, किंतु जब बैरिस्टर चटर्जी ने अपने विशेषाधिकार का औचित्य बताने के लिए यह कहा कि डॉ. मुखर्जी के जम्मू जाने पर भारत सरकार को भी कोई आपत्ति नहीं थी और यह बात गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर उन्हें सूचित कर उन्हें सीमा तक पहुँचाने भी गए, तब फिर जम्मू में उनकी गिरफ़्तारी कहाँ तक उचित है? तो स्वतंत्र गणराज्य भारत के प्रधानामात्य, सत्य के पुजारी, महात्मा गांधी के सबसे बड़े अनुयायी, लोक सभा के नेता, कांग्रेस के प्रधान पं. जवाहर लाल नेहरू ने लोकसभा में उपस्थित सदस्यों के सम्मुख झूठ बोला और कहा, ''इस संबंध में प्रकाशित समाचार ग़लत है।''

श्री नेहरू के इस प्रकार के झूठ बोलने पर लोकसभा के सदस्य दंग रह गए। आज भी यह कहना कठिन है कि नेहरू ने उस दिन झूठ क्यों बोला? किंतु यह सत्य है कि उन्होंने एक ऐसा भयंकर झूठ बोला, जिसका संबंध डॉ. मुखर्जी के जीवन से की गई खिलवाड़ के भीषण षड्यंत्र से संबंधित सिद्ध होता है। आज यदि जनता यह कहे कि श्री नेहरू ने डॉ. मुखर्जी को अन्यायपूर्वक अत्याचारी शेख़ के ख़ूनी पंजे में ढकेल देने के लिए ही यह झूठ बोला था तो नेहरू उसे अमान्य करने में असमर्थ हैं और सदैव रहेंगे। देश की आने वाली संतान उनके इस कृत्य पर उन्हें धिक्कारेगी और कहेगी कि भारतीय

आकांक्षाओं के रूप में भारतीय क्षितिज पर प्रकाश रश्मि फैलाते हुए धीरे-धीरे उग रहे बालरवि के तेज से घबराकर अपनी राजनीतिक कुरसी के छिन जाने के भय से, लोकसभा और बाहर अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वी के रूप में सफल चुनौती देने वाली डॉ. मुखर्जी की बढ़ती जनप्रियता का अनुभव कर श्री नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला के बीच कोई गुप्त मंत्रणा हुई थी और उनकी गिरफ़्तारी पर बोला गया प्रधानमंत्री का झूठ उसी भीषण षड्यंत्र की एक पूर्व निश्चित कड़ी थी तो नेहरू उसका जवाब न दे सकेंगे। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि डॉ. मुखर्जी के क़ीमती जीवन से खिलवाड़ करने में श्री नेहरू और शेख़ अब्दुल्ला दोनों ने मिलकर राष्ट्र को धोखा दिया या केवल शेख़ अब्दुल्ला ने श्री नेहरू को धोखा दिया, किंतु यह सूर्य की भाँति सत्य है कि लोकसभा में 13 मई को प्रधानमंत्री श्री नेहरू झूठ बोले।

इस भीषण षड्यंत्र की कल्पना डॉ. मुखर्जी को भी गिरफ़्तार होते समय हो गई थी और इसलिए जब अत्यंत नाटकीय ढंग से उन्हें गिरफ़्तार किया गया, तब उन्होंने कहा था कि "यह मेरे विरुद्ध षड्यंत्र है।"

जिस समय डॉ. मुखर्जी अपने साथियों के साथ खुली जीप में 11 मई को पठानकोट से जम्मू के लिए रवाना हुए तो उन्हें विदा देने के लिए सारा शहर सड़क के दोनों ओर हाथ बाँधे खड़ा था। जनता के मुँह पर क्रोध के बजाय जीत की मुसकान थी और होंठों पर 'परमिट सिस्टम टूट गई' के नारे थे। ठीक पौने पाँच बजे डॉ. मुखर्जी माधोपुर पहुँचे। यहाँ डिप्टी कमिश्नर तथा उच्च पुलिस और मिलिटरी अफ़सरों ने उनका स्वागत किया, सैनिकों ने सलामी दी और डॉ. मुखर्जी अपने साथियों सहित जम्मू की सीमा में प्रवेश कर गए।

केवल दो मील की दूरी पर नेशनल मिलीशिया डॉ. मुखर्जी का रास्ता रोके खड़ी थी। कठुआ के पुलिस सुपरिंटेंडेंट अब्दुल अजीज ने डॉ. मुखर्जी को एक लिफ़ाफ़ा दिया। उसमें डॉ. मुखर्जी को जम्मू में न घुसने का आदेश दिया था। डॉ. मुखर्जी ने आदेश को पढ़कर कहा, "यह बड़ी अज़ीब बात है। अभी-अभी गुरुदासपुर के डिप्टी कमिश्नर ने मुझसे कहा था कि आप बिना परमिट जम्मू जा सकते हैं, वहाँ बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद आपसे मिलेंगे, और यहाँ मुझे जम्मू में न घुसने का आदेश दिया जाता है, मैं इसे नहीं मानता।" इतना कहकर डॉ. मुखर्जी आगे बड़े ही थे कि मोटर साइकिल पर एक पुलिस अफ़सर आया और उसने अब्दुल अजीज को एक और लिफ़ाफ़ा दिया। अब्दुल अजीज ने उसे बिना खोले ही डॉ. मुखर्जी को दे दिया। उसमें डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी की आज्ञा थी। ऑर्डर पढ़कर मुखर्जी बोले, "वह ऑर्डर पहले से ही तैयार रखा गया मालूम होता है। ख़ैर, मैं गिरफ़्तारी के लिए तैयार हूँ।" डॉ. मुखर्जी के गिरफ़्तार होने के बाद वैद्य गुरुदत्त और श्री टेकचंद भी गिरफ़्तार किए गए। चलने से पूर्व डॉ. मुखर्जी ने

श्री अटलबिहारी वाजपेयी के हाथ देश की जनता को संदेश भेजा कि "मैं जम्मू-कश्मीर में घुसने में सफल हो गया हूँ, यद्यपि एक क़ैदी की हैसियत से।"

डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी से संपूर्ण देश में क्रोध और क्षोभ की लहर दौड़ गई। जम्मू प्रांत की अवस्था—? जिस महान् नेता के आगमन का समाचार सुनकर जम्मू का गाँव-गाँव फूल उठा था, आँखों में उत्सुकता भरे सुहावने दृश्य पल रहे थे। देवदूत की भाँति जिसके आगमन की प्रतीक्षा में लोग तन-बदन की सुधि भूल चुके थे। वह आया किंतु, आ न सका, किसी मायावी ने उसे बीच रास्ते में उठा लिया, ऐसी अवस्था का वर्णन, उन दु:ख, क्रोध, क्षोभ व अन्याय से लोहा लेने को उतावले गरम-गरम आँसुओं का वर्णन, लिखने या सुनने की वस्तु न होकर केवल अनुभव करने की ही है। केवल इतने से ही अनुमान लगाया जा सकता है कि जम्मू के गाँव-गाँव में प्रचंड जुलूस निकले, जिसका नेतृत्व 144 धारा लागू होते हुए भी उन कार्यकर्ताओं ने किया जिन्हें कि पुलिस पकड़ना चाहती थी, और जिसके नाम के वारंट निकल चुके थे। केवल जुलूस ही नहीं तो स्थान-स्थान पर सभाएँ भी हुईं। इन आम सभाओं में इन कार्यकर्ताओं के भाषण भी हुए किंतु पुलिस उन्हें गिरफ़्तार करने का साहस न कर सकी।

कश्मीर से आसाम तक और दक्षिण में रामेश्वरम् तक विरोध सभाएँ हुईं। और दिल्ली? दिल्ली तो पागल हो उठी थी। जनता की सरकार जनता के इस प्रबल रोष को खुले मैदान में देखने के लिए तैयार नहीं थी। इसलिए दीवानहॉल में एक आम सभा आयोजित की गई। बैरिस्टर निर्मल चंद्र चटर्जी की अध्यक्षता में उपस्थित जनता ने डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी का तीव्र विरोध किया। सभा समाप्त होने पर दिल्ली जनसंघ के उपप्रधान श्री वीर प्रद्युम्न जोशी के नेतृत्व में जनता प्रधानमंत्री श्री नेहरू से भेंट करने निकल पड़ी। श्री जोशी ने, जिन्हें बाहर पुलिस कई घंटे से ढूँढ़ रही थी, जनता को ललकारकर कहा, "हम अभी प्रधानमंत्री श्री नेहरू की कोठी पर चलेंगे और उन्हें सूचित करेंगे कि डॉ. मुखर्जी की अन्यायपूर्ण गिरफ़्तारी का शीघ्र अंत हो।" 80 वर्षीय वृद्धा डॉ. सत्यवती और श्रीमती चंद्रकांता देवी के नेतृत्व में महिलाओं का भी एक जत्था श्री नेहरू से मिलने को चल पड़ा।

किंतु यह क्या? शांतिपूर्वक ढंग से जनता तथा नेताओं के भवन से बाहर आते ही सीटियाँ बज उठीं। पुलिस के सिपाही लोगों को धक्के दे देकर नालियों में धकेलने लगे। निहत्थी जनता ने देशप्रेम की मस्ती से मस्त सीनों पर लाठियाँ पड़ते ही महामंत्र का घोष किया 'भारत माता की जय' इस महान् जयघोष की चुनौती का उत्तर पुलिस ने बेतहाशा लाठियाँ बरसाना प्रारंभ कर दिया। आहत व्यक्तियों को सड़क पर से उठाने वालों की कमर पर भी लाठियाँ बरसती थीं। इस लाठी प्रहार के बीच भी शांत जनता अपने स्थान से हटने के लिए तैयार नहीं थी। सबकी आँखें श्री जोशी की ओर लगी थीं और श्री

जोशी सर से कफ़न लपेट चिल्ला रहे थे—'बढ़े चलो, रुको मत।' आख़िर पुलिस ने श्री जोशी को ही गिरफ़्तार करने की ठान ली। माताओं व बहनों ने एक गोला बनाकर श्री जोशी को बीच में कर लिया और वे बढ़ चलीं। किंतु पुलिस की बाढ़ आई हुई थी। महिला पुलिस भी बुलाई गई थी। एसिड भरी बोतलें, लोहे की छड़ें, बेंत सबका प्रयोग हो रहा था। पुलिस ने आज अपनी सारी शक्ति दाँव पर लगा दी थी। निहत्थी जनता ने अपने खुले सीने और नंगे सिरों से लाठी-बंदूक व बेंतधारी पुलिस से डटकर मोरचा लिया। कुल 45 मिनट तक यह कांड चलता रहा। महिला पुलिस की सहायता से पुलिस अधिकारियों ने महिला सत्याग्रहियों को दीवाल के साथ दबोचने के पश्चात् श्री जोशी को पकड़ने में सफलता पाई थी। पुलिस उन्हें उठा-उठाकर पुलिस की लारी में ले जाती और श्री जोशी फिर बाहर कूद पड़ते थे। बेहोश होने तक पुलिस उन्हें गाड़ी में बैठा न सकी। पुलिस के इस लाठीचार्ज में 40 व्यक्ति घायल और 97 गिरफ़्तार हुए।

अब तो मोरचा जम्मू की ओर

अब तो मोरचे का मुँह जम्मू की ओर घुमा दिया गया। नित्यप्रति जत्थे जम्मू जाने के लिए दिल्ली से प्रस्थान करते थे। दिल्ली में जनसंघ व महासभा के कार्यालयों पर छापे मारने की घटनाएँ प्रतिदिन होने लगीं। सरकार चाहती थी कि जम्मू जाने वालों को दिल्ली में ही गिरफ़्तार किया जाए। पुलिस के छापों में कई व्यक्ति गिरफ़्तार भी हुए, किंतु फिर भी सत्याग्रहियों के जत्थे पठानकोट से सीमा पार कर जम्मू में प्रवेश करने लगे।

उधर जम्मू प्रांत में हड़ताल, जुलूस व सत्याग्रह का ताँता सा लग गया। शेख़ अब्दुल्ला के दमनचक्र ने भी अपना आख़िरी ज़ोर लगाना आरंभ कर दिया था। अखनूर के गोलीकांड में 4 व्यक्ति मारे गए तथा कई घायल हुए। अश्रुगैस तथा लाठी तो दैनिक घटनाएँ ही थीं। इस समय के बढ़े हुए अत्याचारों का अनुमान केवल इस घटना से लगाया जा सकता है। कठुआ से 4 मील दूर एक गाँव में श्री अचल सिंह और अमरनाथ नामक दो सत्याग्रहियों को ढूँढ़ने के लिए नेशनल मिलीशिया के सिपाहियों ने छापा मारा। बहुत खोजबीन के बाद भी जब ये दोनों भूमिगत कार्यकर्ता हाथ न आए तो पुलिस ने आज्ञा जारी की कि गाँव के सभी निवासियों को बाल-बच्चों सहित घरों के बाहर खड़ा कर दिया जाए। ये दिन भर उस समय तक बाहर ही खड़े रहे, जब तक कि पुलिस ने प्रत्येक घर-घर का एक-एक कोना खोज नहीं डाला। भूखे-प्यासे बच्चों को लिए दिन भर घरों के बाहर खड़े रहने की यह घटना जनता के ऊपर हुए अत्याचारों का दिग्दर्शन कराती है। इस पर से यह कल्पना की जा सकती है कि जिनकी खोज के लिए इतना कहर ढाया जाता हो, वे सत्याग्रही यदि सड़क पर मिल गए तो पुलिस उनके साथ कैसा राक्षसी व्यवहार करती होगी। 25 मई को जम्मू में हुए भयंकर लाठीचार्ज और

अश्रुगैस प्रयोग से तो घबराकर वहाँ की कई धार्मिक व सामाजिक संस्थाओं ने राष्ट्रपति को तार द्वारा सूचित किया था कि स्थिति कैसी भयंकर हो गई है। इस तार की प्रतियाँ युवराज कर्ण सिंह व डॉ. काटजू को भी भेजी गई थीं।

जैसे-जैसे दमन का वेग बढ़ता था, वैसे-वैसे सत्याग्रहियों का उत्साह उससे टक्कर लेने के लिए उमड़ रहा था। पहाड़ी, अनजान, बीहड़ मार्ग से सत्याग्रहियों के जत्थे पैदल ही जम्मू पहुँच रहे थे। नेशनल मिलीशिया के सिपाही खूँखार भेड़ियों की तरह इन सत्याग्रहियों की खोज में रात-दिन लगे थे। इन जंगल-पहाड़ों में बसने वाली जनता के सक्रिय सहयोग से सत्याग्रही पकड़ में न आ सके और वे सतत ही असफल रहे। जो सत्याग्रही जम्मू तक की यात्रा करके वापस लौटे हैं, उनसे ये घटनाएँ सुनी जा सकती हैं कि जब उनके इतना मात्र कहने पर कि वे आंध्र, कर्नाटक, मद्रास, बंगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश या अन्य किसी प्रांत के सत्याग्रही हैं, जनता उनका किस प्रकार सत्कार करती थी। बीहड़ पथरीले तथा हिंसक पशुओं से पूर्ण मार्गों में उन्होंने किस प्रकार इन सत्याग्रही वीरों का मार्गदर्शन किया है।

जीत के नगाड़े बज उठे थे

डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी से धूर्त शेख़ की सारी धूर्तता दुनिया के सामने प्रकट हो गई थी। देश के सभी प्रमुख समाचार-पत्र व उच्च कोटि के नेताओं ने एक स्वर से इस गिरफ़्तारी का विरोध किया था। डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी के परिणामस्वरूप यह स्पष्ट हो गया था कि परमिट सिस्टम नाम की व्यवस्था क़ानून नहीं एक सुरक्षात्मक क़दम है, इसलिए भारत के किसी भी नागरिक को, जिसकी देशभक्ति शंकाओं से परे है, वहाँ जाने से रोकना अवैधानिक है। यह भी स्पष्ट हो गया था कि कश्मीर भारत के सर्वोच्च न्यायालय की कार्य सीमा में नहीं आता, कश्मीर की सीमा में जाने से भारतीय नागरिक के मूलाधिकार छिन जाते हैं तथा शेख़ अब्दुल्ला ने कश्मीर को सर्वसत्ता-संपन्न स्वतंत्र राज्य बनाने की ओर क़दम बढ़ाया है। इस घटना से जनता यह भी समझ गई थी कि श्री नेहरू का बार-बार यह कहना कि 'कश्मीर भारत में शत-प्रतिशत विलीन हो चुका है,' कोई अर्थ नहीं रखता। उनकी यह घोषणा राष्ट्र के साथ भयंकर धोखा है।

इसके अतिरिक्त चूँकि डॉ. मुखर्जी पर दिल्ली के न्यायालय में एक मुक़दमा चल रहा था, यह क़ानूनी पेंच भी उपस्थित हुआ था कि उन्हें दिल्ली वापस बुलाया जाए, किंतु ऐसा करने में नेहरू या शेख़ की सरकार उन्हें गिरफ़्तार नहीं रख सकती थी। कारण भारतीय भूमि पर पैर रखते ही कश्मीर राज्य की आज्ञा का कोई मूल्य न रहता और इधर सुप्रीम कोर्ट उन्हें रिहा कर देता। यदि उन्हें श्रीनगर में ही गिरफ़्तार रखा जाता तो बैरिस्टर त्रिवेदी क़ानूनी मदद के लिए वहाँ पहुँच गए थे। साथ ही भारत के सर्वोच्च न्यायालय में

भी उनकी गिरफ़्तारी पर एक मामला दायर किया जाने वाला था। तब यह प्रश्न उठता है कि भारत के सर्वोच्च न्यायालय की आज्ञा कश्मीर सरकार मानती है या नहीं, आदि-आदि। इसी प्रकार के कई वैधानिक, न्यायपूर्ण व सच्चे तत्त्वों के कारण शेख़ अब्दुल्ला और श्री नेहरू दोनों ही घबरा उठे थे।

डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी और उनकी नज़रबंदी के कारण देश में सर्वत्र क्षोभ छाया हुआ था। प्रधानमंत्री श्री नेहरू की ग़लत नीतियाँ एकाएक विश्व के चौराहे पर उपस्थित हो गई थीं। कांग्रेस के कई उच्च नेतागण भी स्थिति की गंभीरता से परिचित होनें के कारण घबरा उठे और वे बार-बार नेहरूजी पर दबाव डाल रहे थे कि कश्मीर के मामले को ठीक ढंग से निर्णायक स्तर पर सुलझाकर किसी प्रकार जन-कोप से बचाया जाए। ऐसा बताया जाता है कि इस समय श्री नेहरू ने शेख़ अब्दुल्ला को दिल्ली आने की सूचना भेजी किंतु जब शेख़ ने दिल्ली आने से साफ़ इनकार कर दिया तो श्री नेहरूजी का माथा ठनका। भारतीय जनता भी नाराज़ हो रही है और 20 सालाना दोस्त शेख़ भी मदद करने को तैयार नहीं, ऐसी स्थिति में वे दौड़े-दौड़े स्वयं श्रीनगर गए। उनके साथ श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित व डॉ. काटजू भी गए थे। वहाँ जाकर उन्होंने जो स्थिति देखी, उससे उनकी आँखें खुलीं। बताया जाता है कि शेख़ ने स्पष्ट रूप से उनकी बातें मानने से इनकार कर दिया। श्री नेहरू अपना सा मुँह लेकर वापस लौटे और वैसा मुँह भारतीय जनता को न दिखलाते हुए सीधे लंदन चले गए।

इस समय स्थिति कुछ सुलझती सी दिखाई दी। डॉ. मुखर्जी के सलाहकार बैरिस्टर उमाशंकरजी त्रिवेदी कश्मीर हाईकोर्ट में डॉ. मुखर्जी की गिरफ़्तारी के विरुद्ध प्रार्थना-पत्र देने गए थे। पहले तो शेख़ सरकार ने बैरिस्टर त्रिवेदी को डॉ. मुखर्जी से मिलने नहीं दिया, किंतु बाद में जब हाईकोर्ट ने आज्ञा दी तो वे डॉ. मुखर्जी से मिले। इधर कश्मीर के गृहमंत्री बख़्शी ग़ुलाम मुहम्मद ने विशेष व्यवस्था कर बैरिस्टर त्रिवेदी को यह सहूलियत प्रदान की थी कि वे प्रजा परिषद् के भूमिगत नेताओं से सीधा संबंध प्रस्थापित करें। इसके अतिरिक्त पं. प्रेमनाथ डोगराजी को भी जम्मू जेल से श्रीनगर में डॉ. मुखर्जी के पास बुला लिया गया था। चारों ओर इस प्रकार की चर्चा थी कि बातचीत प्रारंभ हो गई है। डॉ. मुखर्जी की मुक्ति के संबंध में बैरिस्टर त्रिवेदी द्वारा की गई अरजी पर होने वाले निर्णय की तारीख़ 23 जून थी। कश्मीर हाईकोर्ट की निर्भयता को देखते हुए यह आशा की जा रही थी कि इस दिन डॉ. मुखर्जी अवश्य मुक्त हो जाएँगे। डॉ. मुखर्जी के आख़िरी फ़ैसले की 23 जून आई तो ज़रूर, किंतु उनका फ़ैसला 22 जून की रात्रि को ही हो चुका था। डॉ. अली मोहम्मद ने घोषित कर दिया कि डॉ. मुखर्जी चल बसे।

श्रीमती पंडित जब श्रीनगर से वापस लौटीं तो उसके बाद मौलाना आज़ाद भी ईद के अवसर पर श्रीनगर गए थे। इस समय प्रधानमंत्री के कार्य का भार मौलाना आज़ाद ने

ही सँभाला था। प्रधानमंत्री की अनुपस्थिति में मौलाना आज़ाद का 11 जून को एकाएक श्रीनगर जाना और उनके दिल्ली वापस लौटने के 9 दिन बाद ही डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की मृत्यु का समाचार आज एक ऐसी घटना है, जिसके संबंध में जनता मौलाना साहब से स्पष्टीकरण माँगने का अधिकार रखती है। यह आज तक पता नहीं चला कि उन्हें श्रीनगर जाने के लिए क्या श्री नेहरू कोई आदेश दे गए थे या वे स्वयं ही शेख़ से मिलने की आवश्यकता महसूस कर वहाँ पहुँचे थे।

इस समय जबकि सत्याग्रह अपनी सफलता की अंतिम सीढ़ी पर पहुँच चुका था, और सत्याग्रहियों का जोश जम्मू के मोरचे पर दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था, देश के कई प्रमुख नेताओं ने भारत सरकार तथा आंदोलन के नेताओं के बीच मध्यस्थता करने का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया था। पं. मौलिचंद्र शर्मा अपनी सज़ा समाप्त होने पर 6 जून को रिहा हो गए और इस कारण यह आशा भी बँध रही थी कि सरकार के सम्मान की रक्षा तथा सत्याग्रह की सफलता को आँकते हुए कोई मार्ग शीघ्र निकल आएगा। 8 जून को एक पत्रकार परिषद् में महामंत्री पं. मौलिचंद्र शर्मा ने घोषित किया था—''गत छह माह के सत्याग्रह आंदोलन में अभी तक 10866 सत्याग्रही बंदी हो चुके हैं, जिसमें दिल्ली से गिरफ़्तार होने वालों की संख्या 4316, अन्य प्रांतों से गिरफ़्तार होने वालों की संख्या 1050, और जम्मू में गिरफ़्तार होने वालों की संख्या 5500 थी। सबसे अधिक सत्याग्रहियों की संख्या 2585 उत्तर प्रदेश से थी।'' पं. मौलिचंद्रजी ने देश के विभिन्न नेताओं द्वारा मध्यस्थता करने के सुझाव का स्वागत करते हुए यह भी घोषित कर दिया था कि ''सत्याग्रह ज़रूरत से अधिक एक भी दिन जारी नहीं रखा जाएगा।''

बलिदान दिवस

इस प्रकार एक ओर जब यह प्रगट हो गया था कि श्री नेहरू सरकार की कश्मीर नीति ही इन सब आपत्तियों की जड़ है, जब जनता यह समझने लगी थी कि शेख़ अब्दुल्ला की घातक नीतियों से कश्मीर को बचाने के लिए किया गया यह सत्याग्रह संग्राम देशभक्ति का प्रतीक है और जब सत्ताधारियों की निरंकुश तानाशाही व हठ पर जनता धिक्कार रही थी, क़ानूनी दृष्टि से जब यह अनुभव होने लगा था कि डॉ. मुखर्जी को अधिक दिन गिरफ़्तार कर रखना शेख़ और नेहरू दोनों के लिए असंभव है, सत्याग्रह आंदोलन के नेताओं से सम्मानपूर्वक बातचीत करने पर सरकार बाध्य हो चुकी थी, तभी श्रीनगर में नर्सिंग होम से 22 जून की रात्रि को ''माँ, माँ, माँ'' की पुकार एकदम निकल पड़ी।

23 जून को प्रातःकाल पता चला कि डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी का शव कलकत्ता भेजा जा रहा है।

उनकी बीमारी की सूचना उनके घर क्यों नहीं दी गई? डॉ. अली मोहम्मद अकेले

ने ही इनका इलाज क्यों किया व रात्रि को 9.30 बजे कौन सा इंजेक्शन दिया? इतने बड़े नेता का जीवन ख़तरे में देखकर श्रीनगर के अन्य डॉक्टर क्यों नहीं बुलाए गए? मौलाना आज़ाद ने उनकी मृत्यु के कारणों पर झूठा वक्तव्य क्यों दिया, जो कश्मीर सरकार की विज्ञप्ति से मेल नहीं खाता? उनके साथियों को नर्सिंग होम में मृत्यु के पूर्व क्यों नहीं जाने दिया गया? बैरिस्टर त्रिवेदी को, जो उनके क़ानूनी सलाहकार थे, उनके पास मृत्यु के समय क्यों नहीं बुलाया गया? मृत्यु का समाचार देर से क्यों प्रसारित किया गया? आदि कितने ही ऐसे प्रश्न हैं, जिनका पता लगाने के लिए भारत सरकार आज भी तैयार नहीं है।

इन रहस्यपूर्ण परिस्थितियों में हुई मृत्यु पर संपूर्ण देश ने आश्चर्य प्रगट किया। स्वयं डॉ. मुखर्जी की माता श्रीमती योगमाया देवी ने प्रधानमंत्री श्री नेहरू को एक लंबा पत्र लिखा, जिसमें जाँच की माँग करते हुए माताजी ने कहा था—"मैं जानती हूँ कि उसे अब वापस नहीं लाया जा सकता किंतु मैं चाहती हूँ कि भारत की जनता इस दुःखपूर्ण घटना के कारणों को जाने और स्वयं इस बात को पहचाने कि इस स्वतंत्र देश में इस दुर्घटना के पीछे इन कारणों में कौन सा हिस्सा तुम्हारी सरकार ने पूरा किया।" माताजी ने आगे लिखा था—"यदि कहीं भी किसी भी व्यक्ति से कोई अपराध हुआ है, चाहे वह कितने ही बड़े पद पर क्यों न हो, तो उस पर भी न्याय को निर्णय देने की खुली छूट दो और इस प्रकार देश की जनता को इन कुकर्मियों से सतर्क होने का खुला अवसर दो, ताकि मेरे समान भारत की अन्य किसी माता को इस प्रकार के दुःख और शोक के आँसू फिर न बहाने पड़ें।" माता की तथा जनता की इस शोक संतप्त पुकार को नेहरू ने यह कहकर कि "मैंने उन लोगों से पूछताछ की है, जो वास्तविकता को जानते हैं। मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैं इसी सच्चे और स्पष्ट निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इस घटना में कोई रहस्य नहीं।" अपनी सफ़ाई देने का यत्न किया। नेहरूजी के इस पत्र का उत्तर भी माता योगमाया देवी ने दिया और कहा, "मैं तुम्हारी सफ़ाई नहीं चाहती, जाँच चाहती हूँ। तुम्हारी दलीलें थोथी हैं और तुम सत्य का सामना करने से डरते हो। याद रखो, तुम्हें जनता तथा ईश्वर के सामने जवाब देना होगा। मैं मेरे पुत्र के लिए कश्मीर सरकार को ही जिम्मेवार समझती हूँ और उस पर आरोप लगाती हूँ कि उसने ही मेरे पुत्र की जान ली। मैं तुम्हारी सरकार पर यह आरोप लगाती हूँ कि मामले को छिपाने और उसमें साँठ-गाँठ करने का यत्न किया गया।" जाँच की इस न्यायपूर्ण माँग को ठुकरा देने के परिणामस्वरूप भारत की जनता ने एक स्वर से घोषित कर दिया कि डॉ. मुखर्जी की हत्या की गई, घृणित राजनीतिक उद्देश्य से उनके जीवन के साथ खिलवाड़ किया गया तथा उसमें दिल्ली व श्रीनगर दोनों दोषी हैं।

इसके बाद जो कुछ हुआ वह 'गढ़ आया पर सिंह गया' की उक्ति में समझा जा सकता है।

पं. प्रेमनाथ डोगरा से, जो डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद तुरंत ही श्रीनगर से रिहा कर दिए गए थे और इस समय दिल्ली में ही थे, बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद और उप गृहमंत्री श्री दुर्गाप्रसाद धर की भेंट हुई। पं. मौलिचंद्रजी शर्मा व श्री दुर्गादास वर्मा से भी इन लोगों ने भेंट की। स्वयं नेहरूजी भी जनसंघ व प्रजा परिषद् के नेताओं से मिले व उनकी बातों को सुना। डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद 13 दिन तक सत्याग्रह स्थगित कर दिया गया था। इसी बीच प्रधानमंत्री श्री नेहरू ने वह सीधी अपील निकाली, जिसमें आंदोलन वापस लेने का अनुरोध था। शासक द्वारा इस प्रकार आंदोलन वापस लेने का अनुरोध करते हुए स्वयं सीधी अपील निकालना अभी तक के इतिहास में सबसे पहली घटना हुई। अन्यथा मध्यस्थता करने वाले ही इस प्रकार की अपील निकाला करते हैं। संपूर्ण बातचीत का परिणाम यह हुआ कि संयुक्त संघर्ष समिति ने सत्याग्रह समाप्त करने का निश्चय कर लिया। दिनांक 7 जुलाई को प्रेमनाथजी डोग़रा की घोषणा पर आंदोलन बंद कर दिया गया और श्री नेहरू, डॉ. काटजू तथा बख्शी ग़ुलाम मुहम्मद के आश्वासन पर सरकार को अवसर दिया गया कि वह अपनी नीति में परिवर्तन कर भारत-कश्मीर एकीकरण के लिए मार्ग प्रशस्त करे।

डॉ. मुखर्जी ने जो कुछ कहा था, वह सभी सत्य हुआ। शेख़ अब्दुल्ला बरखास्त हुआ, गिरफ़्तार हुआ, श्री नेहरू ने अपनी भूल स्वीकार कर अपने 20 सालाना दोस्त शेख़ के कुकृत्यों पर खेद प्रकट किया व प्रजा परिषद् के नेताओं से बातचीत की, कश्मीर संविधान सभा ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर कश्मीर को भारत में विलीन करने की घोषणा की और 14 मई, 1954 को भारत के राष्ट्रपति ने एक विशेष आज्ञा निकालकर दिल्ली समझौते की शर्तें पूरी करवाईं।

यह सब कुछ हुआ किंतु इन सबका कराने वाला उठ गया था। उसके बलिदान के कारण ही यह संभव हो सका। यदि यह महान् आंदोलन न हुआ होता, यदि जम्मू के वीर 16 सत्याग्रहियों ने तथा डॉ. मुखर्जी ने अपने जीवन की आहुति डालकर देश के मंसूबों को स्पष्ट न किया होता तो जिन कारणों से आज शेख़ को गिरफ़्तार किया है, वे सभी षड्यंत्र नेहरू सरकार की आँख में धूल झोंकते हुए कश्मीर को भारत से अलग कर देते।

डॉ. मुखर्जी के ख़ून की बूँदों से श्रीनगर में बाँधी हुई यह भारत की अखंडता की गाँठ भविष्य में मज़बूत होकर न केवल उस बचे हुए एक-तिहाई पाकिस्तान अधिकृत कश्मीर को भारतीय अखंडता का रसपान कराएगी, वरन एक दिन अखंड भारत की अभिलाषा को भी पूर्ण करेगी, बस तब तक उनकी आत्मा को चैन कहाँ!

6

सरकारी दिशा बदली किंतु लक्ष्य अधूरा

डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के बाद सरकार द्वारा जाँच की माँग को ठुकराए जाने पर जनता में तीव्र असंतोष फैला था। कुछ लोग ऐसा भी सोच रहे थे कि डॉ. मुखर्जी के अनुयायियों को इस परिस्थिति का ऐसा लाभ उठाना चाहिए, जिसे पाश्चात्य राजनीतिक भाषा में 'जनरोष की सिगड़ी पर पार्टी की रोटी सेंकना' कहा जाता है। किंतु आंदोलन के नेताओं ने इन पार्टीगत क्षुद्र विचारों से ऊपर उठ कर आंदोलन के उद्देश्य प्राप्त होते ही सरकारी आश्वासन पर आंदोलन को बंद कर जिस उत्कट देशप्रेम का परिचय दिया, वह देश निर्माण के कार्य में सदैव मार्गदर्शन करेगा। जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयालजी उपाध्याय ने उस समय कहा था—''सत्याग्रह का एक अर्थ है, उसका एक तरीक़ा है। न्याय और सत्य पर चलने वाले उस अर्थ को समझकर उस तरीक़े को अंगीकार करते हैं। इसका मूल स्फूर्ति केंद्र अत्याचारों के अत्याचार और अन्यायियों के अन्याय सहन करने की शक्ति में है। जब सत्याग्रही कष्ट सहने के लिए अड़ जाता है तो कुछ समय तक अन्याय बढ़ते हैं। प्रतिष्ठा और पार्टीबाज़ी के मद में अंधे सत्ताधारी उपेक्षा करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बलिदान होते हैं, किंतु इसके साथ उन अस्वाभाविक कृत्यों की एक सीमा रहती है, जिसके बाद वे क्रमशः क्षीण होने लगते हैं और शुद्ध भावनाएँ हिलोरें मारती हैं। बस इसी समय सत्याग्रह सफल होता हैं। शेख़ अब्दुल्ला की क्रूरता का असली रूप डॉ. मुखर्जी की मृत्यु के रूप में जनता के समक्ष प्रगट होने से श्री नेहरू को अपना हठ छोड़कर अनुरोध करना पड़ा।''

बातचीत का मार्ग खुला, जम्मू की जनता की उचित माँगों को सरकारी मान्यता मिली। शेख़ अब्दुल्ला की भारत विरोधी नीति का पर्दाफ़ाश हुआ। जनता ने सचाई को पहचाना और उसने सरकार को अपना हठ छोड़ने को मजबूर किया तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि जो नेहरू कभी लोकसभा में कहते थे कि मैं प्रजा परिषद् से बात नहीं

करूँगा, उन्हीं नेहरू ने अपने जीवन में शायद पहली बार अनुभव किया कि उनकी नीति ग़लत थी और शेख़ अब्दुल्ला पर विश्वास करके उन्होंने धोखा खाया। उनका यह वाक्य कि "मैं यह अनुरोध करता हूँ कि यह आंदोलन बंद कर दिया जाए," इसी बात का प्रमाण है।

सरकारी आश्वासन पर सत्याग्रह बंद होने के बाद भी सरकार की अपनी नीति परिवर्तन की गति अत्यंत धीमी रही। धीरे-धीरे सत्याग्रहियों को जेलों से छोड़ा गया। जिन पर मुक़दमे चल रहे थे, उनके मुक़दमे वापस लिए गए। शेख़ अब्दुल्ला की गिरफ़्तारी के बाद उसके मित्रों द्वारा किए गए अनर्गल प्रचार को रोका नहीं गया। उधर बख्शी सरकार ने भी इसी धीमी गति से काम लिया, यहाँ तक कि अभी भी जम्मू प्रांत के उन 15 शहीद परिवारों को सरकार की ओर से कोई आर्थिक सहायता नहीं दी गई है, जिन्हें पुलिस ने गोली से उड़ा दिया था। कश्मीर को भारत में पूर्ण रूप से विलीन करने के अपने वचन को भी सरकार ने अभी तक पूरा नहीं किया। राष्ट्रपति द्वारा 14 मई को जारी की गई आज्ञा के अनुसार जो कुछ हुआ है, वह कश्मीर के भविष्य का अंतिम समाधानकारक हल नहीं माना जा सकता। इस संबंध में जनसंघ के प्रधान द्वारा दिया गया वक्तव्य स्थिति का सच्चा चित्र उपस्थित करने के लिए पर्याप्त है। वक्तव्य में कहा गया है, "यद्यपि राष्ट्रपति की इस आज्ञा से स्थिति का स्पष्टीकरण अवश्य होता है, परंतु उसे समाधानकारक नहीं कहा जा सकता।"

संविधान की धारा 370 के अनुसार जारी की गई कश्मीर संबंधी राष्ट्रपति की आज्ञा का साधारणतः सर्वत्र स्वागत इस कारण किया जाना चाहिए, क्योंकि उससे राज्य के भारत के साथ संबंधों की अनिश्चितता समाप्त हो गई है, किंतु कश्मीर की उपस्थिति को, जो भारत के अन्य राज्यों से उसे भिन्नता प्राप्त कराती है, दूर करने में राष्ट्रपति की आज्ञा सफल नहीं हुई। आज्ञा में सबसे बड़ी कमी यह है कि उनके अनुसार कश्मीर राज्य को यह अधिकार प्राप्त है कि वह भारत के अन्य नागरिकों के विरुद्ध राज्य के भीतर जाने, वहाँ रहने, नौकरी करने अथवा अचल संपत्ति क्रय करने के संबंध में पक्षपातपूर्ण व्यवहार कर सके। इस प्रकार राज्य के स्थायी नागरिकों से पृथक् भारत के अन्य राज्यों के नागरिकों की एक श्रेणी स्वीकार की गई है, जो हमारे संविधान के मूलतः विरुद्ध है। संसद् में प्रतिनिधियों का अन्य राज्यों की भाँति जनता द्वारा निर्वाचन न करके राज्य की विधानसभा की सिफ़ारिश पर उनकी नियुक्ति करने का प्रावधान भी उपयुक्त नहीं, क्योंकि इससे कश्मीर के नागरिकों को भारतीय नागरिकता के इस अधिकार से वंचित किया गया है। कश्मीर राज्य को पृथक् चुनाव आयोग व जनगणना करने की आज्ञा देना भी योग्य नहीं। एक अन्य प्रावधान जो अत्यंत आपत्तिजनक कहा जा सकता

है, वह यह है कि जो लोग राज्य छोड़कर पाकिस्तान जा चुके हैं, उनके राज्य में आने तथा नियमन का अधिकार भी राज्य विधानसभा को दिया गया है। वास्तव में इस प्रकार के व्यक्तियों अथवा समुदायों के भारत तथा पाकिस्तान के बीच आवागमन का नियंत्रण केंद्रीय सरकार को करना चाहिए। मूलभूत अधिकारों तथा सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार का प्रावधान भी समाधानकारक नहीं कहा जा सकता। इस बहाने से कि राज्य का कुछ भाग पाकिस्तान के क़ब्ज़े में है, राज्य की विधानसभा को मूलभूत अधिकारों के संकुचन अधिकार देना भी उचित नहीं।

भावी संकट

राष्ट्रपति के आदेश में रही इन कमियों की गंभीरता इस कारण और भी अधिक बढ़ जाती है कि कश्मीर राज्य में अत्यंत सतर्कतापूर्वक कम्युनिस्टों का जाल फैल रहा है। यह तो सर्वविदित ही है कि राज्य के कई महत्त्वपूर्ण पदों पर कम्युनिस्ट आसीन हैं। किसी राज्य के केंद्र से संबंध ढीले पड़ने पर वे अपनी विच्छेदकारी प्रवृत्तियों को सुविधापूर्वक पनपा सकते हैं और इसीलिए वे उन सभी प्रयत्नों का समर्थन करते हैं, जिनसे केंद्रीय नियंत्रण कमज़ोर होता हो। कश्मीर की वर्तमान स्थिति का लाभ भी अवश्य उठा रहे हैं। चीन व रूस की सीमाएँ अत्यंत समीप होने के कारण उन्होंने कम्युनिस्ट देशों से अपने सीधे संबंध स्थापित कर लिए हैं। कश्मीर में रूस या चीन के बढ़ते हुए इस प्रभाव को दूर करने के लिए अमरीकी शक्ति कोई यत्न करे, जबकि पाकिस्तान में सैनिक सहायता के रूप में वह विद्यमान ही है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वयं पाकिस्तान भी इसके लिए लालायित है और यदि ऐसा प्रसंग आया तो वह अपने अमरीकी महाप्रभुओं को कश्मीर में सैनिक सहायता का प्रयोग करने के लिए प्रोत्साहित भी करेगा। ऐसा यदि हुआ तो कश्मीर पुनः एक बार युद्ध की ज्वालाओं में झोंका जाएगा। दो विदेशी शक्तियों की इस भिड़ंत में कोरिया की तरह कश्मीर की स्थिति बन जाएगी। इसलिए आवश्यक है कि अंतरराष्ट्रीय तथा सामरिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण कश्मीर पर भारत सरकार अन्य राज्यों की तरह अपना पूर्ण नियंत्रण स्थापित करे।

कश्मीर राज्य की विशेष स्थिति अत्यंत शीघ्र समाप्त कर भारत सरकार को अगला क़दम कश्मीर के उस एक-तिहाई हिस्से को प्राप्त करने के लिए उठाना चाहिए, जो आज आज़ाद कश्मीर के नाम से पाकिस्तान के क़ब्ज़े में है। पाकिस्तान उस क्षेत्र पर एक आक्रमणकारी के नाते बैठा है, अन्यथा उसे वहाँ एक क्षण भी ठहरने का कोई अधिकार नहीं। आक्रमणकारी किस भाषा को समझना चाहता है, यह उस पर निर्भर है, किंतु भारत की तरुणाई बार-बार इस बात की घोषणा कर रही है कि यदि कश्मीर की रक्षा में स्वकीयों के भ्रमजाल को दूर करने के लिए वह बलिदान दे सकी तो परकीयों से लोहा

लेने के लिए भी वह तैयार है। जब तक कश्मीर का यह एक-तिहाई हिस्सा हम पाकिस्तानी अधिकारियों से पुनः प्राप्त नहीं कर लेते, तब तक कश्मीर के मोरचे पर हमने पूर्ण विजय प्राप्त की है, यह नहीं कहा जा सकता। कश्मीर के मोरचे पर हमारी विजय उसी दिन होगी जिस दिन पूर्ण आक्रमणकारी खदेड़ दिए जाएँगे और अखंड, अविभाज्य, सदृढ, सुख-संपन्न भारत का जयघोष करती हुई हमारी विजय वाहिनियाँ बढ़ चलेंगी।

7

जम्मू सत्याग्रह के शहीद

जिन्होंने अपने सीनों पर शेख़ अब्दुल्ला सरकार की बंदूकों के निशाने झेले। जिनके बलिदानों से शेख़ के कुटिल मंसूबे धूल में मिल गए और भारतीय अखंडता की कड़ी मज़बूत हुई।

		नाम	स्थान	तहसील
1.	श्री	मेला रामजी	छम्ब	अखनूर
2.	''	नानक चंदजी	ज्योड़ियाँ	''
3.	''	बसंत चंदजी	''	''
4.	''	वल्देवसिंहजी	''	''
5.	''	साईंसिंहजी	''	''
6.	''	वर्यामसिंहजी	''	''
7.	''	त्रिलोकसिंहजी	''	''
8.	''	कृष्णलालजी	सुंदरबनी	नोशहरा
9.	''	बाबा रामजी दास	''	''
10.	''	वेलीरामजी	''	''
11.	''	बिहारीलालजी	हीरा नगर	हीरा नगर
12.	''	भीष्मसिंहजी	''	''
13.	''	शिब्बाजी	वल्हयोत	रामबन
14.	''	देवीशरणजी	''	''
15.	''	भगवानदासजी	कैंठी	''

ज्योड़ियाँ, सुंदरबनी, हीरा नगर व रामबन में इन शहीदों की समाधियाँ हैं, जहाँ हज़ारों नर-नारी श्रद्धांजलि अर्पित करने एकत्र होते हैं।

—पुस्तक, 1954

□

जनसंघ का निर्वाचनायोग

जोधपुर अ.भा. जनसंघ के केंद्रीय निर्वाचनायोग (पार्लियामेंटरी बोर्ड) के निम्न महानुभाव सदस्य निर्धारित किए गए—

(1.) पं. प्रेम नाथ डोगरा।

(2.) श्री दीनदयाल उपाध्याय।

(3.) श्री बापू साहेब सोहनी।

(4.) श्री अटलबिहारी वाजपेयी।

—जोधपुर अधिवेशन, जोधपुर, 1954

□

परिशिष्ट-IV

जनसंघ परिषद् का इंदौर अधिवेशन

अखिल भारतीय जनसंघ की प्रतिनिधि सभा और राष्ट्रीय कार्यकारिणी ने, जिनकी बैठक यहाँ पिछले पाँच दिनों से चल रही थी, देश के इस सबसे युवा अखिल भारतीय राजनीतिक संगठन की नीतियों, कार्यक्रमों और संगठनात्मक मामलों के बारे में अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के बाद विगत रात्रि अपने विचार-विमर्श का समापन किया।

मध्य भारत जनसंघ के अध्यक्ष श्री के.एल. गोयल, एडवोकेट के निवास पर हुई बैठक में जनसंघ कार्यकारिणी के समक्ष मुख्य कार्य घोषणापत्र उप-समिति की रिपोर्ट को अंतिम रूप देना था, जिसे जनसंघ की स्थापना के बाद से समय-समय पर जनसंघ की कार्यकारिणी और प्रतिनिधि सभा द्वारा लिए गए विभिन्न निर्णयों के प्रकाश में अपने घोषणा-पत्र में संशोधन करने के लिए, जनसंघ के पिछले सत्र में गठित किया गया था। इस (उप-समिति) द्वारा जनसंघ के संविधान में भी कुछ बदलावों पर विचार किया जाना था।

जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् के पंडित प्रेमनाथ डोगरा ने प्रतिनिधि सभा के सत्र का उद्घाटन किया, जिन्हें इस प्रयोजन से विशेष रूप से आमंत्रित किया गया था। 21 की सुबह इंदौर रेलवे स्टेशन पर उनका स्वागत हज़ारों लोगों द्वारा किया गया और उनका उद्घाटन भाषण सुनने के लिए हज़ारों अन्य लोग आए थे। ऐसा लगता है कि भारत के साथ कश्मीर के विलय के लिए संघर्ष में पंडित डोगरा की महान भूमिका ने उन्हें पूरे भारत की आम जनता का लाड़ला बना दिया है। उन्हें सरलता से देश के चुनिंदा राष्ट्रीय व्यक्तित्वों में रखा जा सकता है।

जनसंघ के प्रति असहिष्णुता की कांग्रेस की परंपरा के अनुरूप मध्य भारत के अधिकारियों ने स्वागत समिति को खुला सत्र आयोजित करने के लिए टाउन हॉल के उपयोग की अनुमति देने से इनकार कर दिया। पं. डोगरा और जनसंघ के अन्य नेताओं का नागरिक अभिनंदन करने के प्रस्ताव का भी नगर निगम की समिति में कांग्रेस पार्टी ने

विरोध किया था, जिसके परिणामस्वरूप सभी विपक्षी और स्वतंत्र सदस्यों ने विरोध में समिति से वॉक आउट किया। जनसभा आयोजित करने और जुलूस के रूप में पं. डोगरा की एक शोभायात्रा शहर से निकालने की अनुमति देने से भी इनकार कर दिया था।

लेकिन इन बाधाओं के बावजूद सत्र के स्थानीय आयोजक इसे पूरी तरह सफल बनाने में सक्षम रहे और नंदलालपारा का थिएटर हॉल, जो खुले सत्र का आयोजन स्थल था, रोचक ढंग से पूरी तरह से सजाया गया था और क्षमतानुसार भीड़ भरा था।

अपने उद्घाटन भाषण में पं. प्रेमनाथ डोगरा ने जनसंघ को उसकी सतत वृद्धि के लिए और पुर्तगाली क़ब्ज़े वाले इलाकों की मुक्ति के लिए उसके कार्यकर्ताओं द्वारा निभाई जा रही भूमिका के लिए बधाई दी, और इस कार्य में प्रजा परिषद् के पूर्ण समर्थन का आश्वासन दिया। उन्होंने पठानकोट भाषण के लिए पंडित नेहरू की आलोचना की और उनसे अपील की कि वे बोलने से पहले अपने शब्दों को तौल लिया करें। उन्होंने शेष भारत के साथ जम्मू-कश्मीर राज्य के पूर्ण एकीकरण के प्रति प्रजा परिषद् की दृष्टि को दोहराया और जम्मू-कश्मीर राज्य विधानसभा के नए सिरे से चुनाव की माँग की, ताकि वह राज्य में जनता की वर्तमान राय को सही ढंग से प्रतिबिंबित कर सके।

प्रतिनिधि सभा द्वारा लिए गए बड़े निर्णय आर्थिक नीतियों, देश की राजनीतिक संरचना और पुर्तगाली क़ब्ज़े वाले क्षेत्रों की मुक्ति से संबंधित थे। जनसंघ का संशोधित आर्थिक कार्यक्रम कुटीर उद्योगों और पारंपरिक ढंग की बेहतर कृषि पर ज़ोर देता है। जनसंघ बड़े उद्योगों का अस्तित्व चाहता है, लेकिन कुटीर उद्योगों के प्रतियोगियों के रूप में नहीं बल्कि उनके पोषक के रूप में। जनसंघ देश की रक्षा आवश्यकताओं के साथ सीधे जुड़े उद्योगों के राष्ट्रीयकरण के पक्ष में है। और शेष (क्षेत्रों में) राज्य के उचित नियंत्रण में मुक्त उद्यम के पक्ष में है। औद्योगिक क्षेत्र में सौहार्दपूर्ण स्थितियों के निर्माण के लिए उसने श्रम और पूँजी के बीच लाभ के बँटवारे का और उद्योगों के प्रबंधन में श्रम के साथ हिस्सेदारी करने का सुझाव दिया है। श्रमिकों के हड़ताल करने के अधिकार को स्वीकार करते हुए जनसंघ हड़तालों और तालाबंदी के प्रति अपनी नापसंदगी ज़ाहिर करता है, क्योंकि उनसे उत्पादन मंद होता है। वह उत्पादन के विभिन्न कारकों के बीच सहयोग पर ज़ोर देता है, न कि उनके बीच संघर्ष पर।

राजनीतिक क्षेत्र में इंदौर में जनसंघ द्वारा लिए गए प्रमुख निर्णयों में से यह है कि जनसंघ सरकार के वर्तमान संघीय रूप के स्थान पर एकात्मक रूप के पक्ष में है। एकात्मक राज्य का विचार एक देश, एक लोग, एक संस्कृति और एक राष्ट्र के जनसंघ के मूल सिद्धांतों का एक स्वाभाविक परिणाम है। एक 'उप-महाद्वीप' या 'राज्यों का संघ' होने की भारत क़ी अवधारणा जनसंघ के प्रतिकूल है। जनसंघ भारत को एक जीवंत संपूर्णता के रूप में देखता है, जिसे मात्र प्रशासनिक सुविधा के लिए अनेक

इकाइयों में विभाजित किया जाना है। यह इकाइयाँ उन अधिकारों से युक्त होंगी, जो उन्हें एकात्मक केंद्र द्वारा प्रदत्त होंगे।

प्रतिनिधि सभा द्वारा संगठनात्मक क्षेत्र में लिया गया बड़ा निर्णय यह है कि भविष्य में जनसंघ का एक महासचिव होगा और कई सचिव होंगे और इसकी वार्षिक बैठक चार क्षेत्रीय बैठकों में विभाजित की जाएगी। जहाँ तक राष्ट्रीय कार्यकारिणी या जनसंघ की प्रतिनिधि सभा का प्रश्न है, एक अखिल भारतीय सत्र की भी बैठक होगी। यह परिवर्तन देश भर में संगठनात्मक विकास के हित में किया गया है। क्षेत्रीय सत्रों में संबंधित क्षेत्रों की समस्याओं पर विशेष ध्यान दिया जाएगा, जो अधिक कामकाजी होंगे।

प्रतिनिधि सभा द्वारा अनेक प्रस्ताव पारित किए गए। जिस (प्रस्ताव) ने प्रतिनिधियों को हर्षित कर दिया, वह भारत में पुर्तगाली क़ब्ज़े वाले क्षेत्रों से संबंधित था। जो प्रस्ताव श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने खुले सत्र में प्रस्तुत किया था, उसमें भारत में उपनिवेशवाद के इन अवशेषों के बारे में भारत सरकार की निष्क्रियता के लिए उसकी आलोचना की गई और भारत में उपनिवेशवाद के अवशेषों के बारे में चेताया गया; भारत सरकार को चेतावनी दी गई कि उसके द्वारा समय रहते तेज़ी से और प्रभावी कार्रवाई करने में विफलता, पाकिस्तान द्वारा दरशाई गई अनुचित रुचि और पश्चिमी शक्तियों की दुश्मनी के मद्देनज़र समस्या को जटिल बना देगी। प्रस्ताव में भारत सरकार से आग्रह किया गया कि वह तटस्थ प्रेक्षकों आदि के बारे में पुर्तगाल के साथ वार्त्ता न करे। प्रस्ताव में कहा गया है कि पुर्तगाली चाल केवल सैन्य तैयारी के लिए समय हासिल करने के लिए और इस प्रश्न को सत्ता की अंतरराष्ट्रीय राजनीति के भँवर में लाने के उद्देश्य से है। प्रस्ताव में गोवा और उसके आसपास के क्षेत्रों के स्वतंत्रता सेनानियों को बधाई दी गई। प्रस्ताव में जनसंघ की सभी शाखाओं से 9 से 16 सितंबर तक गोवा मुक्ति सप्ताह मनाने का आह्वान किया गया, जिसमें गोवा की मुक्ति के लिए जनता को शिक्षित और एकजुट करने के लिए सार्वजनिक सभाएँ आयोजित की जाएँगी। इस प्रयोजन के लिए स्वयंसेवकों को सूचीबद्ध किया जाएगा।

प्रस्ताव को कर्नाटक जनसंघ के सचिव और सर्वदलीय गोवा मुक्ति समिति कार्रवाई समिति के सदस्य श्री जगन्नाथ राव जोशी द्वारा अनुमोदित किया गया था। अपने ज़ोरदार भाषण में उन्होंने गोवा के भीतर और गोवा के आसपास की स्थिति को स्पष्ट किया और शीघ्र और प्रभावी कार्रवाई का निवेदन किया। बंबई राज्य जनसंघ के सचिव श्री मधुकर राव महाजन ने आजाद गोमांतक दल के साथ मिलकर काम करने वाले जनसंघ के स्वयंसेवकों द्वारा नगर हवेली एन्क्लेव और इसकी राजधानी सल्सावा को मुक्त कराने का एक मार्मिक विवरण दिया।

प्रो. महावीर ने एक देश और एक राष्ट्र पर जनसंघ के मौलिक दृष्टिकोण के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उन्होंने राष्ट्रवाद के बारे में जनसंघ का दृष्टिकोण स्पष्ट किया जो धर्म के आधार पर बहुसंख्यकों या अल्पसंख्यकों को मान्यता नहीं देता, क्योंकि यह राष्ट्र की अवधारणा के ही प्रतिकूल होता है। उन्होंने रेखांकित किया कि मात्र जनसंघ का दृष्टिकोण ही देश से सांप्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता को जड़ से समाप्त कर सकता है और संपूर्ण भारत को एक सुदृढ और एकजुट राष्ट्र बना सकता है। उन्होंने विस्तार से बताया कि किस प्रकार कांग्रेस की ग़लत नीतियाँ सांप्रदायिकता को जारी रख रही हैं और यह कि किस प्रकार जनसंघ केवल मौखिक निंदा द्वारा नहीं, बल्कि राष्ट्रवाद को सुदृढ करके इसका उन्मूलन कर रहा है, जो इस समस्या का एकमात्र सकारात्मक समाधान है। राजस्थान जनसंघ के सचिव श्री सुंदर सिंह भंडारी ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया।

जनसंघ के महासचिव श्री दीनदयाल उपाध्याय ने जनसंघ की नीति और जनसंघ के काम करने के तरीक़े के बारे में प्रस्ताव प्रस्तुत किया, जिसमें कहा गया कि जनसंघ व्यक्ति की स्वतंत्रता और क़ानून के शासन पर आधारित लोकतंत्र में विश्वास रखता है और यह कि जनसंघ राजनीतिक उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वाधिकारवादी एवं हिंसक दृष्टिकोण और तरीक़े अपनाने के विरुद्ध है। अपने सुगम्य और विश्वास जगाने वाले भाषण में उन्होंने स्पष्ट किया कि वास्तविक लोकतंत्र के लिए आवश्यक है कि असंतोष की ऐसी एक भी आवाज़ पर विचार हो, जिसमें कुछ सत्य हो सकता हो; कि यह सर्वसम्मति को लक्ष्य मानता है न कि बहुमत के दृष्टिकोण का बलपूर्वक प्रवर्तन करने को। उन्होंने ज़ोर देकर कहा कि जनसंघ वास्तव में एक लोकतांत्रिक संगठन है और यह लोकतंत्र को देश में सफल बनाने के लिए प्रतिबद्ध है।

इस प्रस्ताव का मध्य प्रदेश जनसंघ के संगठन मंत्री श्री दत्तोपंत ठेंगडी ने समर्थन किया। उन्होंने कम्युनिस्ट रणनीतियों का परदाफ़ाश किया। उन्होंने कहा कि कम्युनिस्ट 'जनता के शासन' के नाम पर देश भर में अधिनायकवाद थोपने की कोशिश कर रहे हैं। उन्होंने भारत सरकार से कम्युनिस्ट रणनीतियों से सावधान रहने की अपील की।

बिहार जनसंघ के ऊर्जावान सचिव श्री ताराकांत झा ने बिहार, आसाम, पूर्वी उत्तर प्रदेश और उत्तरी बंगाल में बाढ़ की स्थिति के बारे में एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उन्होंने बाढ़ के कहर और बिहार में जनसंघ के स्वयंसेवकों द्वारा किए जा रहे राहत कार्य का एक प्रत्यक्षदर्शी विवरण प्रस्तुत किया। उन्होंने श्रोताओं को बताया कि जनसंघ द्वारा आठ राहत केंद्र चलाए जा रहे हैं। लेकिन समस्या उनके लिए बहुत बड़ी है और इसलिए उन्होंने सरकार से बाढ़ की स्थिति से निपटने के लिए शीघ्र और प्रभावी क़दम उठाने की अपील की।

जनसंघ के गोरखपुर संभाग के संगठन मंत्री श्री हरीश चंद्र श्रीवास्तव ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उन्होंने उत्तर प्रदेश के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में जनसंघ के राहत कार्यों का विवरण दिया।

प्रतिनिधि सभा ने एक और प्रस्ताव द्वारा सरकार से नहर जल विवादों पर पाकिस्तान के साथ बातचीत शुरू न करने का आग्रह किया।

अलग-अलग सचिवों द्वारा उनके संबंधित प्रांतों में जनसंघ की प्रगति के बारे में दी गई रिपोर्टें दरशाती थीं कि जनसंघ एक बढ़ता हुआ संगठन है, जिसका महान भविष्य है।

पूरे सत्र के उत्साह स्रोत, संगठन के प्रतिभाशाली महासचिव, दुबले-पतले दीनदयाल उपाध्याय रहे। उन्होंने और प्रो. महावीर, अटल बिहारी वाजपेयी जैसे उनके युवा ऊर्जावान सहयोगियों के जत्थे ने भारत को महान् संभावनाओं वाला एक नया नेतृत्व देने का विश्वास दिलाया।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 30, 1954

□

जनसंघ के ज़िलाधिवेशन में पं. प्रेमनाथ डोगरा

28 तथा 29 अगस्त को मुजफ़्फ़रनगर जनसंघ के ज़िला अधिवेशन का महत्त्व इसलिए बढ़ गया कि इंदौर महासमिति के अधिवेशन से लौटते हुए जम्मू प्रजा परिषद् के नेता पं. प्रेमनाथ डोगरा तथा अखिल भारतीय जनसंघ के प्रधान मंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय अन्य जनसंघ के नेताओं के साथ पधारे।

स्टेशन पर पं. प्रेमनाथ डोगरा, पं. दीनदयाल उपाध्याय, श्रीमती हीरा बाई अय्यर, श्री श्यामलालजी, नेता जम्मू प्रजा परिषद् तथा श्री नाना देशमुख, संगठन मंत्री उत्तर प्रदेश जनसंघ का श्री हजारी लालजी मुख्तार, अध्यक्ष स्वागत समिति के नेतृत्व में दस हज़ार लोगों ने हार्दिक स्वागत किया। नेताओं को फूलों और नोटों के हारों से लाद दिया गया। एक विशाल जलूस का आयोजन भी किया गया। स्वागत के निमित्त निम्न 21 द्वार बनाए गए —

1. डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी द्वार, 2. प्रेमनाथ डोगरा द्वार, 3. श्री केशव द्वार, 4. श्री माधव द्वार, 5. पं. मौलिचंद्र द्वार, 6. श्री सुभाष द्वार, 7. श्री तिलक द्वार, 8. श्री विवेकानंद द्वार, 9. श्री स्वामी रामतीर्थ द्वार, 10. श्री मालवीय द्वार, 11. श्री प्रताप द्वार, 12. श्री गोविंद सिंह द्वार, 13 श्री चंद्रशेखर आज़ाद द्वार, 14. श्री वाल्मीकि द्वार, 15. श्री महावीर द्वार, 16. श्री जम्मू कश्मीर शहीद द्वार 17. श्री शिवाजी द्वार, 18. श्री दयानंद द्वार, 19. श्री भगत सिंह द्वार, 20. श्री सावरकर द्वार, 21. श्री शहीद मेलाराम द्वार।

नेताओं के ठहरने की व्यवस्था मुखर्जी भवन में की गई, जो एक स्थानीय धर्मशाला में बनाया गया था।

सम्मेलन में ज़िले के 300 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। सम्मेलन के खुले अधिवेशन में 19 प्रस्ताव ज़िले की दृष्टि से स्वीकृत हुए। 28 तारीख़ को 3 बजे सायं पत्रकार सम्मेलन तथा 29 अगस्त को श्रीमती हीराबाई अय्यर की अध्यक्षता में महिला सम्मेलन

हुआ। श्रीमती स्वर्णलता भाटिया एम.ए. को महिला संघ की संचालिका नियुक्त किया गया इसमें 150 महिलाओं ने भाग लिया।

28 तथा 29 अगस्त को दोनों ही दिन विशाल जनसभाएँ की गईं। सभाओं में पद्रंह-पंद्रह हज़ार जनता उपस्थित रही। 28 तारीख को पं. प्रेमनाथ डोगरा तथा पं. दीनदयाल उपाध्यायजी के भाषण हुए। पं. डोगरा ने वर्तमान स्थिति का विवेचन किया तथा पं. उपाध्यायजी ने संघ की आर्थिक नीति पर प्रकाश डाला।

29 तारीख को श्रीमती हीराबाई अय्यर ने सर्वप्रथम महिला कार्यक्रम योजना जनता के सम्मुख रखी तथा बाद में उपाध्यायजी ने पं. नेहरू की विदेशी नीति की कड़ी आलोचना करते हुए जनता से जनसंघ की नीति समझने और उसका अनुकरण करने की प्रार्थना की। उन्होंने कम्युनिस्टों एवं सोशलिस्टों के मिथ्या प्रचार से सावधान रहने की चेतावनी दी। मुसलमानों की देशद्रोही हरकतों से भी परिचित कराया।

—पाञ्चजन्य, सितंबर 13, 1954

□

अ.भा. जनसंघ के प्रधान मंत्री का उत्तर प्रदेश में दौरा

भारतीय जनसंघ के महामंत्री श्री दीनदयाल उपाध्यायजी अक्तूबर मास में उत्तर प्रदेश का दौरा करेंगे। उनके साथ जनसंघ के संगठन मंत्री श्री नानाजी देशमुख भी रहेंगे। दौरे का कार्यक्रम निम्न प्रकार से रहेगा—

दिनांक	स्थान	
3.10.54	प्रयाग	जबलपुर एक्सप्रेस द्वारा आगमन
4.10.54	लखनऊ	
5, 6, 7 अक्तूबर	दिल्ली	
8, 9 अक्तूबर	आगरा विभाग	दिल्ली से पंजाब मेल द्वारा 10.55 बजे छावनी से आगमन इसके बाद दिल्ली एक्सप्रेस से कानपुर को प्रस्थान
10.10.54	कानपुर	
11.10.54	लखनऊ	
12 से 17 अक्तूबर तक पहुँचेंगे		सहारनपुर विभाग मुरादाबाद से मेल द्वारा प्रातःकाल पार्सल एक्सप्रेस से सहारनुपर
18, 19, 20	बाँस बरेली	
21.10.54	लखनऊ	
22.10.54	हरदोई	
23.10.54	फैजाबाद	रात में काशी के लिए आसनसोल मेल से प्रस्थान

24, 25, 26 अक्तूबर	काशी	प्रात: आसनसोल मेल से आगमन, रात्रि में गोरखपुर के लिए प्रस्थान
27, 28, 29	गोरखपुर	प्रात: काशी से आगमन
30.10.54	मेरठ	उसके बाद लखनऊ।

—पाञ्चजन्य, अक्तूबर 4, 1954

□

परिशिष्ट-VII

जनसंघ ने पं. मौलिचंद्र शर्मा को मुक्त किया

कार्यकारिंणी ने पं. मौलिचंद्र शर्मा के त्यागपत्र, जो 3 नवंबर, 1954 को प्रेस में प्रसारित हुआ था, महामंत्री पंडित दीनदयाल उपाध्याय के 4 नवंबर, 1954 के उत्तर और पं. मौलिचंद्र शर्मा के 6 नवंबर, 1954 के प्रत्युत्तर पर विचार किया है।

कार्यकारिणी महसूस करती है कि जब पं. मौलिचंद्र शर्मा को यह जानकारी हो गई थी कि कार्यकारिणी की बैठक 7 और 8 तारीख़ को आयोजित होने की घोषणा हो चुकी है तो उन्हें प्रेस में नहीं जाना चाहिए था। कम-से-कम कहा जाए, तो भी यह क़दम अलोकतांत्रिक और कार्यकारिणी के सदस्यों के लिए अनुचित था, जिन्हें उन कारणों पर चर्चा करने का अवसर नहीं दिया गया, जिनसे वे इस्तीफ़ा देने के लिए प्रेरित हुए हैं। यह कार्रवाई इस प्रकार उस संगठन पर अनुचित ढंग से प्रहार करने के तुल्य है, जिसके वह अध्यक्ष थे।

कार्यकारिणी 3 नवंबर, 1954 के पं. मौलिचंद्र शर्मा के बयान पर दिनांक 4 नवंबर, 1954 के दीनदयालजी के उत्तर का समर्थन करती है और कहती है कि जनसंघ एक पूर्ण लोकतांत्रिक दल है, जो आर.एस.एस. द्वारा या किसी बाहरी संस्था द्वारा निर्दिष्ट हुए बिना सुस्थापित लोकतांत्रिक परंपराओं के अनुसार स्वयं निर्णय लेता है। वास्तव में पंडित मौलिचंद्र शर्मा को प्रतिनिधि सभा के इंदौर सत्र में अपने अध्यक्षीय भाषण में जनसंघ की नीतियों और विचारधारा पर मिथ्या कथन करने के लिए संगठन को स्पष्टीकरण देना चाहिए। हालाँकि कोई सांप्रदायिक राष्ट्रवाद हो नहीं सकता, लेकिन उसमें उन्होंने ग़ैर-सांप्रदायिक राष्ट्रवाद की बात कही थी। भारतीय जनसंघ शुद्ध और सरल राष्ट्रवाद में विश्वास करता है और उसे इसके किसी परिष्कृत या मिलावटी स्वरूपों की कोई आवश्यकता नहीं है। उन्होंने लोकतांत्रिक तरीक़ों की बात भी की थी, जैसे कि जनसंघ में उनकी कमी थी। प्रतिनिधि सभा इस अध्यक्षीय भाषण में व्यक्त उनके इन विचारों पर सशक्त और एकमत आपत्ति करती है और अध्यक्ष का आह्वान करती है कि वे अपनी स्थिति स्पष्ट करें। एक लोकतांत्रिक निकाय होने के नाते यह

अपने अध्यक्ष की तानाशाही से पीड़ित होने से इनकार करती है। वास्तव में ऐसा लोकतांत्रिक परंपराओं के सम्मान में किया गया, कि आगे कोई कार्रवाई उनकी अनुपस्थिति में नहीं की गई थी।

अपने बयान में पंडित मौलिचंद्र शर्मा ने आर.एस.एस. का नाम घसीटा जाना उचित समझा है। आर.एस.एस. का बेतुका उल्लेख करने से उनके द्वारा कुछ ऐसे खेमों को खुश करने की एक व्यग्रता की गंध आती है, जहाँ राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का नाम एक अभिशाप है। हम पंडित मौलिचंद्र शर्मा द्वारा आर.एस.एस. की आलोचना करने के प्रयास के लिए जनसंघ के मंच का दुरुपयोग करने के इस प्रयास की निंदा करते हैं।

जनसंघ अपने सभी सदस्यों को समान दृष्टि से देखता है, और हम विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे अन्य संगठनों के साथ उनके संबंधों के आधार पर पार्टी के सदस्यों को कृत्रिम रूप से वर्गीकृत करने, और इस प्रकार पार्टी के सद्भाव और एकरूपता को बाधित करने के पंडित मौलिचंद्र शर्मा के प्रयास पर कठोर अप्रसन्नता व्यक्त करते हैं। सहज तथ्य यह है कि अपने आचरण द्वारा पंडित मौलिचंद्र शर्मा ने जनसंघ संगठन के व्यापक बहुमत का विश्वास स्वयं ही उत्तरोत्तर खोते चले गए हैं। जनसंघ निरपेक्ष राष्ट्रवाद और निस्स्वार्थ सेवा में विश्वास करता है और इस कारण इसमें निरुत्साही राष्ट्रवाद या पदलोलुप राजनीति के लिए कोई स्थान नहीं है।

इस कारण, हम इसके द्वारा पंडित मौलिचंद्र शर्मा को उनके पद से मुक्त करते हैं, खेद के इस कथन के साथ कि उन्होंने अपने उच्च पद का प्रयोग संगठन का निर्माण करने के लिए नहीं, बल्कि गुटीय प्रतिद्वंद्विता पनपाने के लिए किया। यद्यपि हम उनके द्वारा अपना दृष्टिकोण, चाहे ऐसा करने के लिए बाध्य करने वाली जो भी मंशाएँ रही हों, बदले जाने तक संगठन के लिए उनके द्वारा दी गई सेवाओं की सराहना दर्ज करते हैं।

—ऑर्गनाइज़र, नवंबर 15, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

महाराष्ट्र जनसंघ का पहला सत्र

जो असीम उत्साह महाराष्ट्र जनसंघ के प्रथम वार्षिक सत्र की पहचान बना, वह निर्वाचित अध्यक्ष, विधायक श्री उत्तम राव पाटिल के 3 दिसंबर को पूना आगमन के समय से ही स्पष्ट हो गया था। निर्वाचित अध्यक्ष भारतीय जनसंघ के कार्यवाहक अध्यक्ष श्री बापूसाहेब सोहोनी और महासचिव पंडित दीनदयाल उपाध्याय के साथ आए, और उनका स्टेशन पर लगभग 2,000 मित्रों और प्रशंसकों द्वारा गरमजोशी से स्वागत किया गया। श्री राम भाऊ म्हालगी और श्री शंकर राव कारपे ने, जो क्रमशः प्रदेश महासचिव और स्वागत समिति के अध्यक्ष हैं, उनका सत्कार किया। महिलाओं द्वारा आरती उतारने के बाद श्री पाटिल को जुलूस के साथ ले जाया गया, जहाँ हज़ारों लोग स्वागत के लिए उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

जुलूस का मुख्य आकर्षण डॉ. मुखर्जी का एक विशाल चित्र और अखंड भारत के मानचित्र के समक्ष जलता एक विशाल दीपक था। कई स्थानों पर श्री पाटिल की कार को रोका गया और उन पर भारी पुष्पवृष्टि की गई।

शिवाजी मंदिर, जहाँ जुलूस समाप्त हुआ, श्री पाटिल ने छत्रपति शिवाजी की प्रतिमा पर माल्यार्पण किया और दीप प्रज्वलित किया, जो पूरे सत्र के दौरान प्रज्वलित रखा गया।

अगली सुबह श्री उत्तम राव पाटिल द्वारा समुचित धार्मिक संस्कारों के बाद सत्र शुरू होने की औपचारिक घोषणा की गई। उद्घाटन भाषण देते हुए पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने घोषणा की, समय की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि वोट लुभाने की राजनीति को आदर्शवाद की राजनीति द्वारा प्रतिस्थापित किया जाए। जहाँ अन्य राजनीतिक दल वोट हड़पने के लिए नागरिकों को धूर्ततापूर्वक लुभा रहे हैं, वहीं जनसंघ लोगों की आध्यात्मिक और राष्ट्रीय आवश्यकताओं की संतुष्टि के माध्यम से एक वास्तविक लोकप्रिय क्रांति लाने का प्रयास कर रहा है।

"आज के स्वराज्य में वे मूलभूत मूल्य शामिल नहीं हैं, जो शिवाजी के स्वराज्य में

मौजूद थे और यही वे मूल्य हैं, जिन्हें जनसंघ पुनर्जीवित करना चाहता है। वयस्क मताधिकार की वर्तमान प्रणाली केवल राजनेताओं के हाथ में एक औजार है, और मतदाताओं की राष्ट्रीय भावना की उपयोगिता, जो कि एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण मुद्दा है, इस प्रणाली में पूरी तरह से उपेक्षित कर दिया गया है।''

अपने तर्कपूर्ण भाषण के दौरान पंडित दीनदयाल ने विभिन्न राष्ट्रीय समस्याओं, जैसे अस्पृश्यता निवारण, शिक्षा की वर्तमान प्रणाली और वर्तमान शासन की अविचारित योजनाओं पर जनसंघ के दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया।

दीनदयालजी के भाषण के पूर्व एक संक्षिप्त भाषण में श्री बापूसाहेब सोहोनी ने उनका प्रतिनिधियों से परिचय कराया, जिसमें श्री सोहोनी ने कहा, ''डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी को पंडित दीनदयाल से अगाध स्नेह और विश्वास था। वह कहा करते थे कि पंडित दीनदयाल की तरह सिर्फ़ तीन कार्यकर्ता जनसंघ को एक उल्लेखनीय शक्ति बना देंगे।''

अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री उत्तम राव पाटिल ने अपना विश्वास व्यक्त किया, ''डॉ. मुखर्जी द्वारा प्रज्वलित दीपक निश्चित रूप से इस देश के हर गाँव से उदासी दूर करेगा। जनसंघ के कार्यकर्ताओं को भविष्य की नहीं, बल्कि वर्तमान की चिंता करनी होगी, क्योंकि वर्तमान में बनाई गई एक मज़बूत शक्ति निश्चित रूप से भविष्य की समस्या का समाधान कर देगी।''

जनसंघ जिस भारतीय राष्ट्रवाद की पक्षधरता करता है, उसकी विस्तार से व्याख्या करते हुए श्री पाटिल ने कहा, ''मातृभूमि के प्रति अटल भक्ति जनसंघ की विचारधारा का मूल आधार है। मुसलमानों और ईसाइयों का राष्ट्रीयकरण राष्ट्रवाद का एक अभिन्न हिस्सा होगा, अन्यथा ये समुदाय राष्ट्रीय काया में बाहरी तत्त्व के रूप में बने रहेंगे।'' उन्होंने इस संबंध में पाकिस्तानी एजेंटों और ईसाई मिशनरियों की हाल ही की राष्ट्रविरोधी गतिविधियों पर प्रकाश डाला, और ऐसे तत्वों के ख़िलाफ़ प्रतिरक्षा के तौर पर सतर्क राष्ट्रवाद की आवश्यकता पर बल दिया।

जनसंघ के गोवा संघर्ष का उल्लेख करते हुए श्री पाटिल ने कहा, ''यह जनसंघ के आदर्श अखंड भारत का एक अभिन्न भाग है, जो मात्र एक नारा नहीं बल्कि कार्रवाई की एक दिशा है।'' समापन करते हुए अध्यक्ष ने एकात्मक सरकार के संदर्भ में जनसंघ की पक्षधरता की व्याख्या और स्पष्ट किया कि किस प्रकार यह तानाशाही की अवधारणा से बहुत भिन्न है। उन्होंने कहा, ''इसके विपरीत, यह विचार सत्ता के विकेंद्रीकरण पर आधारित है, और लोकतांत्रिक ढाँचे को वास्तविक जीवन दे सकने वाली एकमात्र अवधारणा है।''

इसी सत्र में कर्नाटक जनसंघ के नेता श्री जगन्नाथराव जोशी ने अपने सशक्त और

स्पष्टवादी वक्तृत्व से सभी को प्रभावित किया। उन्होंने घोषणा की, ''भारतीय स्वतंत्रता का जो संघर्ष माहे (मय्यालि, पांडिचेरी) से शुरू किया गया है, वह पाकिस्तान के साथ ख़त्म होगा। पंडित नेहरू अर्जुन जैसी संभ्रम की स्थिति में हैं और श्रीकृष्ण की तरह जनसंघ उन्हें कर्म का आह्वान करेगा।''

यह टिप्पणी करते हुए कि आज राजनीति भारतीय कुश्ती के मुक़ाबले की भाँति कौशल की बात नहीं रह गई है, बल्कि 'फ्री-स्टाइल' मुक़ाबले की तरह विशुद्ध ताक़त की बात हो गई है, जनसंघ निश्चित रूप से इस मुक़ाबले में एक दिन अपने विरोधियों को धूल चटा देगा। उन्होंने इस टिप्पणी के साथ समापन किया कि ''जनसंघ का मुख्य कार्य राजनेताओं को तीस वर्ष की ग़लत सोच के बाद उन्हें सही सोचने के लिए मजबूर करना है।''

उद्घाटन दिवस पर श्रोताओं, जिन्होंने सत्र के आयोजन स्थल को ठसाठस भर दिया था, ने सभी भाषणों को ध्यानमग्न होकर सुना। पंडित प्रेमनाथ डोगरा, अखिल भारतीय जनसंघ के नव निर्वाचित अध्यक्ष प्रो. बलराज मधोक, प्रो. महावीर और अनेक अन्य नेताओं से शुभकामना संदेश प्राप्त हुए थे। मध्य प्रदेश जनसंघ के श्रमिक नेता श्री डी.बी. ठेंगडी स्वयं उपस्थित रहे।

सत्र का उद्घाटन करने वाले पंडित दीनदयाल ने 5 दिसंबर को समापन भाषण भी दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि जनसंघ तीन सिद्धांतों में विश्वास करता है, ''लोगों का राष्ट्रीयकरण, देश का सैनिकीकरण और आर्थिक नीतियों का स्वदेशीकरण। पार्टी को विश्वास है कि सिद्धांतों की केवल यह त्रयी ही राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर सुदृढ भारत का निर्माण कर सकती है। उन्होंने अपने विचार को वर्तमान राजनीति से कई ज्वलंत उदाहरणों के विवरण के साथ प्रस्तुत किया।''

सत्र का समापन गोवा संघर्ष, दूसरी पंचवर्षीय योजना, बैंकिंग उद्योग की समस्याओं और पार्टी द्वारा रचनात्मक कार्रवाई के लिए बनाई गई योजनाओं जैसे विभिन्न विषयों पर अनेक प्रस्तावों को पारित करने के बाद हुआ।

मुख्य सत्र के साथ-साथ वहाँ एक महिला सम्मेलन भी आयोजित किया गया था, जिसकी अध्यक्षता डॉ. श्रीमती कमलाबाई देशपांडे ने की, जिसमें वरिष्ठ नारीवादी महर्षि अण्णासाहेब कर्वे ने भाग लिया। राष्ट्र सेविका समिति की श्रीमती लक्ष्मीबाई केलकर और अन्य महिला नेताओं के शुभकामना संदेशों को पढ़े जाने के बाद महर्षि ने सत्र को आशीर्वाद देते हुए एक संक्षिप्त भाषण दिया।

अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. श्रीमती देशपांडे ने कहा कि भारतीय महिलाओं को उनकी सांस्कृतिक विरासत का वास्तविक भान कराने की आवश्यकता है, जो उन्हें अर्थहीन और ख़तरनाक अनुष्ठानों, रीति-रिवाजों और विधियों के बंधनों से मुक्त कर

देंगे। यह स्पष्ट करते हुए कि बड़ी उम्र की महिलाओं की पवित्रता के संकीर्ण विचारों ने विभाजन के समय बड़ी संख्या में युवा महिलाओं का जीवन बरबाद कर दिया था, उन्होंने बताया कि किस प्रकार सब को गले लगाने वाली भारतीय संस्कृति की सार्वभौमिक उदारता ही इस दोष का उपाय है। अध्यक्ष ने हल्के स्तर की फिल्मों के युवा बच्चों पर हानिकारक प्रभावों के बारे में भी बताया।

महिला सम्मेलन ने, जिसमें महर्षि कर्वे, श्री बापूसाहेब सोहोनी और पंडित दीनदयाल ने भाग लिया, अन्य बातों के अलावा यह सुझाव देने वाला एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव भी पारित किया कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र को महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाना चाहिए।

मुख्य सत्र के एक हिस्से के रूप में आयोजित एक अन्य सम्मेलन स्थानीय निकायों का था, जिसकी अध्यक्षता पूना के पूर्व नगरपालिका अध्यक्ष श्री एस.के. कानेटकर ने की। प्रतिनिधियों द्वारा बड़ी संख्या में विविध नागरिक समस्याओं पर विचार विमर्श के बाद अध्यक्ष ने नागरिक प्रशासन पर उन्हें रचनात्मक सुझाव दिए।

महाराष्ट्र जनसंघ के अध्यक्ष श्री उत्तम राव पाटिल ने दो महिलाओं—श्रीमती इंदुताई गीते और श्रीमती मालतीबाई परांजपे सहित सहित बाईस सदस्यों की प्रदेश जनसंघ की कार्यकारिणी समिति की घोषणा की। अन्य पदाधिकारी थे—

1. श्री अण्णाराव कवाडी, (शोलापुर) - उपाध्यक्ष,
2. श्री रामभाऊ म्हालगी, (पूना) - सचिव, और
3. श्री प्रेमजीभाई असार, (चिपलुन) - कोषाध्यक्ष।

श्री म्हालगीके अतिरिक्त, जिन्हें प्रदेश का संगठन मंत्री नियुक्त किया गया, श्री मुकंदराव वझे और श्री वसंतराव परचुरे को क्रमशः उत्तर और दक्षिण महाराष्ट्र का संगठन मंत्री नियुक्त किया गया।

—ऑर्गनाइज़र, दिसंबर 13, 1954

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-IX

गोवा में पुलिस कार्रवाई की माँग

संसद्-सदस्यों को आवेदन-पत्र

दिल्ली। दिल्ली प्रदेश जनसंघ के आह्वान पर राजधानी की 5000 से अधिक जनता ने लोकसभा के वर्षाकालीन अधिवेशन के प्रारंभ होते ही संसद् भवन के सामने ज़ोरदार प्रदर्शन किया और गोवा की मुक्ति के लिए सरकार से पुलिस कार्रवाई की माँग की।

प्रातःकाल से ही नगर के विभिन्न क्षेत्रों में जनसंघ के छोटे-छोटे कार्यकर्ता दल प्रदर्शन के लिए लोगों को तैयार कर रहे थे। जनसंघ मंडलों के 35 जुलूस अपने पदाधिकारियों, नगरपालिका व विधानसभा के सदस्यों के नेतृत्व में प्रातः 6 बजे तक अजमेरी गेट पहुँच गए।

अजमेरी गेट से 6:30 बजे एक विशाल जुलूस ने जनसंघ के अ. भारतीय महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय, मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा प्रो. बलराज मधोक के नेतृत्व में संसद्-भवन की ओर प्रस्थान किया। प्रदर्शनकारियों ने जनसंघ के सैकड़ों झंडे और नारों से मुक्त पत्रक उठाए हुए थे, जिनमें पुलिस कार्रवाई की माँग की गई थी। प्रदर्शन में महिलाओं ने भी भारी संख्या में भाग लिया।

दिल्ली 'नागरिक गोवा विमोचन समिति' द्वारा पुलिस कार्रवाई की माँग पर आपत्ति के कारण जनसंघ को पृथक् प्रदर्शन का आयोजन करना पड़ा।

संसद्-भवन के बाहर बैरिस्टर उमाशंकर त्रिवेदी, श्री राम नारायण सिंह, श्री नंदलाल शास्त्री आदि संसद् सदस्यों ने सत्याग्रहियों को संबोधित किया। श्री हरेंद्रनाथ चट्टोपाध्याय, एम.पी. ने सामयिक कविता का पाठ किया।

स्मृति-पत्र

दिल्ली प्रदेश जनसंघ की ओर से सभी मंत्रियों, उपमंत्रियों, संसद् सदस्यों की सेवा में एक स्मृति-पत्र दिया गया—

स्मृति-पत्र में गोवा की स्थिति का वर्णन करते हुए कहा गया, ''इस महान् स्वतंत्र

देश की सार्वभौम संसद् के सदस्य के नाते आपका ध्यान उस विषम परिस्थिति की ओर दिलाना हम आवश्यक समझते हैं, जो भारत स्थित गोवा, दमन, दीव की पुर्तगाली बस्तियों में पिछले कुछ समय से उत्पन्न होती जा रही है। भारतीय जनता स्वभावतः इस परिस्थिति से, जो उनकी सार्वभौमिकता के लिए चुनौती तथा उसकी शांति और सुरक्षा के लिए एक स्थायी संकट है, सतत है। यह मानती है कि आदिमाद्रि याकुमार्या संपूर्ण भूप्रदेश के मुक्त और अखंड हुए बिना उसकी स्वतंत्रता अधूरी है। इसके कारण भारत की विदेश नीति के लिए, जो तटस्थता तथा विश्व शांति को अपना मूलाधार मानकर चल रही है, ख़तरा उत्पन्न हो गया है। गोवा की आंतरिक स्थिति अत्यंत भीषण हो उठी है। वहाँ के नागरिकों के समग्र अधिकार छीने जा चुके हैं तथा उन पर एक क्रूर शासन का दमनचक्र चल रहा है। थोड़े से निहत्थे और शांतिप्रिय लोगों की स्वतंत्रता की लड़ाई को, जो गत अनेक वर्षों से चल रही है, विशाल सैन्य व सामग्री के सहारे दबाया जा रहा है। उसको अपने ही भूखंड का एक अनिवार्य अंग तथा उसके जन को विराट् भारत का भाग न मानने के कारण भारतवासियों ने उसे मुक्त करने का बीड़ा उठाया है। लगभग एक वर्ष से उनका सत्याग्रह चल रहा है, जो पहले दौर में नागरहवेली और दादरा को मुक्त कराने में सफल हुआ। अब उसका जो दूसरा दौर आरंभ हुआ है, वह शीघ्र ही संपूर्ण बस्तियों को निश्चित रूप से मुक्त कराने का उद्देश्य लेकर बढ़ रहा है। इस पावन उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारत के सभी विरोधी दलों ने अपने भेदभाव भूलकर एकता की भावना से अपना-अपना योगदान देना आरंभ किया है, यह प्रसन्नता और गौरव की बात है।''

इसके आगे गोवा सत्याग्रह की चर्चा करते हुए कहा गया—''आप सभी के सहयोग से यह सत्याग्रह आंदोलन अल्पकाल में ही अत्यंत प्रखर हो उठा है। सैकड़ों सत्याग्रहियों को लेकर माननीय नेताओं तथा वीरों के नेतृत्व में अनेक जत्थे गए हैं तथा उनमें भी अधिक संख्या में लोग जाने को तैयार हैं। आंदोलनकारियों पर पुर्तगाल सरकार के प्रतिनिधियों ने जैसा अत्याचार किया है, वह विश्व के बर्बरता के इतिहास में अपना सानी नहीं रखता। मथुरा के श्री अमीर चंद गुप्त का इस अत्याचार के कारण बलिदान ही हो गया। भारतीय जनसंघ के मंत्री श्री जगन्नाथ राव जोशी के साथ जो व्यवहार हुआ है, वह स्थिति का दिग्दर्शन कराने को पर्याप्त होगा। श्री जगन्नाथ राव जोशी को पीठ पर और दोनों भुजाओं पर डंडों से बहुत ही पीटा गया है। उनकी सारी पीठ काली-नीली हो गई। परिणामतः वे पहले 8-10 दिन सो नहीं सके। उनके मुँह पर बूट पहन लातें मारी गईं। इससे बाईं आँख सूज गई है। उनके दाहिने हाथ की अंगुलियाँ कुचली गई हैं। अनामिका की हड्डी टूट जाने से वह भी सूज गई है। अभी तक भी कोई दवा नहीं लगाई, ख़ाली आयोडीन लगाई है। उनको अभी तक बिछौना नहीं मिला। कमीज़ या

धोती अथवा पैंट नहीं मिली। जाते समय उनके शरीर पर जितने वस्त्र थे, उतने ही उनके पास हैं। दिन के 24 घंटे ऐसे कमरे में जो बहुत ही छोटा है, गंदा है, जिसमें हवा-प्रकाश नहीं आ सकते, उन्हें रखा गया है। किसी को भी उनसे बोलने की अनुमति नहीं है।

गोवा के संबंध में सरकारी उदासीनता की आलोचना करते हुए स्मृति-पत्र में कहा गया—"भारत सरकार तथा सत्ताधारी दल कांग्रेस की तत्संबंधी उदासीनता ने संकट की गंभीरता को बहुत बढ़ा दिया है। गोवा स्थित भारत के राजनीतिक अधिकारियों का व्यवहार अत्यंत खेदजनक सिद्ध हो रहा है। श्री अन्ना साहिब कवडी ने गोवा से लौटकर एक वक्तव्य में कहा है कि वे अपने दायित्व को पूरा नहीं करते। वे भारतीयों के अधिकारों की भी रक्षा करने में असमर्थ रहे हैं तथा जेलों में बंद सत्याग्रहियों की कोई चिंता नहीं करते। भारत सरकार को चाहिए कि वह उन्हें इन सब बातों को ध्यान रखने तथा कार्रवाई करने का आदेश दे। ऐसी अवस्था में हमें क्या करना इष्ट है, यह सोचना चाहिए। भारतीय जनता और सरकार दोनों ही इस दायित्व से बरी नहीं हो सकते। परिस्थिति का गंभीर विचार करने के बाद हम इस निर्णय पर पहुँचे हैं कि वृथा की हिचक छोड़कर गर्हित उपनिवेशवाद को समाप्त करने के लिए, जिसके प्रति हम नैतिक और ऐतिहासिक रूप से आबद्ध हैं तथा जो हमारी विदेशनीति का एक मुख्य पाया है, हमें अविलंब पुलिस कार्रवाई करनी चाहिए। विश्वशांति की नीति से उसका कोई विरोध नहीं उपस्थित होता। जब तक पुलिस कार्रवाई नहीं की जाती, तब तक सरकार को सत्याग्रहियों की सुरक्षा में ठोस क़दम उठाने चाहिए। उसे चाहिए कि उन पर किए जाने वाले बर्बर व्यवहार को रोकने की व्यवस्था करें। इसके लिए लड़ाई बरतने की आवश्यकता हो सकती है, जो सत्याग्रही जेलों में बंद है, उनकी चिकित्सा तथा अन्य सुविधाओं की ओर सरकार को ध्यान देना आवश्यक है। सरकार यह प्रबंध करे कि जब सत्याग्रही छोड़े जाते हैं तब सीमा तक पहुँचाने के लिए भारतीय दूतावास के अधिकारी जाएँ। सीमा पर भी उनकी चिकित्सा के लिए डॉक्टरों के दल नियुक्त किए जाएँ। सत्याग्रहियों से भेंट करने की उचित व्यवस्था की जाए तथा दूतावास इसकी भली भाँति देखभाल करें। जिन सत्याग्रहियों पर मुक़दमे चलाए जाते हैं, उनको क़ानूनी सहायता पहुँचाने की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।"

—पाञ्चजन्य, अगस्त 1, 1955

□

परिशिष्ट-X

पुलिस कार्रवाई के पक्ष में श्रीगुरुजी

राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंघचालक श्री एम.एस. गोलवलकर ने 16 अगस्त, 1955 को यह बयान बंबई से जारी किया।

गोवा, दमन और दीव में शांतिपूर्ण सत्याग्रहियों पर पुर्तगालियों द्वारा कल किए गए लाठीचार्ज, गोलीबारी तथा अन्य अमानवीय अत्याचारों का भयानक समाचार मुझे प्राप्त हुआ, जिसके परिणामस्वरूप चौंतीस लोगों की मृत्यु हुई और सैकड़ों घायल हुए। स्वतंत्रता और देशभक्ति के प्रति भारतीय प्रेम का उत्कृष्ट प्रदर्शन किया गया है। मातृभूमि के एक अंश पर भी विदेशी क़ब्ज़े के प्रति क्षोभ व्यक्त किया गया है। यह हम सबका पवित्र कर्तव्य है कि उन नायकों से सामने शीश नवाएँ, जिन्होंने स्वतंत्रता की बलिवेदी पर अपने जीवन का बलिदान किया है, और उनकी स्मृति में इस संघर्ष को एक सफल परिणति तक पहुँचाने के दृढ संकल्प के साथ जारी रखें।

इसके साथ ही कुछ भी नहीं करने की सरकार की नीति और बार-बार यह घोषणा करके कि वह (सरकार) इसका समर्थन नहीं करती है, स्वतंत्रता संग्राम की आलोचना करने की (उसकी) अदूरदर्शिता निंदनीय है। समय आ गया है, जब हम अपने नागरिकों पर ढहाए गए अत्याचारों को ब्याज सहित वापस लौटा दें और ग़ुलामी में सड़ रहे मातृभूमि के एक हिस्से को स्वतंत्र करा लें। सरकार के लिए ख़ुद को अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा के झूठे विचारों से छुटकारा पाने और सही दिशा में क़दम उठाने के लिए इससे उपयुक्त कोई और अवसर नहीं मिल सकता, अपितु क्षण भर की देरी किए बिना पुलिस या इसी तरह की अन्य कार्रवाई के माध्यम से इस संघर्ष की सफल परिणति हमारी अंतरराष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि करेगी। अन्य लड़ाकू और आक्रामक पड़ोसियों पर भी इसका योग्य प्रभाव पड़ेगा और इससे हमारे देश के महत्त्व में वृद्धि होगी। ध्यान रहे, सरकार को अपने कर्तव्य का निर्वहन करना चाहिए, अन्यथा सामान्य लोगों में सत्ता में बैठे लोगों के साहस, उनकी देशभक्ति और योग्यता को लेकर अवमानना की भावना आ जाएगी।

इसकी भी निंदा की जानी चाहिए कि गोवा में क्रूर अत्याचारों के विरुद्ध प्रदर्शन करते हुए जिन लोगों ने बंबई में हड़ताल और जुलूस में भाग लिया, उन पर हमारी अपनी पुलिस द्वारा गोलियाँ चलाई गईं। क्या गोली मार देने की ऐसी ही तत्परता गोवा की सीमा पर हमारे विदेशी दुश्मनों के लिए दिखाई गई? गोवा एक सप्ताह के भीतर मुक्त हो जाएगा। लेकिन हमारे अपने ही लोगों के लिए एक आतंक बनने की यह मानसिकता निंदनीय है।

साथ ही इन प्रदर्शनकारियों को ध्यान में रखना चाहिए कि वे अपने ही देश में हैं और अपनी ही सरकार के साथ बात कर रहे हैं तथा इस कारण उन्हें शांति भंग करने से बचना चाहिए। कारण यह कि इस तरह के प्रदर्शनों की वास्तविक शक्ति शांति ही है।

—ऑर्गनाइज़र, अगस्त 29, 1955

(अंग्रेज़ी से अनूदित)

□

परिशिष्ट-XI

डोगराजी तथा उपाध्यायजी का भव्य स्वागत

कलकत्ता। "स्वागत समिति का मैं नितांत अभारी हूँ कि उसने स्वागत सभा का आयोजन कर मुझे आपके दर्शन प्राप्त करने का सौभाग्य प्रदान किया। जम्मू से कलकत्ता तक का मार्ग बड़ा लंबा है। उस हिमालयस्थ नगर से लेकर इस विशाल तटस्थ नगर तक की लंबी यात्रा हमारे देश की विविधता, विशालता तथा समृद्धि के साथ-साथ एकता अनुभव कराती है। इस एकता ने ही अनेक ऋषियों को, वीर पुरुषों को तथा देशभक्तों को समय-समय पर जन्म दिया है। इसके विरुद्ध शेख़ अब्दुल्ला ने जो आकांक्षाएँ की थीं, उनको चुनौती देने के लिए डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी इसी कलकत्ता नगर से श्रीनगर गए थे और इतना ही नहीं, इस एकता को स्वरक्त से सींच भी दिया। वे जीवनपर्यंत स्वयं को इस एकता का मूर्तमंत स्वरूप बनाए रहे तथा उसकी आवश्यकता के लिए स्वजीवन का बलिदान करके उन्होंने अभूतपूर्व आदर्श उपस्थित कर दिया।" ये शब्द अ.भा. जनसंघ के अध्यक्ष प्रेमनाथ डोगरा ने एक स्वागत समारोह में कहे।

इस स्वागत समारोह का आयोजन जनता द्वारा फ्रीपोज में किया गया तथा वकील, डॉक्टर, विधानसभा सदस्य, पत्रकार तथा व्यापारियों आदि प्रतिष्ठित नागरिकों ने इसमें भाग लिया। पं. प्रेमनाथजी के साथ-साथ जनसंघ के महामंत्री पं. दीनदयाल उपाध्याय का भी समारोह में स्वागत किया गया।

पं. डोगरा ने अपने भाषण में आगे कहा, "डॉ. श्यामप्रसाद मुखर्जी जम्मू-कश्मीर के वास्तव में संरक्षक थे। उनके बलिदान ने जम्मू-कश्मीर को शेष भारत के साथ मिला दिया। किंतु अब भी स्थिति संतोषजनक नहीं है। डॉ. मुखर्जी के बलिदान का लाभ उठाकर जम्मू-कश्मीर और शेष भारत के बीच विद्यमान अंतर को समाप्त करने में भारत

सरकार नितांत असफल रही है। इसी का परिणाम है कि इस प्रकार के लक्षण दिखने लगे हैं कि कहीं एक बार पुन: भारत की राष्ट्रीय शक्तियों को ख़ून की होली न खेलनी पड़े।

''शेख़ अब्दुल्ला के निकटतम सहयोगी मिर्जा अफ़ज़ल बेग ने भारत सरकार की सेवा में जनमत की माँग करते हुए जो स्मृतिपत्र प्रस्तुत किया है तथा इसी उद्‌देश्य की पूर्ति के निमित्त राज्य विधान सभा में 'लोकमत फ्रंट' का संगठन किया है, वह भीषण षड्‌यंत्र की ओर संकेत करता है। इन सब बातों का एक-दो अभिप्राय है कि किसी-न-किसी प्रकार जनता का ध्यान आंतरिक निर्माणात्मक कार्यों से हटाकर पाकिस्तान की ओर लगाया जाए। ''भारतीय जनसंघ तथा जम्मू-कश्मीर प्रजा परिषद् ने सदैव घोषणा की है कि जम्मू-कश्मीर का भारत में विलीनीकरण पूर्णत: वैधानिक तथा अनिवार्य है। राज्य संविधान सामने विलीनीकरण पर पहले से ही अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी है। इस प्रश्न को पुन: उठाना उस राज्य संविधान सभा के अधिकारों को चुनौती देना है, जिसके मिर्जा अफ़ज़ल बेग स्वयं एक सदस्य थे। मैं माँग करता हूँ कि कश्मीर का विलीनीकरण अंतिम तथा निर्णीत तथ्य स्वीकार किया जाना चाहिए तथा जनमत आदि की बेहूदी बातें सार्वजनिक हित में तुरंत स्तब्ध कर देनी चाहिए।''

कश्मीर के आंतरिक पुनर्संगठन पर बदल देते हुए जनसंघ के नेता ने कहा, ''वर्तमान आवश्यकता जनमत संग्रह की नहीं, राज्य के आंतरिक शासन के पुनर्संगठन की है, जिससे जनता भ्रष्टाचार से मुक्त हो सके। राज्य में नवीन रूप में चुनाव कराने की आवश्यकता भी है। ये चुनाव भारतीय आम चुनावों के साथ कराए जाएँ।

''इसके अतिरिक्त देश के सम्मुख अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याएँ हैं, जिनके संबंध में आगामी दिनों में होने वाली प्रतिनिधि सभा की बैठक में भारतीय जनसंघ का आधिकारिक दृष्टिकोण तय किया जाएगा।

''मैं अंत में आपको धन्यवाद देता हूँ तथा आशा करता हूँ, आप मुझे तथा संघ को सदैव की भाँति सहयोग प्रदान करते रहेंगे।''

—पाञ्चजन्य, सितंबर 6, 1955

□

संदर्भिका

ऋ

ए

ऐ

औ

क

आ

इ

ई

उ

ख

ग

घ

च

छ

ज

फ

ब

भ

य

र

ल

व

श

ह

□□□

परिचय

भूमिका लेखक

डॉ. विजय कुमार मल्होत्रा

3 दिसंबर, 1931 को ब्रिटिश भारत के लाहौर में जन्म। डी.ए.वी. कॉलेज लाहौर, पंजाब विश्वविद्यालय, हंसराज कॉलेज दिल्ली से शिक्षा-दीक्षा। दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन किया। दिल्ली विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष रहे। 'हिंदुत्व : षड्यंत्रों के घेरे में', 'कमल : शाश्वत सांस्कृतिक प्रतीक' और 'लोटस : एन इंटरनल कल्चरल सिंबल' पुस्तकें प्रकाशित।

वह काल लेखक

श्री ब्रजकिशोर शर्मा

1934 में बैतूल (मध्य प्रदेश) में जन्म। लखनऊ विश्वविद्यालय से एल-एल.बी. एवं एल-एल.एम.। लखनऊ विश्वविद्यालय (1959-65) एवं राजस्थान विश्वविद्यालय (1965-69) में अध्यापन। 1969 में विधि मंत्रालय, भारत सरकार में आए। 'इंट्रोडक्शन टु द कॉन्स्टीट्यूशन ऑफ इंडिया' और 'भारत का संविधान : एक परिचय' बेहद लोकप्रिय पुस्तकें। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास के अध्यक्ष रहे। 'राजा राममोहनराय लाइब्रेरी-फाउंडेशन' के अध्यक्ष हैं।

समर्पण परिचय लेखक

श्री बलबीर पुंज

लालोवल, गुरदासपुर (पंजाब) में 2 अक्तूबर, 1949 को जन्म। 1971 में 'मदरलैंड' से पत्रकारिता आरंभ। 1974 से 1996 तक फाइनेंशियल एक्सप्रेस में कार्य। आई.आई.एम.सी. के अध्यक्ष हैं। ओडिशा से राज्यसभा सदस्य रहे। आउटलुक, पंजाब केसरी एवं दैनिक जागरण में स्तंभ लेखन। भारतीय जनता पार्टी के उपाध्यक्ष रहे।

अनुसंधान एवं संपादन सहायक

श्री इष्ट देव सांकृत्यायन

- श्री राजेश राजन
- डॉ. विकास द्विवेदी
- श्रीमती सुमेधा मिश्रा
- श्री देवेश खंडेलवाल
- श्री राम शिरोमणि शुक्ल
- डॉ. अरुण भारद्वाज

टंकण एवं सज्जा

- श्री प्रेम प्रकाश राय
- श्री राकेश शुक्ल
- श्री नरेंद्र कुमार
- श्रीमती दीपा सूद

शके १८७७ ... र. उ. ७।१७, र. अ. ६।२१

जानेवारी ता. १७ वार मंगळ पोष शुदी ४ संवत २०१२

2.. TUESDAY 17th JANUARY 1956

[illegible]
१७.१.

संघ का कार्य हिन्दू संगठन का है। भावात्मक हिन्दुत्व हमारे सन्मुख है। हिन्दू शब्द से जिस समाज की कल्पना होती है उसके कुछ लक्षण रहेंगे। ... आगे दृष्टि विशाल ... समाज की ... राष्ट्रभूमि, उसके ... रहनेवाला एक ... हिन्दू समाज।
अन्य कार्य होते हुए भी हमने संगठन का ही कार्य ... लिया है ... ।

१. ज्ञान का लक्षण = एकत्व का बोध है; अनेकता का बोध - अज्ञान। एकात्मता का बोध कराने का प्रयत्न करना होगा।

अपने हृदय में सबके लिये समान आदर होना चाहिये जो बातें इसके पोषक न हों उन्हें हम व्यवहार से निकाल ...
हिन्दुत्व के लक्षण सबमें समान रूपसे मिलेंगे।
भगवान का दर्शन सभी कर सकते हैं।
सभी भाषाओं में एक ही भाव व्यक्त होता है।
१०० वर्ष पूर्व Father Goodwin ने ... अवतार ... प्रचार किया किन्तु ... धर्म, ... [illegible]

Import of ... less than 18 months ...
total sum of 4.3 ...
value of imports of ...
machinery in 1956- ...
325 crores:
Some industries h...
licensed for a capa...
excess of the Plan...
some have capac...
near the targets ...
for the end of the P...
These are sugar ...
rubber, tyres & tu...
alcohol, soda ash ...
soda, refractori...
transmitter forme...
and rayon fil...
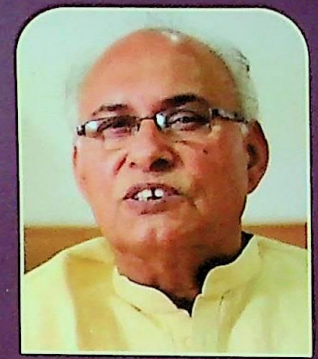
डॉ. महेश चंद्र शर्मा

जन्म : राजस्थान के चुरू कस्बे में 7 सितंबर, 1948 को।

शिक्षा : बी.ए. ऑनर्स (हिंदी), एम.ए. एवं पी-एच.डी. (राजनीति शास्त्र)।

कृतित्व : 1973 में प्राध्यापक की नौकरी छोड़कर राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बने। आपातकाल में अगस्त 1975 से अप्रैल 1977 तक जयपुर जेल में 'मीसा' बंदी रहे। सन् 1977 से 1983 तक अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् में उत्तरांचल के संगठन मंत्री, 1983 से 1986 तक राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच.डी. की उपाधि के लिए 'दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक जीवन चरित—कर्तृत्व व विचार सरणी' विषय पर शोधकार्य। 1983 से साप्ताहिक 'विश्ववार्ता' व 'अपना देश' स्तंभ नियमित रूप से भारत के प्रमुख समाचार-पत्रों में लिखते रहे।

सन् 1986 में 'दीनदयाल शोध संस्थान' के सचिव बने। शोध पत्रिका 'मंथन' का संपादन। 1986 से वार्षिक 'अखंड भारत स्मरणिका' का संपादन। 1996 से 2002 तक राजस्थान से राज्यसभा सदस्य एवं सदन में भाजपा के मुख्य सचेतक रहे। 2002 से 2004 तक नेहरू युवा केंद्र के उपाध्यक्ष। 2006 से 2008 तक भाजपा राजस्थान के अध्यक्ष। 2008-2009 राजस्थान विकास एवं निवेश बोर्ड के अध्यक्ष। 1999 से एकात्म मानवदर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष। पंद्रह खंडों में प्रकाशित 'पं. दीनदयाल उपाध्याय संपूर्ण वाङ्मय' के संपादक।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का बचपन बहुत ही विकट स्थितियों में बीता, तो भी वे सदैव एक मेधावी छात्र के रूप में रेखांकित हुए। द्वि-राष्ट्रवाद की छाया ने जब भारत की आजादी की लड़ाई को आवृत्त कर लिया था, तब 1942 में राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारंभ किया। वे उत्तम संगठक, साहित्यकार, पत्रकार एवं वक्ता के नाते संघ-कार्य को बल देते रहे।

1951 में जब डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई, तभी उनका राजनीति में प्रवेश हुआ। देश की अखंडता के लिए कश्मीर आंदोलन, गोवा मुक्ति आंदोलन तथा बेरुबाड़ी के हस्तांतरण के विरुद्ध आंदोलन चलाकर उन्होंने भारत की राजनीति में स्वतंत्रता संग्राम के मुद्दों को जीवित रखा। भारत की अखंडता के लिए उनका पूरा जीवन लगा।

देश के लोकतंत्र को सबल विपक्ष की आवश्यकता थी; प्रथम तीन लोकसभा चुनावों के दौरान भारतीय जनसंघ एक ताकतवर विपक्षी दल के रूप में उभरा। वह विपक्ष कालांतर में विकल्प बन सके, इसकी उन्होंने संपूर्ण तैयारी की।

केवल तंत्र ही नहीं, मंत्र का भी विकल्प आवश्यक था। विदेशी वादों के स्थान पर उन्होंने एकात्म मानववाद, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद एवं भारतीयकरण का आह्वान किया। 1951 से 1967 तक वे भारतीय जनसंघ के महामंत्री रहे। 1968 में उन्हें अध्यक्ष का दायित्व मिला। अचानक उनकी हत्या कर दी गई। उनके द्वारा विकसित किया गया दल 'भारतीय जनता पार्टी' ही देश में राजनैतिक विकल्प बना।